

सत् शास्त्र-प्रकाशन —

महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास-प्रणीत—

श्रीमद्भागवत - महापुराण

[पदच्छेद, अन्वय, हिन्दी शब्दार्थ टीका सहित]

चतुर्थ खण्ड

[पञ्चम एवं षष्ठ स्कन्धः]

सम्पादक :

सुदर्शन सिंह 'वक्र'

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान

मथुरा-२८१००१

श्री हित हरिवंश

वृन्दावन के परम पूज्य संत श्री प्रेमानंद जी के प्रवचन से प्रेरणा पाकर हमने मूल संस्कृत की श्रीमद्भागवत का पाठ स्वयं करने का निश्चय किया। अंग्रेजी भाषा में शिक्षा ग्रहण करने और संस्कृत भाषा का अधिक ज्ञान न होने के कारण हमारे लिए मूल श्लोक को पढ़ना थोड़ा कठिन है। इसीलिए हमारे गुरु श्री के. एन. राव जी ने हमें श्रीमद्भागवद्गीता का पाठ गीता प्रेस से प्रकाशित पदच्छेद, अन्वय और टीका वाली पुस्तक संख्या 17 से कराया है। पदच्छेद से संस्कृत श्लोक का अध्ययन सुगम हो गया और कुछ समय बाद मूल श्लोक भी सहजता से पढ़ा गया। इसी उद्देश्य से हमने भागवत की एक ऐसी प्रति को खोजना प्रारम्भ किया जिसमें मूल श्लोक, पदच्छेद और साथ ही हिंदी टीका हो। इंटरनेट पर खोजने से ऐसी कई प्रति मिलीं किन्तु श्री सुदर्शन सिंह चक्र जी द्वारा किया अन्वय उन सभी में सबसे सहज और सुगम है। किन्तु ग्रन्थ के अब प्रकाशित न होने के कारण उपलब्ध नहीं है। इस अमूल्य ग्रन्थ को दोबारा साधकों तक लाने के लिए इसके सभी खंडों को स्कैन करके उपलब्ध कराने का यह हमारा छोटा सा प्रयास है।

श्री जी की कृपा से इस यात्रा में पद पद पर हमें वृन्दावन के संतों और धर्मप्रेमी मित्रों का सहयोग मिलता रहा जिसके बिना इस कार्य को पूर्ण करना असंभव था। सभी संतो और मित्रों का आभार प्रकट किये बिना इस ग्रन्थ को पुनः जन जन तक पहुँचाना संभव ही नहीं है। सबसे पहले इस ग्रन्थ की खोज में हमारे मार्गदर्शक आगरा के स्वपनिल जी बने और हमारा परिचय प्रभात जी से कराया। तत्पश्चात् पूज्य राजमाता सौभाग्य कुँवर राणावत जी और पूज्य डॉ. बालचंद्रिका पाठक जी (मुन्नी जीजी) के मार्गदर्शन में हमने वृन्दावन के आश्रमों में इसकी खोज प्रारम्भ की। अन्ततः इस ग्रन्थ के सभी खंड हमें अखंडानंद आश्रम लाइब्रेरी से श्री सेवानंद जी और मलूक पीठ ग्रंथालय से श्री श्यामसुंदर जी के आशीर्वाद से प्राप्त हुए। पहला खंड अत्यधिक पुराना होने के कारण बहुत ही जीर्ण अवस्था में था और खंड के बहुत से पृष्ठ गुम हो चुके थे। तभी हमारी इस यात्रा को पूर्ण करने में सहयोगी बने बक्सर वाले मामाजी के बक्सर आश्रम से श्याम जी जिन्होंने कोसी आश्रम के नवल जी से परिचय करवाया। और नवल जी ने प्रथम खंड की बहुत ही सहज कर रखी गयी प्रति स्कैन करने के लिए उपलब्ध करवाई।

श्री जी के आशीर्वाद, संतों के मार्गदर्शन और धर्मप्रेमी मित्रों के सहयोग के बिना यह यात्रा असफल ही होती। हम आशा करेंगे कि इस नए प्रिंट से सभी भागवत प्रेमी और विद्यार्थी लाभ उठा सकेंगे। इस पूरे ग्रन्थ का पीडीऍफ़ ऑनलाइन भी अपलोड किया गया है। नीचे दिए लिंक से सभी खंडों का पीडीऍफ़ डाउनलोड किया जा सकता है।

<https://archive.org/details/shrimad-bhagvat-anvaya-teeka>

श्रीमद्भागवत-महापुराण

‘चतुर्थ खण्ड’

पञ्चम स्कन्धः

१. प्रथमोऽध्यायः	३
२. द्वितीयोऽध्यायः	३०
३. तृतीयोऽध्यायः	४६
४. चतुर्थोऽध्यायः	५८
५. पञ्चमोऽध्यायः	७१
६. षष्ठोऽध्यायः	८५
७. सप्तमोऽध्यायः	१०७
८. अष्टमोऽध्यायः	११७
९. नवमोऽध्यायः	१३६
१०. दशमोऽध्यायः	१५२
११. एकादशोऽध्यायः	१७०
१२. द्वादशोऽध्यायः	१८१
१३. त्रयोदशोऽध्यायः	१८१
१४. चतुर्दशोऽध्यायः	२०८
१५. पञ्चदशोऽध्यायः	२३६
१६. षोडशोऽध्यायः	२४६
१७. सप्तदशोऽध्यायः	२६३
१८. अष्टादशोऽध्यायः	२८०
१९. एकोनविंशोऽध्यायः	३०६
२०. विंशोऽध्यायः	३२६
२१. एकविंशोऽध्यायः	३५३
२२. द्वाविंशोऽध्यायः	३६४
२३. त्रयोविंशोऽध्यायः	३७६
२४. चतुर्विंशोऽध्यायः	३८४
२५. पञ्चविंशोऽध्यायः	४०६
२६. षड्विंशोऽध्यायः	४१६

षष्ठः स्कन्धः

१. प्रथमोऽध्यायः	४४७
२. द्वितीयोऽध्यायः	४७५
३. तृतीयोऽध्यायः	४८६
४. चतुर्थोऽध्यायः	५१४
५. पञ्चमोऽध्यायः	५३८
६. षष्ठोऽध्यायः	५५६
७. सप्तमोऽध्यायः	५७३
८. अष्टमोऽध्यायः	५८०
९. नवमोऽध्यायः	६१०
१०. दशमोऽध्यायः	६३६
११. एकादशोऽध्यायः	६५३
१२. द्वादशोऽध्यायः	६६७
१३. त्रयोदशोऽध्यायः	६८३
१४. चतुर्दशोऽध्यायः	६८४
१५. पञ्चदशोऽध्यायः	७२०
१६. षोडशोऽध्यायः	७३१
१७. सप्तदशोऽध्यायः	७६०
१८. अष्टदशोऽध्यायः	७७७
१९. एकोनविंशोऽध्यायः	८०८



॥ पञ्चम स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच—

प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने ।

गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ॥१॥

प्रियव्रतः भागवतः आत्मारामः कथं मुने गृहे अरमत यन्मूलः
कर्मबन्धः पराभवः ॥१॥

मुने	महामुनि (शुकदेवजी) !	यन्मूलः	जिसकी जड़ ही
भागवतः	भगवद्-भक्त	कर्मबन्धः	कर्मका बन्धन (और)
आत्मारामः	अपने आत्मामें ही	पराभवः	पराजय है (उस)
	आनन्दित	गृहे	गृहस्थाश्रममें
प्रियव्रतः	प्रियव्रत	अरमत	सुख मानने
कथं	कैसे		लगे ॥१॥

न नूनं मुक्तसङ्गानां तादृशानां द्विजर्षभ ।

गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति ॥२॥

न नूनं मुक्तसङ्गानां तादृशानां द्विजर्षभ गृहेषु अभिनिवेशः
अयं पुंसां भवितुं अर्हति ॥२॥

द्विजर्षभ	विप्रश्रेष्ठ !	गृहेषु	गृहस्थाश्रममें
नूनं	निश्चय	अयं	यह
तादृशानां	उस प्रकारके	अभिनिवेशः	पूर्ण प्रवेश
मुक्तसङ्गानां	आसक्तिहीन	न	नहीं
पुंसां	पुरुषोंका	भवितुं अर्हति	होना चाहिए ॥२॥

महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोकपादयोः ।

छायानिर्वृतचित्तानां न कुटुम्बे स्पृहामतिः ॥३॥

महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोक पादयोः छाया निर्वृत चित्तानां न कुटुम्बे स्पृहामतिः ॥३॥

विप्रर्षे	ब्रह्मर्षि !	चित्तानां	चित्तबालोंका
उत्तमश्लोक	उत्तमयशा	खलु	निश्चय
	(भगवान्) के	कुटुम्बे	परिवार बनानेमें
पादयोः	श्रीचरणोंकी	स्पृहामति	स्पृहाबुद्धि
छाया	छाया (चिन्तन) से	न	नहीं होती ॥३॥
निर्वृत	आनन्दमग्न		

संशयोऽयं महान् ब्रह्मन्दारागारसुतादिषु ।

सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता ॥४॥

संशयः अयं महान् ब्रह्मन् दारा आगार सुतादिषु सक्तस्य यत् सिद्धिः अभूत् कृष्णे च मतिः अच्युता ॥४॥

ब्रह्मन् !	ब्रह्मन् !	सिद्धिः च	अन्तःकरण शुद्धि
अयं	यह (मुझे)		तथा
महान् संशयः	भारी संशय है	कृष्णे	भगवान् कृष्णमें
यत् दारा	जो, पत्नी	अच्युता	निश्चल
आगार	घर,	मतिः	बुद्धि (निष्ठा)
सुतादिषु	पुत्रादिमें	अभूत्	हो गयी ॥४॥
सक्तस्य	आसक्तकी		

श्रीशुक उवाच-

बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्द-
मकरन्दरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किञ्चि-
दन्तरायविहतां स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥५॥

बाढं उक्तं भगवतः उत्तमश्लोकस्य श्रीमत् चरणारविन्द मकरन्द
रस आवेशित चेतसः भागवत परमहंस दयित कथां किञ्चित् अन्तराय
विहतां स्वां शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥१॥

बाढं उक्तं	(तुमने) ठीक कहा (किन्तु)	दयित कथां	प्रिय (भगवत्) कथामें
भगवतः	भगवान्	किञ्चित्	तनिक
उत्तमश्लोकस्य	उत्तमश्लोकके	अन्तराय	
श्रीमत्	परमसुन्दर	विहतां	बाधा आ जानेपर (भी)
चरणारविन्द	चरण-कमलोंके	स्वां शिवतमां	अपनी परम कल्याणमयी
मकरन्द रस	मकरन्द (मधु) रसमें	पदवीं	स्थितिको
आवेशित	प्रविष्ट	प्रायेण	प्रायः
चेतसः	चित्तवाले (लोग)	न हिन्वन्ति	नहीं त्यागते ॥१॥
भागवत	भगवद्भक्त		
परमहंस	परमहंसीकी		

यहि वाव ह राजन् स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतो
नारदस्य चरणोपसेवयाञ्जसावगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसत्रेण
दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकान्तभाज-
नतया स्वपित्रोपामन्त्रितो भगवति वासुदेव एवाध्यवधानसमाधि-
योगेन समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो नैवाभ्यनन्दद्यद्यपि
तदप्रत्याम्नातव्यं तदधिकरण आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभव-
मन्वीक्षमाणः ॥६॥

यहि वाव ह राजन् स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतः नारदस्य
चरण उपसेवया अञ्जसा अवगतः परमार्थ सतत्त्वः ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणः
अवनितल परिपालनाय आम्नात प्रवर गुणगण एकान्त भाजनतया
स्वपित्रा उपामन्त्रितः भगवति वासुदेव एव अध्यवधान समाधियोगेन
समावेशित सकलकारक क्रियाकलापः न एव अभ्यनन्दत् यद्यपि तत्

अप्रति आम्नातव्यं तत् अधिकरण आत्मनः अन्यस्मात् असतः अपि पराभवं
अन्वीक्षमाणः ॥६॥

राजन् राजन् !
यहि वाव ह जिस सुअवसरपर
निश्चय
स राजपुत्रः वह राजपुत्र
प्रियव्रतः प्रियव्रत
परमभागवतः परम-भगवद्-भक्त
नारदस्य देवर्षि नारदके
चरण उपसेवया चरणोंकी सेवासे
अञ्जसा सुगमता पूर्वक
परमार्थ सतत्त्व परमार्थतः सत्
तत्त्वको
अवगतः जानकर
ब्रह्मसूत्रेण ब्रह्मज्ञानके चिन्तन-
परम्पराकी
दीक्षिष्यमाणः (संन्यासकी) दीक्षा
लेने जा रहे थे,
(उसी समय)
अवनितल पृथ्वीके
परिपालनाय सम्यक् पालनके
लिए
प्रवर आम्नात श्रेष्ठ-वैदिकज्ञान
युक्त (व्यास)
गुणगण अनेक सद्गुणोंके
एकान्त भाजन- एकमात्र पात्र
तया होनेसे
स्वपित्रा अपने पिता (मनु)
द्वारा

उपामन्त्रितः बुलाये गये (किन्तु)
भगवति वासुदेव
एव भगवान् वासुदेवमें
ही
अव्यवधान निर्बाध
समाधियोगेन एकाग्रता रूप योगसे
सकलकारक समस्त करणों
(इन्द्रियों) की
क्रियाकलापः क्रियात्मक चेष्टा
समावेशित भली प्रकार प्रविष्ट
कर देनेसे
न एव (उस पिताकी
आज्ञाका) नहीं ही
अभ्यनन्दत् अभिनन्दन किया ।
यद्यपि यद्यपि
तत् वह (उपेक्षा)
आम्नातव्यं शास्त्रकी माननीय
आज्ञाके
अप्रति अनुकूल नहीं थी
(किन्तु)
तत् अधिकरण उसका आधार
आत्मनः अपने अन्तःकरणका
अन्यस्मात् दूसरोंसे
असतः अपि न होनेपर भी
पराभवं पराजय
अन्वीक्षमाणः (वे) देख (समझ)
रहे थे ॥६॥

अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिवृंहणा-
नुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजग-
णपरिवेष्टितः स्वभवनादवततार ॥७॥

अथ ह भगवान् आदिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिवृंहण अनुध्यान
व्यवसित सकलजगत् अभिप्राय आत्मयोनिः अखिलनिगम निजगण
परिवेष्टितः स्वभवनात् अवततार ॥७॥

ह अथ	निश्चय इसी समय	सकलजगत	सम्पूर्ण जगतके
भगवान्			(प्राणिमोंका)
आदिदेवः	भगवान् आदिदेव	अभिप्राय	संकल्प
आत्मयोनिः	स्वयंभू ब्रह्माजी	व्यवसित	जाननेके कारण,
एतस्य	इस	अखिलनिगम	समस्त वेदों (और)
गुणविसर्गस्य	त्रिगुणोंकी विशेष	निजगण	अपने पार्षदोंसे
	सृष्टिके	परिवेष्टितः	घिरे हुए
परिवृंहण	विस्तारके लिए	स्वभवनात्	अपने भवन
अनुध्यान	बराबर चिन्तनमें		(ब्रह्मालोक) से
	(लगे होनेसे)	अवततार	उतरे ॥७॥

स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिरिव विमानावलिभिर-
नुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्धगन्धर्व-
साध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गन्धमादनद्रोणीमवभास-
यन्नुपससर्प ॥८॥

स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिः इव विमान अवलिभिः अनुपथं अमर-
परिवृढैः अभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्ध गन्धर्व साध्य चारण
मुनिगणैः उपगीयमानः गन्धमादन द्रोणीं अवभासयन्न उपससर्प ॥८॥

गगनतल	आकाशमें	अनुपथं	मार्गमें पड़नेवाले
उडुपतिः इव	चन्द्रमाके समान	विमान	
स	वे (ब्रह्माजी)	अवलिभिः	विमानोंके झुण्डोंमें
तत्र तत्र	जहां-तहां		

अमरपरिवृढे	आरोहण किये	मुनिमणः	मुनिगणों द्वारा
	देवताओं द्वारा	उपगीयमानः	स्तुति किये जाते,
अभिपूज्यमानः	अदर सहित पूजित होते	गन्धमादन	
अपथि पथि	तथा मार्गोंमें	द्रोणीं	गन्धमादन गिरिके शिखरको
ब्रूथशः	दलकेदल	अवभासयन्	प्रकाशित करते
सिद्ध, गन्धर्व	सिद्धों, गन्धर्वों,	उपससर्प	समीप पहुँचे ॥८॥
साध्य चारण	साध्यगण, चारणों,		

तत्र ह वा एनं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्य-
गर्भमुपलभमानः सहसंबोत्थायार्हणेन सह पितापुत्राभ्यामवहि-
ताञ्जलिरुपतस्थे ॥८॥

तत्र ह वा एनं देवर्षिः हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भं उपलभ-
मानः सहसा एव उत्थाय अर्हणेन सह पिता पुत्राभ्यां अवहित अञ्जलिः
उपतस्थे ॥८॥

तत्र	वहां	उत्थाय	उठकर खड़े होकर
एनं ह वा	इनको निश्चयपूर्वक	सह पुत्राभ्यां	पुत्रों (सनकादि ऋषियों) के साथ
	पहिचानकर		
देवर्षिः	देवर्षि नारदने	पिता	पिताके लिए
पितरं	अपने पिता	अवहित	
भगवन्तं	भगवान	अञ्जलिः	हाथ जोड़कर
हिरण्यगर्भं	ब्रह्माजीको	उपतस्थे	समीप खड़े
उपलभमानः	समीप पाकर		हो गये ॥८॥
सहसा एव	सहसा ही		

भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवाकेनातितरा-
मुदितगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सद्यहासावलोक
इति होवाच ॥९०॥

भगवान् अपि भारत तत् उपनीत अर्हणः सूक्त वाकेन अतितरां
मुदित गुणगण अवतार सुजयः प्रियव्रतं आदिपुरुषः तं सद्यहास अवलोक
इति ह उवाच ॥१०॥

भारत	परीक्षित !	सुजयः	तथा यशोगान्से
भगवान् अपि	भगवान् (ब्रह्मा) भी	(प्रसन्न हो)	
तत् उपनीत	उन (प्रियव्रत नारद)	आदिपुरुषः	आदिपुरुष
	की लायी	तं प्रियव्रतं	उन प्रियव्रतको
अर्हणः	पूजा (तथा)	सद्यहास	कृपापूर्ण मुस्कराहट
सूक्त वाकेन	वैदिक सूक्तोंसे	(सहित)	
अतितरां	अत्यन्त	अवलोक	देखते हुए
मुदित	आनन्दित होकर	इति	इस प्रकार
गुणगण		ह उवाच	निश्चित (स्वरमें)
अवतार	गुणसमूहोंके वर्णन		बोले ॥१०॥

ब्रह्मोवाच*—

निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि
मासूयितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ।
वयं भवस्ते तत एष महर्षि-
ब्रह्माम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥११॥

निबोध तात इदं अमृतं ब्रवीमि मा असूयितुं देवं अर्हसि अप्रमेयं वयं
भवः ते तत एष महर्षिः ब्रह्माम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥११॥

तात	बन्धु !	ब्रवीमि	बतलाता हूँ,
निबोध	सुनो,	अप्रमेयं देवं	अप्रमेय देव
इदं अमृतं	यह अमृत	(श्रीहरि) से	
	(अविनाशी सत्य)	असूयितुं	(तुम्हें) असूया

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'श्रीभगवानुवाच' है ।

मा अर्हसि	नहीं करना चाहिए ।	सर्वे	सब लोग
षयं	हम सब	यस्य दिष्टं	जिसका (प्रदत्त)
भवः	शंकरजी	विवशा	प्रारब्ध
ते तत एष	तुम्हारे विश्वस्त ये	वहाम	विवश होकर
महर्षिः	देवर्षि नारद,		ढोते (मानते)
			हैं ॥११॥

न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा
न योगवीर्येण मनीषया वा ।

नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा
कृतं विहन्तुं तनुभृद्विभूयात् ॥१२॥

न तस्य कश्चित् तपसा विद्यया वा न योगवीर्येण मनीषया वान एव
अर्थ धर्मैः परतः स्वतः वा कृतं विहन्तुं तनुभृत् विभूयात् ॥१२॥

तस्य कृतं	उन (भगवान्) के किये (विधान) को	अर्थ धर्मैः	धनसे या धर्म बलसे
कश्चित्	कोई भी	स्वतः	स्वयं
तनुभृत्	शरीरधारी	वा परतः	अथवा दूसरे (की सहायता) से
तपसा	तपस्यासे	विहन्तुं	नष्ट करनेमें
वा विद्यया न	अथवा किसी बिद्यासे	न एव	नहीं ही
	नहीं,	विभूयात्	समर्थ हो
योगवीर्येण	योगकी शक्तिसे		सकता ॥१२॥
वा मनीषया न	अथवा बुद्धिसे नहीं,		

भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं
शोकाय मोहाय सदा भयाय ।

सुखाय दुःखाय च देहयोग-

मव्यक्तदिष्टं जनताङ्गं धत्ते । १३॥

भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं शोकाय मोहाय सदा भयाय सुखाय
दुःखाय च देहयोगं अव्यक्त दिष्टं जनता अङ्गं धत्ते ॥१३॥

अङ्ग	प्रिय (वत्स) !	सुखाय	सुखके लिए,
जनता	लोग	च दुःखाय	तथा दुःख (भोगने)
भवाय	उत्पन्न होनेके लिए,		के लिए
नाशाय च	मरनेके लिए तथा	अव्यक्त दिष्टं	अव्यक्त प्रारब्धके
कर्म कर्तुं	कर्म करनेके लिए,		अनुसार
शोकाय	शोकके लिए,	देहयोगं	शरीरका योग
मोहाय	मोहके लिए,		(शरीर)
सदा भयाय	नित्य भयग्रस्त रहनेके लिए,	धत्ते	धारण करते हैं ॥१३॥

यद्वाचि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः
 सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ।
 सर्वे बहामो बलिमीश्वराय
 प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥१४॥

यद् वाचि तन्त्यां गुणकर्म दामभिः सुदुस्तरैः वत्स वयं सुयोजिताः सर्वे
 बहामः बलि ईश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥१४॥

वत्स	बत्स !	सुदुस्तरैः	अत्यन्त दुस्तर
द्विपदे	द्विपद (मनुष्यों) के लिए	गुण कर्म	त्रिगुण और कर्मकी
		दामभिः	रस्सी द्वारा
चतुष्पदः	चौपाथी (पशु) के	वयं सर्वे	हम सब
नसीव	नाककी रस्सीके समान	सुयोजिताः	भली प्रकार लगाये गये
प्रोता	पिरोथे	ईश्वराय	(उस) सर्वेश्वरके लिए
यद्	जिसकी	बलि	उपहार
वाचि	वाणी (वेदवाणी) रूपी	बहामः	ढोते (देते) हैं ॥१४॥
तन्त्यां	तांत (रस्सी) में		

ईशाभिसृष्टं

ह्यवसन्महेऽङ्ग

दुःखं सुखं वा गुणकर्मसङ्गात् ।

आस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्त नाथ-
 चक्षुष्मतान्धा इव नीयमानाः ॥१५॥

ईश अभिसृष्टं हि अवरुन्धमे अङ्ग दुःखं सुखं वा गुण कर्मसङ्गात्
 आस्थाय तत् तत् यत् अयुङ्क्त नाथः चक्षुष्मत् अन्धा इव नीयमानः ॥१५॥

चक्षुष्मत्	आंखवाला	अवरुन्धमे	हम नियन्त्रित होते हैं ।
नाथः	स्वामी		
अन्धा		गुण	गुणों तथा
नीयमानः	अन्धेको ले जातेके	कर्मसङ्गात्	कर्मोंकी आसक्तिमें
इव हि	समान क्योंकि	आस्थाय	स्थित होकर
अङ्ग	वत्स !	दुःखं	दुःख
ईश	ईश्वरके	वा सुखं	अथवा सुख
अभिसृष्टं	बनाये (विधान)के	तत् तत्	वह वह
	अनुसार	अयुङ्क्त	भोगते हैं ॥१५॥

मुक्तोऽपि तावद्बिभृयात्स्वदेह-

मारब्धमभ्रमभिमानशून्यः ।

यथानुभूतं प्रतियातनिद्रः

किं त्वन्यदेहाय गुणान्त वृङ्क्ते ॥१६॥

मुक्तः अपि तावत् बिभृयात् स्वदेहं आरब्धं अश्नन् अभिमान शून्यः
 यथा अनुभूतं प्रतियात निद्रः किं तु अन्य देहाय गुणान् न वृङ्क्ते ॥१६॥

यथा	जैसे	तावत्	तब तक
प्रतियात निद्रः	निद्रासे जगा हुआ	स्वदेहं	अपने शरीरको
अथवा	(स्वप्नमें) जैसा	अभिमान शून्यः	अभिमान रहित
अनुभूतं	अनुभव हुआ था		होकर
	(स्मरण करता है)	आरब्ध	प्रारब्ध
मुक्तः अपि	(वैसेही) मुक्त	अश्नन्	भोगता हुआ
	होनेपर भी	बिभृयात्	धारण करता है,

किं नु अन्य देहाय	लेकिन दूसरा शरीर पानेके लिए	गुणान् बृङ्क्तं न	गुणोंका वरण नहीं करता ॥१६॥
----------------------	-----------------------------------	----------------------	----------------------------------

भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्यात्

यतः स आस्ते सह षट् सपत्नः ।

जितेन्द्रियस्यात्मरतेर्बुधस्य

गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम् ॥१७॥

भयं प्रमत्तस्य वनेषु अपि स्यात् यतः स आस्ते सह षट् सपत्नः
जितेन्द्रियस्य आत्मरतेः बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोति अवद्यम् ॥१७॥

प्रमत्तस्य वनेषु अपि भयं स्यात्	प्रमादग्रस्तके लिए वनमें भी (पतनका) भय होता है,	जितेन्द्रियस्य आत्मरतेः	इन्द्रियोंको जीत लेनेवाले, अपने आत्मामें ही रत
यतः स षट् सपत्नः सह आस्ते	क्योंकि वह छ (कामादि) शत्रुओंके साथ है ।	बुधस्य गृहाश्रमः किं नु अवद्यं करोति	बुद्धिमानके लिए गृहस्थाश्रम क्या तो हानि करता है ॥१७॥

यः षट् सपत्नान् विजिगीषमाणो

गृहेषु निर्विशय यतेत पूर्वम् ।

अत्येति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन्

क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥१८॥

यः षट् सपत्नान् विजिगीषमाणः गृहेषु निर्विशय यतेत पूर्वं अति एति
दुर्गं आश्रित ऊर्जित अरीन् क्षीणेषु कामं विचरेत् विपश्चित् ॥१८॥

यः	जो	दुर्ग आश्रित	(इस प्रकार) किलेका
षट् सपत्नान्	छः (कामादि)		सहारा लेकर
	शत्रुओंको	✓ ऊर्जित	बलवान
विजिगीषमाणः	विजय करना चाहता	अरीन्	शत्रुओंका
	हो	अति एति	अतिक्रान्त (परा-
पूर्वं	(वह) पहिले		जित) कर लेता है
गृहेषु	गृहस्थाश्रममें	कामं	कामनाओंके
निर्विद्वय	प्रवेश करके	क्षीणेषु	क्षीण हो जानेपर
यतेत	(उन्हें जीतनेका)	विपश्चित्	विवेकी (व्यक्ति)
	प्रयत्न (साधन) करे	विचरेत्	विचरण करे (परि-
			व्राजक बने) ॥१८॥

त्वं त्वब्जनाभाङ्घ्रिसरोजकोश-

दुर्गाश्रितो निर्जितषट्सपत्नः ।

भुङ्क्ष्वेह भोगान् पुरुषातिदिष्टान्

विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥१९॥

त्वं तु अब्जनाभ अङ्घ्रिसरोज कोश दुर्ग आश्रितः निर्जित षट् सपत्नः भुङ्क्ष्व इह भोगान् पुरुष अतिदिष्टान् विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥१९॥

त्वं तु	तुम तो	पुरुष	परम पुरुष द्वारा
अब्जनाभ	भगवान् कमलनाभ-	अतिदिष्टान्	निदिष्ट (प्रदत्त)
	के	भोगान्	भोगोंको
अङ्घ्रिसरोज	चरण-कमलके	भुङ्क्ष्व	भोगो (तथा)
कोश दुर्ग	कोश रूपी दुर्गके	विमुक्तसङ्गः	आसक्ति त्यागकर
आश्रितः	आश्रित होकर	प्रकृतिं	प्रजाकी
षट् सपत्नः	छहों शत्रुओंको	भजस्व	सेवा (पालन)
निर्जित	जीत चुके,		करो ॥१९॥
इह	(अब) इस लोकमें		

श्रीशुक उवाच-

इति समभिहितो महाभागवतो भगवत्त्रिभुवनगुरोरनु-
शासनमात्मनो लघुतयावनतशिरोधरो बाढमिति सबहुमान-
मुवाह ॥२०॥

इति सम अभिहितः महाभागवतः भगवतः त्रिभुवन गुरोः अनुशासनं
आत्मनः लघुतया अवनतः शिरः अधरः बाढं इति सबहुमानं उवाह ॥२०॥

इति	इस प्रकार	लघुतया	छोटे होनेके कारण
सम अभिहितः	भली प्रकार	शिरः	सिर और
	समझानेपर	अधरः	झरीरका ऊपरी
महाभागवतः	परम भगवद्-भक्त		भाग
	(प्रियव्रत)ने	अवनतः	झुकाकर
त्रिभुवन गुरोः	तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ	बाढं इति	बहुत अच्छा, इस-
भगवतः	भगवान् (ब्रह्मा)की		प्रकार
भनुशासनं	आज्ञाकी	सबहुमानं	बहुत सम्मानपूर्वक
आत्मनः	अपने	उवाह	स्वीकार किया ॥२०॥

भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनार-
दयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरत्मसमवस्थानमवाङ्मनसं क्षय-
मव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत् ॥२१॥

भगवान् अपि मनुना यथावत् उपकल्पित अपचितिः प्रियव्रत नारदयोः
अविषमं अभिसमीक्षमाणयोः आत्म समवस्थानं अवाङ् मनसं क्षयं अव्य-
वहृतं प्रवर्तयन् अगमत् ॥२१॥

भगवान् अपि	भगवान् (ब्रह्मा)	उपकल्पित	किए जानेपर
	भी	प्रियव्रत	
मनुना	मनुके द्वारा	नारदयोः	प्रियव्रत और नारद
यथावत्	उचित		द्वारा
अपचितिः	कृतज्ञता	अविषमं	समान रूपसे

अभिसमीक्ष-

माणयोः

उत्सुकतापूर्वक देखे
जाते (दर्शन करते)

आत्म

अपनी

अवाङ् मनसं

वाणी, मनसे परे

क्षयं

विनाशसे

अव्यवहृतं

समवस्थानं

प्रवर्तयन्

अगमत्

अस्पृष्ट

समतामें स्थिति
(ब्रह्मस्थिति)को

चिन्तन करते

चले गये ॥२१॥

मनुरपि परेणैवं प्रतिसन्धितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेना-
त्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तय आस्थाप्य स्वयमतिविषम-
विषयविषजलाशयाशाया उपरराम ॥२२॥

मनुः अपि परेण एवं प्रतिसन्धित मनोरथः सुरर्षिवर अनुमतेन
आत्मजं अखिल धरामण्डल स्थिति गुप्तय आस्थाप्य स्वयं अतिविषम
विषयविष जल आशय आशाया उपरराम ॥२२॥

मनुः अपि	(स्वायम्भुव)	स्थिति गुप्तय	स्थितिकी रक्षाके
परिण	मनु भी	आस्थाप्य	लिए
एवं	दूसरेके द्वारा	स्वयं	नियुक्ति करके
मनोरथः	इस प्रकार	अतिविषम	स्वयं
प्रतिसन्धित	मनोरथके	विषयविष	बहुत असह्य
सुरर्षिवर	पूर्ण किए जानेपर	जल आशया	विषयरूपी विषोंके
अनुमतेन	देवर्षि श्रेष्ठकी		जलकी आशाके
आत्मजं	अनुमतिसे	आशाया	समान
	अपने पुत्र (प्रियव्रत)	उपरराम	आशा (कामनाओं)से
	को		उपरत (विरक्त)
अखिल			हो गये ॥२२॥
धरामण्डल	सम्पूर्ण पृथ्वीकी		

इति ह वाव स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाधिनिवेशितकर्मा-
धिकारोऽखिलजगद्वन्धध्वंसनपरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्या-
ङ्घ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरन्धितकषायाशयोऽवदातो-
ऽपि मानवर्धनो महतां महीतलमनुशशास ॥२३॥

इति ह वाव स जगतीपतिः ईश्वर इच्छया अधिनिवेशित कर्म अधिकारः अखिल जगत् बन्ध ध्वंसन पर अनुभावस्य भगवतः आदिपुरुषस्य अङ्घ्रियुगल अनवरत ध्यान अनुभावेन परिरन्धित कषाय आशयः अवदातः अपि मानवर्धनः महतां महीतलं अनुशशास ॥२३॥

इति	इस प्रकार	अङ्घ्रि युगल	दोनों चरणोंके
ह वाव	निश्चय इसी कारण	अनवरत	निरन्तर
स जगतीपतिः	वे संसारके स्वामी	ध्यान	
ईश्वर इच्छया	सर्वेश्वरकी इच्छासे	अनुभावेन	ध्यानके प्रभावसे
कर्म अधिकारः	कर्म करनेके	आशयः	चित्तके
	अधिकारी (पदपर)	कषाय	दोषके
अधिनिवेशित	पूर्णतः प्रतिष्ठित	परिरन्धित	परिपाक हो जानेसे
	किये जानेपर	अवदातः अपि	निर्मल होनेपर भी
अखिल जगत्	सम्पूर्ण संसारके	महतां	महत्तमोंके
बन्ध ध्वंसन	बन्धनको नष्ट करनेवाले	मानवर्धनः	सम्मानको बढ़ानेवाले होनेसे
पर अनुभावस्य	परम प्रभावशाली	महीतलं	पृथ्वीका
भगवतः	भगवान्	अनुशशास	शासन करने
आदिपुरुषस्य	आदिपुरुष (श्रीहरि) के		लगे ॥२३॥

अथ च दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यामु ह वाव आत्मजानात्मसमानशीलगुणकर्मरूपवीर्यो-दारान्दश भावयाम्बभूव कन्यां च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम ॥२४॥

अथ च दुहितरं प्रजापतेः विश्वकर्मणः उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यां उ ह वाव आत्मजान् आत्मसमान शील गुण कर्म रूप वीर्य उदारान् दश भावयां बभूव कन्यां च यवीयसीं ऊर्जस्वतीं नाम ॥२४॥

अथ च	फिर तो	बर्हिष्मतीं नाम	बर्हिष्मती नामक
प्रजापतेः	प्रजापति	दुहितरं	पुत्रीसे
विश्वकर्मणः	विश्वकर्माकी	उपयेमे	विवाह किया,

तस्यां उ ह वाव उसमें तो निश्चय	दश	दस
करके	आत्मजान् च	पुत्र तथा
आत्मसमान अपने समान	ऊर्जस्वतीं नाम	ऊर्जस्वती नामक
शील गुण शील, गुण,	यवीयसीं	सबसे छोटी
कर्म रूप कर्म, रूप,	कन्यां च	कन्याको भी
वीर्य उदारान् पराक्रम,	भावयां बभूव	भावना पूर्वक उत्पन्न
उदारतावाले		किया ॥२४॥

आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवन-
मेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सर्व एवाग्निनामनः ॥२५॥

आग्नीध्रः इध्मजिह्वः यज्ञबाहुः महावीरः हिरण्यरेतः घृतपृष्ठः सवनं
मेधातिथिः वीतिहोत्रः कवयः इति सर्वएव अग्निः नामनः ॥२५॥

आग्नीध्रः	आग्नीध्र,	मेधातिथिः	मेधातिथि,
इध्मजिह्वः	इध्मजिह्व,	वीतिहोत्रः	वीतिहोत्र,
यज्ञबाहुः	यज्ञबाहु,	कवयः	कवि
महावीरः	महावीर,	इति	इस प्रकार
हिरण्यरेतः	हिरण्यरेत,	सर्वएव	सभी
घृतपृष्ठः	घृतपृष्ठ,	अग्निः नामनः	अग्निके नामवाले
सवनं	सवन,		थे ॥२५॥

एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रयआसन्नूर्ध्वरेतसस्त
आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः पारमहंस्यमेवा-
श्रममभजन् ॥२६॥

एतेषां कविः महावीरः सवनः इति त्रयः आसन् ऊर्ध्वरेतसः त आत्म-
विद्यायां अर्भभावात् आरभ्य कृत परिचयाः पारमहंस्यं एव आश्रमं
अभजन् ॥२६॥

एतेषां	इनमें-से	सवनः	सवन
कविः महावीरः कवि, महावीर और		इति त्रयः	इस प्रकार तीन

ऊर्ध्वरेतसः	(आजन्म) ब्रह्मचारी	कृत परिचयाः	परिचय करके
आसन्	हुए	पारमहंस्यं	
अर्भभावात्	शैशवके	आश्रमं एव	परमहंस आश्रमका
आरभ्य	प्रारम्भसे ही		ही
आत्मविद्यायां	आत्मविद्यासे	अभजन्	सेवन किया ॥२६॥

तस्मिन्नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीव-
निकायावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य
श्रीमच्चरणारविन्दाविरतस्मरणाविगलितपरमभक्तियोगानुभावेन
परिभावितान्तर्हृदयाधिगते भगवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते
प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥२७॥

तस्मिन् नु ह वा उपशमशीलाः परमर्षयः सकल जीव निकाय
अवासस्य भगवतः वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमत् चरणारविन्द
अविरत स्मरण अविगलित परमभक्तियोग अनुभावेन परिभावित अन्तः हृदय
अधिगते भगवति सर्वेषां भूतानां आत्मभूते प्रत्यक् आत्मनि एव आत्मनः
तादात्म्यं अविशेषेण समीयुः ॥२७॥

तस्मिन् नु	उस (पारमहंस्य	श्रीमत्	शोभाशाली
	आश्रम) में तो	चरणारविन्द	चरणकमलोंके
ह वा	निश्चय ही	अविरत	निरन्तर
उपशमशीलाः	वैराग्यवान	स्मरण	स्मरणसे
परमर्षयः	परमर्षि गण	अविगलित	निश्चल
सकल जीव		परमभक्तियोग	परम (साध्यरूपा)
निकाय	समस्त जीववृन्दके		भक्तियोगके
आवासस्य	आवास	अनुभावेन	प्रभावसे
भीतानां	(भव भयसे) डरे	परिभावित	दृढ़ भावयुक्त
	हुओंके	अन्तः हृदय	हृदयके भीतर
शरणभूतस्य	आश्रय-स्थान स्वरूप	अधिगते	प्राप्त
भगवतः		सर्वेषां भूतानां	समस्त प्राणियोंके
वासुदेवस्य	भगवान् वासुदेवके	आत्मभूते	आत्मा स्वरूप

भगवति	भगवान्का	अविशेषेण	निर्विशेष रूपसे
प्रत्यक्		तादात्म्यं	एकात्मताको
आत्मनि एव	अपनी अन्तरात्मा में	✓समीधुः	✓पूर्णतः प्राप्त
	ही		हुए ॥२७॥
आत्मनः	अपने आपसे		

अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन्नुत्तमस्तामसो
रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः ॥२८॥

अन्यस्यां अपि जायायां त्रयः पुत्राः आसन् उत्तमः तामसः रैवतः इति
मन्वन्तर अधिपतयः ॥२८॥

अन्यस्यां	दूसरी	रैवतः	रैवत
जायायां अपि	पत्नीसे भी	इति	इस प्रकार
त्रयः पुत्राः	तीन पुत्र	मन्वन्तर	(ये) मन्वन्तरोके
आसन्	थे	अधिपतयः	अधिपति (मनु)
उत्तमः	उत्तम,		हुए ॥२८॥
तामसः	तामस और		

एवमुपशमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बु-
दान्येकादश परिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसम्भृत-
दोर्दण्डयुगलापीडितमौर्वीगुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो बर्हि-
ष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्यद्रीडाप्रमुषितहासाव-
लोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमानविवेक इवानवबुध्यमान इव
महामना बुभुजे ॥२९॥

एवं उपशम अयनेषु स्वतनयेषु अथ जगतीपतिः जगतीं अर्बुदानि
एकादश परिवत्सराणां अव्याहृत अखिल पुरुषकार सार सम्भृत दोः दण्ड
युगल आपीडित मौर्वीगुण स्तनित विरमित धर्म प्रतिपक्षः बर्हिष्मत्याः च
अनुदिनं एधमान प्रमोद प्रसरण यौषिण्य द्रीडा प्रमुषित हास अवलोक
रुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमान विवेक इव अनवबुध्यमान इव महामना
बुभुजे ॥२९॥

एवं	इस प्रकार	विरमति	निष्क्रिय कर दिया
स्वतनयेषु	अपने (कवि आदि	बर्हिष्मत्याः	था
उपशम	तीन) पुत्रोंके		(महारानी)
अयनेषु	वैराग्यको	अनुदिनं	बर्हिष्मती द्वारा
	घर बना लेने	एधमान	दिन दिन
	(विरक्त हो जाने)	प्रमोद	बढ़ते हुए
	पर	यौषिण्य	आनन्द विलास
अथ	फिर		स्त्रियोंकी विशेष
जगतीपतिः	पूरे संसारके स्वामी		(मटकती)
	(प्रियव्रत) ने	प्रसरण	चाल
अर्बुदानि		ब्रीडा प्रमुषित	लज्जाको चुरा रखा
एकादश	ग्यारह अरब		ऐसी
परिवत्सराणां	वर्षों तक	हास अवलोक	(लज्जापूर्ण) मुस्कान
जगतीं	पृथ्वीका (शासन		सहित देखनेकी
	किया)		भंगीसे
अव्याहत	अक्षीण	रुचिर-	
अखिल		क्ष्वेत्यादिभिः	मनोहर परिहासादि-
पुरुषकार	सम्पूर्ण पुरुष		से
	सामर्थ्यके	पराभूयमान	पराजित
सार सम्भृत	सारमें परिपूर्ण	विवेक इव	विवेकके समान
दोः दण्ड युगल	(अपनी) दोनों	अनवबुध्यमान	
	भुजाओंसे	इव	आत्म विस्मृत जैसे
आपीडित	दबाकर		होकर
स्तनित	खींचे गये	महामना	परम उदार चित्तसे
मौर्वीगुण	धनुषकी प्रत्यञ्चाके	बुभुजे	(भोगोंको) भोगते
	द्वारा		रहे ॥२६॥
धर्म प्रतिपक्षः	धर्म विरोधियोंको		

यावदवभासयति सुरगिरिमनुपरिक्रामन् भगवाना-
दित्यो वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि

भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनन्दन् समजवेन रथेन
ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिम-
नुपर्यक्रामद् द्वितीय इव पतङ्गः ॥३०॥

यावत् अवभासयति सुरगिरिं अनुपरिक्रामन् भगवान् आदित्यः
वसुधातलं अर्धेन एव प्रतपति अर्धेन अवच्छादयति तदा हि भगवत् उपासना
उपचित अतिपुरुष प्रभावः तत् अनभिनन्दन् समजवेन रथेन ज्योतिः
मयेन रजनीं अपि दिनं करिष्याम इति सप्तकृत्वः तरणिं अनु पर्यक्रामत्
द्वितीय इव पतङ्गः ॥३०॥

सुरगिरिं	सुमेरुकी	भगवत्	
अनुपरिक्रामन्	चारों ओर परिक्रमा करते हुए	उपासना	भगवान् की उपासनासे
भगवान्		उपचित	प्राप्त
आदित्यः	भगवान् सूर्य	अतिपुरुष	अतिमानव
यावत्	जहाँ तक (जगतको)	प्रभावः	प्रभाववाले (होनेसे)
अवभासयति	प्रकाशित करते हैं (उसमें)	समजवेन	समान वेगवाले
वसुधातलं	भूतल (एक साथ)	ज्योतिः मयेन	ज्योतिर्मय
अर्धेन एव	आधा ही	रथेन	रथके द्वारा
प्रतपति	प्रकाशित करते हैं,	रजनीं अपि	रात्रिको भी
अर्धेन	(दूसरे) आधे भागको	दिनं करिष्याम	दिन बना दूंगा
अवच्छादयति	ढक देते हैं,	इति	ऐसा सोचकर
तत्	इसे	तरणिं	सूर्यके
अनभिनन्दन्	पसन्द न करके	अनु	पीछे
तदा हि	उस समय तो	सप्तकृत्वः	सात बार
		द्वितीय	दूसरे
		पतङ्गः इव	सूर्यके समान
		पर्यक्रामत्	परिक्रमा की ॥३०॥

ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त
सिन्धव आसन् यत एव कृताः सप्त भुवो द्वीपाः ॥३१॥

ये वा उ ह तत् रथ चरण नेमि कृतः परिखाः ताः ते सप्त सिन्धवः
आसन् यत एव कृताः सप्त भुवः द्वीपाः ॥३१॥

ये	जो	ते	वही
वा उ ह	निश्चय वहां उस	सप्त सिन्धवः	
	समय	आसन्	सात समुद्र हो गये
तत्	उनके	यत एव	जिनसे ही
रथ चरण नेमि	रथके पहियोंके	भुवः	पृथ्वीके
	घेरेसे	सप्त द्वीपाः	सात द्वीप*
परिखाः कृतः	खाइयां बन गयीं	कृताः	बन गये ॥३१॥

जम्बू प्लक्ष शात्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परि-
माणं पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो यथासंख्यं द्विगुणमानेन बहिः
समन्तत उपक्लृप्ताः ॥३२॥

जम्बू प्लक्ष शात्मलि कुश क्रौञ्च शाक पुष्कर संज्ञाः तेषां परिमाणं
पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् उत्तर उत्तरः यथा संख्यं द्विगुणमानेन बहिः समन्तत
उपक्लृप्ताः ॥३२॥

जम्बू	जम्बू,	तेषां	उनका
प्लक्ष	प्लक्ष,	परिमाणं	घेरा
शात्मलि	शात्मलि,	पूर्वस्मात्	
कुश	कुश,	पूर्वस्मात्	पहिलोंसे
क्रौञ्च	क्रौञ्च,	यथा संख्यं	क्रमशः
शाक	शाक,	उत्तर उत्तरः	पिछले
पुष्कर	पुष्कर	द्विगुणमानेन	दुगुने विस्तारवाले हैं
संज्ञाः	नामवाले (ये सात द्वीप) हैं	बहिः समन्तत	बाहर चारों ओरसे
		उपक्लृप्ताः	घिरे हुए हैं ॥३२॥

* इस वर्णनमें लोकालोक पर्यन्त सम्पूर्ण भाग भूतल कहा गया है। अतः वर्तमान ज्ञात पृथ्वीमें इस वर्णनकी संगति नहीं ढूँढ़ना चाहिए।

क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्त
जलधयः सप्त द्वीपपरिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना एकैकश्येन यथा-
नुपूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक्परित उपकल्पितास्तेषु जम्बू-
दिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहु-
हिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान् यथासंख्येनैकै-
कस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥३३॥

क्षारोदः इक्षुरसोदः सुरोदः घृतोदः क्षीरोदः दधिमण्डोदः शुद्धोदाः
सप्त जलधयः सप्त द्वीप परिखा इव अभ्यन्तर द्वीप समाना एक एकश्येन
यथा अनुपूर्वं सप्तसु अपि बहिः द्वीपेषु पृथक् परितः उपकल्पिताः तेषु जम्बू
आदिषु बर्हिष्मतीपतिः अनुव्रतान् आत्मजान् आग्नीध्रः इध्मजिह्वः यज्ञबाहुः
हिरण्यरेताः घृतपृष्ठः मेधातिथिः वीतिहोत्रः संज्ञान् यथा संख्येन एक एकस्मिन्
एकं एव अधिपतिं विदधे ॥३३॥

क्षारोदः	क्षारोद,	एक एकश्येन	एक दूसरेसे
इक्षुरसोदः	इक्षुरसोद,	यथा अनुपूर्वं	यथा क्रम
सुरोदः	सुरोद,	सप्तसु	सातो ही
घृतोदः	घृतोद,	द्वीपेषु	द्वीपोंके
क्षीरोदः	क्षीरोद,	बहिः अपि	बाहर भी
दधिमण्डोदः	दधिमण्डोद,	पृथक्	अलग-अलग
शुद्धोदाः	शुद्धोद*	परितः	चारो ओर
सप्त जलधयः	(ये) सात समुद्र	उपकल्पिताः	बनायेके समान हैं
सप्तद्वीप	सातो द्वीपोंकी	तेषु	उन
परिखा इव	खाई के समान हैं	जम्बू आदिषु	जम्बू आदि (द्वीपों)
अभ्यन्तर द्वीप	(ये समुद्र) अपने		में
	भीतरी द्वीप	बर्हिष्मतीपतिः	बर्हिष्मतीके पति
समाना	के बराबर हैं		(प्रियव्रत)

* स्पष्ट है कि क्षारोद (खारे समुद्र) को छोड़कर दूसरे कोई समुद्र न भूतलपर और न अन्तरिक्षमें कहीं ज्ञात हैं। अवश्य अन्तरिक्षके वातावरणमें इनके तत्त्वोंके सूक्ष्मसार होने सम्भव हैं।

अनुव्रतान्	अनुकूल	मेधातिथिः	मेधातिथि (तथा)
आत्मजान्	आचरणवाले	वीतिहोत्रः	वीतिहोत्र
आग्नीध्रः	(अपने) पुत्र	संज्ञान्	नामवालोंको
इध्मजिह्वः	आग्नीध्र,	यथा संख्येन	क्रमानुसार
यज्ञबाहुः	इध्मजिह्व,	एक एकस्मिन्	एक-एक (द्वीप) में
हिरण्यरेता	यज्ञबाहु,	एकं एव	एकको ही
धृतपृष्ठः	हिरण्यरेता,	अधिपतिं	(उसका) अधिपति
	धृत पृष्ठ,	विदधे	बनाया ॥३३॥

दुहितरं चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्
देवयानी नाम काव्यसुता ॥३४॥

दुहितरं च ऊर्जस्वतीं नाम उशनसे प्रायच्छत् यस्यां आसीत् देवयानी
नाम काव्यसुता ॥३४॥

ऊर्जस्वतीं नाम	ऊर्जस्वती नामक	यस्यां	जिससे
दुहितरं च	पुत्रीको तो	काव्यसुता	शुक्राचार्यकी पुत्री
उशनसे	शुक्राचार्यको	देवयानी नाम	देवयानी नामकी
प्रायच्छत्	प्रदान किया,	आसीत्	थी ॥३४॥

नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य

पुंसां तदङ्घ्रिरजसा जितषड्गुणानाम् ।

चित्रं विदूरविगतः सकृदाददीत

यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम् ॥३५॥

न एवं विधः पुरुषकार उरुक्रमस्य पुंसां तत् अङ्घ्रि रजसा जित-
षड्गुणानां चित्रं विदूरविगतः सकृत् आददीत यत् नामधेयं अधुना स
जहाति बन्धम् ॥३५॥

उरुक्रमस्य	अनन्त पराक्रम	अङ्घ्रि रजसा	चरणरजके प्रभावसे
पुंसां	परमपुरुष और		(शोक-मोह, भूख-
तत्	उनकी		प्यास, जरा-मृत्यु),

जितषड्गुणानां	छः गुणोंको जीत लेनेवालेके लिए	यत्	जिनके (भगवान्)
एवं विधः	इस प्रकारका	नामधेयं	नामोंको
पुरुषकार	पुरुष-प्रयत्न	सकृत्	केवल एक बार
चित्रं न	आश्चर्यजनक नहीं है।	आददीत	लेता है तो
अधुना (अपि)	(क्योंकि) आज भी	स बन्धं	वह (संसार)
विदूरविगतः	वर्णबहिष्कृत (चाण्डालादि) भी	जहाति	बन्धनको त्याग देता (छूट जाता) है ॥३५॥

स एवमपरिमितबलपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणा-
नुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसर्गेणानिर्वृतमिवात्मानं मन्यमान
आत्मनिर्वेद इदमाह ॥३६॥

स एवं अपरिमित बल पराक्रम एकदा तु देवर्षि चरण अनुशयन
अनुपतित गुण विसर्ग संसर्गेण अनिर्वृतं इव आत्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेदं
इदं आह ॥३६॥

एवं	इस प्रकारके	संसर्गेण	सृष्टिके
अपरिमित	असीम	अनिर्वृतं इव	सम्पर्कमें आनेसे
बल पराक्रम	बल-पराक्रमवाले	आत्मानं	अशान्तसे
स एकदा तु	वे एक बार तो	मन्यमान	अपनेको मानते हुए
देवर्षि	देवर्षि नारदके	आत्मनिर्वेदं	अपने वैराग्यको व्यक्त करते
चरण अनुशयन	चरणोंके पीछे ही रहने (की स्थितिसे)	इदं आह	यह बोले ॥३६॥
अनुपतित	च्युत होकर		
गुण विसर्ग	त्रिगुणोंकी विशेष		

अहो असाध्वनुष्ठितं यदभिनवेशितोऽहमिन्द्रियैरविद्यार-
चितविषमविषयान्धकूपे तदलमलममुष्या वनिताया विनोदमृगं
मां धिग्धिगिति गर्ह्याञ्चकार ॥३७॥

अहो असाधु अनुष्ठितं यत् अभिनिवेशितः अहं इन्द्रियैः अविद्या रचित विषम विषय अन्धकूपे तत् अलं अलं अमुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिक् धिक् इति गर्हयां चकार ॥३७॥

अहो	‘ओह !	तत् अलं अलं	इससे बस-बस !
असाधु	बुरा	अमुष्या	इस
अनुष्ठितं	हुआ,	वनिताया	स्त्रीके
यत् अहं	जो मैं	विनोदमृगं	क्रीड़ा करनेका
इन्द्रियैः	इन्द्रियोंके द्वारा		बन्दर बने
अविद्या रचित	अविद्याके बताये	मां	मुझे
विषम	कष्टमय	धिक् धिक्	बार-बार धिक्कार ।’
विषय	विषयोंके	इति	इस प्रकार
अन्धकूपे	अन्धे (सूखे) कुएंमें	गर्हयां	(अपनी) निन्दा
अभिनिवेशितः	डाल दिया गया ।	चकार	करने लगे ॥३७॥

परदेवताप्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सहमहा-विभूतिमपहाय स्वयं निहितनिर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥३८॥

परदेवता प्रसाद अधिगत आत्म प्रत्यवमर्शेन अनुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्यः इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकं इव सह महाविभूतिं अपहाय स्वयं निहित निर्वेदः हृदि गृहीत हरि विहार अनुभावः भगवतः नारदस्य पदवीं पुनः एव अनुससार ॥३८॥

परदेवता	परमदेवता	आत्म	
	(श्रीहरि) की	प्रत्यवमर्शेन	आत्मतत्त्व विचारसे
प्रसाद	कृपासे		(युक्त हो)
अधिगत	प्राप्त	अनुप्रवृत्तेभ्यः	(अपने) अनुगत
		पुत्रेभ्यः	पुत्रोंको

इमां	इस पृथ्वीको	निहित	धारण करके
यथादायं	उत्तराधिकार	हरि विहार	
	नियमके अनुसार	अनुभावः	श्रीहरिकी
विभज्य	बांटकर,		लीलाओंका प्रभाव
भुक्तभोगां	(जिसके साथ)	गृहीतः	ग्रहण (चिन्तन)
	अनेक भोग भोगे थे		करते
	उस	पुनः एव	फिरसे
महिषीं	महारानीको	भगवतः	
मृतकं इव	मरी हुईके समान,	नारदस्य	भगवान नारदके
महाविभूति सह महान् वैभवके साथ		पदवीं	बतलाये मार्गका
अपहाय	छोड़ दिया ।	अनुससार	अनुसरण करने
स्वयं	अपने आप		लगे ॥३८॥
हृदि निर्वेदः	हृदयमें वैराग्य		

तस्य ह वा एते श्लोकाः—

तस्य ह वा एते श्लोकाः—

तस्य	उन (महाराज	ह वा	निश्चित रूपसे
	प्रियव्रत) के	एते	ये (नीचेके)
	सम्बन्धमें	श्लोकाः	श्लोक प्रसिद्ध हैं—

प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद्विनेश्वरम् ।

यो नेमिनिम्नैरकरोच्छायां धनं सप्त वारिधीन् ॥३९॥

प्रियव्रत कृतं कर्म कः नु कुर्यात् विना ईश्वरं यः नेमि निम्नैः अकरोत् छायां धनं सप्त वारिधीन् ॥३९॥

विना ईश्वरं	ईश्वरके अतिरिक्त	यः	सकेगा,
प्रियव्रत कृतं	महाराज प्रियव्रतके	छायां धनं	जिन्होंने
	किये		(सूर्यकी) छायाको
कर्म	कर्मको		मिटाते हुए
नु कः कुर्यात्	भला कौन कर		

नेमि निम्नैः (रथको) नेमिके | सप्त वारिधीन् सात समुद्र
गड्ढोंसे | अकरोत् बना दिये ॥३६॥

भूसंस्थानं कृतं येन सरिद्गिरिवनादिभिः ।

सीमा च भूतनिर्वृत्य द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥४०॥

भूसंस्थानं कृतं येन सरित् गिरि वन् आदिभिः सीमा च भूतनिर्वृत्य
द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥४०॥

भूतनिर्वृत्य	प्राणियोंकी सुख- सुविधाके लिए	गिरि	पर्वतों,
येन	जिन्होंने	वन आदिभिः	वन आदिसे
भूसंस्थानं	पृथ्वीकी ठीक स्थिति	द्वीपे द्वीपे	प्रत्येक द्वीपमें
च सरित्	तथा नदियों,	विभागशः	विभागके अनुसार
		सीमा कृतं	(सबकी) सीमा
			बना दी ॥४०॥

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम् ।

यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः ॥४१॥

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजं यः चक्रे निरय उपम्यं पुरुष
अनुजन प्रियः ॥४१॥

भौमं	(भूमिमें-के) पातालादिके	यः	जिन्होंने
दिव्यं	देवताओंके	पुरुष अनुजन	परमपुरुषके भक्त (नारदजी) के
मानुषं	मनुष्य लोकके	प्रियः	प्रिय (होनेसे)
कर्मयोगजं	कर्म तथा योगसे उत्पन्न (मिलनेवाले)	निरय उपम्यं	नरक (के भोगोंसे) तुलनाके योग्य
महित्वं	महानता (ऐश्वर्यं) को	चक्रे	बना दिया ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां

पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतविजये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एवं पितरि सम्प्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो
जम्बूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मवेक्षमाणः पर्यगोपायत् ॥१॥

एवं पितरि सम्प्रवृत्ते तत् अनुशासने वर्तमानः आग्नीध्रः जम्बूद्वीप
ओकसः प्रजा औरसवत् धर्म अवेक्षमाणः परि अगोपायत ॥१॥

एवं	इस प्रकार	जम्बूद्वीप	
पितरि	पिताके	ओकसः	जम्बूद्वीपमें
सम्प्रवृत्ते	उत्तम प्रवृत्ति		रहनेवाली
	(भगवद्-भजन) में	प्रजा	प्रजाको
	लग जानेपर	औरसवत्	सगे पुत्रोंके समान
तत् अनुशासने	उनकी आज्ञाके	धर्म अवेक्षमाणः	धर्मानुसार देखते
	(अनुसार)		हुए
वर्तमानः	रहते (चलते) हुए	परि अगोपायत	चारों ओरसे रक्षा
आग्नीध्रः	आग्नीध्र		करने लगे ॥१॥

स च कदाचित्पितृलोककामः सुरवरवनिताक्रीडाचल-
द्रोण्यां भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मै-
काग्र्येण तपस्व्याराधयाम्बभूव ॥२॥

स च कदाचित् पितृलोक कामः सुरवर वनिता क्रीडाचल द्रोण्यां
भगवन्तं विश्व सृजां पति आभृत परिचर्या उपकरण आत्म एकाग्र्येण तपसि
आराधयां बभूव ॥२॥

स च	उन्होंने तो	क्रीडाचल	क्रीडा-पर्वत
कदाचित्	किसी समय		(मन्दराचल) की
पितृलोक कामः	पितृलोककी कामना	द्रोण्यां	घाटीमें
	(सत्पुत्रपानेकी	भगवन्तं	भगवान्
	इच्छा) से	विश्वसृजांपति	विश्व-स्रष्टाओंके
परिचर्या			स्वामी (ब्रह्माजी)की
उपकरण	पूजाकी सामग्री	आत्म एकाग्रेण	अपनी एकाग्रतासे
आभृत	जुटाकर		(और)
सुरवर वनिता	श्रेष्ठ सुरोंकी	तपसि	तपस्यासे
	पत्नियोंके	आराधयां बभूव	आराधना करने
			लगे ॥२॥

तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वर्चित्तिं
नामाप्सरसमभियापयामास ॥३॥

तत् उपलभ्य भगवान् आदिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वर्चित्तिं नाम
अप्सरसं अभियापयामास ॥३॥

तत् उपलभ्य	उनकी (कामना)	सदसि गायन्तीं	अपनी सभामें गाती
	जानकर	पूर्वर्चित्तीं नाम	पूर्वर्चित्ती नामक
भगवान् आदि-		अप्सरसं	अप्सराको
पुरुष	आदिपुरुष भगवान्	अभियापयामास	उनके पास भेज
	(ब्रह्माजी) ने		दिया ॥३॥

सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिबिडविट-
पिबिटपनिकरसंश्लिष्ट पुरटलतारूढस्थलविहङ्गममिथुनैः प्रोच्य-
मानश्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादिभि-
विचित्रमुपकूजितामलजलाशयकमलाकरमुप बभ्राम ॥४॥

सा च तत् आश्रम उपवनं अति रमणीयं विविध निबिड विटपि
विटप निकर संश्लिष्ट पुरट लता आरूढ स्थल विहङ्गम मिथुनैः प्रोच्यमान
श्रुतिभिः प्रतिबोध्यमान सलिल कुक्कुट कारण्डव कलहंस आदिभिः विचित्रं
उपकूजित अमल जलाशय कमल आकरं उप बभ्राम ॥४॥

सा च	वह (अप्सरा) भी	प्रोच्यमान	
तत् आश्रम	उन (आग्नीध्र) के आश्रमके	श्रुतिभिः	उच्च स्वरसे की गयी ध्वनिसे
अति रमणीयं	अत्यन्त रमणीय	प्रतिबोध्यमान	सावधान किये गये
उपवनं	उपवनमें (जो)	सलिल कुक्कुट	जलमुर्गे,
विविध निबिड़	अनेक प्रकारके, सघन	कारण्डव	सारस,
विटपि विटप		कलहंस आदिभिः	कलहंस आदि द्वारा
निकर	वीरुध, वृक्षोंके समूह	विचित्रं	
संश्लिष्ट	(जिनके) परस्पर सटे थे,	उपकूजितं	विचित्र रूपसे
पुरट लता			शब्दायमान
आरूढ	(जिनपर) स्वर्ण-लताएँ चढ़ी थीं,	कमल आकरं	कमलोंसे भरे,
स्थल विहङ्गम		अमल जलाशयं	निमल जलाशयके
मिथुनैः	(जहाँ) स्थल-पक्षियोंके जोड़ोंके द्वारा	उप बभ्राम	समीप (वह) घूमने लगी ॥४॥

तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं
खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः
समाधियोगेनामीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य
व्यचष्ट ॥५॥

तस्याः सुललित गमन पदविन्यास गति विलासायाः च अनुपदं
खणखणायमान रुचिर चरणाभरण स्वनं उप आकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधि
योगेन आमीलित नयन नलिन मुकुल युगलं ईषत् विकचय्य व्यचष्ट ॥५॥

तस्याः	उसके	च पदविन्यास	तथा चरण निक्षेपसे
सुललित गमन	अत्यन्त सुन्दर चालसे	अनुपदं	प्रत्येक पदपर
गति		खणखणायमान	शंकार करते
विलासायाः	विलासपूर्वक चलनेसे	चरणाभरण	चरणोंके आभूषणोंकी

हचिर स्वनं	मनोहर ध्वनि	युगल नयन	
उपाकर्ण्य	सुनकर	नलिनमुकुल	दोनों कमल-
नरदेवकुमारः	राजकुमार		कलिका जैसे नेत्रोंको
	(आग्नीध्र) ने	ईषत्	तनिक
समाधि योगेन	अत्यन्त एकाग्रतासे	विकचय्य	विकसित करके
आमीलित	बन्द किये		(खोलकर)
		व्यचष्ट	देखा ॥५॥

तामेवाविदूरे मधुकरोमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिवि-
जमनुजमनोनयनाह्लाददुर्घगतिविहारव्रीडाविनयावलोकसुस्वराक्ष-
रावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुख-
विगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदान्धमधुकरनिकरोपरोधेन
द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबर भाररशनां देवीं
तदवलोकनेन विवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो
जडवदिति होवाच ॥६॥

तां एव अविदूरे मधुकरीं इव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुज
मनः नयन आह्लाददुर्घः गति विहार व्रीडाविनय अवलोक सुस्वर अक्षर
अवयवैः मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरं निजमुख विगलित
अमृत आसवाहास भाषण आमोद मदान्ध मधुकर निकर उपरोधेन द्रुत-
पद विन्यासेन वल्गु स्पन्दन स्तनकलश कबर भार रशनां देवीं तत्
अवलोकनेन विवृत अवसरस्य भववतः मकरध्वजस्य वशं उपनीतः जडवत्
इति ह उवाच ॥६॥

तां एव	उस (पूर्वचिन्ती)	दिविजमनुज	देवता-मनुष्य
	को ही		(दोनों) के
अविदूरे	समीप ही	मनः नयन	मन और नेत्रोंको
मधुकरीं इव	भ्रमरीके समान	आह्लाददुर्घः	आह्लाद देनेवाले
सुमनस	पुष्पोंको	गति विहार	गति, क्रीड़ा,
उपजिघ्रन्तीं	सूँघती हुई (देखा),		

व्रीडाविनय		द्रुतपद	
अवलोक	लज्जा और विनयसे	विन्यासेन	शीघ्रतासे पैर
	देखनेकी भंगी		रखकर चलनेसे
मुस्वर अक्षर		स्तनकलश	कलशके समान
अवयवैः	बहुत मधुर अक्षर		स्तनों तथा
	वाले (गीत) और	कवर भार	जूड़ेके भारसे
	अंगोंसे	रशनां	करधनी (की ध्वनि)
नृणां मनसि	मनुष्योंके मनमें		से युक्त
कुसुमायुधस्य	पुष्पधन्वा कामका	तत् देवीं	
विदधतीं	विधान (संचार)	अवलोकनेन	उस देवीको देखनेसे
	करती,	विवृत	
निजमुख विवरं	अपने मुख विवरसे	अवसरस्य	(हृदयमें प्रवेशका)
विगलित	झरते		खुला अवसर
अमृत आसवा-	अमृत आसव (युक्त)		मिलनेसे
हास भाषण	हास्य सहित	भगवतः	
	बोलनेसे	मकरध्वजस्य	भगवान् कामदेवके
आमोद मदान्ध	निकलती सुगन्धिसे	वशं उपनीतः	वशमें ले जाये जाकर
	मदान्ध	जडवत्	पागलकी भाँति
मधुकर निकर	भ्रमरोंके समूहसे	इति ह उवाच	इस प्रकार ही
उपरोधेन	बचनेके लिए		बोले ॥६॥

आग्नीध्र उवाच*—

का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले

मायासि कापि भगवत्परदेवतायाः ।

विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे

किं वा मृगान्मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥७॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्यं शैले माया असि कापि भगवत्
परदेवतायाः विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृद आत्मनः अर्थे किं वा मृगान् मृगयसे
विपिने प्रमत्तान् ॥७॥

मुनिवर्य	मुनिवर !	बिभर्षि	धारण कर रखे हैं
का त्वं	तुम कौन हो !	सुहृद	मित्र !
च शैले	और इस पर्वतपर	आत्मनः	अपने
किं चिकीर्षसि	क्या करना चाहते	अर्थे	लिए (इनका तुम्हें)
	हो ?		प्रयोजन है ?
परदेवतायाः	परमदेवता	वा किं	अथवा क्या
	(नारायण) की	विपिने	वनमें
कापि	कोई	प्रमत्तान्	असावधान
माया असि	माया हो ?	मृगान्	पशुओंको
विज्ये	बिना ज्या (डोरी)के	मृगयसे	ढूँढ़ रहे हो ॥७॥
धनुषी	धनुष (नेत्र)		

बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ

शान्तावपुङ्खरुचिरावतितिग्मदन्तौ ।

कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन्न विद्मः

क्षेमाय नो जडधियां तव विक्रमोऽस्तु ॥८॥

बाणाः इमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शान्ताः अपुङ्ख रुचिराः अति-
तिग्म दन्तौ कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन् न विद्मः क्षेमाय नः जडधियां तव
विक्रमः अस्तु ॥८॥

इमौ	ये (कटाक्ष रूपी)	रुचिराः	सुन्दर हैं (किन्तु)
भगवतः	भगवन् ! आपके	अतितिग्म	बहुत तीक्ष्ण
बाणाः	दोनों बाण	दन्तौ	दाँत (नोक)
शतपत्रपत्रौ	कमल-दलके		वाले हैं ।
अपुङ्ख	पंखवाले	वने विचरन्	वनमें घूमते हुए
शान्ताः	शान्त (और)		(आप)

कस्मै	किसपर (इनका)	नः जडधियां	हम जैसे पागलोंके
युयुङ्क्षसि	प्रयोग करेंगे	क्षेमाय	कल्याणके लिए
न विद्मः	(यह हम) नहीं	तव विक्रमः	आपका पराक्रम
	जानते	अस्तु	होवे ॥८॥

शिष्या इमे भगवतः परितः पठन्ति

गायन्ति साम सरहस्यमजल्लमोशम् ।

युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोऽभिवृष्टीः

सर्वे भजन्त्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥९॥

शिष्याः इमे भगवतः परितः पठन्ति गायन्ति साम सरहस्यं अजल्लं ईशं युष्मत् शिखाः विलुलिताः सुमनः अभिवृष्टीः सर्वे भजन्ति ऋषिगणाः इव वेदशाखाः ॥९॥

भगवतः	भगवन् आपके	युष्मत् शिखाः	आपकी चोटीसे
इमे शिष्याः	ये (भ्रमर) शिष्य	विलुलिताः	झड़े हुए
परितः	चारों ओर	सुमनः	
पठन्ति	पढ़ रहे हैं ।	अभिवृष्टीः	पुष्प-वर्षाका
सरहस्यम्	रहस्यके साथ	ऋषिगणाः	ऋषियों द्वारा
साम	सामवेदके मन्त्रोंसे	वेदशाखाः इव	वेदोंकी शाखाओंके
अजल्लं	अविराम		समान
ईशं	अपने स्वामी	सर्वे भजन्ति	सब (भ्रमर शिष्य)
	(आपका)		सेवन करते हैं ॥९॥
गायन्ति	यशोगान कर		
	रहे हैं ।		

वाचं परं चरणपञ्जरतित्तिरीणां

ब्रह्मन्नरूपमुखरां शृण्वाम तुभ्यम् ।

लब्धा कदम्बरचिरङ्कविटङ्कबिम्बे

यस्यामलातपरिधिः क्व च वल्कलं ते ॥१०॥

वाचं परं चरणपञ्जर तित्तिरीणां ब्रह्मन् न रूप मुखरां शृण्वाम
तुभ्यं लब्धा कदम्ब रुचिरङ्क विटङ्क बिम्बे यस्यां अलात परिधिः क्व च
वल्कलं ते ॥१०॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	विटङ्क बिम्बे	नितम्ब बिम्बोने
तुभ्यं	तुम्हारे	कदम्ब	कदम्ब पुष्पोंकी
चरणपञ्जर	चरणोंके पिंजरेमें (रहनेवाले)	रुचिरङ्क	मनोहर शोभा
तित्तिरीणां	तीतरोंकी	लब्धा	पाई है,
परं वाचं	केवल वाणी	यस्यां	जिनपर
मुखरां	गूंजती	अलात परिधिः	अंगारोंका घेरा (करधनी) है,
शृण्वाम	सुन रहा हूँ	ते	(पर) तुम्हारा
न रूप	(पर) उनका रूप	वल्कलं	वल्कल-वस्त्र
	नहीं (दीखता)	क्व च	कहां है ? ॥१०॥

किं सम्भृतं रुचिरयोद्विज शृङ्गयोस्ते

मध्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे ।

पङ्कोऽरुणः सुरभिरात्मविषाण ईदृक्

येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥११॥

किं सम्भृतं रुचिरयोः द्विज शृंगयोः ते मध्ये कृशः वहसि यत्र दृशिः
श्रिता मे पङ्कः अरुणः सुरभिः आत्म विषाण ईदृक् येन आश्रमं सुभग मे
सुरभी करोषि ॥११॥

द्विज	द्विजवर !	वहसि	(फिर भी) इन
ते	तुम्हारे		सींगोंको ढोती हो-
रुचिरयोः	सुन्दर	यत्र	जहां
शृङ्गयोः	दोनों सींगोंमें	मे दृशिः	मेरी दृष्टि
किं सम्भृतं	क्या भरा है ?	श्रिता	अटक गयी है ।
मध्ये कृशः	मध्य (कटि) कृश	सुभग	सुभगे !
	(दुबली) है		

अरुणः पङ्कः	लाल कीचसे युक्त (आपके)	येन	जिससे
आत्म विषाण	अपने सींगोंकी	मे आश्रमं	मेरे आश्रमको
ईदृक् सुरभिः	ऐसी सुगन्धि है	सुरभी करोषि	सुगन्धित कर रहे
			हो ॥११॥

लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे

यत्रत्य

इत्थमुरसावयवावपूर्वी ।

अस्मद्विधस्य मन उन्नयनौ बिभर्ति

बह्वद्भुतं सरसराससुधादि वक्त्रे ॥१२॥

लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे यत्रत्य इत्थं उरसा अवयवाः अपूर्वा
अस्मत् विधस्य मन उन्नयनौ बिभर्ति बहु अद्भुतं सरसरास सुधाआदि
वक्त्रे ॥१२॥

सुहृत्तम	मित्रवर !	अस्मत् विधस्य	हमारे जैसेके
मे तावकं	मुझे तुम्हारा	मन उन्नयनौ	मनको खींच लेने
लोकं प्रदर्शय	लोक दिखा दो		वाले हैं
यत्रत्य	जहाँके लोगोंके	वक्त्रे	(आपके) मुखमें भी
उरसा	वक्षस्थलपर	सरसरास	सरस नृत्य
इत्थं	इस प्रकारके		(विलास)
अपूर्वा	अपूर्व	सुधाआदि	अमृत आदि
अवयवाः	अंग	बहु अद्भुतं	बहुत अद्भुत
बिभर्ति	धारण करते हैं (जो)		(बस्तुएँ) हैं ॥१२॥

का वाऽऽत्मवृत्तिरदनाद्विरङ्ग वाति

विष्णोः कलास्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ ।

उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्तिशोचि-

रासन्नभृङ्गनिकरं सर इन्मुखं ते ॥१३॥

का वा आत्म वृत्तिः अदनात् विरङ्ग वाति विष्णोः कलाः अनिमिषः
मकरौ च कर्णौ उद्विग्न मीन युगलं द्विज पङ्क्ति शोचिः आसन्न भृङ्ग निकरं
सर इन् मुखं ते ॥१३॥

आत्म वृत्तिः	(तुम्हारा) अपना आहार	मकरौ	मकर (कुंडल) हैं
का वा	क्या है ? अथवा (जिसके)	ते मुखं	तुम्हारा मुख
अदनात्	खानेसे (तुम्हारे मुखसे)	इन् सर	सुन्दर सरोवर है (जिसमें)
विरंग वाति	हवन जैसी वायु निकल रही है ।	उद्विग्न मीन युगलं	दो चंचल मछलियां हैं,
विष्णोः कलाः	(तुम) भगवान विष्णुकी कला हो	शोचिः	ज्योति युक्त
कणौ च	(तुम्हारे) कानोंमें भी	द्विज पंक्ति	हंसों (दांतों) की पंक्ति है (और)
अनिमिषः	पलक न मारनेवाले	आसन्न भृङ्गं निकरं	समीप (अलक रूपी) भ्रमरोंका समूह है ॥१३॥

योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गो

दिक्षु भ्रमन् भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे ।

मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं

कण्टोऽनिलो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥१४॥

यः असौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गः दिक्षु भ्रमन् भ्रमत एजयते अक्षिणी मे मुक्तं न ते स्मरसि वक्र जटा वरूथं कण्टः अनिलः हरति लम्पट एष नीवीम् ॥१४॥

यः असौ	यह जो	वक्र जटा वरूथं	कुटिल जटा समूह
त्वया	तुम्हारे द्वारा	मुक्तं	खुल गया है
करसरोज	कर-कमलोंसे	न स्मरसि	इसका (तुम्हें)
हतः पतङ्गः	मारा गेंद है (वह)	कण्टः	स्मरण नहीं है,
दिक्षु भ्रमन्		एष लम्पट	दुःखकी बात है कि यह लम्पट
भ्रमत	दिशाओंमें घूमता घूमता		(असहाचारी)
मे अक्षिणी	मेरे नेत्रोंको	अनिलः	वायु
एजयते	चञ्चल कर देता है	नीवीं हरति	कटि वस्त्रको खींच
ते	तुम्हारा,		रहा है ॥१४॥

रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोधनं
ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ।

चर्तुं तपोऽर्हसि मया सह मित्रं मह्यं
किं वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥१५॥

रूपं तपोधन तपः चरतां तपःधनं हि एतत् तु केन तपसा भवतः
उपलब्धं चर्तुं तपः अर्हसि मया सह मित्रं मह्यं किं वा प्रसीदति स वै भव
भावनः मे ॥१५॥

तपोधत	तपोधन !	तपः चर्तुं	तपस्या करना
तपः चरतां	तपस्या करने	अर्हसि	चाहिए ।
	वालोंकी	वा किं	अथवा क्या
हि	निश्चित रूपसे	मह्यं प्रसीदति	मुझपर कृपा करके
तपःधनं	तपस्याका नाशक	स वै भव	
एतत् रूपं तु	यह (मुन्दर) रूप तो	भावनः	निश्चय उन्हीं
भवतः	आपने		विश्वभावन
केन तपसा	किस तपस्यासे		(ब्रह्माजी) ने
उपलब्धं	पाया है ?	मे	मुझे (तुमको दिया
मित्र	मित्र !		है) ॥१५॥
मया सह	मेरे साथ (तुम्हें)		

न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं
यस्मिन्मनो हृगपि नो न वियाति लग्नम् ।

मां चारुशृङ्गार्हसि नेतुमनुव्रतं ते
चित्तं यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥१६॥

न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन् मनः हृक् अपि नः न
वियाति लग्नं मां चारुशृङ्गि अर्हसि नेतुं अनुव्रतं ते चित्तं यतः प्रति-
सरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥१६॥

द्विजदेवदत्तं	(तुम) ब्रह्माजीकी	ते चित्तं	तुम्हारा मन हो
	दी हुई हो		(वहाँ)
त्वां दयितं	तुम प्रियको	मां नेतुं	(तुम्हें) मुझे ले
न त्यजामि	नहीं छोड़ूंगा ।		जाना
यस्मिन् लग्नं	जिसमें लगा	अहंसि	चाहिए
नः मनः दृक्	मेरा मन और दृष्टि	अनुव्रतं	(मैं तुम्हारा)
न वियाति	पृथक् नहीं जाती है,		अनुव्रत हूँ
चारुशृङ्गि	सुन्दर सींगवाली	शिवाः सचिव्यः	(तुम्हारी ये)
यतः प्रति-			मंगलमयी सखियाँ
सरन्तु	जहाँ जानेकी		भी (साथ
			चलें) ॥१६॥

श्रीशुक उवाच-

इति ललनानुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया
तां विबुधवधूं विबुधमतिरधिसभाजयामास ॥१७॥

इति ललता अनुनय अति विशारदः ग्राम्य वैदग्ध्यया परिभाषया तां
विबुधवधूं विबुधमतिः अधिसभाजयामास ॥१७॥

इति	इस प्रकार	तां विबुधवधूं	उस देववधू
ललना अनुनय	स्त्रीको मनानेमें		(अप्सरा) को
अति विशारदः	अत्यन्त निपुण	विबुधमतिः	देवता-बुद्धि (समझ)
	(आग्नीध्रने)		से
ग्राम्य वैदग्ध्यया	कामनैपुण्यकी	अधिसभा-	
परिभाषया	पद्धतिसे	जयामास	पूर्ण प्रसन्न कर
			लिया ॥१७॥

सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयः श्रियौदार्येण
पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जम्बूद्वीप-
पतिना भौमस्वर्गभोगान् बुभुजे ॥१८॥

सा च ततः तस्य वीरयूथपतेः बुद्धिशील रूप वयः श्रिया औदार्येण पराक्षिप्त मनाः तेन सह अयुत अयुत परिवत्सर उपलक्षणं कालं जम्बूद्वीप पतिना भौम स्वर्ग भोगान् बुभुजे ॥१८॥

ततः	तब	तेन जम्बूद्वीप	
तस्य	उन	पतिना	उन्हीं जम्बूद्वीपा-
वीरयूथपतेः	वीरयूथोंके		धिपतिके
	स्वामीकी	सह	साथ
बुद्धिशील	बुद्धि, शील	अयुत अयुत	कई हजार
रूप वयः	रूप, आयु	परिवत्सर	
श्रिया औदार्येण	लक्ष्मी तथा	उपलक्षणं	सम्बत्सरोसे
	उदारतासे	कालं	समय तक
सा च	वह (अप्सरा) भी	भौम स्वर्ग	
पराक्षिप्त मनाः	मनके आकर्षित	भोगान्	पृथ्वी और स्वर्गके
	होनेसे		भोगोंको
		बुभुजे	भोगती रही ॥१८॥

तस्यामु ह वा आत्मजान् स राजवर आग्नीध्रो नाभि-
किम्पुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान्नव
पुत्रानजनयत् ॥१९॥

तस्यां उ ह वा आत्मजान् स राजवर आग्नीध्रः नाभिः किम्पुरुषः
हरिवर्षः इलावृतः रम्यकः हिरण्मयः कुरुः भद्राश्वः केतुमालः संज्ञान् नव
पुत्रान् अजनयत् ॥१९॥

तस्यां	उसमें	आत्मजान्	अपने आत्मांशसे*
उ ह वा	निश्चय रूपसे ही	नाभिः	नाभि,
स राजवरः	उन राजश्रेष्ठ	किम्पुरुषः	किम्पुरुष,
आग्नीध्रः	आग्नीध्रने	हरिवर्षः	हरिवर्ष,

* यहाँ आत्मजका अर्थ पुत्र इसलिए सम्भव नहीं क्योंकि वाक्यके अन्तमें 'पुत्रान्' आया है ।

इलावृतः	इलावृत,	केतुमालः	केतुमाल
रम्यकः	रम्यक,	संज्ञान्	नामवाले
हिरण्मयः	हिरण्मय,	नव पुत्रान्	नौ पुत्रोंको
कुरुः	कुरु,	अजनयत्	उत्पन्न किया ॥१८॥
भद्राश्वः	भद्राश्व,		

सा सूत्वाथ सुतान्नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय
एवाजं देवमुपतस्थे ॥२०॥

सा सूत्वा अथ सुतान् नव अनुवत्सरं गृह एव अपहाय पूर्वचित्तिः
भूय एव अजं देवं उपतस्थे ॥२०॥

अथ	फिर	अपहाय	त्यागकर
अनुवत्सरं	प्रत्येक वर्ष एकके क्रमसे	पूर्वचित्तिः	पूर्वचित्ती
सा	वह (अप्सरा)	भूय एव	फिरसे
नव सुतान्	नौ पुत्रोंको	अजं देवं	भगवान् ब्रह्माके
सूत्वा	जन्म देकर	उपतस्थे	समीप पहुँच गयी ॥२०॥
गृह एव	घरपर ही		

आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहनन-
बलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जम्बू-
द्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥२१॥

आग्नीध्र सुताः ते मातुः अनुग्रहात् औत्पत्तिकेन एव संहनन बल
उपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्य नामानि यथाभागं जम्बूद्वीप वर्षाणि
बुभुजुः ॥२१॥

ते आग्नीध्र	औत्पत्तिकेन
सुताः	एव
मातुः अनुग्रहात् माताके अनुग्रहसे	जन्मके समयसे ही संहनन बल सुडौल और बल

उपेताः	युक्त थे ।	जम्बूद्वीप	
पित्रा विभक्ता	पिता द्वारा बाँटे गये	वर्षाणि	जम्बूद्वीपके प्रदेशोंको
आत्मतुल्य		यथाभागं	विभागके अनुसार
नामानि	अपने समान	बुभुजुः	भोगने लगे ॥२१॥
	नामवाले		

आग्नीध्रो राजातृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्य-
मानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुन्ध यत्र पितरो
मादयन्ते ॥२२॥

आग्नीध्रः राजा अतृप्तः कामानां अप्सरसं एव अनुदिनं
अधिमन्यमानः तस्याः सलोकतां श्रुतिभिः अवारुन्ध यत्र पितरः
मादयन्ते ॥२२॥

राजा आग्नीध्रः	महाराज आग्नीध्र	तस्याः	
कामानां	कामनाओं	सलोकतां	उसके लोकको
	(के भोग) से	श्रुतिभिः	वैदिक कर्मसे
अतृप्तः	अतृप्त थे ।	अवारुन्ध	प्राप्त किया,
अनुदिनम्	प्रतिदिन	यत्र पितरः	जहाँ पितर
अप्सरसं एव	अप्सराको ही	मादयन्ते	आमोद-मग्न रहते
अधिमन्यमानः	परम पुरुषार्थ		हैं ॥२२॥
	मानते हुए		

सम्परेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितृर्मरुदेवीं प्रति-
रूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमितिसंज्ञा
नवोदवहन् ॥२३॥

सम्परेते पितरि नव भ्रातरः मेरुदुहितृं मेरुदेवीं प्रतिरूपां उग्रदंष्ट्रीं
लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीति इति संज्ञा नव उदवहन् ॥२३॥

पितरि	पिताके	नारीं	नारी,
सम्परेते	परलोक सिधारनेपर	भद्रां	भद्रा,
नव भ्रातरः	नौ भाइयोने	देववीति	देववीति,
मेरुदेवीं	मेरु देवी,	संज्ञा	नामवाली
प्रतिरूपां	प्रतिरूपा,	नव	नौ
उग्रदंष्ट्रीं	उग्रदंष्ट्री,	मेरुदुहितृ	मेरुकी कन्याओंसे
लतां	लता,	उदबहव्	विवाह कर
रम्यां	रम्या,		लिया ॥२३॥
श्यामां	श्यामा,		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे आग्नीध्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

— — —

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवन्तं यज्ञपुरुषम-
वहितात्मायजत ॥१॥

नाभिः अपत्यकामः अप्रजया मेरु देव्याः भगवन्तं यज्ञ पुरुषं अवहित
आत्मा अयजत् ॥१॥

अपत्यकामः	पुत्रकी कामनासे	भगवन्तं	भगवान्
नाभिः	नाभि	यज्ञ पुरुषं	यज्ञ-पुरुषका
अप्रजया	सन्तानहीना (अपनी पत्नी)	अवहित आत्मा	एकान्न चित्तसे
मेरुदेव्याः	मेरुदेवीके साथ	अयजत्	यजन करने लगे ॥१॥

तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु
द्रव्यदेशकालमन्त्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि
भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानमपराजितं
निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयङ्गमं मनोनय-
नानन्दनावयवाभिराममाविश्रकार ॥२॥

तस्य ह वाव श्रद्धया विशुद्ध भावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्य
देशकाल मन्त्र ऋत्विक् दक्षिणा विधान योग उपपत्त्या दुरधिगमः अपि
भगवान् भागवत वात्सल्य तया सुप्रतीक आत्मानं अपराजितं निजजन
अभिप्रेत अर्थ विधित्सया गृहीत हृदयः हृदयङ्गमं मनः नयन आनन्दन
अवयव अभिरामं आविः चकार ॥२॥

द्रव्य	पदार्थ	गृहीत हृदयः	(नाभिकी भक्तिसे)
देशकाल	स्थान और समय		हृदय उनके वशमें
मन्त्र ऋत्विक्	मन्त्र, ऋत्विक् (ब्राह्मण)		होनेसे
दक्षिणा	दक्षिणा आदिके	अपराजितं	अपराजित
विधान	विधान	आत्मानं	स्वरूप होनेपर भी
योग उपपत्त्या		निजजन	अपने भक्तके
अपि	संयोग जुट जानेसे	अभिप्रेत	अभीष्टका
दुरधिगमः	जिनकी प्राप्ति	विधित्सया	विधान (प्रदान)
	कठिन है,		करनेके लिए
भगवान्	वे भगवान्	प्रवर्गेषु	प्रवर्ग-कर्म
भागवत		प्रचरत्सु	होते समय
वात्सल्य तथा	भक्तोंपर वात्सल्य	हृदयङ्गमं	हृदयाकर्षक
	रखनेके कारण	सुप्रतीक	अत्यन्त शान्त
तस्य	उन नाभिके	मनः नयन	मन और नेत्रोंको
ह वाव	निश्चय ही	आनन्दन	आनन्द देनेवाले,
श्रद्धया	श्रद्धा पूर्वक	अभिराम्	परम सुन्दर
विशुद्ध भावेन	विशुद्ध भाव सहित	अवयव	अंगवाले रूपको
यजतः	यज्ञ करते समय	आविः चकार	प्रकट किया ॥२॥

अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं
कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवन-
रुहवनमालाच्छूर्यमृतमणिगदादिभिरुपलक्षितं स्फुटकिरणप्रवर-
मुकुटकुण्डलकटकटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यङ्गभूषणविभूषितमृत्वि-
क्सदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमान-
मर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥३॥

अथ ह तं आविष्कृत भुज युगल द्वयं हिरण्मयं पुरुष विशेषं कपिश
कौशेय अम्बर धरं उरसि विलसत् श्रीवत्स ललामं दरवर वनरुह वनमालात्

सूर्यमृतमणि गदा आदिभिः उपलक्षितं स्फुट किरण प्रवर मुकुट कुण्डल
कटक कटिसूत्र हार केयूर नूपुर आदि अङ्गभूषण विभूषितं ऋत्विक् सदस्य
गृहपतयः अधना इव उत्तम धनं उपलभ्य सबहुमानं अर्हणेन अवनत शीर्षाण
उपतस्थुः ॥३॥

अथ ह उस समय प्रत्यक्ष
आविष्कृत प्रकट किये
भुज युगल द्वयं चतुर्भुज रूपमें
पुरुष विशेष विशेष पुरुष
(पुरुषोत्तम)
हिरण्यं स्वर्णमय (स्वर्णिम
रूपके) थे ।
कपिश पीले रंगके
कौशेय अम्बर
धरं रेशमी वस्त्र पहिने
थे ।
उरसि वक्ष-स्थलपर
ललामं परम सुन्दर
श्रीवत्स श्रीवत्स चिह्न
विलसत् अत्यन्त शोभित था ।
दरवर श्रेष्ठ शंख,
वनरुह पद्म,
वनमालात् वनमाला,
सूर्यमृतमणि सूर्यको हीन-कान्ति
करनेवाली
(कौस्तुभ) मणि,
गदा आदिभिः गदा आदि (चक्र)
द्वारा
उपलक्षितं पहिचाने जानेवाले
रूपमें,

स्फुट किरण
प्रवर जिनसे श्रेष्ठ किरणें
निकलती थीं उन
मुकुट मुकुट,
कुण्डल कटक कुण्डल, कङ्कण,
कटिसूत्र काञ्ची
हार केयूर हार, अंगद,
नूपुर आदि नूपुर आदि
अङ्गभूषण अङ्गोंको भूषित
करनेवाले
विभूषितं आभूषणोंसे भूषित-
को (देखकर)
ऋत्विक् ऋत्विक्
सदस्य सदस्य
गृहपतयः यजमान
अधना इव निर्धनके समान
उत्तम धनं उत्तम-धन (भगवान्)
को
उपलभ्य पाकर
सबहुमानं बहुत आदर सहित
अवनत शीर्षाण मस्तक झुकाये
अर्हणेन पूजा करके
उपतस्थुः स्तुति करने लगे ॥३॥

ऋत्विज ऊचुः

अर्हसि मुहुर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमो नम इत्ये-
तावत्सदुपशिक्षितं कोऽर्हति पुमान् प्रकृतिगुणव्यतिकरमतिरनीश
ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभौ रूप-
निरूपणम् ॥४॥

अर्हसि मुहुः अर्हत्तम अर्हणं अस्माकं अनुपथानां नमो नमः इति एतावत्
सत् उपशिक्षितं कः अर्हति पुमान् प्रकृति गुण व्यतिकर मतिः अनीश
ईश्वरस्य परस्य प्रकृति पुरुषयोः अर्वाक्तनाभिः नाम रूप आकृतिभौ रूप
निरूपणं ॥४॥

अर्हत्तम	पूज्यतम !	व्यतिकर मतिः	विकृत बुद्धि वाला
अस्माकं	हम	अनीश	असमर्थ होकर भी
अनुपथानां	अनुयायियोंसे	प्रकृति पुरुषयोः	प्रकृति और पुरुषसे
मुहुः	बार-बार (आप)	परस्य	परे
अर्हणं	पूजाके	ईश्वरस्य	ईश्वरके
अर्हसि	योग्य हो (किन्तु)	अर्वाक्तनाभिः	पीठके बने
नमो नमः	आपको बार-बार	नाम रूप	
	नमस्कार	आकृतिभौ	नाम, रूप, आकृतिके
इति	इस प्रकार		द्वारा
एतावत्	इतनी ही	रूप निरूपणं	स्वरूपका वर्णन
सत् उपशिक्षितं	सत्पुरुषोंसे (हमें)	कः पुमान्	कौन पुरुष
	शिक्षा मिली है	अर्हति	कर सकता है ॥४॥
प्रकृति गुण	प्रकृतिके गुणोंसे		

सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेश-
कथनादृते ॥५॥

सकलजन निकाय वृजिन निरसन शिवतम प्रवर गुणगण एकदेश
कथनात् ऋते ॥५॥

सकलजन		एकदेश	किसी एकांशके
निकाय	समस्त जन-समूहके	कथनात्	वर्णनको
वृजिन	कष्टोंको	ऋते	छोड़कर (कोई
निरसन	दूर करनेवाले		वर्णनका साहस भी
शिवतम प्रवर	परम कल्याणमय		करेगा तो और क्या
	श्रेष्ठ		कर सकेगा) ॥५॥
गुणगण	गुणोंके समूहके		

परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुल-
सिकादूर्वाङ्कुरैरपि सम्भृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥६॥

परिजन अनुराग विरचित शबल संशब्द सलिल सित किसलय
तुलसिका दूर्वाङ्कुरैः अपि सम्भृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥६॥

परिजन	(अपने) भक्तों द्वारा	दूर्वाङ्कुरैः अपि	एवं दूर्वाके अङ्कुरोंसे
अनुराग	प्रेमपूर्वक		भी
विरचित	की गयी	सम्भृतया	की गयी
शबल संशब्द	गद्गद् वाणीकी	सपर्यया	पूजासे
	स्तुति और	किल	निश्चय
सलिल	जल,	परम	परमपुरुष आप
सित किसलय	शुद्ध-पल्लव,	परितुष्यसि	परमसन्तुष्ट हो
तुलसिका	तुलसीदल		जाते हैं ॥६॥

अथानयापि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहो-
पलभामहे ॥७॥

अथ अनया अपि न भवत इज्ययोः उरुभार भरया समुचितं अर्थं इह
उपलभामहे ॥७॥

अथ	अतः	समुचितं अर्थ	कोई उचित प्रयोजन
इज्ययोः	यज्ञके	इह न	यहाँ (हम) नहीं
उरुभार भरया	बहुत सम्भारपूर्ण	उपलभामहे	प्राप्त करते हैं (आप
अनया अपि	इस (आयोजन) से		यज्ञसे नहीं, केवल
	भी		कृपावश पधारे
भवत	आपका		हैं) ॥७॥

आत्मन एवानुसवनमञ्जसाव्यतिरेकेण बोभूयमानाशेष-
पुरुषार्थस्वरूपस्य किन्तु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधन-
मात्रं भवितुमर्हति ॥८॥

आत्मन एव अनुसवनं अञ्जसा व्यतिरेकेण बोभूयमान अशेष पुरुषार्थ
स्वरूपस्य किन्तु नाथ अशिष आशासानानां एतत् अभिसंराधनमात्रं भवितुं
अर्हति ॥८॥

आत्मन एव	आपके अपने स्वरूपसे ही	किन्तु नाथ	लेकिन स्वामी !
अनुसवनं	प्रत्येक समय	आशिष	
अञ्जसा	सरल प्रयत्नके	आशासानानां	कामनाकी पूर्ति चाहनेवालोंके लिए
व्यतिरेकेण	बिना ही (स्वाभाविक) रूपमें	एतत्	यही (यज्ञार्चन ही)
अशेष पुरुषार्थ	सम्पूर्ण पुरुषार्थका	अभिसंराधन-	
बोभूयमान	(फल) प्रादुर्भूत होता रहता है	मात्रं	पर्याप्त (कामना- पूर्तिका) साधन
स्वरूपस्य	उस (परमानन्द) के आप स्वरूप हैं,	भवितुं अर्हति	होना चाहिए ॥८॥

तद्यथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेयः परमविदुषां
परमपरमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्प-
यिष्यन् स्वयं नापचित एवेतरवद्विहोपलक्षितः ॥९॥

तत् यथा बालिशानां स्वयं आत्मनः श्रेयः परं अविदुषां परम परम-
पुरुष प्रकर्ष करुणया स्वमहिमानं च अपवर्गाख्यं उपकल्पयिष्यन् स्वयं न
अपचित एव इतरवत् इह उपलक्षितः ॥९॥

तत्	अतः	परं श्रेयः	परम कल्याणको
यथा	जैसे	स्वयं अविदुषां	स्वयं न जाननेवाले
आत्मनः	अपने	बालिशानं	अज्ञानियोंके लिए

परम	श्रेष्ठोंसे भी	उपकल्पयिष्यन् प्रदान करनेके लिए
परमपुरुष	श्रेष्ठतम पुरुष (आप)	स्वयं न अपचित
स्वमहिमानं	अपनी महिमाको	स्वयं कोई प्रतिकार मिले बिना
च	तथा	एव इतरवत् ही दूसरे (दर्शकों)
अपवर्गाख्यं	मोक्ष नामक पद (स्थिति) को	के समान इह यहाँ उपलक्षितः आ गये हैं ॥८॥

अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यहि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो
भवान्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥१०॥

अथ अयं एव वरः हि अर्हत्तम यहि बर्हिषि राजर्षेः वरदर्षभः भवान्
निजपुरुष ईक्षण विषय आसीत् ॥१०॥

अथ	अब	यहि बर्हिषि	जब यज्ञमें
अयं एव वरः	यही वरदान है	निजपुरुष	
हि	क्योंकि	राजर्षेः	अपने सेवक
अर्हत्तम	परमपूज्य		राजर्षिके
वरदर्षभः	वरदान देनेवालोंमें	ईक्षण विषय	
	श्रेष्ठ	आसीत्	नेत्रोंके सामने हो
भवान्	आप		गये हैं ॥१०॥

असङ्गनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत् स्वभावानां
नामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरिगुणितगुणगण परममङ्गला-
यनगुणगणकथनोऽसि ॥११॥

असङ्ग निशित ज्ञानअनल विधूत अशेष मलानां भवत् स्वभावानां
आत्मारामाणां मुनीनां अनवरत परिगुणित गुणगण परम मङ्गलायन
गुणगण कथनः असि ॥११॥

असङ्ग	आसक्तिहीन	मुनीनां	मुनियों द्वारा
निशित ज्ञान-		अनवरत	निरन्तर
अनल	तीक्ष्ण ज्ञानाग्निसे	गुणगण	(आपके)
अशेष मलानां	समस्त (राग-द्वेषादि)	परिगुणित	गुणगणोंकी
	मलोंको		गणना-गान किया
विधूत	भस्म कर देनेवाले,	परम मङ्गलायन	जाता है
भवत्		गुणगण	(आपके) गुण-
स्वभावानां	आपके ही		गणोंका
	स्वभाववाले,	कथनः	वर्णन (गान) है-
आत्मारामाणां	आत्माराम	असि	ऐसे आप हैं ॥११॥

अथ कथञ्चित्स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थानादिषु विवशानां
नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव
गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥१२॥

अथ कथञ्चित् स्खलन क्षुत् पतन जृम्भण दुरवस्थान आदिषु
विवशानां नः स्मरणाय ज्वर मरणदशायां अपि सकल कश्मल निरसनानि
तव गुणकृत नामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥१२॥

अथ	अतः	नः विवशानां	हमारे विवश
कथञ्चित्	किसी प्रकार		होनेपर
क्षुत्	भूख लगनेपर	सकल कश्मल	सब पाप
पतन	गिरने (फिसलने)	निरसनानि	निवारक
	पर,	तव	आपके
जृम्भण	जम्हाई लेनेपर,	गुणकृत	गुणोंके अनुसार
दुरवस्थान			(पड़े)
आदिषु	संकटादिके समय,	नामधेयानि	नाम
ज्वर	ज्वर आनेपर,	वचनगोचराणि	वाणीसे उच्चरित
मरणदशायां		भवन्तु	होवें ॥१२॥
अपि	मरणावस्थामें भी		

किञ्चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान्
ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भवन्तमुपधावति प्रजायामर्थ-
प्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥१३॥

किञ्च अयं राजर्षिः अपत्यकामः प्रजां भवादृशीं आशासानः ईश्वरं
आशिषां स्वर्गं अपवर्गयोः अपि भवन्तं उपधावति प्रजायां अर्थं प्रत्ययः
धनदं इव अधनः फलीकरणम् ॥१३॥

किञ्च	इसके अतिरिक्त	आशिषां	कामनाओंके
अयं	यह	स्वर्ग	स्वर्ग
राजर्षिः	राजर्षि	अपवर्गयोः अपि	मोक्षके भी
अपत्यकामः	पुत्र चाहता है ।	ईश्वरं	(देनेवाले) समर्थ
अधनः	(कोई) कंगाल		स्वामी
धनदं	धन देनेवालेसे	भवन्तं	आपकी
फलीकरणं	भूसी चाहे	उपधावति	आराधना करता है ।
इव	इस भाँति	प्रजायां	(क्योंकि) पुत्रको
भवादृशीं	आपके समान	अर्थं प्रत्ययः	पुरुषार्थं समझता
प्रजां	पुत्र		है ॥१३॥
आशासानः	चाहता हुआ		

को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययानवसितपदव्याना-
वृतमतिविषयविषरयानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥१४॥

कः वा इह ते अपराजितः अपराजितया मायया अनवसित
पदव्या अनावृत मतिः विषय विषरय अनावृत प्रकृतिः अनुपासित महत्
चरणः ॥१४॥

कः वा	अथवा ऐसा कौन है	महत् चरणः	महापुरुषोंके
इह	इस संसारमें जो		चरणोंकी
ते अपराजितः	आप अपराजितकी	अनुपासित	उपासना किये बिना
अपराजितया	अपराजिता	अनवसित	अनिश्चित
मायया	मायासे		

पदव्या	स्वरूप वाली (मायाके)	अनावृत प्रकृतिः स्वभाव ढक न जाय अनावृत मतिः (जिसकी) बुद्धि ढक न जाय ॥१४॥
विषय	विषय रूपी	
विषरय	विष वेगसे (जिसका)	

यदु ह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहृतस्तत्रार्थधियां
मन्दानां नस्तद्यद्देवहेलनं देवदेवार्हसि साम्येन सर्वान् प्रतिवोदुम-
विदुषाम् ॥१५॥

यत् उ ह वाव तव पुनः अदभ्र कर्तः इह समाहृतः तत्र अर्थधियां
मन्दानां नः तद् यत् देव हेलनं देवदेव अर्हसि साम्येन सर्वान् प्रतिवोदुं
अविदुषां ॥१५॥

यत् उ ह वाव	क्योंकि निश्चित रूपसे ही	तद्	वह
अदभ्र	(आप) अव्यर्थ	देव तव	देव, आपकी
कर्तः	कर्ता हैं	यत् हेलनं	जो अब हेलना हुई
पुनः	फिर	देवदेव	देव देव !
अर्थधियां	(तुच्छ) प्रयोजन बुद्धिसे	साम्येन	(अपनी) समतासे
नः मन्दानां	हम अज्ञानियोंने	अविदुषां	(हम) अज्ञानियोंकी
इह समाहृतः	यहाँ (आपका) आवाहन किया	सर्वान्	सब (भूलें)
		प्रतिवोदुं	(आपको) सह लेना
		अर्हसि	चाहिए ॥१५॥

श्रीशुक उवाच-

इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो वर्ष-
धराभिवादिताभिवन्दितचरणः सदयमिदमाह ॥१६॥

इति निगदेन अभिष्टूयमानः भगवान् अनिषर्षभः वर्षधर अभिवादित
अभिवन्दित चरणः सदयं इदं आह ॥१६॥

वर्षधर	वर्षाधिपति (नाभि) के	निगदेन	कहते हुए,
अभिवादित	वन्दनीय	अभिष्टुत्यमानः	स्तुति किये जानेपर
अभिवन्दित		अनिषर्षभः	देवऋषभ (परमदेव)
चरणः	पूज्यचरण (ऋत्विकों द्वारा)	भगवान्	भगवान्
इति	इस प्रकार	सदयं	दयापूर्वक
		इदं आह	यह बोले ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच-

अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्बरमसुलभ-
मभियाचितो यदमुष्यात्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवा-
भिरूपः कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुमर्हति ममैव
हि मुखं यद् द्विजदेवकुलम् ॥१७॥

अहो बत अहं ऋषयः भवद्भिः अवितथ गीःभिः वरं असुलभं अभियाचितः
यत् अमुष्य आत्मजः मया सदृशः भूयात् इति मम अहं एव अभिरूपः
कैवल्यात् अथ अपि ब्रह्मवादः न मृषा भवितुं अर्हति मम एव हि मुखं यत्
द्विज देव कुलम् ॥१७॥

अहो बत	अरे किन्तु;	अमुष्य आत्मजः	इनका पुत्र
ऋषयः	ऋषियो !	मया सदृशः	मेरे समान
भवद्भिः	आप लोगों द्वारा	भूयात्	होवे
अहं	मुझसे	इति	इस प्रकार (मांगा है)
अवितथ	अव्यर्थ	मम अभिरूपः	मेरे समान
गीः भिः	वाणीसे	अहं एव	मैं ही हूँ,
असुलभं	बड़ा दुर्लभ	कैवल्यात्	एक मात्र होनेसे
वरं	वरदान	अथ अपि	फिर भी
अभियाचितः	मांगा गया है,	ब्रह्मवादः	ब्राह्मणोंकी बात
यत्	जो		

मृषा भवितुं न अर्हति यत् हि	झूठी होनी नहीं चाहिए, क्योंकि	द्विजदेवकुलं मम एव मुखं	ब्राह्मण देवताओंका कुल मेरा ही मुख है ॥१७॥
-----------------------------------	-------------------------------------	-------------------------------	---

तत आग्नीध्रीयैऽशकलयावतरिष्याम्यात्मतुल्यमनु-
पलभमानः ॥१८॥

ततः आग्नीध्रिये अंश कलया अवतरिष्यामि आत्मतुल्यं अनुपल-
भमानः ॥१८॥

ततः आत्मतुल्यं अनुपलभमानः	इसलिए अपने समान (दूसरा) न पानेके कारण	आग्नीध्रिये अंश कलया अवतरिष्यामि	आग्नीध्रके वंशमें (अपनी) कलाके अंशसे अवतार लूंगा ॥१८॥
---------------------------------	--	--	--

श्रीशुक उवाच-

इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः पतिमभिधायान्तर्दधे
भगवान् ॥१९॥

इति निशामयन्त्या मेरुदेव्याः पतिं अभिधाय अन्तर्दधे भगवान् ॥१९॥

मेरुदेव्याः निशामयन्त्या इति पतिं अभिधाय	मेरुदेवीके सुनते हुए इस प्रकार (उसके) पतिसे कहकर	भगवान् अन्तर्दधे	भगवान् अन्तर्हित हो गये ॥१९॥
---	--	---------------------	------------------------------------

बर्हिषि तस्मिन्नेवऽहनि विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः
प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां
धर्मान्दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां
शुक्लया तनुवावततार ॥२०॥

बर्हिषि तस्मिन् एव अहनि विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितः
नाभेः प्रियचिकीर्षया तद् अवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितु कामः
वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणां ऊर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुः अवततार ॥२०॥

बर्हिषि	यज्ञके	वातरशनानां	दिगम्बर,
तस्मिन् एव	उसी	ऊर्ध्वमन्थिनां	ऊर्ध्वरेता
अहनि	दिन	श्रमणानां	विरक्त
विष्णुदत्त	परीक्षित !	ऋषीणां	ऋषियोंके
परमर्षिभिः	परमर्षियों द्वारा	धर्मान्	धर्मोंको
प्रसादितः	प्रसन्न किये जानेसे,	दर्शयितु कामः	प्रदर्शित करनेकी
नाभेः	राजा नाभिका		इच्छासे
प्रियचिकीर्षया	प्रिय करनेकी	भगवान्	भगवान् ने
	इच्छासे,	शुक्लया तनुः	शुद्ध सत्त्वमय
तद् अवरोधायने	उनके अन्तःपुरमें		शरीरसे
मेरुदेव्यां	मेरुदेवीसे	अवततार	अवतार लिया ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे नाभिचरिते ऋषभावतारो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवत्लक्षणं साम्योपश-
मवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावं प्रकृतयः प्रजाः
ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥१॥

अथ ह तं उत्पत्त्या एव अभिव्यज्यमान भगवत् लक्षणं साम्य उपशम
वैराग्य ऐश्वर्य महाविभूतिभिः अनुदिनम् एधमान अनुभावं प्रकृतयः प्रजाः
ब्राह्मणा देवताः च अवनितल समवनाय अतितरां जगृधुः ॥१॥

अथ ह तं	फिर निश्चय उन	एधमान	बढ़नेवाले
	(नाभिनन्दन) में	अनुभावं	प्रभावको (देखकर)
उत्पत्त्या एव	जन्मसे ही	प्रकृतयः	मन्त्री आदि
भगवत् लक्षणं	भगवान् होनेके	प्रजाः	प्रजाजन,
	लक्षण	ब्राह्मणा	ब्राह्मण
अभिव्यज्यमान	प्रकट होने लगे ।	च देवताः	और देवता भी
साम्य	समता,	अवनितल	पृथ्वीके
उपशम	शान्ति,	समवनाय	शासन करनेके लिए
वैराग्य	वैराग्य,	अतितरां	अत्यन्त उत्सुकतासे
ऐश्वर्य	ऐश्वर्य,	जगृधुः	(उनका) वरण
महाविभूतिभिः	महान् वैभवके साथ		किया ॥१॥
अनुदिनम्	दिन-दिन		

तस्य ह वा इत्थं वर्त्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन चौजसा
बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम
चकार ॥२॥

तस्य ह इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहत् श्लोकेन च ओजसा बलेन
श्रिया यशसा वीर्यं शौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इति इदं नाम चकार ॥२॥

तस्य ह	उनके निश्चय	यशसा	सुयश,
इत्थं	इस प्रकारके	वीर्यं	पराक्रम,
वर्ष्मणा	✓शरीरके	च शौर्याभ्यां	तथा शूरता
वरीयसा	(सुन्दर, सुडौल)		(के श्रेष्ठ होने) से
	श्रेष्ठत्वसे	पिता	पिता (राजा
बृहत् श्लोकेन	विपुल कीर्तिसे,		नाभि) ने
च ओजसा	तथा मनोबल,	ऋषभ	ऋषभ
बलेन	(दैहिक) बलसे,	इति इदं	इस प्रकार यह
श्रिया	शोभा,	नाम चकार	नाम रखा ॥२॥

तस्य हीन्द्रः स्पर्धमानो भगवान् वर्षे न ववर्ष तदवधार्य
भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं
नामाभ्यवर्षत् ॥३॥

तस्य हि इन्द्रः स्पर्धमानः भगवान् वर्षे न ववर्ष तत् अवधार्य भगवान्
ऋषभदेवः योगेश्वरः प्रहस्य आत्मयोग मायया स्व वर्षं अजनाभम् नाम
अभ्यवर्षत् ॥३॥

हि तस्य	निश्चय उनसे	तो
स्पर्धमानः	स्पर्धा करते हुए	योगेश्वरः
इन्द्रः	इन्द्रने	प्रहस्य
भगवान् वर्षे	भगवान्के प्रदेशमें	स्व अजनाभ
ववर्ष न	वर्षा नहीं की,	नाम वर्ष
तत् अवधार्य	इसका विचार	अपने अजनाभ
	करके	नामके प्रदेशमें
भगवान्		चारों ओर वर्षा
ऋषभदेवः	भगवान् ऋषभदेव	की ॥३॥

नाभिस्तु यथाभिलषितं सुप्रजस्त्वमवरुध्यातिप्रमोदभर-
विह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं गृहीतनरलोकसधर्मं भगवन्तं
पुराणपुरुषं मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुरागमुपलालयन्
परां निर्वृतिमुपगतः ॥४॥

नाभिः तु यथा अभिलषितं सुप्रजस्त्वं अवरुध्य अति प्रमोद भर
विह्वलः गद्गद् अक्षरया गिरा स्वैरं गृहीत नरलोक सधर्मं भगवन्तं पुराण-
पुरुषं माया विलसित मतिः वत्स तात इति सानुरागं उप लालयन् परां
निर्वृतिं उपगतः ॥४॥

नाभिः तु	(महाराज)नाभि तो	सधर्मं	सधर्मता
यथा		गृहीत	ग्रहण किये (मनुष्य बने)
अभिलषितं	अपनी अभिलाषाके अनुसार	भगवन्तं	भगवान्
सुप्रजस्त्वं	उत्तम पुत्र	पुराण पुरुषं	पुराण-पुरुषको
अवरुध्य	पाकर	माया	
अति प्रमोद		विलसित	(उन्हींकी) मायाके
भर	अतिशय आनन्दके उद्रेकसे	मतिः	बुद्धि (होकर)
विह्वलः	विह्वल होकर	वत्स ! तात	वत्स ! तात !
गद्गद्		इति	इस प्रकार
अक्षरया	गद्गद् स्वरवाली	सानुरागं	अनुरागपूर्वक
गिरा	वाणीसे	लालयन्	लाड़ करते हुए
स्वैरं	स्वेच्छासे	परां निर्वृतिं	परमानन्द
नरलोक	मनुष्य लोककी	उपगतः	पा रहे थे ॥४॥

विदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं
समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह मेरुदेव्या
विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं
भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ॥५॥

विदित अनुरागं आपौर प्रकृति जनपदः राजा नाभिः आत्मजं समय
सेतु रक्षायां अभिषिच्य ब्राह्मणेषु उपनिधाय सह मेरुदेव्याः विशालायां प्रसन्न

निपुणेन तपसा समाधि योगेन नर नारायण आख्यं भगवन्तं वासुदेवं उपासीनः कालेन तन् महिमानं अवाप ॥५॥

आपौर	पुरवासियोंसे लेकर	सह मेरुदेव्याः (पत्नी) मेरुदेवीके साथ
प्रकृति	मन्त्री आदि	
जनपदः	सभी बस्तियोंके लोगोंका	विशालायां बदरीनाथ धाममें
अनुरागम्	प्रेम	प्रसन्न निपुणेन निर्मल कुशल
विदितः	जानकर	तपसा तपस्यासे*
राजा नाभिः	महाराज नाभिने	समाधियोगेन योगकी समाधिसे
आत्मजं	अपने पुत्र (ऋषभ-देव)को	नर नारायण
समय सेतु	सामयिक मर्यादाकी	आख्यं नर-नारायण नामवाले
रक्षायां	रक्षाके लिए	भगवन्तं
अभिषिच्य	अभिषेक करके	वासुदेवं भगवान् वासुदेवकी
ब्राह्मणेषु	ब्राह्मणोंपर	उपासीनः उपासना करके
उपनिधाय	उनका संरक्षण देकर,	तन् महिमानं उनकी महिमा (स्वरूप)को
		अवाप प्राप्त हो गये ॥५॥

यस्य ह पाण्डवेय श्लोकावुदाहरन्ति—

यस्य ह पाण्डवेय श्लोकाः उदाहरन्ति—

पाण्डवेय	परीक्षित !	श्लोकाः	ये श्लोक
ह यस्य	निश्चय जिनके सम्बन्धमें	उदाहरन्ति	कहे जाते हैं—

को नु तत्कर्म राजर्षेर्नभिरन्वाचरेत्पुमान् ।

अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥६॥

कः नु तत् कर्म राजर्षेः नाभेः अनु आचरेत् पुमान् अपत्यतां अगात् यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥६॥

*तपस्या निर्मल होती है निष्काम होनेसे और उसमें निपुणता है कि वह गीतार्वाणित सात्विक हो, राजस या तामस न हो ।

यस्य	जिनके	नाभे:	नाभिके
शुद्धेन कर्मणा	शुद्ध कर्म से	कर्म	कर्मका
हरिः	(स्वयं) श्रीहरि	कः नु	
यस्य	जिनके	पुमान्	भला कौन पुरुष
अपत्यतां		अनु आचरेत्	अनुकरणकर
अगात्	पुत्र बन गये,		सकता है ॥६॥
तत् राजर्षेः	उन राजर्षि		

ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेविप्रा मङ्गलपूजिताः ।

यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥७॥

ब्रह्मण्यः अन्यः कुतः नाभेः विप्राः मङ्गलपूजिताः यस्य बर्हिषि यज्ञेशं दर्शयामासुः ओजसा ॥७॥

नाभेः	महाराज नाभिसे	विप्राः	ब्राह्मणोंने
अन्यः	भिन्न	ओजसा	अपने ओज
ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण भक्त		(मन्त्र-बल) से
कुतः	कोई कहां होगा	यज्ञेशं	भगवान् यज्ञेशका
यस्य बर्हिषि	जिनके यज्ञमें	दर्शयामासुः	दर्शन करा
मङ्गलपूजिताः	मङ्गल (उत्साह)		दिया ॥७॥
	पूर्वक पूजित		

अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरं गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्मानु-
शिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्म समाप्ताया-
म्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥८॥

अथ ह भगवान् ऋषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रं अनुमन्यमानः प्रदर्शित
गुरुकुलवासः लब्धवरः गुरुभिः अनुज्ञातः गृहमेधिनां धर्मान् अनुशिक्षमाणः
जयन्त्यां इन्द्रदत्तायां उभय लक्षणं कर्म समाप्ताय आम्नातं अभियुञ्जन्
आत्मजानां आत्मसमानानां शतं जनयामास ॥८॥

अथ ह	इसके पश्चात् तो	धर्मान्	धर्मोंका
भगवान्		अनुशिक्षमाणः	(लोगोंको) शिक्षा
ऋषभदेवः	भगवान् ऋषभदेवने		देनेके लिए
स्ववर्षं	अपने देश (अजनाभ वर्ष) को	इन्द्रदत्तायां	इन्द्रकी दी हुई
			(उनकी कन्या)
कर्मक्षेत्रं		जयन्त्यां	जयन्तीके साथ
अनुमन्यमानः	कर्म-भूमि मानकर*	उभय लक्षणं	(श्रौत-स्मार्त) दोनों
गुरुकुलवासः	(लोक संग्रहार्थं)		प्रकारके
	गुरुकुलमें निवास	कर्म समाप्तायं	शास्त्रीय कर्मोंका
प्रदर्शित	दिखलाया ।	अभिभुञ्जन्	पालन करते हुए
लब्धवरैः	गुरु दक्षिणा पाये	आत्मसमानानां	अपने समान
गुरुभिः	गुरुदेवसे	आत्मजानां शतं	सौ पुत्र
अनुज्ञातः	अनुमति पाकर	जनयामास	उत्पन्न किये ॥८॥
गृहमेधिनां	गृहस्थोंके		

येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥८॥

येषां खलु महायोगी भरतः ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीत् येन इदं वर्षं भारतं इति व्यपदिशन्ति ॥८॥

येषां खलु	जिन (सौपुत्रों)में तो	येन	जिनके कारण
महायोगी	महायोगी	इदं वर्षं	इस देश (अजनाभ
भरतः	भरत	भारतं	भारत
ज्येष्ठः	सबसे बड़े और	इति	
श्रेष्ठगुणः	गुणोंमें श्रेष्ठ	व्यपदिशन्ति	ऐसा कहा जाता
आसीत्	थे		है ॥८॥

* सप्तद्वीप युक्ता पृथ्वी कही गयी । उसमें भी जम्बूद्वीपका एक भाग अजनाभ वर्ष (यही पीछे भारतवर्ष कहलाया) यही कर्मभूमि है इसका अर्थ है कि वर्तमान ज्ञात पृथ्वी पौराणिक भारतवर्ष मात्र है ।

तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन
इन्द्रस्पृग्विदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः ॥१०॥

तं अनु कुशावर्तः इलावर्तः ब्रह्मावर्तः मलयः केतुः भद्रसेनः इन्द्रस्पृक्
विदर्भः कीकटः इति नव नवतिप्रधानाः ॥१०॥

तं अनु	उनसे पीछे	इन्द्रस्पृक्	इन्द्रस्पृक्
कुशावर्तः	कुशावर्त,	विदर्भः	विदर्भ,
इलावर्तः	इलावर्त,	कीकटः	कीकट
ब्रह्मावर्तः	ब्रह्मावर्त,	इति नव	ये नौ (भाई)
मलयः	मलय,	नवतिप्रधानाः	(शेष) नब्बेसे बड़े
केतुः	केतु,		थे ॥१०॥
भद्रसेनः	भद्रसेन,		

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ।

आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥११॥

कविः हरिः अन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः आविर्होत्रः अथद्रुमिलः
चमसः करभाजनः ॥११॥

कविः	कवि,	द्रुमिलः	द्रुमिल,
हरिः	हरि,	चमसः	चमस,
अन्तरिक्षः	अन्तरिक्ष,	अथ करभा-	
प्रबुद्धः	प्रबुद्ध,	जनः	और करभा-
पिप्पलायनः	पिप्पलायन,		जन ॥११॥
आविर्होत्रः	आविर्होत्र,		

इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सुचरितं
भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्ठाद्व-
र्णयिष्यामः ॥१२॥

इति भागवतधर्म दर्शनाः नव महाभागवताः तेषां सुचरितं भगवन्
महिमा उपबृंहितं वसुदेव नारद संवादं उपशमायनं उपरिष्ठात् वर्णयि-
ष्यामः ॥१२॥

इति	इस प्रकार (ये)	तेषां	उनका
भागवतधर्म	भागवत धर्मका	सुचरितं	उत्तम चरित
दर्शनाः	प्रचार करनेवाले	वसुदेव-नारद	
महाभागवताः	महाभागवत (हुए)	संवादं	वसुदेव-नारद
भगवन् महिमा	भगवानकी		संवादमें
	महिमासे	उपरिष्ठात्	आगे
उपबृंहितं	महिमान्वित	वर्णयिष्यामः	वर्णन करूँगा ॥१२॥
उपशमायनं	परमशान्तिपूर्ण		

यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना
महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ॥१३॥

यवीयांस एकाशीतिः जायन्तेयाः पितुः आदेशकराः महाशालीनाः
महाश्रोत्रियाः यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धाः ब्राह्मणाः बभूवुः ॥१३॥

एकाशीतिः	इक्यासी	महाश्रोत्रियाः	महान् वेदज्ञ,
यवीयांस	छोटे	यज्ञशीलाः	निरन्तर यज्ञ
जायन्तेयाः	जयन्तीके पुत्र		करनेवाले,
पितुः	पिताकी	कर्मविशुद्धाः	कर्म शुद्ध होनेसे
आदेशकराः	आज्ञा माननेवाले,	ब्राह्मणाः	
महाशालीनाः	अत्यन्त विनीत,	बभूवुः	ब्राह्मण हो गये ॥१३॥

भगवानृषभसंज्ञ आत्मतन्त्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरम्परः
केवलानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः काले-
नानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदां सम उपशान्तो मैत्रः
कारुणिको धर्मार्थयशः प्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं
नियमयत् ॥१४॥

भगवान् ऋषभसंज्ञः आत्मतन्त्रः स्वयं नित्य निवृत्त अनर्थ परम्परः
केवल आनन्दानुभवः ईश्वर एवं विपरीतवत् कर्माणि आरम्भमाणः कालेव
अनुगतं धर्म आचरणेन उपशिक्षयन् अतद्विदां सम उपशान्तः मैत्रः कारुणिकः
धर्मं अर्थं यशः प्रजानन्द अमृत अवरोधेन गृहेषु लोकं नियमयत् ॥१४॥

ऋषभसंज्ञः	ऋषभ नामवाले	आचरणेन	अपने आचरणसे
भगवान्	(वे) भगवान्	धर्मं	
आत्मतन्त्रः	परम स्वतन्त्र थे,	उपशिक्षयन्	धर्मकी (प्रत्यक्ष)
स्वयं	अपने स्वरूपसे		शिक्षा देते हुए
अनर्थ परम्परः	अनर्थोंकी परम्परा	अतद्विदां	उस (धर्माचरण)को
	(अविद्या)से		न जानने वालोंको
नित्य निवृत्त	नित्य पृथक् थे	सम	समत्व
केवल	अद्वितीय	उपशान्तः	शान्त,
आनन्दा-		मैत्रः	(सबके) मित्र
नुभवः	आनन्दानुभव स्वरूप	कारुणिकः	कारुणिक रहकर
	थे ।	धर्म अर्थ	धर्म, अर्थ
ईश्वर एव	ईश्वर ही थे ।	यशः प्रजानन्द	यश, सन्तान सुख,
विपरीतवत्	(फिर भी) विपरीत	अमृत	मोक्षका
	(वद्ध-जीव)की भाँति	अवरोधेन	संग्रह करते हुए
कर्माणि	कर्मोंको	लोकं	लोगोंको
आरम्भमाणः	आरम्भ करके	गृहेषु	गृहस्थाश्रममें
कालेन	समयानुसार	नियमयत्	नियमित
अनुगतं	अनुयायियोंको		किया ॥१४॥

यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥१५॥

यत् यत् शीर्षाणि आचरितं तत् तत् अनुवर्तते लोकः ॥१५॥

शीर्षाणि	चोटीके लोग	तत् तत्	उसी उसीका
यत् यत्	जो-जो	अनुवर्तते	अनुकरण करते
आचरितं	आचरण करते हैं,		हैं ॥१५॥
लोकः	(दूसरे) लोग		

यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दशितमार्गेण
सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥१६॥

यद्यपि स्वविदितं सकल धर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैः दशित मार्गेण
सामादिभिः उपायैः जनतां अनुशशास ॥१६॥

यद्यपि	यद्यपि	दशित मार्गेण	दिखलाये (बतलाये)
सकल	सब		मार्गसे
ब्राह्मं	✓ वेदके	सामादिभिः	समझानेके
गुह्यं	रहस्य तथा	उपायैः	उपायोसे
धर्मं	धर्मको	जनतां	जनताका
स्वविदितं	स्वयं जानते थे (फिर भी)	अनुशशास	शासन करते रहे ॥१६॥
ब्राह्मणैः	ब्राह्मणोंके		

द्रव्य देशकालवयः श्रद्धा ऋत्विग्विविधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि
ऋतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥१७॥

द्रव्य देशकालवयः श्रद्धा ऋत्विक् विविध उद्देशः उपचितैः सर्वैः
अपि ऋतुभिः यथा उपदेशं शतकृत्व इयाज ॥१७॥

यथा उपदेशं	(शास्त्र तथा ब्राह्मणोंके) उपदेश- के अनुसार,	ऋत्विक्	(यज्ञ करानेवाले) ऋत्विकों
विविध उद्देशः	भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देशसे	उपचितैः	(सब यथोचित) जुटाकर
द्रव्य	पदार्थ	शतकृत्व	सौ-सौ बार
देशकाल-	स्थान, समय,	सर्वैः ऋतुभिः	
वयः	अवस्था,	अपि	सभी यज्ञोंसे ही
श्रद्धा	श्रद्धा,	इयाज	यजन किया ॥१७॥

भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न
कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथञ्चन
किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तयनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्त-
रेण ॥१८॥

भगवत ऋषभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन् वर्षे न कश्चन पुरुषः
वाञ्छति अविद्यमानं इव आत्मनः अन्य स्मात् कथञ्चन किमपि कर्हिचित्
अवेक्षते भर्तरि अनुसवनं विजृम्भित स्नेह अतिशयं अन्तरेण ॥१८॥

भगवत		कथञ्चन	कभी भी
ऋषभेण	भगवान् ऋषभदेव	किमपि	कुछ भी
	द्वारा	अविद्यमानं इव	अपने पास नहीं है,
परिरक्ष्यमाण	सब ओरसे रक्षित		इस भांति
एतस्मिन् वर्षे	इस देशमें	आत्मनः	अपनेसे (भिन्न)
अनुसवनं	निरन्तर	अन्य स्मात्	दूसरेसे
विजृम्भित	बढ़ते हुए	न वाञ्छति	नहीं चाहता था,
स्नेह अतिशयं	अतिशय स्नेहको	कर्हिचित्	किसी समय
अन्तरेण	छोड़कर	अवेक्षते	अपेक्षा भी (नहीं
कश्चन पुरुषः	कोई भी पुरुष		करता था) ॥१८॥

स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो
ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानव-
हितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति
होवाच ॥१९॥

स कदाचित् अटमानः भगवान् ऋषभः ब्रह्मावर्तगतः ब्रह्मर्षि प्रवर
सभायां प्रजानां निशामयन्तीनां आत्मजान् अवहित आत्मनः प्रश्रय प्रणय
भर सुयन्त्रितान् अपि उपशिक्षयन् इति ह उवाच ॥१९॥

कदाचित्	किसी समय	अवहित	
अटमानः	घूमते हुए	आत्मनः	समाहित चित्त,
स भगवान्	वे भगवान्	प्रश्रय	नम्रता एवं
ऋषभः	ऋषभदेव	प्रणय भर	प्रेमातिशयसे
ब्रह्मावर्तगतः	ब्रह्मावर्त पहुँचे ।	सुयन्त्रितान्	अत्यन्त संयत
ब्रह्मर्षि सभायां	(वहाँ) ब्रह्मर्षियोंकी	आत्मजान् अपि	पुत्रोंको भी
	सभामें	उपशिक्षयन्	शिक्षा देते हुए
प्रजानां	प्रजाके	इति ह उवाच	इस प्रकार निर्णय
निशामयन्तीनां	सुनते हुए		पूर्वक बोले ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥



अथ पञ्चमोऽध्यायः

ऋषभ उवाच-

नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं
शुद्धचेद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥१॥

न अयं देहः देहभाजां नृलोके कष्टान् कामान् अर्हते विड्भुजां ये तपः
दिव्यं पुत्रकाः येन सत्त्वं शुद्धचेत् यस्मात् ब्रह्मसौख्यं तु अनन्तम् ॥१॥

पुत्रकाः	(मेरे) छोटे पुत्रो !	तपः दिव्यं	(यह) दिव्य तपके
नृलोके	मनुष्य-लोकमें		लिए है
देहभाजां	शरीरधारियोंका	येन	जिससे
अयं देहः	यह (मनुष्य) शरीर	सत्त्वं शुद्धचेत्	अन्तःकरण शुद्ध
ये विड्भुजां	जो विष्ठा-भोजी		होता है
	(शूकरादिको भी)	यस्मात्	जिससे
कष्टान्	दुःखमय	अनन्तं	अनन्त
कामान्	भोग मिलते हैं	ब्रह्मसौख्यं तु	ब्रह्मानन्द मिलता
	(उन्हें ही)		है ॥१॥
न अर्हते	प्राप्त करनेके लिए		
	नहीं है		

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते-
स्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥२॥

महत् सेवां द्वारं आहुः विमुक्तेः तमः द्वारं योषितां सङ्गिसङ्गं महान्तः
ते समचित्ताः प्रशान्ताः विमन्यवः सुहृदः साधवः ये ॥२॥

महत् सेवां	महापुरुषोंकी सेवा	ये	जो
विमुक्तेः	मोक्षका	समचित्ताः	(सब द्वन्द्वोंमें) सम-
द्वारं आहुः	द्वार कही गयी है		चित्त हैं
तमः द्वारं	नरकका द्वार	प्रशान्ताः	अत्यन्त शान्त हैं
योषितां सङ्गि-	स्त्रियासक्त लोगोंका	विमन्यवः	क्रोधरहित हैं
सङ्गं	साथ है	सुहृदः	सबके हितैषी (और)
महान्तः ते	महापुरुष वे हैं	साधवः	सदाचारी हैं ॥२॥

ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था
जनेषु देहम्भरवार्तिकेषु ।

गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु
न प्रीतियुक्ता यावदार्थाश्च लोके ॥३॥

ये वा मयि ईशे कृतः सौहृद अर्थाः जनेषु देहम्भर वार्तिकेषु गृहेषु
जाया आत्मज रातिमत् सु न प्रीतियुक्ता यावत् अर्थाः च लोके ॥३॥

वा	अथवा (वे महापुरुष हैं)	गृहेषु	घरमें
ये मयि ईशे	जो मुझ ईश्वरमें	जाया आत्मज	स्त्री-पुत्रमें
सौहृद	सौहार्द्रको	रातिमत् सु	धनादिमें
अर्थाः कृतः	पुरुषार्थ बना चुके हैं	प्रीतियुक्ता न	प्रेम करनेवाले
देहम्भर	शरीरके पोषणकी	लोके	नहीं हैं
	ही		लोकमें
वार्तिकेषु	✓ चर्चा करनेवाले	यावत् अर्थाः च	प्रयोजन मात्रके लिए
जनेषु	लोगोंसे		ही हैं ॥३॥

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म
यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ।

न साधु मन्ये यत आत्मनोऽय-
मसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥४॥

नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यत् इन्द्रिय प्रीतय आपृणोति न साधु
मन्ये यत आत्मनः अयं असत् अपि क्लेशद आस देहः ॥४॥

नूनं	निश्चय	न साधु मन्ये	मैं इसे अच्छा नहीं
यत्	जो		मानता
इन्द्रिय प्रीतय	इन्द्रियोंकी प्रसन्नता-	यत	(क्योंकि) जिससे
	के लिए	आत्मनः अय	आत्माको यह
आपृणोति	✓ उन्हें तृप्त करता है	असत् अपि	असत् होनेपर भी
प्रमत्तः	प्रमादवश	क्लेशद देहः	क्लेश देनेवाला
विकर्म	कुकर्म		शरीर
कुरुते	करता है ।	आस	प्राप्त हुआ है ॥४॥

पराभवस्तावदबोधजातो

यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ।

यावत्क्रियास्तावदिदं मनो वै

कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥५॥

पराभवः तावत् अवबोधजातः यावत् न जिज्ञासत आत्मतत्त्वं
यावत् क्रियाः तावत् इदं मनः वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥५॥

अवबोधजातः	अज्ञानसे उत्पन्न	यावत् क्रियाः	जब तक (सकाम)
पराभवः	(मायासे) पराजय		कर्म हैं
तावत्	तब तक है	तावत् इदं	तब तक यह
यावत्	जब तक	कर्मात्मकं	कर्म-संस्कार रूप
आत्मतत्त्वं	आत्मा-तत्त्वको	मनः वै	मन निश्चय है
न जिज्ञासत	जाननेकी इच्छा	येन	जिसके द्वारा
	नहीं करता	शरीरबन्धः	देह-बन्धन मिलता
			है ॥५॥

एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते
अविद्ययाऽऽत्मन्युपधीयमाने ।

प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे
न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥६॥

एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्यया आत्मनि उपधीयमाने प्रीतिः न
यावत् मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥६॥

एवं	इस प्रकार	यावत्	जब तक
अविद्यया	अविद्यासे	मयि वासुदेवे	मुझ वासुदेवमें
आत्मनि	आत्म-तत्त्वके	प्रीतिः न	प्रीति नहीं होती
उपधीयमाने	ढक जानेपर	तावत्	तब तक
मनः	मन	देहयोगेन	शरीरोंके संयोग
कर्मवशं	कर्मके वशमें (फिर		(पुनर्जन्म) से
	कर्ममें)	न मुच्यते	मुक्त नहीं होता ॥६॥
प्रयुङ्क्ते	लगा देता है		

यदा न पश्यत्ययथा गुणैर्हं
स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ।

गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापा-
नासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ॥७॥

यदा न पश्यति अयथा गुण ईहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् गतः
स्मृतिः विन्दति तत्र तापान् आसाद्य मैथुन्यं अगारं अज्ञः ॥७॥

स्वार्थे	(अपने वास्तविक)	गुण ईहां	इन्द्रियोंकी
	स्वार्थके प्रति		चेष्टाओंकी
प्रमत्तः	प्रमादग्रस्त	अयथा	मिथ्या
सहसा	अचानक	न पश्यति	नहीं देखता
विपश्चित्	विवेकशील होकर	गतः स्मृतिः	(तब तक) स्मृति-
यदा	जब तक		भ्रष्ट

अज्ञः	वह अज्ञानी	तत्र तापान्	वहां सन्ताप
मैथुन्यं अगारं	स्त्री-पुरुषके निवास	विन्दति	पाता रहता है ॥७॥
आसाद्य	(गृहस्थाश्रम) को		
	पाकर		

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतं
तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः ।

अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तै-
जनस्य मोहोऽयमहं ममेति ॥८॥

पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावं एतं तयोः मिथः हृदयग्रन्थिम् आहुः अतः
गृहे क्षेत्र सुत आप्त वित्तैः जनस्य मोहः अयं अहं मम इति ॥८॥

पुंसः स्त्रिया	पुरुष और स्त्रीका	सुत आप्त	पुत्र, गुरुजन (पिता-
मिथुनीभावं	दाम्पत्य		माता)
एतं	इसीको	वित्तैः	(तथा) धनमें
तयोः मिथः	उन दोनोंकी परस्पर	अयं मम	यह मैं, यह मेरा
हृदयग्रन्थिम्	(स्थूल) हृदय-ग्रन्थि	इति	इस प्रकार
आहुः	कहा गया है	अयं जनस्य	यह लोगोंका
अतः	अतः	मोहः	मोह होता है ॥८॥
गृहक्षेत्र	घर, खेत (भूमि)		

यदा मनोहृदयग्रन्थिरस्य
कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत ।

तदा जनः सम्परिवर्ततेऽस्माद्
मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम् ॥९॥

यदा मनः हृदयग्रन्थिः अस्य कर्म अनुबद्धः दृढ आश्लथेत तदा जनः
सम्परिवर्तते अस्मात् मुक्तः परं याति अतिहाय हेतुम् ॥९॥

यदा	जब	सम्परिवर्तते	भली प्रकार
कर्म अनुबद्धः	कर्म वासनाओंसे		परिवर्तित हो जाता
दृढ अस्य	दृढ इसकी		है
हृदयग्रन्थि	हृदयकी ग्रन्थि	मुक्तः	(उससे) छूटकर
आश्लथेत	✓ शिथिल पड़ जाती	हेतुं	(संसारके) कारण
	है		(अहंकार) को
तदा जनः	तब मनुष्य	अतिहाय	त्यागकर
अस्मात्	इस दाम्पत्य भावसे	परं याति	परमपदको जाता
			है ॥२॥

हंसे गुरौ मयि भक्त्यानुवृत्त्या
 वितृष्णया द्वन्द्वतितिक्षया च ।
 सर्वत्र जन्तोर्व्यसनावगत्या
 जिज्ञासया तपसेहानिवृत्त्या ॥१०॥

हंसे गुरौ मयि भक्त्या अनुवृत्त्या वितृष्णया द्वन्द्वतितिक्षया च सर्वत्र
 जन्तोः व्यसन अवगत्या जिज्ञासया तपसः ईहा निवृत्त्या ॥१०॥

हंसे	विवेकी	सर्वत्र	सभी कहीं
गुरौ	गुरुमें (तथा)	जन्तोः व्यसन	जीवको दुःख ही
मयि	मुझ (परमात्मा) में		मिलता है
भक्त्या	भक्तिसे	अवगत्या	इस जानकारीसे
अनुवृत्त्या	(इनके) अनुकूल	जिज्ञासया	(आत्मतत्त्वकी)
	वृत्तिसे		जिज्ञासासे
वितृष्णया च	तृष्णाके त्यागसे	तपसः	तपस्यासे
	तथा	✓ ईहा निवृत्त्या	✓ इच्छाओंकी
द्वन्द्वतितिक्षया	(सुख-दुःखादि)		निवृत्तिसे ॥१०॥
	द्वन्द्वोंको सह लेनेसे		

मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं
 मद्देवसङ्गाद् गुणकीर्तनान्मे ।

निर्वैरसाम्योपशमेन
जिहासया

पुत्रा
देहगेहात्मबुद्धेः ॥११॥

मत् कर्मभिः मत् कथया च नित्यं मत् देवसङ्गात् गुणकीर्तनात् मे
निर्वैर साम्य उपशमेन पुत्राः जिहासया देहगेह आत्मबुद्धेः ॥११॥

पुत्राः पुत्रो !
मत् कर्मभिः मेरे लिए कर्म
करनेसे
च नित्यं और नित्य
मत् कथया मेरी कथा (सुनने)
से
मत् देवसङ्गात् मेरे भक्तोंके सङ्गसे
मे गुण-
कीर्तनात् मेरे गुणोंका कीर्तन
करनेसे

निर्वैर (किसीसे) शत्रुता न
करनेसे
साम्य समत्वसे
उपशमेन बैराग्यसे
देहगेहे शरीर तथा घरमें
आत्मबुद्धेः आत्मबुद्धिके
जिहासया त्यागसे ॥११॥

अध्यात्मयोगेन

विविक्तसेवया

प्राणेन्द्रियात्माभिजयेन

सध्र्यक् ।

सच्छ्रद्धया

ब्रह्मचर्येण

शश्वद्

असम्प्रमादेन

यमेन

वाचां ॥१२॥

अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राण इन्द्रिय आत्म अभिजयेन सध्र्यक्
सत् श्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वत् असम्प्रमादेन यमेन वाचां ॥१२॥

अध्यात्मयोगेन अन्तर्मुखतासे
विविक्तसेवया एकान्त-सेवनसे
सध्र्यक् भली प्रकार
प्राण इन्द्रिय प्राण-इन्द्रियों तथा
आत्म अभिजयेन मनको जीतनेसे
सत् श्रद्धया सात्त्विक श्रद्धासे

शश्वत् निरन्तर
ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचर्य पालनसे
असम्प्रमादेन प्रमादहीनतासे
वाचां यमेन वाणीका संयम
करनेसे ॥१२॥

सर्वत्र मद्भाविचक्षणेन
 ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ।
 योगेन धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो
 लिङ्गं व्यपोहेत्कुशलोऽहमाख्यम् ॥१३॥

सर्वत्र मद्भाव विचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञान विराजितेन योगेन धृति
 उद्यम सत्त्व युक्तः लिङ्गं व्यपोहेत् कुशलः अहं आख्यम् ॥१३॥

सर्वत्र	सब कहीं	धृति उद्यम	धैर्य, उद्योग
मत्भाव	मेरी ही सत्ता	सत्त्व युक्तः	मनोबल युक्त होकर
विचक्षणेन	देखते रहनेसे	कुशलः	चतुर व्यक्ति
विज्ञान		अहं आख्यं	अहं कहे जानेवाले
विराजितेन	अनुभव ज्ञान सहित	लिङ्गं	लिङ्ग शरीरको
ज्ञानेन	तत्त्व-ज्ञानसे	व्यपोहेत्	लीन कर दे ॥१३॥
योगेन	योग-साधनसे		

कर्माशयं हृदयग्रन्थिबन्ध-

मविद्ययाऽऽसादितमप्रमत्तः ।

अनेन योगेन यथोपदेशं

सम्यग्व्यपोह्योपरमेत योगात् ॥१४॥

कर्माशयं हृदयग्रन्थि बन्धं अविद्यया आसादितं अप्रमत्तः अनेन योगेन
 यथा उपदेशं सम्यक् व्यपोह्य उपरमेत योगात् ॥१४॥

अप्रमत्तः	सावधान रहकर	अनेन	इस (बतलाये गये)
अविद्यया	अविद्याके द्वारा	योगेन	योग (साधनों) से
आसादितं	प्राप्त हुई	सम्यक्	भली प्रकार
कर्माशयं	कर्माशय (रूप, अन्तःकरण) की	व्यपोह्य	काटकर
हृदयग्रन्थि	हृदयकी गांठके	योगात्	साधनोंसे
बन्धं	बन्धनको	उपरमेत	उपराम हो
यथा उपदेशं	शास्त्रोपदेशके		जाय ॥१४॥
	अनुसार		

पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा
 मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ।
 इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञानं
 न योजयेत्कर्मसु कर्ममूढान् ।
 कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत
 निपातयन्नष्टदृशं हि गते ॥१५॥

पुत्रान् च शिष्यान् च नृपः गुरुः वा मत् लोककामः मत् अनुग्रह अर्थः
 इत्थं विमन्युः अनुशिष्यात् अतत् ज्ञानं न योजयेत् कर्मसु कर्ममूढान् कं
 योजयन् मनुजः अर्थं लभेत निपातयन् नष्टदृशं हि गते ॥१५॥

मत् लोककामः	(जो) मेरा लोक पाना चाहता हो	अनुशिष्यात् अतत् ज्ञानं कर्ममूढान्	बराबर सिखलावे, तत्त्व न जाननेवाले कर्ममें अज्ञानपूर्वक
मत् अनुग्रह अर्थः	(उसे) मेरा अनुग्रह पानेके लिए	कर्मसु न योजयेत् हि नष्टदृशं गते निपातयन्	लगे लोगोंको कर्ममें ही न लगावे, क्योंकि अन्धोंको गड्ढेमें गिरानेसे
नृपः पुत्रान् च	राजा पुत्रों (प्रजाको) तथा	मनुजः कं अर्थं लभेत	मनुष्य कौन-सा प्रयोजन पा लेगा ॥१५॥
गुरुः शिष्यान् च विमन्युः इत्थं	गुरु शिष्योंको भी बिना क्रोधके इस प्रकार		

लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टि-

र्योऽर्थान् समीहेत निकामकामः ।

अन्योन्यवैरः सुखलेशहेतो-

रनन्तदुःखं च न वेद मूढः ॥१६॥

लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिः यः अर्थान् समीहेत निकाम कामः
अन्योन्य वैरः सुखलेश हेतः अनन्त दुःखं च न वेद मूढः ॥१६॥

लोकः	लोग	समीहेत	चाहते हैं,
स्वयं	अपने	सुखलेश	सुखके क्षुद्रांश
श्रेयसि	कल्याणके सम्बन्धमें	हेतः	के लिए
नष्टदृष्टिः	अन्धे हैं,	अन्योन्य वैरं	एक दूसरेसे शत्रुता
यः निकाम	जो अत्यन्त		करते हैं
	उत्सुकतासे	च मूढः	और वे मूर्ख
कामः	कामनापूर्वक	अनन्त दुःखं	अनन्त दुःखोंको
अर्थान्	भोगोंको ही	न वेद	नहीं जानते हैं ॥१६॥

कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिद्

अविद्यायामन्तरे वर्तमानम् ।

दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबुद्धिं

प्रयोजयेदुत्पथगं यथान्धम् ॥१७॥

कः तं स्वयं तत् अभिज्ञः विपश्चित् अविद्यायां अन्तरे वर्तमानं
दृष्ट्वा पुनः तं सघृणः कुबुद्धिं प्रयोजयेत् उत्पथगं यथा अन्धम् ॥१७॥

स्वयं	स्वयं	यथा	जैसे
तत्	उस (तथ्य) को	उत्पथगं	कुमार्गसे जाते
अभिज्ञः	जानने वाला	अन्धं	अन्धेको
विपश्चित्	विवेकी	सघृणः	दयाल होते हुए भी
कः तं	कौन उन	पुनः तं	फिर उन्हें
अविद्यायां	अविद्याके	कुबुद्धिं	कुबुद्धिमें
अन्तरे वर्तमानं	भीतर ही रहनेवाले	प्रयोजयेत्	लगावेगा ॥१७॥
दृष्ट्वा	(लोगोंको) देखकर		

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्

पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।

दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न

मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥१८॥

गुरुः न स स्यात् स्वजनः न स स्यात् पिता न स स्यात् जननी न सा
स्यात् दैवं न तत् स्यात् न पतिः च स स्यात् न मोचयेत् यः समुपेतं
मृत्युम् ॥१८॥

स गुरुः	वह गुरु	तत् दैवं	वह इष्ट देव
न स्यात्	नहीं है,	न स्यात् च	नहीं है, और
स स्वजनः	वह स्वजन	स पतिः	वह पति
न स्यात्	नहीं है,	न स्यात्	नहीं है,
स पिता	वह पिता	यः समुपेतं	जो पास आयी
न स्यात्	नहीं है,	मृत्युं	मृत्युसे
सा जननी	वह माता	न मोचयेत्	छुड़ा न ले ॥१८॥
न स्यात्	नहीं है,		

इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं

सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः ।

पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आराद्

अतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥१९॥

इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र धर्मः पृष्ठे कृतः
मे यत् अधर्म आरात् अतः हि मां ऋषभं प्राहुः आर्याः ॥१९॥

मम इदं शरीरं	मेरा यह (अवतार)	आरात्	समीपसे
	देह	मे पृष्ठे कृतः	मैंने पीछे कर दिया
दुर्विभाव्यं	बुद्धिगम्य नहीं है,		(त्याग दिया) है,
हि सत्त्वं	क्योंकि शुद्ध सत्त्व	अतः हि	अतः इसलिए
मे हृदयं	मेरा हृदय है,	आर्याः	श्रेष्ठजन
यत्र धर्मः	जहाँ धर्म	मां ऋषभं	
	(की स्थिति) है,	प्राहुः	मुझे ऋषभ कहते
यत् अधर्म	क्योंकि अधर्मको		हैं ॥१९॥

तस्माद्भवन्तो हृदयेन जाताः

सर्वे महीयांसममुं सनाभम् ।

अक्लिष्टबुद्ध्या भरतं भजध्वं

शुश्रूषणं तद्भरणं प्रजानाम् ॥२०॥

तस्मात् भवन्तः हृदयेन जाताः सर्वे महीयांसं अमुं सनाभं अक्लिष्ट बुद्ध्या भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तत् भरणं प्रजानाम् ॥२०॥

भवन्तः तुम लोग
हृदयेन जाताः (शुद्ध सत्त्व मेरे)
हृदयसे उत्पन्न हो
तस्मात् सर्वे इसलिए सब
अक्लिष्ट बुद्ध्या मत्सरहीन बुद्धिसे
अमुं महीयांसं
सनाभं इन सगे बड़े भाई

भरतं भजध्वं भरतकी सेवा करो,
तत् मरणं उनकी सेवा
प्रजानां प्रजाकी
शुश्रूषणं सेवा है ॥२०॥

भूतेषु वीरुद्भ्य उदुत्तमा ये

सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ।

ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि

गन्धर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥२१॥

भूतेषु वीरुद्भ्यः उत् उत्तमा ये सरीसृपाः तेषु सबोध निष्ठाः ततः मनुष्याः प्रमथाः ततः अपि गन्धर्व सिद्धाः विबुध अनुगाः ये ॥२१॥

भूतेषु प्राणियोंमें
वीरुद्भ्यः वृक्षोंसे
उत् उत्तमा ये कुछ श्रेष्ठ जो
हैं (वे)
सरीसृपाः सरीसृप
(सरकने वाले) हैं,
तेषु उनसे

सबोध निष्ठाः ज्ञानवाले (पशु)
श्रेष्ठ हैं,
ततः मनुष्याः उनसे मनुष्य
ततः उनसे
प्रमथाः प्रमथ (भूतोंकी
एक जाति)
ततः अपि उनसे भी

य विबुध
अनुगाः

देवताओंके अनुचर

गन्धर्व सिद्धाः गन्धर्व सिद्धादि
हैं ॥२१॥

देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना

दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् ।

भवः परः सोऽथ विरिश्चवीर्यः

स मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः ॥२२॥

देव असुरेभ्यः मघवत् प्रधानाः दक्षादयः ब्रह्मसुताः तु तेषां भवः
परः सः अथ विरिञ्च वीर्यः स मत् परः अहं द्विजदेव देवः ॥२२॥

देव असुरेभ्यः देवता तथा असुरोंमें
मघवत् प्रधानाः इन्द्र श्रेष्ठ हैं,
दक्षादयः दक्षादि
ब्रह्मसुताः तु ब्रह्माजीके पुत्र तो
उनसे,
तेषां उनमें
भवः परः रुद्र श्रेष्ठ हैं ।
अथ सः विरिश्च
वीर्यः फिर वे ब्रह्माजीसे

उत्पन्न हैं
स मत् परः वे (ब्रह्मा) मेरे
परायण हैं,
अहं मैं
द्विजदेव देवः ब्राह्मणोंको देव
(पूज्य) मानता
हैं ॥२२॥

न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्

पश्यामि विप्राः किमतः परं तु ।

यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाह-

मश्नामि कामं न तथाग्निहोत्रे ॥२३॥

न ब्राह्मणैः तुलये भूतं अन्यत् पश्यामि विप्राः किं अतः परं तु
यस्मिन् नृभिः प्रहुतं श्रद्धया अहं अश्नामि कामं न तथा अग्निहोत्रे ॥२३॥

विप्राः ब्राह्मणो !
ब्राह्मणैः (मैं) ब्राह्मणोंसे
अन्यत् भूतं दूसरे प्राणियोंकी

तुलये न तुलना नहीं करता,
अतः परं तु उनसे श्रेष्ठ तो
किं पश्यामि क्या देखूंगा ।

नृभिः	मनुष्यों द्वारा	अश्नामि	खाता हूँ,
यस्मिन्	जिन (के मुख) में	तथा	बंसा
श्रद्धया	श्रद्धासे	अग्निहोत्रे	अग्निमें हवन
प्रहुतं	आहुति (भोजन)		करनेसे
	देनेपर	न	नहीं (खाता)॥२३॥
अहं कामं	मैं भली प्रकार		

धृता तनूश्शती मे पुराणी
येनेह सत्त्वं परमं पवित्रम् ।

शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च
तपस्तिक्ष्णानुभवश्च यत्र ॥२४॥

धृताः तनूः उशतीः मे पुराणी येन इह सत्त्वं परमं पवित्रं शमः दमः
सत्यं अनुग्रहः च तपः तितिक्षा अनुभवः च यत्र ॥२४॥

येन इह	जिन्होंने इस लोकमें	शमः दमः	शम (मनोनिग्रह)
उशतीः	सुन्दर		दम (इन्द्रिय-दमन)
पुराणी	सनातन	सत्यं अनुग्रहः	सत्य, कृपाशीलता,
मे तनूः	मेरे (वेदरूपी)	च तपः	
	शरीरको	तितिक्षा	तथा तपस्या,
धृताः	धारण कर रखा है,		तितिक्षा
यत्र	जिनमें	च अनुभवः	एवं (परमार्थ-
परमं पवित्रं	परम पवित्र		तत्त्वका) अनुभव*
सत्त्वं	सत्त्व,		है ॥२४॥

मत्तोऽप्यनन्तात्परतः परस्मात्
स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किञ्चित् ।

येषां किमु स्यादितरेण तेषा-
मकिञ्चनानां मयि भक्तिभाजाम् ॥२५॥

* ब्राह्मणके ये आठ गुण हैं—१. सात्विकता, २. शम, ३. दम, ४. सत्य, ५. कृपा, ६. तप, ७. तितिक्षा तथा ८. ज्ञान ।

मत्तः अपि अनन्तात् परतः परस्मात् स्वर्गं अपवर्गं अधिपतेः न किञ्चित् येषां किमु स्यात् इतरेण तेषां अकिञ्चनानां मयि भक्ति भाजाम् ॥२५॥

अनन्तात्	अनन्त	मयि भक्ति	
परतः परस्मात्	(ब्रह्मादि) श्रेष्ठोंसे	भाजां	मुझमें भक्ति करनेवाले
	भी परम श्रेष्ठ		
स्वर्गं अपवर्गं		येषां	उन
अधिपतेः	स्वर्ग और मोक्षके स्वामी	अकिञ्चनानां	अकिञ्चन भक्तोंका
		इतरेण	दूसरोंसे
मत्तः अपि	मुझसे भी	किमु स्यात्	क्या (प्रयोजन) हो
येषां	जिनकी		सकता है ॥२५॥
किञ्चित् न	कोई मांग नहीं है,		

✓ सर्वाणि मद्धिष्यतया भवद्भि-

श्वराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि ।

सम्भावितव्यानि पदे पदे वो

विविक्तदृग्भिस्तदु हार्हणं मे ॥२६॥

सर्वाणि मत् धिष्यतया भवत् भिः चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि सम्भावित व्यानि पदे पदे वः विविक्त दृग्भिः तत् उ ह अर्हणं मे ॥२६॥

भवत् भिः	तुम लोगोंके द्वारा	✓ विविक्त दृग्भिः	✓ एकान्त दृष्टि (भाव) से
सर्वाणि	सब		
चराणि	चर	पदे पदे	
ध्रुवाणि	अचर	सम्भावित व्यानि	पद-पदपर सम्मानित करो
भूतानि	प्राणियोंको		
सुता वः	पुत्रो ! तुम लोग	तत् उ ह	वह निश्चित रूपसे ही
मत् धिष्यतया	मेरा स्वरूप	मे अर्हणं	मेरी पूजा है ॥२६॥
	समझ कर		

मनोवचोदृक्करणेहितस्य

साक्षात्कृतं मे परिबर्हणं हि ।

विना पुमान् येन महाविमोहात्

कृतान्तपाशात् विमोक्तुमीशेत् ॥२७॥

मनः वचः दृक् करण ईहितस्य साक्षात् कृतं मे परिबर्हणं हि विना पुमान् येन महाविमोहात् कृतान्त पाशात् न विमोक्तं ईशेत् ॥२७॥

हि	क्योंकि	कृतं	देना है,
मनः वचः	मन, वाणी	येन विना	जिसके बिना
दृक् करण	दृष्टि तथा	पुमान्	पुरुष
	इन्द्रियोंकी	महाविमोहात्	महान् मोहमय
ईहितस्य	चेष्टाओंका	कृतान्त पाशात्	कालके पाशसे
साक्षात्	साक्षात् (फल)	विमोक्तं	छूटनेमें
मे परिबर्हणं	मुझे(सब प्राणियोंको सम्मान देनेके द्वारा)	ईशेत् न	समर्थ नहीं होता ॥२७॥
	उपहार		

श्रीशुक उवाच-

एवमनुशास्यात्मजात् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्भूगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरत-कर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुप-शिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन एवोर्वरितशरीरमात्र-परिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिता-हवनीयो ब्रह्मावर्तप्रवव्राज ॥२८॥

एवं अनुशास्य आत्मजान् स्वयं अनुशिष्टान् अपि लोकान् अनुशा-
सनार्थं महा अनुभावः परम सुहृद् भगवान् ऋषभ अपदेशः उपशमशीलानां
उपरत कर्मणां महामुनीनां भक्ति ज्ञान वैराग्य लक्षणं पारमहंस्य धर्मं
उपशिक्षमाणः स्वतनय शत ज्येष्ठं परमभागवतं भगवत् जन परायणं
भरतं धरणि पालनाय अभिषिच्य स्वयं भवन एव उर्वरित शरीरमात्र
परिग्रहः उन्मत्त इव गगन परिधानः प्रकीर्ण केश आत्मनि आरोपित
आहवनीयः ब्रह्मावर्तात् प्रवव्राज ॥२८॥

एवं	इस प्रकार	स्वतनय शत	
स्वयं		ज्येष्ठं	अपने सौ पुत्रोंमें बड़े
अनुशिष्टान्		परमभागवतं	परम भगवद् भक्त,
अपि	स्वयं सुशिक्षित होनेपर भी	भगवत् जन	
लोकान् अनु-		परायणं	भगवद् भक्तोंके परायण
शासनार्थं	लोगोंको शिक्षा देनेके लिए	भरतं	भरतका
आत्मजान्	(अपने) पुत्रोंको	धरणि पालनाय	पृथ्वी, पालनके लिए
अनुशास्य	शिक्षा देकर	अभिषिच्य	अभिषेक करके
महा अनुभावः	महान् प्रभावशाली	स्वयं	स्वयं
परम सुहृद्	(सबके) परम सुहृद्	भवन एव	घरपर ही
ऋषभ अपदेशः	ऋषभ नामवाले	उर्वरित	सब त्याग दिया
भगवान्	भगवानने	शरीरमात्र	
उपशम-		परिग्रहः	केवल शरीर ही साथ रखकर
शीलानां	वैराग्य परायण	उन्मत्त इव	पागलके समान
उपरत कर्मणां	कर्म-त्यागी	गगन परिधानः	दिगम्बर
महामुनीनां	महामुनियोंके	प्रकीर्ण केश	बिखरे केश
भक्ति ज्ञान		आहवनीयः	गार्हस्पत्य अग्निका
वैराग्य	भक्ति, ज्ञान, वैराग्य	आत्मनि एव	अपनेमें ही
लक्षणं	लक्षणवाले	आरोपित	आरोप (धारणा)
पारमहंस्यं धर्मं	परमहंसोंके धर्मकी		करके
उपशिक्षमाणः	शिक्षा देनेके लिए	ब्रह्मावर्तात्	ब्रह्मावर्तसे
		प्रवव्राज	निकल गये ॥२८॥

जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणो-
ऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव ॥२६॥

जड अन्ध मूक बधिर पिशाच उन्मादकवत् अवधूतवेषः अभिभाष्यमाणः
अपि जनानां गृहीतः मौनव्रतः तूष्णीं बभूव ॥२६॥

जड	मूर्ख,	जनानां	लोगोंके
अन्ध मूक	अन्धे, गूंगे,	अभिभाष्य-	
बधिर	बहिरे,	माणः अपि	बात करनेपर भी
पिशाच		मौनव्रतः गृहीतः	मौनव्रत धारण
उन्मादकवत्	भूत लगे पागलकी		करके
	भाँति	तूष्णीं बभूव	चुप हो गये ॥२६॥
अवधूतवेषः	मलिन वेशमें		

तत्र तत्र पुरग्रामाकरखेटवाटखर्वट शिबिरव्रजघोषसार्थगिरि-
वनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिका-
भिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजःप्रक्षेपपूति-
वातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन् देहोपलक्षणे
सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिता-
हंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परि-
बभ्राम ॥३०॥

तत्र तत्र पुर ग्राम आकर खेट वाट खर्वट शिबिर व्रज घोष सार्थ
गिरि वन आश्रम आदिषु अनुपथं अवनिचर अपसदैः परिभूयमानः मक्षि-
काभिः इव वनगजः तर्जन ताडन अवमेहन ण्ठीवन ग्राव शकृत् रजः प्रक्षेप
पूतिवात दुरुक्तैः तत् अविगणयन् एव असत् संस्थान एतस्मिन् देह उप-
लक्षणे सत् अपदेश उभय अनुभव स्वरूपेण स्वमहिमा अवस्थानेन असमा-
रोपित अहं मम अभिमान त्वात् अविखण्डितमनाः पृथिवीं एकचरः
परिबभ्राम ॥३०॥

तत्र तत्र	जहाँ-तहाँ	परिभूयमानः	तंग किये जानेको
पुर	नगर,	अविगणयन्	
ग्राम	गाँव,	एव	अवहेलना करते
आकर	खान,		हुए ही
खेट	कृषक-वस्ती,	असत् संस्थान	असत् रूप
वाट	बगीचेके मकान,	सत् अपदेशे	सत् समझे
शिविर	सेनिक-पड़ाव,		जानेवाले
व्रज	चरबाहोंके चलते-	एतस्मिन्	इस
	फिरते गाँव,	देह उपलक्षणे	शरीर रूपसे
घोष	अहीरोंके गाँव,		प्रतीतिमें
सार्थ	यात्रियोंके पड़ाव,	उभय	(सत् और असत्)
गिरि	पर्वत,		दोनोंके
वन	वन,	अनुभव	
आश्रम आदिषु	आश्रमोंमें	स्वरूपेण	अनुभव स्वरूप
वनगजः	जंगली-हाथी		होनेसे
मक्षिकाभिः	मक्खियों द्वारा जैसे	स्वमहिमा	अपनी महिमामें
इव	(तंग किया जाय)	अवस्थानेन	स्थित होनेसे
	इस प्रकार	अहं मम	
तर्जन ताडन	डाँटने, पीटने,	अभिमान	अहं और मम यह
अवमेहन	(ऊपर) मूत्र करने,		अभिमान
ष्ठीवन	थूक देने,	असमारोपित	
ग्राव	ढेला-	त्वात्	(अपनेमें) आरोपित
शकृत्	बिष्ठा या		न होनेके कारण
रजः प्रक्षेप	धूलि फेंकने,	अविखण्डित-	
पूतिवात	अपानवायु त्यागने	मनाः	अखण्ड (शान्त)
दुरुक्तैः	और दुबचनोंकी		चित्तवृत्तिसे
अवनिचर		एकचरः	अकेले
अपसदः	पृथ्वीपर चलने-	पृथिवीं	पृथ्वीपर
	वालोंके कलंक रूप	परिब्रज्जाम	चारों ओर घूमते
	दुष्टोंसे		रहे ॥३०॥

अतिसुकुमारकरचरणोरःस्थलविपुलबाहुं सगलवदनाद्यवयव-
विन्यासः प्रकृतिसुन्दरस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानाशि-
शिरतारारुणायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकण्ठनासो
विगूढस्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासन-
मुपदधानः परागवलम्बमानकुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारो-
ऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत ॥३१॥

अतिसुकुमार करचरण उरःस्थल विपुल बाहु अंस गल वदन आदि
अवयव विन्यासः प्रकृति सुन्दर स्वभाव हाससुमुखः नव नलिनदलायमान
शिशिर तारारुण आयत नयन रुचिरः सदृश सुभग कपोल कर्ण कण्ठ नासः
विगूढ स्मित वदन महोत्सेवन पुरवनितानां मनसि कुसुम शरासनं उपदधानः
पराक् अवलम्बमान कुटिल जटिल कपिश केश भूरिभारः अवधूत मलिन
निज शरीरेण ग्रहगृहीत इव अदृश्यत ॥३१॥

करचरण	हाथ और चरण	नव नलिन-	
अतिसुकुमार	अत्यन्त सुकुमार थे	दलायमान	नवीन कमलदलके
उरःस्थल	वक्षस्थल		समान
बाहु अंस	भुजाएँ, कंधे	शिशिर	
विपुल	विस्तीर्ण (विशाल) थे	तारारुण	शीतल कमलारुण
गल वदन	कंठ, मुख	आयत नयन	
आदि अवयव		रुचिरः	बड़े-बड़े सुन्दर नेत्र
विन्यासः	आदि अंगोंकी		थे
	बनावट	सदृश सुभग	समान और सुन्दर
प्रकृति सुन्दर	स्वाभाविक सुन्दर	कपोल कर्ण	कपोल, कान
	थी	कण्ठ नासः	कण्ठ और तथा
हाससुमुखः			नासिका थी
स्वभाव	सहज मुस्कराहटयुक्त	विमूढ स्मित	अस्फुट मुसुकानयुक्त
	सुन्दर मुख था		

वदन		कुटिल जटिल	घुंघराले, उलझे
महोत्सेवन	मुखकी शोभासे	कपिश	भूरे
पुरवनितानां		केश भूरिभारः	बहुत केशोंके भारसे
मनसि	नगरकी नारियोंके मनमें	अवधूत मलिन	अवधूतोंके समान मलिन
कुसुम शरासनं		निज शरीरेण	अपने शरीरसे (वे)
उपदधानः	कामका संचार करते	ग्रहगृहीत इव	ग्रहग्रस्तके समान
पराक्		अदृश्यत	दिखलाई पड़ते थे ॥३१॥
अवलम्बमान	चारों ओर बिखरे		

यहि वाव स भगवान् लोकमिमं योगस्याद्धा प्रतीपमिवा-
चक्ष्णस्तत्प्रतिक्रियाकर्म बीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः
शयान एवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हृदति स्म चेष्टमान
उच्चरित आदिग्धोद्देशः ॥३२॥

यहि वाव स भगवान् लोकं इमं योगस्य अद्धा प्रतीपं इव आचक्ष्णः
तत् प्रतिक्रिया कर्म बीभत्सितं इति व्रतं आजगरं आस्थितः शयान एव
अश्नाति पिबति खादति अवमेहति हृदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धः
उद्देशः ॥३२॥

यहि वाव	जब निश्चित रूपसे	बीभत्सितं इति	‘बीभत्स है’ इस
स भगवान्	उन भगवान् ने		प्रकारका
इमं लोकं	इस लोक (जनता)	कर्म	कर्म
	को	आजगरं	अजगरके समान
योगस्य	योगकी		रहनेका
अद्धा	✓ सम्पूर्णतामें	व्रतं आस्थितः	व्रत ले लिया ।
प्रतीपं इव	बाधककी भाँति	शयान एव	(उसमें) सोते हुए ही
आचक्ष्णः	पूर्णरूपसे देखा (तब)	अश्नाति पिबति	खाते थे, पीते थे
तत् प्रतिक्रिया	उसकी प्रतिक्रिया	खादति	चबाते थे
	रूप	अवमेहति	मूत्र-त्याग तथा

हृदति स्म	मल-त्याग करते थे	आदिग्धः	सन जाते थे
चेष्टमानः	हलचल करके (लोट- पोट होकर)	उद्देशः	(यह सब) उद्देश- पूर्वक करते थे ॥३२॥
उच्चरित	त्यागे मल-मूत्रसे		

तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं
समन्तात् सुरभिं चकार ॥३३॥

तस्य ह यः पुरीष सुरभि सौगन्ध्य वायुः तं देशं दश योजनं समन्तात्
सुरभिं चकार ॥३३॥

ह तस्य	निश्चय उनकी	तं देशं	उस प्रदेशको
यः पुरीष		समन्तात्	चारों ओर
सुरभि	जो विष्ठाकी	दश योजनं	दस योजन तक
	सुगन्धिकी	सुरभिं चकार	सुगन्धित कर दिया ॥३३॥
सौगन्ध्य वायुः	सुगन्धित वायु थी (उसने)		

एवं गोमृगकाकचर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काक-
मृगगोचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म ॥३४॥

एवं गो मृग काकचर्यया व्रजन् तिष्ठन् आसीनः शयानः काक मृग
गो चरितः पिबति खादति अवमेहति स्म ॥३४॥

एवं	इसी प्रकार	काक मृग	कौए, हिरण या
गो	गाय	गो चरितः	गायके समान
मृग	हिरण या		आचरण करते,
काकचर्यया	कौएके चर्यामें	पिबति	पीते,
व्रजन्	चलते-चलते,	खादति	खाते,
तिष्ठन्	खड़े-खड़े,	✓ अवमेहति स्म	मूत्र त्याग करते थे ॥३४॥
आसीनः	बैठे हुए या		
शयानः	सोते-सोते		

इति नानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपतिः ऋषभो-
ऽविरतपरममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते
भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानानन्तरोदरभावेन सिद्ध-
समस्तार्थपरिपूर्णो योगेश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धानपरकाय-
प्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदये-
नाभ्यनन्दत् ॥३५॥

इति नाना योगचर्या चरणः भगवान् कैवल्यपतिः ऋषभः अविरत
परम महानन्द अनुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानां आत्मभूते भगवति वासुदेव
आत्मनः अव्यवधान अनन्तः उदर भावेन सिद्ध समस्त अर्थ परिपूर्णः योग
ऐश्वर्याणि वैहायस मनोजव अन्तर्धान परकाय प्रवेश दूर ग्रहण आदीनि
यदृच्छया उपगतानि न अञ्जसा नृप हृदयेन अभ्यनन्दत् ॥३५॥

नृप	राजन् (परीक्षित)	भगवति	
इति	इस प्रकार	वासुदेव	भगवान् वासुदेवसे
नाना योगचर्या	अनेक प्रकारकी	आत्मनः	अपना
	योगचर्याका	अव्यवधान	निर्बाध
चरणः	आचरण करनेवाले	अनन्तः	अनन्त
भगवान्	भगवान्	उदर भावेन	एकात्म भावसे
कैवल्यपतिः	मोक्षके स्वामी	समस्त अर्थ	समस्त प्रयोजन
ऋषभः	ऋषभदेवजी	सिद्ध परिपूर्णः	सिद्ध परिपूर्ण थे ।
अविरत	निरन्तर	वैहायस	आकाशमें
परम महानन्द		मनोजव	मनकी गतिसे जाना,
अनुभव	परम महा आनन्द	अन्तर्धान	अदृश्य हो जाना,
	अनुभव स्वरूप	परकाय प्रवेश	दूसरेके शरीरमें
सर्वेषां भूतानां	सभी प्राणियोंके		प्रवेश,
आत्मभूते	आत्मा स्वरूप		

दूर ग्रहण		हृदयेन	हृदयसे
आदीनि	दूर ग्रहण आदि	अञ्जसा	सरलतासे उनका
योग ऐश्वर्याणि	योगकी सिद्धियोंके	अभ्यनन्दत् न	अभिनन्दन नहीं
यदृच्छया	अपने आप ही		किया ॥३५॥
उपगतानि	आनेपर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

शजोवाच—

न नूनं भगवन् आत्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावर्भजित-
कर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हन्ति यदृच्छ-
योपगतानि ॥१॥

न नूनं भगवन् आत्मारामाणां योगसमीरित ज्ञान अवर्भजित
कर्म बीजानां ऐश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुं अर्हन्ति यदृच्छया
उपगतानि ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	यदृच्छया	अपने आप
योगसमीरित	योग रूपी वायुसे	उपगतानि	आये
	बढ़ाई	ऐश्वर्याणि	ऐश्वर्य (सिद्धियां)
ज्ञान	ज्ञानाग्निमें	नूनं	निश्चय
अवर्भजित	भून दिये गये	पुनः क्लेशदानि	फिर क्लेश देनेवाले
कर्म बीजानां	कर्म बीजवाले	न भवितुं	नहीं होने
आत्मारामाणां	आत्मारामके लिए	अर्हन्ति	चाहिए ॥१॥

श्रीशुक उवाच*—

सत्यमुक्तं किन्त्वह वा एके न मनसोऽद्धाविश्रम्भमन-
वस्थानस्य शठकिरात इव सङ्गच्छन्ते ॥२॥ तथा चोक्तम्—

सत्यं उक्तं किन्तु इह वा एके न मनसः अद्धा विश्रम्भं अनवस्थानस्य
शठ किरात इव सङ्गच्छन्ते ॥२॥ तथा च उक्तं—

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

सत्यं उक्तं	(तुमने) सत्य कहा है;	मनसः	मनका
किन्तु इह	किन्तु इस संसारमें	अद्धा	भली प्रकार
शठ किरात इव	निष्ठुर व्याधके	न विश्रम्भं	विश्वास नहीं करते
	समान*	अनवस्थानस्य	(इस) चंचलके
एके वा	कोई एक तो	सङ्गच्छन्ते	साथ (सावधान)
			हो रहते हैं ॥२॥

तथा च उक्तं—जैसा कि कहा गया है—

न कुर्यात्कहिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते ।

यद्विश्रम्भाच्चिराच्चोर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् । ३॥

न कुर्यात् कहिचित् सख्यं मनसि हि अनवस्थिते यत् विश्रम्भात्
चिरात् चोर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ॥

अनवस्थिते	चञ्चल	चिरात् चोर्णं	बहुत समयका
मनसि	मनसे		सञ्चित
कहिचित् सख्यं	कभी भी मित्रता	ऐश्वरं	शंकरजी का
न कुर्यात्	न करे,	तप चस्कन्द	तप स्थलित हो
हि	क्योंकि		गया ॥३॥
यत् विश्रम्भात्	जिसपर विश्वास		
	करनेसे		

नित्यं ददाति कामस्यच्छिद्रं तमनु येऽरयः ।

योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥४॥

नित्यं ददाति कामस्य छिद्रं तं अनु ये अरयः योगिनः कृत मैत्रस्य
पत्युः जाया इव पुंश्चली ॥४॥

पुंश्चली	व्यभिचारिणी	कृत मैत्रस्य	(मनके साथ)
जाया	पत्नी द्वारा		मित्रता करनेवाले
पत्युः इव	पतिको (धोखा	योगिनः	योगियोंको
	देनेके) समान	नित्यं कामस्य	सदा कामको

* जैसे चतुर व्याध अपने पकड़े मृगका विश्वास नहीं करता ।

तं अनु	उसके पीछे रहनेवाले	छिद्रं ददाति	छिद्र (प्रवेशका
ये अरयः	जो (लोभ-मोहादि)		अवसर) दे देते
	शत्रु है,		हैं ॥४॥

कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः ।

कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद्बुधः ॥५॥

कामः मन्युः मदः लोभः शोकः मोहः भयादयः कर्मबन्धः च यन्
मूलः स्वीकुर्यात् कः नु तत् बुधः ॥५॥

यन् मूलः	जिसकी जड़से	तत्	उसे
कामः मन्युः	काम, क्रोध,	नु कः बुधः	भला कौन बुद्धिमान
लोभः शोकः	लोभ, शोक	स्वीकुर्यात्	स्वीकार करेगा ॥७॥
मोहः भयादयः	मोह, भय आदि		
च कर्मबन्धः	तथा कर्मबन्धन		
	होता है,		

अथैवमखिललोकपालललामोऽपि विलक्षणैर्जडवदवधूत-
वेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां साम्परायविधि-
मनुशिक्षयन् स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमन-
थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥६॥

अथ एवं अखिल लोकपाल ललामः अपि विलक्षणः जडवत् अवधूत
वेष भाषा चरितैः अविलक्षित भगवत् प्रभावः योगिनां साम्पराय विधि
अनुशिक्षयन् स्वकलेवरं जिहासुः आत्मनि आत्मानं असंव्यवहितं अनर्थ अन्तर
भावेन अन्वीक्षमाण उपरत अनुवृत्तिः उपरराम ॥६॥

अथ एवं	फिर इस प्रकार	जडवत्	मूर्खके समान,
अखिल		अवधूत वेष	अवधूतोंके समान
लोकपाल	समस्त लोकपालोंसे		(विचित्र) वेश,
ललामः अपि	सुन्दर होनेपर भी	भाषा	भाषा
विलक्षणः	विलक्षण	चरितैः	चरित्रके द्वारा

अविलक्षित	छिपाये हुए	आत्मनि	अन्तःकरणमें
भगवत् प्रभावः	(अपने) भगवदीय	आत्मानं	परमात्माको
	प्रभावको	असंव्यवहितं	अभिन्न रूपसे स्थित
योगिनां	योगियोंको	अन्वीक्षमाण	देखते (चिन्तन करते हुए)
साम्पराय विधि	देह त्यागकी विधि	अनुवृत्तिः	इसकी पुनरावृत्तिसे
अनुशिक्षयन्	सिखलानेके लिए		भी
स्वकलेवरं	अपने शरीरको	उपरत	उपरत होकर
जिहासुः	छोड़ना चाहा ।	उपरराम	उपराम हो गये ॥६॥
अनर्थ अन्तर			
भावेन	वासनाओंके लीन		
	होनेसे		

तस्य ह वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत ऋषभस्य योग-
मायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन संक्रममाणः
कोङ्कवेङ्कुकटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान् यदृच्छयोपगतः कुटका-
चलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव
विचचार ॥७॥

तस्य ह वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत ऋषभस्य योगमाया वासनया
देह इमां जगतीं अभिमाना भासेन संक्रममाणः कोङ्कवेङ्कुकटकान् दक्षिण
कर्णाटकान् देशान् यदृच्छया उपगतः कुटकाचल उपवन आस्यकृत अश्म
कवल उन्माद इव मुक्त मूर्धजः असंवीत एव विचचार ॥७॥

तस्य ह वा	उन निश्चित रूपसे	योगमाया	
एवं मुक्त-		वासनया	योगमायाकी
लिङ्गस्य	इस प्रकार लिङ्ग		वासनासे
	शरीर (के अभिमान)	देह	शरीर
	से मुक्त	अभिमाना	
भगवत		भासेन	(केवल)
ऋषभस्य	भगवान् ऋषभदेवका		अभिमानाभासेसे

इमां जगतीं	इस संसारमें	आस्यकृत	मुँहमें ग्रासकी
संक्रममाणः	धूमता हुआ		भाँति डाले,
यदृच्छया	संयोगवश	मुक्त मूर्धजः	बाल बिखेरे,
कोङ्क वेङ्क	कोङ्क, वेङ्क,	असंवीत एव	दिगम्बर ही
कुटकान्	कुटक	उन्माद इव	पागलकी भाँति
दक्षिण		कुटकाचल	
कर्णाटकान्	दक्षिण कर्नाटक	उपवन	कुटकाचलके
	आदि		बगीचेमें
देशान् उपगतः	प्रदेशोंमें गया	विचचार	विचरण करने
अश्म कवल	पत्थरका टुकड़ा		लगा ॥७॥

अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोऽग्रदावानलस्तद्वन-
मालेलिहानः सह तेन ददाह ॥८॥

अथ समीरवेग विधूत वेणुविकर्षण जातः उग्र दावानलः तत् वनं
आलेलिहानः सह तेन ददाह ॥८॥

अथ	उसी समय	आलेलिहानः	उस वनको चाटता
समीरवेग	वायु-वेगसे		हुआ
विधूत	बहुत हिलते	तेन सह	उन (ऋषभदेवजी)
वेणुविकर्षण	बाँसोंकी रगड़से		के साथ
जातः	उत्पन्न	ददाह	(वनको भी) जला
उग्र दावानलः	प्रचण्ड दावानल		दिया ॥८॥
तत् वनं			

यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोङ्कवेङ्ककुटकानां राजा-
हंन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः
स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाखण्डमसमञ्जसं निजमनीषया
मन्दः सम्प्रवर्तयिष्यते ॥९॥

यस्य किल अनुचरितं उपाकर्ण्य कोङ्क वेङ्क कुटकानां राजा अर्हत्
नाम उपशिक्ष्य कलाः अधर्मं उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः स्वधर्मं पथं
अकुतः भयं अपहाय कुपथ पाखण्डं असमञ्जसं निज मनीषया मन्दः
सम्प्रवर्तयिष्यते ॥६॥

यस्य किल	जिनकी ही	मन्दः	मन्दमति
अनुचरितं	चरित-चर्चाको	अकुतः भयं	(जिसमें) कहीं भय
उपाकर्ण्य	सुनकर		नहीं है
कोङ्क वेङ्क		स्वधर्म पथं	(उस) अपने धर्म-
कुटकानां	कोङ्क, वेङ्क,		मार्गको
	कुटकका	अपहाय	त्यागकर
अर्हत् नाम		निज मनीषया	अपना बुद्धि कल्पित
राजा	अर्हत् नामका राजा	कुपथ	कुमार्ग
कलाः	कलियुगमें	असमञ्जसं	अनुचित
अधर्मं		पाखण्डं	पाखण्डका
उत्कृष्यमाणे	अधर्म बढ़नेपर	सम्प्रवर्तयिष्यते	बहुत प्रचार
भवितव्येन	होनहारवश		करेगा ॥६॥
विमोहितः	अत्यन्त मोहित		
	होकर		

येन ह वाव कलौ मनुजापसदा देवमाया मोहिताः
स्वविधिनियोगशौच चारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निज-
निजेच्छया गृह्णाना अस्नानानाचमनाशौचकेशोत्पुञ्चनादीनि
कलिनाधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः
प्रायेण भविष्यन्ति ॥१०॥

येन ह वाव कलौ मनुज अपसदाः देवमाया मोहिताः स्वविधि
नियोग शौच चारित्रविहीनाः देवहेलनानि अपव्रतानि निज निज इच्छया
गृह्णानाः अस्नान अनाचमन अशौच केशःपुञ्चन आदीनि कलिना अधर्म
बहुलेन उपहत धियः ब्रह्म ब्राह्मण यज्ञपुरुष लोक विदूषकाः प्रायेण
भविष्यन्ति ॥१०॥

येन ह वाव	जिसके द्वारा	गृह्णानाः	ग्रहण करते हुए,
	निश्चित रूपसे	अस्नान	स्नान न करना,
कलौ	कलियुगमें	अनाचमन	आचमन न करना,
मनुज अपसदाः	अधम-मनुष्य	अशौच	अपवित्र रहना,
देवमाया		केशः लुञ्चन	केश नोचना
मोहिताः	भगवान्की मायासे	आदीनि	आदि करेंगे)
	मोहित होकर	अधर्म बहुलेन	अधर्म बाहुल्यवाले
स्वविधि नियोग	अपना शास्त्र-	कलिना	कलियुग द्वारा
	विहित	धियः उपहतः	बुद्धि मारी जानेसे
शौच	पवित्रता,	ब्रह्म	वेद,
चारित्र-		ब्राह्मण	ब्राह्मण,
विहीनाः	सदाचारसे रहित	यज्ञपुरुष	यज्ञ-पुरुष,
	लोग,	लोक	(स्वर्गादि)लोकोंका
देवहेलनानि	देवताओंकी	विदूषकाः	उपहास करनेवाले
	उपेक्षावाले,	प्रायेण	प्रायः
अपव्रतानि	कुत्सित व्रत,	भविष्यन्ति	होंगे ॥१०॥
निज निज			
इच्छया	अपनी-अपनी		
	इच्छासे		

ते च ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयान्धपरम्परयाऽऽश्वस्ता-
स्तमस्यन्धे स्वयमेव प्रपतिष्यन्ति ॥११॥

ते च हि अर्वाक् तनया निजलोक यात्रया अन्धपरम्परया आश्वस्ताः
तमसि अन्धे स्वयं एव प्रपतिष्यन्ति ॥११॥

हि ते च	क्योंकि वे भी (जो)	अन्धपरम्परया	अन्ध-परम्परासे
अर्वाक् तनया	नवीन (अर्वादिक्)	आश्वस्ताः	आश्वस्त हैं,
निजलोक		स्वयं एव	(वे) स्वयं ही
यात्रया	अपने लौकिक	अन्धे तमसि	अन्धकारपूर्ण
	व्यवहारके निर्वाहके		नरकमें
	लिए	प्रपतिष्यन्ति	गिरेंगे ॥११॥

अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योप शिक्षणार्थः ॥१२॥

अयं अवतारः रजसः उपप्लुत कैवल्यः उप शिक्षण अर्थः ॥१२॥

अयं अवतारः	(भगवान्का) यह	कैवल्यः	मोक्षकी
	अवतार	उप शिक्षण	
रजसः		अर्थः	शिक्षा देनेके लिए
उपप्लुतः	रजोगुणसे आच्छन्न		(हुआ) ॥१२॥
	(लोगोंको)		

तस्यानुगुणान् श्लोकान् गायन्ति—

तस्य अनुगुणान् श्लोकान् गायन्ति—

तस्य	उनके	श्लोकान्	(इन) श्लोकोंको
अनुगुणान्	गुणोंके वर्णनमें	गायन्ति	(लोग) गाते हैं—

अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या
द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ।

गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः

कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥१३॥

अहो भुवः सप्त समुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेषु अधिपुण्यं एतत् गायन्ति
यत्रत्य जनाः मुरारेः कर्माणि भद्राणि अवतार वन्ति ॥१३॥

अहो	अहो,	यत्रत्य जनाः	जहाँ रहनेवाले लोग
सप्त समुद्रवत्या	सात समुद्रोंवाली	मुरारेः	श्रीहरिके
भुवः	पृथ्वीमें	अवतार वन्ति	अवतार लेकर किए
द्वीपेषु वर्षेषु	(दूसरे) द्वीपों एवं	भद्राणि कर्माणि	मंगलमय चरितोंका
	वर्षोंमें	गायन्ति	गायन करते
एतत्	यह (भारतवर्ष)		हैं ॥१३॥
अधिपुण्यं	बहुत पुण्य		
	(भूमि) है,		

अहो नु वंशो यशसावदातः

प्रैयव्रतो यत्र पुमान् पुराणः ।

कृतावतारः पुरुषः स आद्यः

चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ॥१४॥

अहो नु वंशः यशसा अवदातः प्रैयव्रतः यत्र पुमान् पुराणः कृतः
अवतारः पुरुषः स आद्यः चचार धर्मं यत् अकर्म हेतुम् ॥१४॥

अहो नु	अहो निश्चय	पुराणः पुमान्	सनातन पुरुषने
प्रैयव्रतः वंशः	प्रियव्रतका वंश	अवतारः कृतः	अवतार लेकर
यशसा		यत् अकर्म हेतुं	जो मोक्षका
अवदातः	यशसे उज्ज्वल है,		कारण है,
यत्र	जिसमें	धर्म चचार	(उस) धर्मका
स आद्यः पुरुषः	उन आदि-पुरुष,		आचरण किया ॥१४॥

को न्वस्य काष्ठामपरोऽनुगच्छे-

न्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ।

यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता

ह्यसत्तया येन कृतप्रयत्नाः ॥१५॥

कः नु अस्य काष्ठां अपरः अनुगच्छेत् मनोरथेन अपि भवस्य योगी
यः योगमायाः स्पृहयति उदस्ताः हि असत्तया येन कृत प्रयत्नाः ॥१५॥

कः नु	कौन भला	येन	करते हैं,
भवस्य	इस संसारका	प्रयत्नाः कृतः	जिनके द्वारा
अपरः योगी	दूसरा योगी		(उन्हें पानेके) प्रयत्न
अस्य	इन (ऋषभदेवजी) के	हि	किये जाते हैं
काष्ठां	मार्गके	असत्तया	क्योंकि
मनोरथेन अपि	मनसे भी		(उसे) असत् होनेके
अनुगच्छेत्	पीछे चल सकता है,	उदस्ताः	कारण
यः योगमायाः	जो योगमायाकी		त्याग दिया ॥१५॥
स्पृहयति	(सिद्धियोंकी) स्पृहा		

इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवतः
ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितमोरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणं
परममहामङ्गलायनमिदमनुश्रद्धयोपचितयानुशृणोत्याश्रावयति
वावहितो भगवति तस्मिन् वासुदेव एकान्ततो भक्तिरनयोरपि
समनुवर्तते ॥१६॥

इति ह स्म सकलवेद लोक देव ब्राह्मण गवां परमगुरोः भगवतः
ऋषभ आख्यस्य विशुद्ध आचरितं ईरितं पुंसां समस्त दुश्चरित अभिहरणं
परम महामङ्गल अयनं इदं अनुश्रद्धया उपचितया अनुशृणोति आश्रावयति
वा अवहितः भगवति तस्मिन् वासुदेव एकान्ततः भक्तिः अनयोः अपि
समनुवर्तते ॥१६॥

इति ह	इस प्रकारसे	परम
सकलवेद	समस्त वेदों,	महामङ्गल अयनं परम महामङ्गल-
लोक	लोकों,	निवास (चरित) में
देव	देवताओं,	अनुश्रद्धया
ब्राह्मण गवां	ब्राह्मणों एवं गायोंके	उपचितया श्रद्धापूर्वक
परमगुरोः	परम गुरु	अवहितः एकाग्र-चित्तसे
ऋषभ आख्यस्य	ऋषभ नामवाले	अनुशृणोति (जो) बराबर
भगवतः	भगवान्का	सुनता है,
पुंसां	पुरुषोंके	वा आश्रावयति या सुनाता है,
समस्त		तस्मिन् उन
दुश्चरित	सभी पापोंको	भगवति वासुदेव भगवान् वासुदेवमें
अभिहरणं	पूर्णतः हरण करनेवाले	एकान्ततः
विशुद्ध आचरितं	विशुद्ध चरितको	भक्तिः अनन्य भक्ति
ईरितं स्म	मैंने वर्णन किया ।	अनयोः अपि उसकी भी
इदं	इस	समनुवर्तते भली प्रकार हो
		जाती है ॥१६॥

यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसार-
परितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तथैव परया निवृत्त्या

ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवा-
द्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ॥१७॥

यस्यां एव कवयः आत्मानं अविरतं विविध वृजिन संसार परिताप
उपतप्यमानं अनुसवनं स्नापयन्तः तथा एव परया निर्वृत्त्या हि अपवर्गं
आत्यन्तिकं परम पुरुषार्थं अपि स्वयं आसादितं नो एव आद्रियन्ते भगवदीय-
त्वेन एव परिसमाप्त सर्वाः अर्थाः ॥१७॥

विविध वृजिन	नाना प्रकारके	परया निर्वृत्त्या	परमानन्दपूर्वक
	पापोंसे	आत्यन्तिकं	आत्यन्तिक
संसार परिताप	(पूर्ण) संसारके	परमपुरुषार्थं	परम-पुरुषार्थ
	तापोंसे	अपवर्गं अपि	मोक्षको भी
उपतप्यमानं	संतप्त होते	स्वयं आसादितं	स्वयं प्राप्त होनेपर
कवयः	बुद्धिमान लोग	नो एव	नहीं ही
यस्यां एव	जिस (भक्ति) में ही	आद्रियन्ते	आदर करते,
आत्मानं	अपनेको	भगवदीयत्वेन	
अनुसवनं	निरन्तर	एव	भगवान् के होनेसे ही
स्नापयन्तः	स्नान कराते	सर्वाः अर्थाः	(उनके) सब
	रहते हैं		प्रयोजन
हि	क्योंकि	परिसमाप्तः	परिपूर्ण हो गये
तथा एव	उस (भक्ति) से ही		हैं ॥१७॥

राजन् पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां

दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किङ्करो वः ।

अस्त्वेवमङ्ग भगवान् भजतां मुकुन्दो

मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥१८॥

राजन् पतिः गुरुः अलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च
किङ्करो वः अस्ति एवं अङ्ग भगवान् भजतां मुकुन्दः मुक्तिं ददाति कर्हिचित्
स्म न भक्तियोगम् ॥१८॥

अङ्गः राजन्	प्रिय परीक्षित !	भी
भवतां	आपके (कुलके)	अस्ति एव हैं ही ।
यदूनां	(तथा) यदुर्वशियोंके	भगवान् मुकुन्दः (ये) भगवान् मुकुन्द
पतिः गुरुः	स्वामी, गुरु,	भजतां भजन करनेवालेको
अलं	सर्वस्व,	कहिंचित् मुक्ति
दैवं प्रियः	इष्टदेव, प्रियतम,	ददाति स्म कभी मुक्ति दे देते हैं
कुलपतिः	कुलपति	न भक्तियोगं (पर) भक्तियोग
क्व च	कभी	नहीं देते ॥१८॥
वः किङ्करः	आप सबके सेवक	

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः

श्रेयस्यतद्रचनया चिरमुप्तबुद्धेः ।

लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोक-

माख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥१९॥

नित्य अनुभूत निजलाभ निवृत्त तृष्णः श्रेयस्य तत् रचनया चिर
मुप्त बुद्धेः लोकस्य यः करुणया अभय आत्मलोकं आख्यात् नमः भगवते
ऋषभाय तस्मै ॥१९॥

नित्य अनुभूत	निरन्तर अनुभूत	बुद्धेः	बुद्धिवाले
	होते	लोकस्य	लोगोंके लिए
निजलाभ	आत्मलाभसे	करुणया	करुणा करके
निवृत्त तृष्णः	(समस्त) तृष्णाओंसे	अभयं	अभय स्वरूप
	मुक्त (होनेपर भी)	आत्मलोकं	आत्मलोकका
तत् श्रेयस्य	उस (वास्तविक)	आख्यात्	उपदेश किया
	कल्याणको	तस्मै	उन
रचनया	✓ प्राप्त करनेमें	भगवते	
चिर मुप्त	चिर (अनादि-	ऋषभाय	भगवान् ऋषभदेवको
	कालसे) प्रमुप्त	नमः	नमस्कार ॥१९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां

पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवतावनितलपरिपालनाय
सञ्चिन्तितस्तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥१॥

भरतः तु महाभागवतः यदा भगवता अवनितल परिपालनाय
सञ्चिन्तितः तत् अनुशासन परः पञ्चजनीं विश्वरूप दुहितरं उपयेमे ॥१॥

भरतः तु	भरत तो	सञ्चिन्तितः	सोचे (नियुक्त किये)
महाभागवतः	परम भगवद्भक्त थे-		गये,
यदा	जब	तत्	
भगवता	भगवान्(ऋषभदेव)	अनुशासन परः	उनकी आज्ञाके
	द्वारा		परायण होकर
अवनितल	भूतलके	पञ्चजनीं	पञ्चजनी (नामक)
परिपालनाय	भली प्रकार पालनके	विश्वरूप	
	लिए	दुहितरं	विश्वरूपकी पुत्रीसे
		उपयेमे	विवाह किया ॥१॥

तस्यामु ह वा आत्मजान् कात्स्न्येनानुरूपानात्मनः
पञ्च जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि ॥२॥

तस्यां उ ह वा आत्मजान् कात्स्न्येन अनुरूपान् आत्मनः पञ्च
जनयामास भूतादिः इव भूतसूक्ष्माणि ॥२॥

तस्यां उ ह वा	उससे निश्चित रूपसे	आत्मनः	अपने
भूतादिः	तामस अहंकारसे	कात्स्न्येन	सम्पूर्ण रूपसे
भूतसूक्ष्माणि	भूत सूक्ष्म	अनुरूपान्	अनुरूप
	(तन्मात्राओं) के	पञ्च आत्मजान्	पाँच पुत्र
इव	समान	जनयामास	उत्पन्न किये ॥२॥

सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति । अजनाभं
नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ॥३॥

सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनं आवरणं धूम्रकेतुं इति अजनाभं नाम
एतत् वर्षं भारतं इति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ॥३॥

सुमतिं	सुमति,	अजनाभं नाम	अजनाभ नामके
राष्ट्रभृतं	राष्ट्रभृत,	एतत् वर्षं	इस देशको
सुदर्शनं	सुदर्शन,	यत आरभ्य	जिनसे आरम्भ
आवरणं	आवरण (और)		करके
धूम्रकेतुं	धूम्रकेतु	भारतं इति	भारत इस नामके
इति	इस प्रकार (उन	व्यपदिशन्ति	निर्दिष्ट किया
	पांचोंके नाम थे)		जाता है ॥३॥

स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे
कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत् ॥४॥

स बहुवित् महीपतिः पितृपितामहवत् उरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि
वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्मं अनुवर्तमानः परिपालयत् ॥४॥

स बहुवित्	उन बहुज्ञ	स्वे स्वे कर्मणि	अपने-अपने कर्ममें
महीपतिः	राजा (भरत) ने	वर्तमानाः	लगी हुई
पितृ-		प्रजाः	प्रजाको
पितामहवत्	पिता-पितामहके	स्वधर्मं	अपने धर्ममें
	समान	अनुवर्तमानः	स्थित रहते हुए
उरुवत्सलतया	अत्यन्त वात्सल्य-	परिपालयत्	सब प्रकार पालन
	भावसे		किया ॥४०॥

ईजे च भगवन्तं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाऽऽह-
ताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनु-
सन्नं चातुर्होत्रविधिना ॥५॥

ई जे च भगवन्तं यज्ञक्रतु रूपं क्रतुभिः उच्च अवचैः श्रद्धया आहुत
अग्निहोत्र दर्श पूर्णमास चातुर्मास्य पशु सोमानां प्रकृति विकृतिभिः अनुसवनं
चातुर्होत्र विधिना ॥५॥

भगवन्तं	भगवान्	चातुर्मास्य	चातुर्मास्य (आषाढ़
यज्ञक्रतु रूपं	यज्ञक्रतु रूपका		शुक्ल एकादशीसे
उच्च अवचैः	बड़े-छोटे		चार मासके)
क्रतुभिः	यज्ञोंसे	पशु सोमानां	पशु (आलभन) तथा
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक		सोम (पानके)
प्रकृति	प्रकृति (सर्वाङ्गपूर्ण)	चातुर्होत्र	चातुर्होत्र (होता,
विकृतिभिः	विकृति (अल्पाङ्ग अपूर्ण)		अध्वर्यु, उद्गाता
आहुत	जिसमें अग्नि लायी		और ब्रह्मा इन
	गयी है ऐसे		चारसे हानेवाले)
अग्निहोत्र	अग्निहोत्र	विधिना	यज्ञकी
दर्श	दर्श (अमावस्या)	अनुसवनं	विधिसे
पूर्णमास	पूर्ण-मासके	ई जे च	यथा समय
	(पूर्णमा) को		यजन भी
			किया ॥५॥

सम्प्रचरत्सु नानायागेषु विरचिताङ्गक्रियेष्वपूर्वं यत्त-
त्क्रियाफलं धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिङ्गानां
मन्त्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तरि परदेवतायां भगवति
वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्यमृदितकपायो हविःष्वध्वर्यु-
भिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवांस्तान् पुरुषावयवेष्वभ्य-
ध्यायत् ॥६॥

सम्प्रचरत्सु नाना यागेषु विरचित अङ्ग क्रियेषु अपूर्वं यत् तत्
क्रियाफलं धर्म आख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवता लिङ्गानां मन्त्राणां
अर्थ नियामकतया साक्षात् कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भाव-

यमान आत्मनैपुण्य मृदित कषायः हविषु अध्वर्युभिः गृह्यमाणेषु स यजमानः
यज्ञभाजः देवात् तान् पुरुष अवयवेषु अभ्यध्यायत् ॥६॥

अङ्ग	(यज्ञके) अंग और	साक्षात् कर्तरि	साक्षात् कर्ता
क्रियेषु	क्रियाओंको	परदेवतायां	परम-देवता
विरचित	बनाकर	भगवति	भगवान्
नाना यागेषु	अनेक प्रकारके	वासुदेव	वासुदेव ही हैं
	यज्ञोंको	एव	इस प्रकार
सम्प्रचरत्सु	भली प्रकार करते	भावयमान	भावना करते हुए
	हुए	आत्मनै पुण्येन	अपनी निपुणतासे
यत् अपूर्व	जो अपूर्व (नामक)	मृदित कषायः	(उनके राग-द्वेषादि)
धर्म आख्यं	धर्म कहा जानेवाला		मलोंका मार्जन
क्रियाफलं	कर्मका फल है		हो गया
	(उसे)	अध्वर्युभिः	अध्वर्युके
परे ब्रह्मणि	परं ब्रह्म	हविषु	हवि उठानेपर
यज्ञपुरुषे	यज्ञ-पुरुषको ही	गृह्यमाणेषु	वे यजमान (राजा
	(अर्पित कर देते)	स यजमानः	भरत)
सर्वदेवता		यज्ञभाजः	यज्ञमें भाग पानेवाले
लिङ्गानां	सब देवताओंके	तान् देवात्	उन देवताओंको
	स्वरूप	पुरुष अवयवेषु	परम-पुरुषके
मन्त्राणां	मन्त्रोंके		अंगोंमें ही
अर्थ		अभ्यध्यायत्	ध्यान करते थे ॥६॥
नियामकतया	अर्थके नियन्त्रक		
	होनेसे		

एवं कर्मविशुद्ध्या विशुद्धसत्त्वस्यान्तर्हृदयाकाशशरीरे
ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवन-
मालारिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि
पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरया-
जायत ॥७॥

एवं कर्म विशुद्ध्या विशुद्धसत्त्वस्य अन्तर्हृदयाकाश शरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूप उपलक्षणे श्रीवत्स कौस्तुभ वनमाला अरिदर गदादिभिः उपलक्षिते निजपुरुष हृत् लिखितेन आत्मनि पुरुषरूपेण विरोचमानः उच्चैः तरां भक्तिः अनुदिनं एधमानः अयाजायत ॥७॥

एवं	इस प्रकार	गदादिभिः	गदा आदिसे
कर्म विशुद्ध्या	कर्मकी पूर्ण शुद्धि होनेसे	उपलक्षिते	पहिचाना जानेवाला
विशुद्धसत्त्वस्य	विशुद्ध अन्तःकरणके	निजपुरुष	अपने भक्तोंके
शरीरे	शरीरके	हृत् लिखितेन	हृदयमें चित्रित रहनेवाला रूप
अन्तर्हृदयाकाश	हृदयाकाशके भीतर	आत्मनि	अपने भीतर
ब्रह्मणि	परमब्रह्म	पुरुषरूपेण	(प्रत्यक्ष) पुरुष रूपसे
महापुरुषरूप		विरोचमानं	प्रकाशित होते
उपलक्षणे	महापुरुष (पुरुषोत्तम) रूपके लक्षणोंसे युक्त	भगवति	भगवान्
श्रीवत्स	श्रीवत्स-चिह्न (वक्षपर)	वासुदेवे	वासुदेवमें
कौस्तुभ	कौस्तुभमणि (कण्ठमें)	उच्चैः तरां	अत्यन्त उत्कृष्ट
वनमाला	(गलेमें) वनमाला	भक्तिः	भक्ति
अरिदर	(करोमें) चक्र-शङ्ख	अनुदिनं	प्रतिदिन
		✓ एधमानः	✓ बढ़ती हुई
		अयाजायत	प्राप्त हो गयी ॥७॥

एवं वर्षायुतसहस्रपर्यन्तावसितकर्मनिर्वाणावसरोऽधि-
भुज्यमानं स्वतनयेभ्यो रिक्थं पितृपैतामहं यथादायं विभज्य
स्वयं सकलसम्पन्निकेतात्स्वनिकेतात् पुलहाश्रमं प्रवव्राज ॥८॥

एवं वर्ष अयुत सहस्र पर्यन्त अवसितः कर्मनिर्वाण अवसरः अधि-
भुज्यमानं स्वतनयेभ्यः रिक्थं पितृ पैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकल
सम्पत् निकेतात् स्वनिकेतात् पुलह आश्रमं प्रवव्राज ॥८॥

एवं	इस प्रकार	स्वतनयेभ्यः	अपने पुत्रोंको
अयुत सहस्र वर्ष	एक करोड़ वर्ष	यथादायं	उत्तराधिकारके
पर्यन्त	तक		अनुसार
कर्मनिर्वाण	कर्मोंके समाप्त	विभज्य	बांटकर
	होनेका (राज्य- भोगका प्रारब्ध)	स्वयं	स्वयं
अवसरः	समय	सकल सम्पत्	
अवसितः	समाप्त करके	निकेतात्	सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके
अधिभुज्यमानं	भोगो जाती हुई		निवास
पितृ पैतामहं	पिता-पितामहकी	स्वनिकेतात्	अपने भवनसे
रिक्थं	सम्पत्तिको	पुलह आश्रमं	पुलह आश्रमको
		प्रवव्राज	चले गये ॥८॥

यत्र ह वाव भगवान् हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां
वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥६॥

यत्र ह वाव भगवान् हरिः अद्य अपि तत्र त्यानां निजजनानां
वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥६॥

यत्र ह वाव	जहां निश्चित रूपसे	वात्सल्येन	वात्सल्यवश
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि	इच्छारूपेण	अभीष्ट रूपमें
अद्य अपि	आज भी	संनिधाप्यत	✓सामीप्य देते रहते
तत्र त्यानां	वहां रहनेवाले		हैं ॥६॥
निजजनानां	अपने भक्तोंको		

यत्राश्रमपदान्युभयतोनाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम
सरित्प्रवरा सर्वतः पवित्रीकरोति ॥१०॥

यत्र आश्रम पदानि उभयतः नाभिभिः दृषत् चक्रैः चक्रनदी नाम
सरित् प्रवरा सर्वतः पवित्री करोति ॥१०॥

यत्र	यहां	चक्रनदी नाम	चक्रनदी (गण्डकी)
आश्रम पदानि	आश्रमोंके समीप		नामक

सरित् प्रवरा	सरिता श्रेष्ठ	शिला) से
उभयतः	दोनों ओर	सर्वतः पवित्री
नाभिर्दृष्ट्वा चक्रैः	नाभिके समान	करोति
	दीखनेवाले चक्रोंसे	चारों ओर पवित्र
	युक्त (शालग्राम	करती है ॥१०॥

तस्मिन् वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविध-
कुसुमकिसलयतुलसिकाम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो
भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः
परां निर्वृतिमवाप ॥११॥

तस्मिन् वाव किल स एकलः पुलह आश्रम उपवने विविध कुसुम
किसलय तुलसिका अम्बुभिः कन्द मूल फल उपहारैः च समीहमानः
भगवत आराधनं विविक्त उपरत विषय अभिलाष उपभृत उपशमः परां
निर्वृतिं अवाप ॥११॥

वाव किल	निश्चय ही	च फल उपहारैः एवं फलकी भेंटसे
तस्मिन्	उस	भगवत
पुलह आश्रम		आराधनं
उपवने	पुलहाश्रमके बगीचे- में	भगवान्की पूजाकी
स एकलः	वे अकेले रहते थे ✓	समीहमानः
विविध कुसुम	अनेक प्रकारके पुष्प	भली प्रकार चेष्टा
किसलय	नव-पल्लव	करते थे
तुलसिका	तुलसीदल तथा	विविक्त
अम्बुभिः	जलसे	✓(उस) एकान्तमें
कन्द	कन्द (जिन्हें भूना	उपरत विषय
	जा सकता है)	अभिलाष
मूल	मूल (जो भूने नहीं	भोगोंकी अभिलाषा
	जाते)	त्यागकर
		उपभृत उपशमः
		वैराग्य धारण
		करके
		परां निर्वृतिं
		परम-आनन्द
		अवाप
		प्राप्त किया ॥११॥

तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुराग-
भरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक
औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुण-
चरणारविन्दानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लाद-
गम्भीरहृदयह्लादवगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न
सस्मार ॥१२॥

तया इत्थं अविरत पुरुष परिचर्यया भगवति प्रवर्धमान अनुरागभर
द्रुतहृदय शैथिल्यः प्रहर्ष वेगेन आत्मनि उद्भिद्यमान रोम पुलक कुलक
औत्कण्ठ्य प्रवृत्त प्रणय बाष्प निरुद्ध अवलोक नयन एवं निज रमण अरुण
चरणारविन्द अनुध्यान परिचित भक्तियोगेन परिप्लुत परम आह्लाद
गम्भीर हृदयह्लाद अवगाढ धिषणः तां अपि क्रियमाणां भगवत् सपर्यां न
सस्मार ॥१०॥

तया	उनके द्वारा	पुलक	
इत्थं	इस प्रकार	उद्भिद्यमान	पुलकित होनेसे उठ खड़े होते थे ।
अविरत	अविराम	औत्कण्ठ्य	
पुरुष		प्रवृत्त	उत्कण्ठासे हुए
परिचर्यया	परम पुरुषकी पूजा करनेसे	प्रणय बाष्प	प्रेमाश्रुओंसे
भगवति	भगवान्में	नयन अवलोक	नेत्रोंका देखना
प्रवर्धमान	बढ़ते हुए	निरुद्ध	रुक जाता था ।
अनुरागभर	अनुरागसे भरे	एवं	इस प्रकार
द्रुत हृदय	द्रवित हृदय	निज रमण	अपने स्वामीके
शैथिल्यः	शिथिल हो जाता था ।	अरुण	
प्रहर्ष वेगेन	अत्यन्त हर्षवेगसे	चरणारविन्द	लाल-लाल चरण-कमलोंके
आत्मनि	शरीरमें	अनुध्यान	बार बार ध्यानसे
रोम कुलक	रोम-समूह		

परिचित		अवगाढ	डूबी हुई
भक्तियोगेन	परिचित भक्ति- योगसे	धिषणः	बुद्धि होनेसे
परम आह्लाद	परम आनन्दसे	तां क्रियमाणां	उस की जाती हुई
परिप्लुत	भीगकर	भगवत् सपर्यां	भगवत्-सेवाको
गम्भीर	गम्भीर	अपि न सस्मार	भी नहीं स्मरण कर
हृदयहृद	हृदय रूपी हृदमें		पाते थे ॥१२॥

इत्थं धृतभगवद्ब्रतऐणेयाजिनवाससानुसवनाभिषेकार्द्र-
कपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा भगवन्तं हिरण्मयं
पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतद् उवाच—॥१३॥

इत्थं धृत भगवद् ब्रत ऐणेय अजिन वाससा अनुसवन अभिषेक आर्द्र
कपिश कुटिल जटा कलापेन च विरोचमानः सूर्य अर्चा भगवन्तं हिरण्मयं
पुरुषं उज्जिहाने सूर्यमण्डले अभि उपतिष्ठन् एतत् उ ह उवाच ॥१३॥

इत्थं	इस प्रकार	सूर्यमण्डले	सूर्य-मण्डलमें
धृत भगवद्		अभि उप-	
ब्रत	भगवत् (सेवाका) ब्रत-धारण करके	तिष्ठन्	(सूर्य-सम्बन्धी ऋचाओंसे)
ऐणेय	कृष्ण-मृगचर्मका		उपस्थान करते हुए
वाससा	वस्त्र धारण किये,	विरोचमानः	ज्योतिर्मय प्रकाशित
अनुसवन	तीनों समय	हिरण्मयं पुरुषं	हिरण्यगर्भ पुरुष
अभिषेक आर्द्र	स्नान करनेसे गीले	भगवन्तं	भगवान्
कपिश कुटिल	भूरे-घुँघराले	सूर्य अर्चा	सूर्यकी पूजा करते
जटा		एतत् उ ह	यह निश्चित
कलापेन च	जटा-समूहसे ही	उवाच	बोलते थे ॥१३॥
उज्जिहाने	उगते हुए		

परोरजः सवितुर्जातिवेदो

देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ।

सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे

हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः ॥१४॥

**परः रजः सवितुः जातवेदः देवस्य भर्गः मनसा इदं जजान सुरेतसादः
पुनः आविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरां इमः ॥१४॥**

जातवेदः	अग्नि-स्वरूप	चष्टे	इसका साक्षी है और
सवितुः	सूर्य भगवान्	सुरेतसादः	अपनी-चित्त शक्तिसे
परः रजः	रजोगुण (प्रकृति)से परे हैं ।	गृध्राणं	रक्षा करता है
देवस्य भर्गः	ये परमात्माके तेज हैं ।		विषय-लोलुपों (जीवों)का भी
मनसा इदं	(जिन्होंने) संकल्पसे ही इस संसारको	इमः	धारण करता है
जजान	उत्पन्न किया है ।	हंसं नृषद्रि-	हम
पुनः आविश्य	फिर इसमें प्रवेश करके	ङ्गिरां इमः	उसी बुद्धि प्रवर्तक हंस (तेज)की शरण लेते हैं ॥१४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे भरतचरिते भगवत्परिर्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरम-
भिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्त उपविवेश ॥१॥

एकदा तु महानद्यां कृत अभिषेक नैयमिक आवश्यकः ब्रह्माक्षरम्
अभिगृणानः मुहूर्तत्रयम् उदकान्तं उपविवेश ॥१॥

एकदा तु	एकबार तो	ब्रह्माक्षरम्	गायत्री
महानद्यां	महानदी (गण्डकी)में	अभिगृणानः	जप करते हुए
अभिषेक कृत	स्नान करके	मुहूर्तत्रयम्	तीन मुहूर्त तक
आवश्यकः	आवश्यक	उदकान्तं	जल (धारा)के
नैयमिक	नित्य नियमका	उपविवेश	समीप बैठे रहे ॥१॥

तत्र तदा राजन् हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोप-
जगाम ॥२॥

तत्र तदा राजन् हरिणी पिपासया जलाशय अभ्याशम् एक एव
उपजगाम ॥२॥

राजन्	परीक्षित् !	पिपासया	जल पीने के लिए
तदा तत्र	उसी समय वहाँ	हरिणी	हरिणी
जलाशय	नदीके	एक एव	अकेली ही
अभ्याशं	समीप	उपजगाम	आयी ॥२॥

तया पेपीयमान उदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो
लोकभयङ्कुर उदपतत् ॥३॥

तथा पेपीयमाने उदके तावत् एव अविदूरेण नदतः मृगपतेः उन्नादः
लोक भयङ्कर उदपतत् ॥३॥

तथा	उसके	नदतः मृगपतेः	गर्जना करते
उदके			सिंहका
पेपीयमाने	पानीं पीते हुए	लोक भयङ्कर	सबके लिए डरावनी
तावत् एव	उसी समय	उन्नादः	उच्च ध्वनि
अविदूरेण	समीप ही	उदपतत्	गूँजी ॥३॥

तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविकलवा चकितनिरीक्षणा
सुतरामपि हरिभयाभिनिवेशव्यग्रहृदया पारिप्लवदृष्टिरगततृषा
भयात् सहसैवोच्चक्राम ॥४॥

तं उपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृति विकलवा चकित निरीक्षणा सुतरां
अपि हरिभय अभिनिवेश व्यग्रहृदया पारिप्लव दृष्टिः अगत तृषा भयात्
सहसा एव उच्चक्राम ॥४॥

तं उपश्रुत्य	उस (गर्जना)को	अभिनिवेश	सिंहके भयसे
	समीप सुनकर		आक्रान्त
सा मृगवधू	वह मृग पत्नी	व्यग्रहृदया	बहुत धड़कते हृदयसे
प्रकृति		अगत तृषा	प्यास न बुझनेपर भी
विकलवा	स्वभावसे ही	पारिप्लव	
	डरपोक	दृष्टिः	(नदी) कूद जानेके
चकित			विचारसे
निरीक्षणा	चौंककर (इधर- उधर) देखता	भयात्	भयके कारण
सुतरां अपि	उस समय भी	सहसा एव	अचानक ही
हरिभय		उच्चक्राम	उछल पड़ी ॥४॥

तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्वन्त्या उरुभयावगलितो योनिनिर्गतो
गर्भः स्रोतसि निपपात ॥५॥

तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्वन्त्या उरुभय अवगलितः योनिनिर्गतः गभः
स्रोतसि निपपात ॥५॥

अन्तर्वन्त्या	गर्भवती	गर्भः	गर्भ
तस्या	उस (हरिणी)के	योनिनिर्गतः	योनिद्वारसे
उत्पतन्त्या	उछलनेपर		निकलकर
उरुभय	बहुत भयसे	स्रोतसि	(नदी की) धारामें
अवगलितः	स्थानच्युत	निपपात	गिर पड़ा ॥५॥

तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्या-
ञ्चिद्दर्या कृष्णसारसती निपपाताथ च ममार ॥६॥

तत् प्रसव उत्सर्पण भय खेद आतुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्या-
ञ्चित् दर्या कृष्ण सारसती निपपात अथ च ममार ॥६॥

कृष्ण सारसती	कृष्ण मृग पत्नी	स्वगणेन	अपने यूथसे
तत्	उस	वियुज्यमाना	विमुक्त होकर
प्रसव उत्सर्पण	गर्भ गिरजानेसे,	कस्याञ्चित्	
भय	(सिंहके) भयसे,	दर्या	किसी गुफामें
खेद	(लम्बी छलांगके)	निपपात	गिर पड़ी
	श्रमसे	अथ च	और
आतुरा	व्याकुल होकर	ममार	मर गयी ॥६॥

तं त्वेणकुणकं कृपणं स्रोतसानूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धं बन्धु-
रिवानुकम्पया राजर्षिर्भरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमपद-
मनयत् ॥७॥

तं तु एण कुणकं कृपणं स्रोतसात् अह्यमानं अभिवीक्ष्य अपविद्धं
बन्धुः इव अनुकम्पया राजर्षिः भरत आदाय मृतमातरं इति आश्रमपदं
अनयत् ॥७॥

तं	उस	अनुकम्पया	कृपासे
अपविद्धं	(मातासे) बिछुड़े	आदाय	लेकर
कृपणं	बेचारे	राजर्षिः भरत	राजर्षि भरत
एण कुणकं तु	मृगीके बच्चेको तो	मृतमातरं	'इसकी मां मर
स्रोतसात्			गयी है'
अह्यमानं	धाराओंसे बहाये	इति	ऐसा समझकर
	जाते	आश्रमपदं	(अपने) आश्रम
अभिवीक्ष्य	देखकर		स्थानपर
बन्धुः इव	आत्मीयके समान	अनयत्	ले आये ॥७॥

तस्य ह वा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन् कृतनिजाभिमानस्या-
हरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेनात्मनियमाः सह्यमाः
पुरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल
सर्व एवोदवसन् ॥८॥

तस्य ह वा एण कुणक उच्चैः एतस्मिन् कृत निज अभिमानस्य अहरहः
तत् पोषण पालन लालन प्रीणन अनुध्यानेन आत्मनियमाः सह्यमाः पुरुष
परिचर्यादय एक एकशः कतिपयेन अहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एव
उदवसन् ॥८॥

ह वा	फिर तो	लालन	लाड़ करने
तस्य	उस	प्रीणन	प्रसन्न करनेके
एण कुणक	मृग छौनेके प्रति	अनुध्यानेन	चिन्तनमें लगे
एतस्मिन्	इसमें		रहनेसे
उच्चैः कृत	प्रगाढ़ भावसे बनायें	आत्मनियमाः	अपने नियम
निज		सह्यमाः	(अपरिग्रह, अहि- सादि) यमोंके साथ,
अभिमानस्य	निजत्वके		
	अभिमानसे	पुरुष परि-	
अहरहः	दिनोदिन	चर्यादयः	भगवत् पूजा आदि
तत् पोषण	उसके पोषण,	एक एकैकशः	एक एक करके
पालन	पालन (रक्षण)	वियुज्यमानाः	छूटते हुए

कतिपयेन अहर्गणेन	कुछ दिनोंमें	किल सर्व एव तो सभी उदवसन् छूट गये ॥८॥
---------------------	-----------------	--

अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमण-
रयेण स्वगणसुहृद्बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मोपसादितो
मामेव मातापितरौ भ्रातृजातीन् यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं
कञ्चन वेद मय्यतिविलम्बध्वात् एव मया मत्परायणस्य पोषण-
पालनप्रीणनलालनमनसूयुनानुष्ठेयं शरण्योपेक्षा दोषविदुषा ॥६॥

अहो बत अयं हरिण कुणकः कृपण ईश्वररथ चरण परिभ्रमण
रयेण स्वगण सुहृत् बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मा उपसादितः मां एव
मातापितरौ भ्रातृजातीन् यौथिकान् च उपेयाय न अन्यम् कञ्चन वेद मयि
अति विलम्बधः च अत एव मया मत् परायणस्य पोषण पालन प्रीणन
लालनं अनसूयुना अनुष्ठेयं शरण्य उपेक्षा दोष विदुषा ॥६॥

अहो बत	अहो खेदकी बात है,	मां एव	मुझे ही
अयं कृपण	यह बेचारा	मातापितरौ	माता-पिता,
हरिण कुणकः	मृग-छौना	भ्रातृजातीन्	भाई, सजातीय,
ईश्वररथ	भगवान्‌के(कालरूप) रथके	च यौथिकान्	
चरण		एव	तथा यूथके साथी भी
परिभ्रमण	चक्रोंके घूमनेके ✓	उपेयाय	समझता है ।
रयेण	वेगसे	अन्यं कञ्चन	दूसरे किसीको
स्वगण सुहृत्	अपने दल, सुहृद,	न वेद	नहीं जानता
बन्धुभ्यः	बन्धुओंसे	मयि	मुझपर
परिवर्जितः	सर्वथा रहित होकर	अति	
मा	मेरी	विलम्बधः च	बहुत विश्वास भी
शरणं च	शरणमें ही		करता है ।
उपसादितः	पहुँचा दिया गया ।		

अत एव	अतएव	पोषण पालन	पोषण, पालन,
मया	सुझे	पीणन लालन	प्रसन्न करना,
शरण्य उपेक्षा	शरणागतकी		लालन
	उपेक्षाके	अनसूयुना	बिना दोष बुद्धिके
दोष विदुषा	दोष जाननेवाले को	अनुष्ठेयं	करना चाहिए ॥६॥
मत् परायणस्य	मेरे परायणका		

नूनं ह्यार्याः साधव उपशमशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे
स्वार्थानपि गुरुतरानुपेक्षन्ते ॥१०॥

नूनं हि आर्याः साधवः उपशमशीलाः कृपण सुहृत् एवं विध अर्थे
स्वार्थान् अपि गुरुतरान् उपेक्षन्ते ॥१०॥

हि नूनं	क्योंकि निश्चय	एवं विध अर्थे	इस प्रकारके
आर्याः	श्रेष्ठ		प्रयोजनसे
साधवः	सत्पुरुष	गुरुतरान्	बहुत बड़े
उपशमशीलाः	शान्त स्वभाव,	स्वार्थान् अपि	स्वार्थों की भी
कृपणसुहृत्	दीनोंके हितैषी	उपेक्षन्ते	उपेक्षा कर देते
			हैं ॥१०॥

इति कृतानुषङ्ग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृग-
जहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ॥११॥

इति कृत अनुषङ्ग आसन शयन अटन स्थान अशनादिषु सह मृग
जहुना स्नेह अनुबद्ध हृदय आसीत् ॥११॥

इति	इस प्रकार	अशनादिषु	भोजन आदिके
कृत अनुषङ्ग	आसक्ति करके		समय भी
आसन	बैठते,	मृग जहुना सह	मृगके बच्चेके साथ
शयन	सोते,	स्नेह अनुबद्ध	
अटन	घूमते,	हृदय	स्नेहसे बँधे हृदय
स्थान	ठहरते,	आसीत्	हो गये ॥११॥

कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याह्रिष्यमाणो वृक-
सालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं
समाविशति ॥१२॥

कुशकुसुम समित् पलाश फलमूल उदकानि आह्रिष्यमाणः वृक
सालावृकादिभ्यः भयं आशंसमानः यदा सह हरिण कुणकेन वनं
समाविशति ॥१२॥

कुशकुसुम	कुश, पुष्प	भयं	भयकी
समित् पलाश	समिधा, पत्त	आशंसमानः	आशंका करके
फलमूल	फल, मूल	हरिण कुणकेन	
उदकानि यदा	जल जब	सह	हरिणके बच्चेके
आह्रिष्यमाणः	ले आने होते थे		साथ
वृक	भेड़िये	वनं	
सालावृका- दिभ्यः	कुत्तों आदिसे	समाविशति	वनमें प्रवेश करते थे ॥१२॥

पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः
कार्पण्यात्स्कन्धेनोद्वहति एवमुत्सङ्ग उरसि चाधायोपलालयन्मुदं
परमामवाप ॥१३॥

पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तं अति प्रणय भर हृदयः
कार्पण्यात् स्कन्धेन उद्वहति एवं उत्सङ्ग उरसि च आधाय उपलालयन्
मुदं परमां अवाप ॥१३॥

पथिषु च	मार्गमें भी	भर हृदयः	भरे हृदय
मुग्धभावेन	मुग्धभावसे	✓ कार्पण्यात्	कृपा करके (उसे)
तत्र तत्र	स्थान-स्थानपर	स्कन्धेन	कन्धेपर
विषक्तं	(घास आदिसे)	उद्वहति	ढोते थे
	अटकनेपर	एवं	इसी प्रकार
अति प्रणय	अतिशय प्रेमसे	उत्सङ्ग	गोदमें

च उरसि	तथा हृदयसे	परमां मुदं	परम आमोद
आधाय	लगाकर	अवाप	पाते थे ॥१३॥
उपलालयन्	लाड़ करते हुए		

क्रियायां निर्वर्त्यमानायामन्तरालेऽप्युत्थायोत्थाय यदै-
नमभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा
आशिष आशास्ते स्वस्ति स्ताद्वत्स ते सर्वत इति ॥१४॥

क्रियायां निर्वर्त्यमानायां अन्तराले अपि उत्थाय उत्थाय यत् एनं
अभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते
स्वस्ति तात् वत्स ते सर्वत इति ॥१४॥

क्रियायां	(नित्य-नैमित्तिक)	प्रकृतिस्थेन	
	कर्माँको	मनसा	मनसे प्रकृतस्थ
निर्वर्त्यमानायां	सम्पन्न करते		(निश्चिन्त) होते थे ।
	समय भी	तस्मा	उसको
अन्तराले अपि	बीच-बीचमें भी	आशिष	
उत्थाय उत्थाय	उठ-उठकर	आशास्ते	आशीर्वाद देते थे—
यत् एनं	जब इसको	वत्स ते	‘वत्स तुम्हारा
अभिचक्षीत	देख लेते थे	सर्वत	सब ओरसे
तर्हि वाव	तभी निश्चित	स्वस्ति तात्	कल्याण हो’
स वर्षपतिः	वे एक देशके स्वामी	इति	इस प्रकार ॥१४॥

अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः सकरुण-
मतितर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसन्तापस्तमेवानुशोचन्
किल कश्मलं महदभिरम्भित इति होवाच ॥१५॥

अन्यदा भृशं उद्विग्नमना नष्ट द्रविण इव कृपणः सकरुणं अति तर्षेण
हरिण कुणक विरह विह्वल हृदय सन्तापः तं एव अनुशोचन् किल कश्मलं
महत् अभिरम्भित इति ह उवाच ॥१५॥

अन्यदा	अन्यथा (कभी उसके न दीखनेपर)	विरह विह्वल हृदय सन्तापः तं एव अनुशोचन्	वियोगसे व्याकुल सन्तप्त-हृदय उसकी ही बार-बार चिन्ता करते,
भृशं उद्विग्न-मना	अत्यन्त उद्विग्न मन	किल महत् कश्मलं अभिरम्भित इति ह उवाच	आश्चर्य है कि महान् शोक आविष्ट इस प्रकारसे ही कहने लगते ॥१५॥
द्रविण नष्ट कृपणः इव अति तर्षेण	धन नष्ट हुए दीन (पुरुष) की भांति अत्यन्त प्यास (उत्कंठा) पूर्वक		
स करुणं हरिण कुणक	करुणावश हरिणके बच्चेके		

अथ उवाच-*

अपि बत स वै कृपण एण बालको मृतहरिणीसुतोऽहो ममनार्यस्य शठकिरातमतेरकृतसुकृतस्य कृतवित्त्रम्भ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन् सुजन इवागमिष्यति ॥१६॥

अपि बत स वै कृपण एण बालकः मृत हरिणी सुतः अहो मम् अनार्यस्य शठ किरातमतेः अकृत सुकृतस्य कृत वित्त्रम्भः आत्मप्रत्ययेन तत् अविगणयन् सुजन इव आगमिष्यति ॥१६॥

अपि बत	क्या फिर	अकृत सुकृतस्य	पुण्यहीनपर
स वै कृपण	वही बेचारा	कृत वित्त्रम्भः	विश्वास करके
एण बालकः	मृग-शावक	आत्मप्रत्ययेन	मुझे अपना मानकर
मृत हरिणी		तत् अविगणयन्	उस (मेरी दुष्टता) को न गिनकर
सुतः	मृत हरिणीका छौना	सुजन इव	सत्पुरुषोंके समान
अहो	अहो	आगमिष्यति	आवेगा ? ॥१६॥
मम् अनार्यस्य	मुझ नीच		
शठ किरातमतेः	दुष्ट बहेलिये-सी बुद्धिवाले		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें में नहीं है ।

अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरन्तं देवगुप्तं
द्रक्ष्यामि ॥१७॥

अपि क्षेमेण अस्मिन् आश्रम उपवने शष्पाणि चरन्तं देवगुप्तं
द्रक्ष्यामि ॥१७॥

अपि	क्या	चरन्तं	हरे-तृण चरते
क्षेमेण	कुशलपूर्वक	देवगुप्तं	भगवान्की कृपासे
अस्मिन्	इस		सुरक्षित
आश्रम उपवने	आश्रमके बगीचेमें	द्रक्ष्यामि	(उसे मैं)
शष्पाणि			देखूंगा ॥१७॥

अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमो वा नैकचर एकचरो
वा भक्षयति ॥१८॥

अपि च न वृकः सालावृकः अन्यतमः वा न एकचर एकचरः वा
भक्षयति ॥८॥

अपि च	कहीं (उसे)	न एकचर	दलमें रहनेवाला
वृकः	भेड़िया,	वा एकचरः	या अकेले रहने
सालावृकः वा	कुत्ता अथवा		वाला
अन्यतमः	कोई दूसरा	भक्षयति न	खा न जाय ॥१८॥

निम्लोचति ह भगवान् सकलजगत्क्षेमोदयस्त्रय्यात्माद्यापि
मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥१९॥

निम्लोचति ह भगवान् सकल जगत् क्षेम उदयः त्रयी आत्मा अद्यापि
मम न मृगवधून्यास आगच्छति ॥१९॥

सकल जगत्	सम्पूर्ण विश्वके	अद्यापि	अब तक भी
क्षेम उदयः	कुशलके लिए प्रकट	मम	मेरी
त्रयी आत्मा	वेदत्रयी स्वरूप	मृगवधून्यास	मृगीकी धरोहर
भगवान्	भगवान् (सूर्य)	न आगच्छति	नहीं आ रहा
निम्लोचति ह	अस्त होने ही		है ॥१९॥
	वाले हैं,		

अपिस्विदकृतसुकृतमागत्य मां सुखयिष्यति हरिणराज-
कुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसन्तोषं
स्वानामपनुदन् ॥२०॥

अपि स्विद् अकृत सुकृतं आगत्य मां सुखयिष्यति हरिणराजकुमारः
विविध रुचिर दर्शनीय निज मृगदारक विनोदैः असन्तोषं स्वानां
अपनुदन् ॥२०॥

अपि स्विद्	क्या (वह)	मृगदारक	मृग-छौनेके
हरिण-		निज विनोदैः	अपनी क्रीड़ाओंसे
राजकुमारः	हरिण-राजकुमार	स्वानां	
अकृत सुकृतं	(मुझ) पुण्यहीनके (पास)	असन्तोषं	अपने जनोंका असन्तोष
आगत्य	आ कर	अपनुदन्	दूर करते
विविध रुचिर	अनेक प्रकारकी	मां	मुझे
दर्शनीय	देखने ही योग्य	सुखयिष्यति	सुखी करेगा ॥२०॥

क्ष्वेलिकायां मां मृषासमाधिनाऽऽमीलितदृशं प्रेमसंरम्भेण
चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ॥२१॥

क्ष्वेलिकायां मां मृषा समाधिना आमीलित दृशं प्रेम संरम्भेण चकित
चकित आगत्य पृषत् अपरुष विषाण अग्रेण लुठति ॥२१॥

प्रेम संरम्भेण	प्रणय कोपसे	चकित चकित	अत्यन्त आश्चर्यसे
क्ष्वेलिकायां	हँसीमें	आगत्य	पास आकर
मृषा		पृषत्	छोटे
समाधिना	झूठी समाधि (के बहाने) से	अपरुष	कठोर न हुए
आमीलित दृशं	नेत्र बन्द किए	विषाण अग्रेण	सींगोंकी नोंकसे
मां	मुझे	लुठति	ठेलता था ॥२१॥

आसादितहविषि बर्हिषी दूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः
सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ॥२२॥

आसादित हविषि बर्हिषि दूषिते मया उपालब्धः भीतभीतः सपदि
उपरत रास ऋषिकुमारवत् अवहित करण कलाप आस्ते ॥२२॥

बर्हिषि	कुशोंपर	ऋषिकुमार-	
आसादित	रखी	वत्	ऋषिकुमारके
हविषि	हवन-सामग्री		समान
दूषिते	(मुख लगाकर)	सपदि	तत्काल
	दूषित (जूठी) कर	उपरत रास	उछल-कूद त्यागकर
	देने पर	अवहित	रोकी हुई
मया	मेरे द्वारा	करण कलाप	इन्द्रियोंकी चेष्टा
उपालब्धः	डांटनेपर		(वाला)
भीतभीतः	बहुत डरकर	आस्ते	(चुपचाप) बैठ
			जाता था ॥२२॥

किं वा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्यानया यदियमवनिः
सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभगशिवतमाखरखुरपदपङ्क्तिभिर्द्र-
विणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयन्त्यात्मानं च
सर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्गकामानां देवयजनं
करोति ॥२३॥

किं वा अरे आचरितं तपः तपस्विनि अनया यत् इयं अवनिः सविनय
कृष्णसार तनय तनुतर सुभग शिवतम आखर खुरपद पङ्क्तिभिः द्रविण
विधुर आतुरस्य कृपणस्य मम द्रविण पदवीं सूचयन्ति आत्मानं च सर्वतः
कृत-कौतुकं द्विजानां स्वर्ग अपवर्ग कामनां देवयजनं करोति ॥२३॥

अनया	इस	द्रविण विधुर	द्रव्य रहित
तपस्विनि	तपस्विनी (पृथ्वी)ने	आतुरस्य	व्याकुल
अरे वा	अरे भला	कृपणस्य	दीन हो रहे
किं तपः	क्या तपस्या	मम	मेरे
आचरितं	की है	द्रविण	(मृगरूपी) धनके
यत् इयं	जो यह	पदवीं	स्थानको
अवनिः	पृथ्वी	सूचयन्ति	सूचित करते हुए
सविनय	अत्यन्त विनीत	आत्मानं च	अपनेको भी
कृष्णसार		सर्वतः	सब ओर
तनय	कृष्ण-मृगके छौनेके	कृतकौतुकं	(इन पद-चिह्नोंसे)
तनुतर	बहुत छोटे-छोटे		भूषित करके
सुभग	सौभाग्यदायी	स्वर्गं अपवर्गं	स्वर्ग या मोक्षकी
शिवतम	परम कल्याणकारी	कामानां	कामना वाले
आखर	तीक्ष्ण	द्विजानां	द्विजोंके लिए
खुरपद	खुरोंके चिह्नोंकी	देवयजनं	देवयज्ञ (स्थल)
पङ्क्तिभिः	पङ्क्तियोंसे	करोति	बना रही हैं*॥२३॥

अपिस्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातरं मृगबालकं
स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकम्पया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥२४॥

अपि स्विद् असौ भगवान् उडुपतिः एनं मृगपति भयात् मृत-
मातरं मृगबालकं स्व आश्रमपरिभ्रष्टं अनुकम्पया कृपणजनवत्सलः
परिपाति ॥२४॥

अपि स्विद्	अथवा क्या	कृपणजन-	
असौ	ये	वत्सलः	दुःखी लोगोंपर वात्सल्य रखने वाले

*स्मृति तथा पुराणोंके अनुसार जहाँ कृष्ण-मृग पाये जाते हैं, वह
भूमि पवित्र और यज्ञानुष्ठान योग्य होती है ।

भगवान्		एनं	इस
उडुपतिः	भगवान् चन्द्रमा	मृगबालकं	मृग-छौनेकी
मृगपति भयात्	सिंहके भयसे	अनुकम्पया	दयावश
मृतमातरं	मरी मातावाले	परिपाति	रक्षा करते हैं ॥२४॥
स्व आश्रम-			
परिभ्रष्टं	अपने आश्रमसे		
	भटके		

किं वाऽऽत्मजविश्लेषज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमान-
हृदयस्थलनलिनीकं मामुपसृतमृगीतनयं शिशिरशान्तानुराग-
गुणितनिजवदनसलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥२५॥

किं वा आत्मज विश्लेष ज्वरदवदहन शिखाभिः उपतप्यमान हृदय-
स्थलनलिनीकं मां उपसृत्य मृगीतनयं शिशिर शान्त अनुराग गुणित निज
वदन सलिल अमृतमय गभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥२५॥

आत्मज विश्लेष	पुत्रोंके वियोगरूपी	शिशिर शान्त	शीतल, शान्त
ज्वरदवदहन	ज्वर दावाग्निकी	अनुराग गुणित	अनुरागसे प्रवृद्ध
शिखाभिः	लपटोंसे	निज वदन	अपने मुखकी
उपतप्यमान	सन्तप्त होते	अमृतमय	
हृदयस्थल-		सलिल	अमृतमय जल
नलिनीकं	हृदय कमलवाले	गभस्तिभिः	किरणोंसे
मृगीतनयं	मृग-छौनेके साथ	स्वधयतीति च	(मुझे) शान्त कर
मां उपसृत्य	मेरे समीप आकर		रहे हैं ॥२५॥
	(चन्द्रदेव)		

श्रीशुक उवाच* -

एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन
स्वारब्धकर्मणा योगारम्भणतो विभ्रंशितः स योगतापसो

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथा जात्यन्तर एणकुणक
आसङ्गः साक्षान्निःश्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदया-
भिजातस्य तस्यैवमन्तरायविहतयोगारम्भणस्य राजर्षेर्भरतस्य
तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषङ्गेणाविगणयत
आत्मानमहिरिवाखुबिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस
आपद्यत ॥२६॥

एवं अघटमान मनोरथ आकुलहृदयः मृगदारक आभासेन स्तव
आरब्ध कर्मणा योगारम्भणतः विभ्रंशितः स योगतापसः भगवत् आराधन
लक्षणात् च कथं इतरथा जात्यन्तर एण कुणक आसङ्गः साक्षात् निःश्रेयस
प्रतिपक्षतया प्राक् परित्यक्त दुस्त्यज हृदय अभिजातस्य तस्य एवं अन्तराय
विहत योग आरम्भणस्य राजर्षेः भरतस्य तावत् मृग अर्भक पोषण पालन
प्रीणन लालन अनुषङ्गेण अविगणयत आत्मानं अहिः इव आखु बिलं दुरति-
क्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥२६॥

एवं	इस प्रकार	लक्षण	रूपी
अघटमान	जिनका घटित होना शक्य नहीं	योगारम्भणतः	योग-साधनसे
मनोरथस्य	(ऐसे) मनोरथवाले	विभ्रंशितः	च्युत
आकुलहृदयः	व्याकुल हृदय	स योगतापसः	उन योगी तथा तपस्वीका
राजर्षेः		इतरथा	अन्यथा
भरतस्य	राजर्षि भरतका	जात्यन्तर	दूसरी जाति (पशु)
मृगदारक	मृग-छौनेके	एण कुणक	मृग-छौनेमें
आभासेन	रूपमें प्रतीत होने- वाले	कथं आसङ्गः	कैसे दृढ़ आसक्ति हो गयी ।
स्व आरब्ध		साक्षात्	
कर्मणा	अपने प्रारब्ध कर्मसे	निःश्रेयस	साक्षात् मोक्षके
भगवत्		प्रतिपक्षतया	विरोधी होनेसे
आराधन	भगवान्की आरा- धना	प्राक्	पहिले

दुस्त्यज	जिनका त्याग बहुत कठिन है	पोषण पालन	पोषण, पालन
हृदय		प्रीणन लालन	प्रसन्न करने, लाड़ लड़ानेमें
अभिजातस्य	(उन) हृदयसे उत्पन्न पुत्रोंको (जिन्होंने)	अनुषङ्गेन	लगे रहकर
परित्यक्त	छोड़ दिया था	आत्मानं	आत्म स्वरूपकी
तस्य एवं	उनको इस प्रकार	अविगणयत	अवगणना (उपेक्षा) करते हुए
अन्तराय	विघ्नोंके द्वारा	आखु बिलं	चूहेके बिलमें
योग आरम्भणस्य	योग-साधनोंके	अहिः इव	सर्पके समान
विहृतस्य	नष्ट हो जानेपर	करालरभसः	भयानक वेगवाला
तावत्	उस समय	दुरतिक्रमः	अनिवारण
मृगअर्भक	मृगछौनेके	कालः	काल
		आपद्यत	पास आ गया ॥२६॥

तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचन्तमभिवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु न मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥२७॥

तदानीं अपि पार्श्ववर्तिनं आत्मजं इव अनुशोचन्तं अभिवीक्षमाणः मृग एव अभिनिवेशितमना विसृज्य लोकं इमं सह मृगेण कलेवरं मृतं अनु न मृत जन्म अनुस्मृतिः इतरवत् मृगशरीरं अवाप ॥२७॥

तदानीं अपि	उस समय भी	मृतं कलेवरं	मरे शरीरको
पार्श्ववर्तिनं	समीप बैठे	अनु इमं लोकं	पीछे इस लोकको
आत्मजं इव	पुत्रके समान	विसृज्य	छोड़कर; किन्तु
अनुशोचन्तं	शोक करते हुएको	इतरवत्	दूसरोंके समान
अभिवीक्षमाणः	बार-बार देखते हुए	मृत जन्म	मरे (छूटे) जन्मकी
मृग एव	मृगमें ही	अनुस्मृतिः	पिछली स्मृति
अभिनिवेशित-		न	नहीं (छोड़कर)
मना	मनका तादात्म्य होनेसे	मृगशरीरं	मृग-देह (में जन्म)
सह मृगेण	मृगके साथ	अवाप	पाया ॥२७॥

तत्रापि ह वा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधन-
समीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमान आह ॥२८॥

तत्र अपि ह वा आत्मनः मृगत्व कारणं भगवत् आराधन समीहा
अनुभावेन अनुस्मृत्य भृशं अनुतप्यमानः आह ॥२८॥

तत्र अपि	वहाँ भी	अनुभावेन	प्रभावसे
ह वा	निश्चित रूपसे	आत्मनः	अपने
	(पूर्व-जन्मके)	मृगत्व कारणं	मृग हो जानेके
भगवत्			कारणको
आराधनं	भगवान्की आरा-	अनुस्मृत्य	स्मरण करके
	धनाकी	भृशं	बहुत
समीहा	भली प्रकार चेष्टा	अनुतप्यमानः	संतप्त होते हुए
	करने	आह	बोले ॥२८॥

अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्यद्विमुक्तसमस्त-
सङ्गस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां
भगवति वासुदेवे तदनुश्रवणमननसङ्कीर्तनाराधनानुस्मरणा-
भियोगेनाशून्यसकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं
कात्स्न्येन मनस्तत् पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनु परिसु-
त्ताव ॥२९॥

अहो कष्टं भ्रष्टः अहं आत्मवतां अनुपथात् यत् विमुक्त समस्त सङ्गस्य
विविक्त पुण्य अरण्य शरणस्य आत्मवत आत्मनि सर्वेषां आत्मनां भगवति
वासुदेवे तत् अनुश्रवण मनन संकीर्तन आराधन अनुस्मरण अभियोगेन अशून्य
सकलयामेन कालेन समावेशितं समाहितं कात्स्न्येन मनः तत् तु पुनः मम
अबुधस्य आरात् मृगसुतं अनु परिसुत्ताव ॥२९॥

अहो कष्टं	अहो, बड़े खेदकी	आत्मवतां	संयमशील लोगोंके
	बात है कि	अनुपथात्	पीछे चलनेके मार्गसे
अहं	मैं	भ्रष्टः	भटक गया

यत्	जो	सकलयामेन	सब समयको
समस्त सङ्गस्य	सभी आसक्तियोंसे	अशून्य	(उनसेही) भरकर
विमुक्त	छूटकर	कालेन	दीर्घ कालसे
विविक्त	एकान्त	समावेशितं	(उनमें) भली प्रकार
पुण्य अरण्य	पवित्र वनमें		प्रविष्ट
शरणस्य	शरण लेकर	कात्स्न्येन	सम्पूर्ण
सर्वेषां आत्मनां	सबके आत्मा	समाहितं	एकाग्र
भगवति		मनः	मन (हो जानेपर
वासुदेवे	भगवान् वासुदेवको		भी)
आत्मनि	अपने भीतर	पुनः	फिर
आत्मवत्	अपनी आत्माकी	तत् नु	वह तो
	भाँति (देखते हुए)	मम अबुधस्य	मुझ अज्ञानीका
तत् अनुश्रवण	उनका बार-बार	आरात्	समीपके
	श्रवण	मृगसुतं	मृग-छौनेके
मनन संकीर्तन	चिन्तन, गुणगान	अनु	पीछे
आराधन	अर्चन	परिसुत्नाव	(लक्ष्यसे) परिच्युत
अनुस्मरण	बार-बार स्मरण		हो गया ॥२६॥
अभियोगेन	करनेमें लगे रहकर		

इत्येवं निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगीम् मातरं पुनर्भगवत्क्षेत्र-
मुपशमशीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालञ्ज-
रात्प्रत्याजगाम ॥३०॥

इति एवं निगूढ निर्वेदः विसृज्य मृगीम् मातरं पुनः भगवत् क्षेत्रं
उपशमशील मुनिगण दयितं शालग्रामं पुलस्त्य पुलह आश्रमं कालञ्जरात्
प्रति आजगाम ॥३०॥

इति एवं	इस प्रकारसे	विसृज्य	छोड़कर
निगूढ निर्वेदः	छिपे वैराग्ययुक्त	पुनः	फिर
मृगीम् मातरं	अपनी मां मृगीको	कालञ्जरात्	कालञ्जरसे

शालग्रामं	शालग्राम वाले	पुलस्त्य पुलह	पुलस्त्य, पुलह
भगवत् क्षेत्रं	भगवदीय तीर्थ		महर्षियोंके
उपशमशील	विरक्त स्वभाव	आश्रमं प्रति	आश्रममें
मुनिगण दयितं	मुनियोंको प्रिय	आजगाम	आ गये ॥३०॥

तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गाच्च भृशमुद्विग्न आत्म-
सहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधा वर्तमानो मृगत्वनिमित्तावसानमेव
गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकल्किन्नमुत्ससर्ज ॥३१॥

तस्मिन् अपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गात् च भृशं उद्विग्नः आत्मसहचरः
शुष्क पर्ण तृण वीरुधा वर्तमानः मृगत्व निमित्त अवसानं एव गणयन् मृग
शरीरं तीर्थ उदकल्किन्नं उत्ससर्ज ॥३१॥

तस्मिन् अपि	वहाँ भी	वीरुधा	क्षुपोसे
कालं		वर्तमानः	शरीर-निर्वाह करते
प्रतीक्षमाणः	समयकी प्रतीक्षा	मृगत्व	मृग-शरीर मिलनेके
	करते हुए	निमित्त	निमित्तकी
सङ्गात् च	और आसक्तिसे	अवसानं एव	समाप्तिकी ही
भृशं	अत्यधिक	गणयन्	प्रतीक्षा करते
उद्विग्नः	उद्विग्न	तीर्थ	
आत्मसहचरः	अपने ही साथ	उदकल्किन्नं	तीर्थ (गण्डकी)के
	(अकेले)		जलसे भीगे ।
शुष्क	सूखे	मृग शरीरं	हिरण देहको
पर्ण तृण	पत्ते, तिनके,	उत्ससर्ज	त्याग दिया ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे

भरतचरितेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अथ कस्यचिद् द्विजवरस्याङ्गिरःप्रवरस्य शमदमतपःस्वा-
ध्यायाध्ययनत्यागसन्तोषतितिक्षाप्रश्रयविद्यानसूयात्मज्ञानानन्दयु-
क्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचाररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अङ्गजा
बभूवुर्मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥१॥

अथ कस्यचित् द्विजवरस्य अङ्गिरः प्रवरस्य शमदम तपः स्वाध्याय
अध्ययन त्याग संतोष तितिक्षा प्रश्रय विद्या अनसूया आत्मज्ञान आनन्द
युक्तस्य आत्म सदृश श्रुत शील आचार रूप औदार्य गुणा नव सोदर्या अङ्ग-
जा बभूवुः मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥१॥

अथ	फिर	आनन्द युक्तस्य	आनन्द युक्त
कस्यचित्	किसी	द्विजवरस्य	ब्राह्मण श्रेष्ठकी
अङ्गिरः		आत्म सदृश	अपने ही समान
प्रवरस्य	अङ्गिरा-गोत्रीय	श्रुत	विद्या,
शमदम	शम, दम,	शील आचार	शील, आचार,
तपः स्वाध्याय	तप, जप,	रूप औदार्य	रूप, उदारता,
अध्ययन	वेदाध्ययन,	गुणा	गुणवाले
त्याग सन्तोष	त्याग, सन्तोष,	नव सोदर्या	नौ सहोदर
तितिक्षा	कष्ट सहिष्णुता,	अङ्गजा	पुत्र (बड़ी पत्नीसे)
प्रश्रय	नम्रता,	च यवीयस्यां	और छोटी
विद्या	शास्त्रज्ञान,	भार्यायां	पत्नीसे
अनसूया	दूसरोंके गुणमें दोष न देखना,	मिथुनं	पुत्र-कन्याका जोड़ा
आत्मज्ञान	आत्मज्ञान	बभूवुः	उत्पन्न हुआ ॥१॥

यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्ट-
मृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः ॥२॥

यः तु तत्र पुमान् तं परमभागवतं राजर्षिप्रवरं भरतं उत्सृष्टं मृग
शरीरं चरम शरीरेण विप्रत्वं गतं आहुः ॥२॥

यः तु	जो तो	मृग शरीरं	हिरनके शरीरको
तत्र	उस (जोड़े)में	उत्सृष्टं	त्यागकर
पुमान् तं	लड़का था उसे	चरम शरीरेण	अन्तिम शरीरसे
परमभागवतं	परम भगवद्-भक्त	विप्रत्वं गतं	ब्राह्मण जन्म प्राप्त
राजर्षिप्रवरं	राजर्षि श्रेष्ठ	आहुः	कहा गया है ॥२॥
भरतं	भरतको		

तत्रापि स्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानो भगवतः कर्मबन्धविध्वं-
सनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविन्दयुगलं मनसा विदधदा-
त्मनः प्रतिघातमशङ्कमानो भगवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलि-
रात्मानमुन्मत्तजडान्धबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥३॥

तत्र अपि स्वजन सङ्गात् च भृशं उद्विजमानः भगवतः कर्मबन्ध विध्वं-
सन श्रवण स्मरण गुण विवरण चरणारविन्द युगलं मनसा विदधत् आत्मनः
प्रतिघातं आशङ्कमानः भगवत् अनुग्रहेण अनुस्मृत स्वपूर्वजन्मावलिः आत्मानं
उन्मत्त जड अन्ध बधिर स्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥३॥

तत्र अपि	वहां भी	श्रवण	(चरित) श्रवण,
स्वजन		स्मरण	स्मरण,
संगात् च	अपने सम्बन्धियोंकी	गुण विवरण	गुण-चिन्तन,
	आसक्तिसे तो	चरणार-	
भृशं	बहुत ही	विन्द युगलं	दोनों चरण-
उद्विजमानः	उद्विग्न होते थे ।		कमलोंको
भगवतः	भगवान्‌के	मनसा	मनसे
कर्मबन्ध	कर्मके बन्धनको	विदधत्	धारण किये रहते ।
विध्वंसन	नष्ट करनेवाले		

भगवत्		आशंकमानः	(आ जानेकी)
अनुग्रहेण	भगवान्की कृपासे		आशंकासे
स्वपूर्व-		लोकस्य	लोगोंको
जन्मावलिः	अपने-पूर्व जन्मोंकी	आत्मानं	अपनेको
	परम्परा	उन्मत्त जड़	पागल, मूर्ख,
अनुस्मृत	स्मरण रहनेसे	अन्ध बधिर	अन्धे, बहिरेके
आत्मनः	अपने लिए	स्वरूपेण	स्वरूपमें
प्रतिघातं	(विघ्न रूप)	दर्शयामास	दिखलाते थे ॥३॥
	प्रतिक्रिया		

तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आ समावर्तनात्संस्कारान् यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन् कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयदनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति ॥४॥

तस्य अपि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेह अनुबद्धमना आ समावर्तनात् संस्कारान् यथा उपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौच आचमन आदीन् कर्मनियमान् अनभिप्रेतान् अपि समशिक्षयत् अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेण इति ॥३॥

ह वा	निश्चित ही	विदधान	कराते रहे ।
तस्य	उस	पुनः	फिर
आत्मजस्य		उपनीतस्य च	यज्ञोपवीत हो
अपि	पुत्रके भी		जानेपर तो
पुत्रस्नेह	पुत्र-स्नेहसे	शौचं	पवित्रताके
अनुबद्धमना	बँधे चित्तवाले	आचमन	
विप्रः	(वे) ब्राह्मण	आदीन्	आचमन आदि
यथा उपदेशं	शास्त्रके उपदेशके	अनभिप्रेतान्	
	अनुसार	अपि	(उनके) न
आ समावर्तनात्	समावर्तन पर्यन्त		चाहनेपर भी
संस्कारान्	सब संस्कार	कर्म नियमान्	कर्मके नियमोंको

एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रत-
नियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्माण्यनभियुक्तान्यपि समनु-
शिष्टेन भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्य स्वयं तावदनधिगत-
मनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्त
उपसंहृतः ॥६॥

एवं स्वतनुज आत्मनि अनुराग आवेशित चित्तः शौच अध्ययन व्रत नियम गुरु अनल शुश्रूषण आदि औपकुर्वाणक कर्माणि अनभियुक्तान् अपि समनुशिष्टेन भाव्यं इति असत् आग्रहः पुत्रं अनुशास्य स्वयं तावत् अनधिगत मनोरथः कालेन अप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्तः उपसंहृतः ॥६॥

एवं	ऐसा होनेपर भी	अनभियुक्तान्	
स्वतनुज	अपने पुत्रमें	अपि	अनुपयुक्त
आत्मनि	अपने		होनेपर भी
अनुराग	अनुरागसे	समनुशिष्टेन	भलीप्रकार शिक्षा
आवेशित		भाव्यं	देनी ही चाहिए
चित्तः	चित्तको आविष्ट	इति	इस प्रकारके
	किये	असत् आग्रहः	अनुचित आग्रहसे
शौच	पवित्रता,	पुत्रं अनुशास्य	पुत्रको शिक्षा देते हुए
अध्ययन	वेदाध्ययन,	स्वयं तावत्	स्वयं तब तक
व्रत	व्रत,	मनोरथः	उनका मनोरथ
नियम	नियम,	अनधिगत	उन्हें प्राप्त नहीं
गुरु अनल	गुरु एवं अग्निकी		हुआ था कि
शुश्रूषण	सेवा-सम्हाल	अप्रमत्तेन	प्रमाद न करनेवाले
औपकुर्वाणक	ब्रह्मचर्या श्रमके	कालेन	कालके द्वारा
	आवश्यक	स्वयं प्रमत्तः	स्वयं प्रमादवश
कर्माणि	कर्मोंकी	गृह एव	घरमें रहते ही
		उपसंहृतः	उनका अन्त कर
			दिया गया ॥६॥

अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात् ॥७॥

अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भ जातं मिथुनं सपत्न्या उपन्यस्य स्वयं अनुसंस्थया पतिलोकं अगात् ॥७॥

अथ	तब	द्विजसती	पतिव्रता ब्राह्मण
यवीयसी	छोटो		पत्नी

स्वगर्भं जातं	अपने गर्भसे उत्पन्न	स्वयं	स्वयं
मिथुनं	कन्या-पुत्र दोनोंको	अनुसंस्थया	सती होकर
सपत्न्या	अपनी सौतको	पतिलोकं	पतिके लोकको
उपन्यस्य	सौपकर	अगात्	चली गयी ॥७॥

पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां जडमतिरिति भ्रातुरनुशासन निर्बन्धान्यवृत्सन्त ॥८॥

पितरि उपरते भ्रातरः एनं अतत् प्रभावविदः त्रय्यां विद्यायां एव पर्यवसित मतयः न पर विद्यायां जडमतिः इति भ्रातुः अनुशासन निर्बन्धात् न्यवृत् सन्त ॥८॥

पितरि	पिताके	अतत् प्रभाव-	
उपरते	उपराम हो जाने (मर जाने) पर	विदः	इन (भरत)के प्रभावको नहीं जानते थे (अतः)
भ्रातरः	(इनके) भाई	एनं	इनको
त्रय्यां विद्यायां	त्रयी-विद्या (कर्मकाण्ड)में	जडमतिः	‘जड़ बुद्धि है’
एव	ही	इति	ऐसा समझकर
पर्यवसित		भ्रातुः	भाईको
मतयः	सीमित बुद्धिवाले	अनुशासन	शिक्षा देनेके
पर विद्यायां	पराविद्या (ब्रह्म- ज्ञान)में	निर्बन्धात्	आग्रहसे
न	(निपुण) नहीं थे,	न्यवृत् सन्त	निवृत्त हो गये ॥८॥

स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्मणि च स कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याञ्चया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहु मृष्टं कदम्बं वाभ्यवहरति परं नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तम् । नित्य-

निवृत्तनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्मलाभाधिगमः सुख-
दुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसम्भावित देहाभिमानः ॥६॥

स च प्राकृतैः द्विपद पशुभिः उन्मत्त जड बधिर इति अभिभाष्यमाणः
यदा तत् अनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि च स कार्यमाणः परेच्छया करोति
विष्टितः वेतनतः वा याञ्छया यदृच्छया वा उपसादितं अल्पं बहु मृष्टं
कदन्नं वा अभ्यवहरति परं न इन्द्रिय प्रीति निमित्तं नित्य निवृत्त निमित्त
स्वसिद्ध विशुद्ध अनुभव आनन्द स्व आत्मलाभ अधिगमः सुख-दुःखयोः
द्वन्द्व निमित्तयोः असम्भावितः देह अभिमानः ॥६॥

प्राकृतैः	साधारण	याञ्छया	मांगनेसे
द्विपद पशुभिः	दो पैरके पशु (जैसे लोगों) द्वारा	वा यदृच्छया	अथवा बिना मांगे
यदा उन्मत्त	जब पगला,	उपसादितं	प्राप्त हुए
जड	मूर्ख,	अल्पं बहु	थोड़े या बहुत,
बधिर	बहिरा,	मृष्टं कदन्नं वा	स्वाद्विष्ट या बुरा
इति	इस प्रकार	अन्न	अन्न
अभिभाष्य-		अभ्यवहरति	खा लेते थे
माणः	कहकर पुकारे जानेपर	परं	किन्तु
स च	वे भी	इन्द्रिय प्रीति	इन्द्रिय (जीभ)को
तत् अनुरूपाणि	तब उसके अनुरूप ही	निमित्तं न	करनेके लिए नहीं ।
प्रभाषते	बोलते थे ।	निमित्त	कारण (साधन)से
स कर्माणि च	वे कर्मोंको भी	नित्य निवृत्त	सदा पृथक् (न होनेवाला)
विष्टितः	बेगारमें	स्वसिद्ध	स्वतःसिद्ध
वा वेतनतः	अथवा मजदूरीमें	विशुद्ध अनुभव	विशुद्ध अनुभव,
कार्यमाणः	कराये जानेपर	आनन्द	आनन्द रूप
परेच्छया		स्व आत्मलाभ	अपने आत्माकी
करोति	दूसरेकी इच्छासे करते थे ।	अधिगमः	प्राप्ति (ज्ञान) उन्हें हो गया था (अतः)

सुख दुःखयोः सुख-दुःखादि
द्वन्द्वयोः द्वन्द्वोंके
निमित्तयोः कारणसे
(होनेवाला)

देह अभिमानः शरीरका अभिमान
असम्भावितः होनेकी सम्भावना
नहीं थी ॥६॥

शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृताङ्गः पीनः संहननाङ्गः
स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्त-
ब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्म-
बन्धुरिति संज्ञयातज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥१०॥

शीत उष्ण वात वर्षेषु वृष इव अनावृत अङ्गः पीनः संहनन अङ्गः
स्थण्डिल संवेशनात् अनुमर्दन अमज्जन रजसा महामणिः इव अनभिव्यक्त
ब्रह्मवर्चसः कुपट आवृत कटिः उपवीतेन उरु मषिणा द्विजातिः इति ब्रह्म-
बन्धुः इति संज्ञया अतज्ज्ञ जनाः अवमतः विचचार ॥१०॥

शीत उष्ण सर्दी-गर्मी,
वात वर्षेषु आँधी-वर्षामें
वृष इव सांडके समान
अनावृत अङ्गः बिना शरीर ढके
रहते ।
पीनः मोटे
संहनन अङ्गः सुगठित अङ्ग थे ।
स्थण्डिल
संवेशनात् पृथ्वीपर ही पड़े
रहनेसे
उन्मर्दन
अमज्जन तेल-उवटन न लगाने
और स्नान न
करनेसे
रजसा धूलिसे (ढके)

महामणिः इव महामणिके समान
अनभिव्यक्त अप्रकट
ब्रह्मवर्चसः ब्रह्मतेज,
कुपट मैले-कुचैले वस्त्रको
आवृतः कटिः कमरमें लपेटे,
उरु मषिणा बहुत मैले
उपवीतेन यज्ञोपवीत द्वारा
द्विजातिः इति 'यह द्विजाति है ।
इस प्रकार
ब्रह्मबन्धुः इति 'ब्राह्मणाधम है'
इस प्रकार
अतज्ज्ञ उनको न जाननेवाले
लोगों द्वारा
अवमतः तिरस्कृत होते
विचचार विचरते थे ॥१०॥

यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि
केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किन्तु न समं विषमं
न्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थालीपुरी-
षादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति ॥११॥

यदा तु परतः आहारं कर्मवेतनतः ईहमानः स्वभ्रातृभिः अपि केदार
कर्मणि निरूपितः तत् अपि करोति किन्तु न समं विषमं न्यूनं अधिकं इति वेद
कण पिण्याक फलीकरण कुल्माष स्थाली पुरीष आदीनि अपि अमृतवत्
अभ्यवहरति ॥११॥

यदा	जब	समं विषमं	समतल, विषम,
परतः	दूसरोंसे	न्यूनं अधिकं	कम-ज्यादा
कर्मवेतनतः	कर्मकी मजदूरीमें	इति न वेद	इस प्रकार नहीं
आहारं	भोजन		जानते थे
ईहमानः	चाहने लगे (तब)	कण	अन्न-कण
स्वभ्रातृभिः		पिण्याक	खली,
अपि	अपने भाइयों	फलीकरण	भूसी,
	द्वारा भी	कुल्माष	घुने उड़द,
केदार कर्मणि	खेतके काममें	स्थाली पुरीष	बर्तनमें लगा जला
निरूपितः	लगा दिये गये		अन्न
तत् अपि		आदीनि अपि	आदि भी
करोति	उसे भी करते थे	अमृतवत्	अमृतके समान
किन्तु	लेकिन	अभ्यवहरति	खा लेते थे ॥११॥

अथ कदाचित्कश्चिद् वृषलपतिर्भद्रकाल्यं पुरुषपशुमालभता-
पत्यकामः ॥१२॥

अथ कदाचित् कश्चित् वृषलपतिः भद्रकाल्यं पुरुष पशुं आलभत
अपत्यकामः ॥१२॥

अथ कदाचित्	फिर किसी समय	वृषलपतिः	शूद्रों (डाकुओं)का
कश्चित्	कोई		सरदार

अपत्यकामः	पुत्रकी कामनासे	आलभत	बलि देनेको उद्यत
भद्रकाल्यै	भद्रकालीको		हुआ ॥१२॥
पुरुषपशुं	मनुष्यरूपी पशुकी		

तस्य ह देवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावन्तो निशि
निशीथसमये तमसाऽऽवृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना
केदारान् वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमङ्गिरःप्रवरसुत-
मपश्यन् ॥१३॥

तस्य ह देवमुक्तस्य पशोः पदवीं तत् अनुचराः परिधावन्तः निशि
निशीथ समये तमसा आवृतायां अनधिगत पशवः आकस्मिकेन विधिना
केदारान् वीरासनेन मृग वराहादिभ्यः संरक्षमाणं अङ्गिरः प्रवर सुतं
अपश्यन् ॥१३॥

तस्य	उसके	आकस्मिकेन	
ह देव-		विधिना	अकस्मात् संयोगवश
मुक्तस्य	निश्चय प्रारब्धवश	केदारान्	खेतोंकी
	छूट जानेपर		
तत् अनुचराः	उसके अनुचर	वीरासनेन	वीरासनसे बैठकर
पशोः पदवीं	उस बलि-पशुकी	मृग	
	खोजमें	वराहादिभ्यः	हिरण, सूअर
परिधावन्तः	चारों ओर		आदिसे
	दौड़ते हुए		
तमसा आवृतायां	अन्धकाराच्छन्न	संरक्षमाणं	रक्षा करते हुए
निशि निशीथ		अङ्गिरः प्रवर	अंगिरा गोत्रीय
समये	आधी रातके समय		(ब्राह्मण)के
पशवः		सुतं	पुत्रको
अनधिगत	उस बलि-पशुको न	अपश्यन्	देखा ॥१३॥
	पाकर		

अथ त एनमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥१४॥

अथ त एनं अनवद्य लक्षणं अवमृश्य भर्तृ कर्म निष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहं उपनिन्युः मुदा विकसित वदनाः ॥१४॥

अथ त	फिर तो वे	मन्यमाना	मानते हुए
एनं	इनका	रशनया	
अनवद्य लक्षणं	निर्दोष लक्षणोंवाला	बद्ध्वा	रस्सीसे बाँधकर
अवमृश्य	विचार करके,	मुदा	हर्षसे
भर्तृ कर्म	अपने स्वामीके कर्मकी	विकसित	
निष्पत्ति	पूर्णता (हो जायगी, यह)	वदनाः	खिले मुखवाले
		चण्डिकागृहं	चण्डिका-मन्दिरमें
		उपनिन्युः	ले आये ॥१४॥

अथ पणयस्तं स्वविधिनाभिषिच्याहतेन वाससाऽऽच्छाद्य भूषणालेपस्त्रकृतिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥१५॥

अथ पणयः तं स्वविधिना अभिषिच्य आहतेन वाससा आच्छाद्य भूषण आलेप स्त्रक् तिलक आदिभिः उपस्कृतं भुक्तवन्तं धूप दीप माल्य लाज किसलय अंकुर फल उपहार उपेतया वैशस संस्थया महता गीत स्तुति मृदङ्ग पणव घोषेण च पुरुष पशुं भद्रकाल्याः पुरतः उपवेशया मासुः ॥१५॥

अथ	तदनन्तर	स्वविधिना	अपनी विधिके
पणयः	डाकुओंने		अनुसार
तं	उनको	अभिषिच्य	स्नान कराके

आहूतेन	बिना फाड़े (पूरे थानके कोरे)	फल उपहार	फलोंके उपहारसे
वाससा		उपेतया	युक्त
आच्छाद्य	वस्त्रोंसे ढककर	वंशस संस्थया	बलिदान विधिसे
		महता गीत	
		स्तुति	गायन, स्तुतिका
भूषण	आभूषण,		महान् शब्द करते
आलेप	अंगराग,	च मृदङ्गः	
स्रक् तिलक	माला, तिलक	पणव	और मृदंग, नगाड़े
आदिभिः	आदि द्वारा	घोषेण	बजाते
उपस्कृतं	विभूषित करके,	पुरुष पशुं	पुरुष-पशुको
भुक्तवन्तं	भोजन कर लेनेपर	भद्रकाल्याः	भद्रकालीके
धूप, दीप	धूप, दीप,	पुरतः	सामने
माल्य, लाज	माला, लाजा,	उपवेशया	
किसलय	नवपल्लव,	मासुः	बैठा दिया ॥१५॥
अंकुर	दूर्वाङ्कुर		

अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं
यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे ॥१६॥

अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोः असृक् आसवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्य-
माणः तत् अभिमन्त्रितं असि अतिकराल निशितं उपाददे ॥१६॥

अथ	तब	यक्षमाणः	तृप्त करनेके लिए
वृषलराज-		तत्	
पणिः	शूद्र-डाकू सरदारने	अभिमन्त्रितं	उन (देवी)के
पुरुषपशोः	पुरुष-पशुके		मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित
		अतिकराल	बहुत भयानक
असृक् आसवेन	रक्तासव द्वारा	निशितं असि	तीक्ष्ण तलवार
देवीं		उपाददे	उठायी ॥१६॥
भद्रकालीं	देवी भद्रकालीको		

इति तेषां वृषलानां रजस्तमः प्रकृतीनां धनमदरज उत्सिक्त-
मनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां
हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मषि-
सुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालम्भनं तदुप-
लभ्य ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट
सैव देवी भद्रकाली ॥१७॥

इति तेषां वृषलानां रजः तमः प्रकृतीनां धनमदरज उत्सिक्त मनसां
भगवत् कला वीरकुलं कदर्थीकृत्य उत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसा विहाराणां
कर्म अति दारुणं यत् ब्रह्मभूतस्य साक्षात् ब्रह्मषिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूत-
सुहृदः सुनायां अपि अननुमतं आलम्भनं तत् उपलभ्य ब्रह्मतेजसा अति
दुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसा उच्च चाट स एव देवी भद्रकाली ॥१७॥

इति	इस प्रकार	कर्म अति	
तेषां	उन	दारुणं	कर्म अत्यन्त भय- ङ्कर था,
रजः तमः	रजोगुणी, तमोगुणी	यत् ब्रह्मभूतस्य	जो ब्रह्मभाव प्राप्त,
प्रकृतीनां	स्वभाववाले	साक्षात्	साक्षात्
धनमद रज	धनके मदसे	ब्रह्मषिसुतस्य	ब्रह्मर्षिके पुत्र,
उत्सिक्त मनसां	मत्त चित्तवाले	निर्वैरस्य	वैरहीन,
भगवत् कला	भगवान्की कलासे	सर्वभूतसुहृदः	सब प्राणियोंके सुहृदकी,
वीरकुलं	बलवान (ब्राह्मण) कुलका	सूनायां अपि	(आपत्ति कालमें विहित) हिंसामें भी
कदर्थीकृत्य	तिरस्कार करके,	अननुमतं	निषिद्ध (ब्राह्मण- वध) की
उत्पथेन	कुमार्गसे	आलम्भनं	बलि देने जा रहे थे,
स्वैरं	मनमाने	तत् उपलभ्य	इसे समीप पाकर
विहरतां	आचरण करनेवाले,	अति दुर्विषहेण	अत्यन्त असह्य
हिंसा		ब्रह्मतेजसा	ब्रह्म-तेजसे
विहाराणां	हिंसा-विहार करनेवाले		
वृषलानां	शूद्रोंका		

दन्दह्यमानेन जलते
वपुषा शरीरसे
स एव वही
देवी भद्रकाली देवी भद्रकाली

सहसा अचानक
उच्च चाट (मूर्तिसे) उछल
पड़ीं ॥१७॥

भृशममर्षरोषावेशरभसविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रा-
णेक्षणाटोपातिभयानकवदना हन्तुकामेवेदं महादृहासमतिसंरम्भेण
विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्ण-
शोष्णां गलात्स्ववन्तमसृगासवमत्युष्णं सह गणेन निपीयातिपान-
मदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च
शिरःकन्दुकलीलया ॥१८॥

भृशं अमर्ष रोष आवेश रभस विलसित भ्रुकुटि विटप कुटिल दंष्ट्रा
अरुण ईक्षण आटोप अति भयानक वदना हन्तुकाम एव इदं महा अदृहासं
अति संरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेन एव असिना
विवृक्ण शोष्णां गलात् स्वनन्तं असृक् आसवं अति उष्णं सह गणेन निपीय
अतिपानमद विह्वल उच्चैः तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च
शिरः कन्दुक लीलया ॥१८॥

भृशं अत्यन्त
अमर्ष असहनशीलता
(तथा)
रोष आवेश क्रोधके आवेश
रभस वेगसे
भ्रुकुटि भौंहें
विटप
विलसित वृक्षोंके समान खड़ी
हो गयी थीं
कुटिल दंष्ट्रा टेढ़ी दाढ़ें,
अरुण ईक्षण लाल नेत्र

आटोप चढ़े होनेसे
अति भयानक अत्यन्त भयानक
वदना मुखवाली,
इदं इस संसारका ही
हन्तुकाम विनाश करनेकी
इच्छाके
एव समान
अति संरम्भेण अत्यन्त आवेशसे
महा अदृहास महा अदृहास
विमुञ्चन्ती करती हुई
तत उत्पत्य वहाँसे उछलकर

तेन एव	उसी	अतिपानमद	बहुत पीनेके नशेसे
असिना	तलवारसे	विह्वल	उन्मत्त होकर
पापीयसां	पापी	स्वपार्षदैः सह	अपने पार्षदोंके साथ
दुष्टानां	दुष्टोंके	उच्चैः तरां	बहुत ऊँचे स्वरसे
विवृक्कण	कटे	जगौ	गाने लगीं,
शीर्ष्णां	सिरोंके	च ननर्त	तथा नाचने लगीं
गलात् स्रवन्तं	गलेसे बहते	च शिरः	
अति उष्णं	बहुत गरम	कन्दुक	और सिरोंसे गेंदका
अमृक् आसवं	रुधिर रूपी आसव	लीलया	खेल
सह गणेन	अपने गणोंके साथ	विजहार	खेलने लगीं ॥१६॥
निपीय	भली प्रकार पिया,		

एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कात्स्न्येनात्मने
फलति ॥१६॥

एवं एव खलु महत् अभिचार अतिक्रमः कात्स्न्येन आत्मने
फलति ॥१६॥

एवं एव	ऐसे ही	अतिक्रमः	अपराध
खलु	निश्चय	कात्स्न्येन	सम्पूर्ण रूपसे
महत्	महापुरुषोंके प्रति	आत्मने	अपने ऊपर ही
अभिचार	अभिचारका	फलति	घटता है ॥१६॥

न वा एतद्विष्णुदत्त महद्भुतं यदसम्भ्रमः स्वशिरश्छेदन
आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्त्वसुहृ-
दात्मनां निर्वेराणां साक्षाद्भगवतानिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन
तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां
भागवतपरमहंसानाम् ॥२०॥

न वा एतत् विष्णुदत्त महत् अद्भुतं यत् असम्भ्रमः स्वशिरः छेदन
आपतिते अपि विमुक्त देहादि आत्मभाव सुदृढ हृदय ग्रन्थीनां सर्वसत्त्व

सुहृत् आत्मनां निर्वेराणां साक्षात् भगवता अनिमिष अरि वरायुधेन अप्रम-
त्तेन तैः तैः भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत् पादमूलं अकुतश्चित् भयं उपसृतानां
भागवत परमहंसानाम् ॥२०॥

विष्णुदत्त	परीक्षित !	परिरक्ष्य-	
देहादि	शरीर आदिमें	माणानां	सब ओरसे रक्षित
आत्मभाव	आत्मभाव (तथा)		होने वाले,
सुदृढ	सुदृढ	अकुतश्चित्	
हृदय ग्रन्थीनां	हृदयकी (देहाभि- मान रूप गाँठोंसे)	भयं	जहाँ कहींसे भी भय नहीं है
विमुक्त	छूटे हुए,	तत् पादमूलं	उन चरणोंमें
सर्वसत्त्व	सब प्राणियोंके	उपसृतानां	पहुँचे हुए
		भागवत	भगवद्-भक्त
सुहृत्	हितैषी (एवं)	परमहंसानां	परमहंसोंके लिए
आत्मनां	आत्मस्वरूप,	तत्	जो
निर्वेराणां	शत्रुताहीन,	स्वशिरः छेदनं	अपने सिर कटनेका
साक्षात्		आपतिते अपि	(अवसर) आनेपर
भगवता	साक्षात् भगवान्के		भी
अनिमिष अरि	कालचक्र रूपी	असम्भ्रमः	कोई व्याकुलता
अप्रमत्तेन	सदा सावधान		नहीं है
वरायुधेन	श्रेष्ठ अस्त्रसे	एतत् वा	यह तो
तैः तैः भावैः	उन-उन भावों (रूपों)से	महत्	(कोई) बड़ी
		अद्भुतं न	अद्भुत (बात)
			नहीं है ॥२०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे

जडभरतचरिते नवमोऽध्यायः ॥६॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अथ सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुल-
पतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर
उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति
पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स
महानुभावः ॥१॥

अथ सिन्धु सौवीरपतेः रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्याः तटे तत् कुल-
पतिना शिबिकावाह पुरुष अन्वेषण समये दैवेन उपसादितः स द्विजवर
उपलब्ध एष पीवा युवा संहनन अङ्गः गोखरवत् धुरं वोढुं अलं इति पूर्व
विष्टि गृहीतैः सह गृहीतः प्रसभं अतदर्ह उवाह शिबिकां स महानुभावः ॥१॥

अथ	एकबार	समये	समय
सिन्धु		दैवेन	दैववश
सौवीरपतेः	सिन्ध और	उपसादितः	समीप आये
	सौराष्ट्रके राजा	स द्विजवरः	वे ब्राह्मणोत्तम
रहूगणस्य	रहूगणके	उपलब्ध	मिल गये ।
व्रजत	यात्रा करते समय	एष पीवा	यह मोटा है,
इक्षुमत्याः तटे	इक्षुमती नदीके	युवा	जवान है
	किनारे	संहनन अङ्गः	सुगठित शरीर है,
तत् कुलपतिना	उन (पालकी ढोने- वालों)के कुलपति	गोखरवत्	बैल या गधेके समान
	(सरदार) द्वारा	धुरं वोढुं	भार ढोनेके लिए
शिबिकावाह	पालकी ढोनेवाले	अलं इति	पर्याप्त है, इसप्रकार
पुरुष अन्वेषण	पुरुषको ढूँढ़ते		(सोचकर)

पूर्व विष्टि		अतदर्ह	इसके योग्य न
गृहीतः	पहिले बेगारमें पकड़े		होनेपर भी
	लोगोंके	स महानुभावः	उन महान् प्रभाव-
सह गृहीतः	समान पकड़कर		शालीने
प्रसभं	बलपूर्वक (इन्हें लगा दिया)	शिबिकां उवाह	पालकी ढोयी ॥१॥

यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेन समाहिता पुरुष-
गतिस्तदा विषमगतां स्वशिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत
आह हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते
यानमिति ॥२॥

यदा हि द्विजवरस्य इषुमात्र अवलोक अनुगतेः न समाहिता पुरुष-
गतिः तदा विषमगतां स्व शिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषान् अधिवहत आह
हे वोढारः साधु अतिक्रमत किं इति विषमं उह्यते यानं इति ॥२॥

यदा हि	जब क्योंकि	रहूगण	(राजा) रहूगण
द्विजवरस्य	(उन) ब्राह्मणोत्तमके	अधिवहत	ढोनेवाले
इषुमात्र	केवल वाण बराबर	पुरुषान्	पुरुषोंसे
अवलोक	आगे देखते	आह	बोला
अनुगतेः	चलनेसे	हे वोढारः	‘अरे, ढोने वालो,
पुरुषगतिः	(ढोने वाले)	साधु	
	पुरुषोंकी चाल	अतिक्रमत	ठीक ढंगसे चलो,
न समाहिता	मेल नहीं बैठा सकी	किं इति	इस प्रकार कैसे
तदा	उस समय	विषमं यानं	टेढ़ी-सीधी पालकी
विषमगतां	टेढ़ी होती	उह्यते	ढो रहे हो !’
स्व शिबिकां	अपनी पालकीको	इति	इस प्रकार ॥२॥
उपधार्य	देखकर		

अथ त ईश्वरवचः सोपालम्भमुपाकर्ण्योपायतुरीयाच्छङ्कित-
मनसस्तं विज्ञापयांबभूवुः ॥

अथ त ईश्वर वचः स उपालम्भं उप आकर्ण्य उपाय तुरीय आशंकित
मनसः तं विज्ञापयां बभूवुः ॥३॥

अथ त	तब तो वे	आशंकित	
ईश्वर वचः	अपने स्वामीकी	मनसः	मनमें आशंका
	बात		करके
स उपालम्भं	उलाहनेके साथ	तं	उस (राजा)से
उप आकर्ण्य	ठीक सुनकर	विज्ञापयां	सूचना देने
उपाय तुरीय	चौथे उपाय	बभूवुः	लगे ॥३॥
	(दण्ड)*की		

न वयं नरदेव प्रमत्ता भवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः ।
अयमधुनेव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमु ह वयं
पारयाम इति ॥४॥

न वयं नरदेव प्रमत्ता भवत् नियम अनुपथाः साधु एव वहामः अयं
अधुना एव नियुक्तः अपि न द्रुतं व्रजति न अनेन सह वोढुं ! उह वयं पारयाम
इति ॥४॥

नरदेव	राजन् !	अयं	रहे हैं ।
वयं न प्रमत्ता	हम लोग प्रमाद नहीं	अधुना एव	यह अभी ही
	करते हैं ।		
भवत्	आपके	नियुक्तः अपि	लगाये जानेपर भी
नियम		द्रुतं न व्रजति	जल्दी नहीं
अनुपथाः	नियमोंके अनुसार		चलता है,
	चलनेवाले हैं,	अनेन सह	इसके साथ
साधु एव		वोढुं	ढोनेमें
वहामः	अच्छी तरह ही ढो		

*उपाय चार हैं—१. साम (समझाना) २. दान (कुछ देना) ३. भेद (फूट डालना) ४. दण्ड ।

उह वयं न	निश्चय ही हम नहीं	पारयाम इति	चल पाते हैं । इस प्रकार ॥४॥
-------------	----------------------	---------------	--------------------------------

सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसाऽऽवृतमतिराह ॥५॥

सांसर्गिकः दोष एव नूनं एकस्य अपि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुं अर्हति इति निश्चित्य निशम्य कृपणवचः राजा रहूगण उपासित वृद्धः अपि निसर्गेण बलात् कृत ईषत् उत्थित मन्युः अविस्पष्ट ब्रह्मतेजसं जातवेदसं इव रजसा आवृत मतिः आह ॥५॥

कृपणवचः	दीनवाणी	अपि	बड़ोंकी सेवा
निशम्य	सुनकर		करनेवाला होनेपर
सांसर्गिकः	संसर्गसे लगनेवाला		भी
दोष एव	दोष ही	निसर्गेण	स्वभाववश
नूनं	निश्चय	बलात् कृत	बलपूर्वक
एकस्य अपि	एकका ही (होनेपर)	ईषत् उत्थित	तनिक उठे
		मन्युः	क्रोधसे
सर्वेषां	सभी (उसके)	रजसा आवृत	रजोगुणसे ढकी
सांसर्गिकाणां	संसर्गमें रहने	मतिः	बुद्धि (होने)से
	वालोंका	अविस्पष्ट	छिपे हुए
भवितुं अर्हति	हो जाना चाहिए,	ब्रह्मतेजसं	ब्रह्म तेजवाले
इति निश्चित्य	ऐसा निश्चय करके	जातवेदसं इव	अग्निके समान
राजा रहूगण	राजा रहूगण		(उन विप्र)से
उपासित वृद्धः		आह	बोला ॥५॥

अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुह परिश्रान्तो दीर्घमध्वानश्चेक एव ऊहिवान् सुचिरं नातिपीवा न संहननाङ्गो जरसा चोपद्रुतो

भवान् सखे नो एवापर एते सङ्घट्टिन इति बहु विप्रलब्धोऽप्य-
विद्यया रवितद्रव्यगुणकर्माशयस्वचरमकलेवरेऽवस्तुनि संस्थान
विशेषेऽहं ममेत्यनधारोपितमिथ्याप्रत्यययो ब्रह्मभूतस्तूष्णीं
शिबिकां पूर्ववदुवाह ॥६॥

अहो कष्टं भ्रातः व्यक्तं उरु परिश्रान्तः दीर्घ अध्वानं एक एव ऊहि-
वान् सुचिरं न अति पीवा न संहननाङ्गः जरसा च उपद्रुतः भवान् सखे नो
एव अपर एते सङ्घट्टिन इति बहु विप्रलब्धः अपि अविद्यया रचित द्रव्य
गुण कर्म आशय स्व चरम कलेवरे अवस्तुनि संस्थान विशेषे अहं मम इति
अनध्य आरोपित मिथ्या प्रत्ययः ब्रह्मभूतः तूष्णीं शिबिकां पूर्ववत् उवाह ॥६॥

अहो कष्टं	‘बड़े कष्टकी बात है,	नो	ऐसे नहीं हैं ।
भ्रातः	भाई,	इति	इस प्रकार
व्यक्तं	स्पष्ट है कि	बहु विप्रलब्धः	
उरु परिश्रान्तः	(तुम) बहुत थक गये हो,	अपि	बहुत व्यंग किये जानेपर भी
दीर्घ अध्वानं	लम्बे रास्तेमें	अविद्यया	
सुचिरं	बहुत देरसे	रचित	अविद्याके कार्य
एक एव	अकेले ही	द्रव्य, गुण	पञ्चभूत, त्रिगुण,
ऊहिवान्	(पालकी) ढोते रहे हो,	कर्म आशय	इन्द्रिय, चित्तके
न अति पीवा	न बहुत मोटे हो,	स्व चरम	
न संहननाङ्गः	न सुगठित देह हो,	कलेवरे	अपने अन्तिम देहमें
भवान् सखे	मित्र आप	अवस्तुनि	
जरसा च		संस्थान	(दिखायी देनेपर भी)
उपद्रुतः	और बुढ़ापेसे भी ग्रस्त हो		वस्तुतः न होनेवाले में,
एव अपर	ये दूसरे	अहं मम इति	यह मैं हूँ या मेरा है ऐसी
एते सङ्घट्टिन	इतने साथवाले	मिथ्या प्रत्ययः	मिथ्या प्रतीति

अनध्य		तूष्णीं	(अतः) चुप रहे
आरोपित	आरोपित नहीं		(और)
	रही थी,	पूर्ववत्	पहिलेकी भाँति
		शिबिकां उवाह	पालकी ढोते
ब्रह्मभूतः	ब्रह्मरूप हो गये थे		रहे ॥६॥

अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहू-
गणः किमिदमरे त्वं जीवन्मृतो मां कदर्थोऽकृत्य भर्तृशासनमति-
चरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव जनताया
यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति ॥७॥

अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किं
इदं अरे त्वं जीवन् मृतः मां कदर्थोऽकृत्य भर्तृशासनं अतिचरसि प्रमत्तस्य
च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिः इव जनतायाः यथा प्रकृतिं स्वां भजि-
ष्यस इति ॥७॥

अथ पुनः	लेकिन फिर	भर्तृशासनं	स्वामीकी आज्ञाका
स्वशिबिकायां	अपनी पालकीके	अतिचरसि	उल्लंघन कर रहा
विषमगतायां	टेढ़ी चलनेपर		है,
रहूगणः	(राजा) रहूगण	दण्डपाणिः	यमराज द्वारा
प्रकुपित	बहुत क्रुद्ध होकर	जनतायाः	
उवाच	बोला	इव	जनताकी भाँति
किं इदं	‘यह क्या है,	ते प्रमत्तस्य च	तुझ प्रमादीकी भी
अरे त्वं	अरे, तू	चिकित्सां	चिकित्सा
जीवन् मृतः	जीते ही मरेके	करोमि	करता हूँ,
	समान	यथा	जिससे
मां कदर्थोऽकृत्य	मेरी अवहेलना	स्वां प्रकृतिं	अपने स्वभावपर
	करके	इति भजिष्यस	अब आ जाओगे॥७॥

एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसानु-
विद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत्प्रियनिकेतं पण्डितमानिनं स

भगवान् ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मा योगेश्वरचर्यायां
नातिव्युत्पन्नमतिं स्मयमान इव विगतस्मय इदमाह ॥८॥

एवं बहु अबद्धं अपि भाषमाणं नरदेव अभिमानं रजसा तमसा अनु-
विद्धेन मदेन तिरस्कृत अशेष भगवत् प्रिय निकेतं पण्डित मानिनं स भगवान्
ब्राह्मणः ब्रह्मभूतः सर्वभूतः सुहृत् आत्मा योगेश्वर चर्यायां न अति व्युत्पन्न
मतिं स्मयमान इव विगतस्मय इदं आह ॥८॥

एवं	इस प्रकार	अति व्युत्पन्न	बहुत निपुण
बहु अबद्धं अपि	बहुत उलटी-सीधी भी	मति न	बुद्धि न होनेसे
भाषमाणं	बोलते हुए,	भगवत्	भगवानके
नरदेव		अशेष प्रिय	
अभिमानं	राजा होनेके अभिमानसे	निकेतं	सम्पूर्ण प्रिय पात्रका
रजसा तमसा	रजोगुण तथा तमो- गुणसे	तिरस्कृत	(उसने) तिरस्कार किया
अनुविद्धेन		स भगवान्	(किन्तु) वे भग- वत्स्वरूप
मदेन	व्याप्त गर्वसे,	ब्रह्मभूतः	ब्रह्मभूत
पण्डित मानिनं	(अपनेको) विद्वान् माननेवाले	सर्वभूतः सुहृत्	सब प्राणियोंके हितैषी
योगेश्वर		आत्मा	आत्मस्वरूप
चर्यायां	योगेश्वरोंकी रहनीके विषयमें	ब्राह्मणः	ब्राह्मण
		स्मयमान इव	मुस्कराते हुएसे
		विगतस्मय	बिना अभिमानके
		इदं आह	यह बोले ॥८॥

ब्राह्मण उवाच-

त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं
भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः ।
गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा
पीवेति राशौ न विदां प्रवादः ॥९॥

त्वया उदितं व्यक्तं अविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्यात् यदि वीर भारः
गन्तुः यदि स्यात् अधिगम्यं अथवा पीवा इति राशौ न विदां प्रवादः ॥६॥

त्वया उदितं	(राजन्) तुम्हारा	अथवा	मार्ग हो तो
	कहना	गन्तुः	चलने वालेके लिए
व्यक्तं	स्पष्ट रूपसे		है,
अविप्रलब्धं	ठीक ही है,	पीवा इति	यह मोटा है ऐसा
वीर	भाई,	राशौ	(हड्डी माँसादिकी
यदि भारः			राशि) देहके लिए
स्यात्	यदि भार हो तो		कहा जाता है ।
स मे	वह मेरे	विदां प्रवादः	ज्ञानियोंकी यह
भर्तुः	ढोनेको हो		बात
यदि अधिगम्यं	यदि कहीं 'पहुँचनेका	न	नहीं है ॥६॥

स्थौल्यं काश्यं व्याधय आधयश्च

क्षुत्तृड्भयं कलिरिच्छा जरा च ।

निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचो

देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥१०॥

स्थौल्यं काश्यं व्याधय आधयः च क्षुत् तृट् भयं कलिः इच्छा जरा च
निद्रा रतिः मन्युः अहं मदः शुचः देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥१०॥

स्थौल्यं काश्यं	मोटापन, दुबलापन,	मन्युः अहं	क्रोध, अहंकार,
व्याधयः च		मदः शुचः	घमण्ड, शोक
आधयः	रोग और चिन्तामें	हि	क्योंकि (ये सब)
क्षुत् तृट्	भूख-प्यास,	देहेन जातस्य	शरीरसे उत्पन्न
भयं कलिः	भय, झगड़ा,		होते हैं
इच्छा च जरा	इच्छा एवं बुढ़ापा,	मे न सन्ति	मुझमें नहीं हैं ॥१०॥
निद्रा रतिः	निद्रा, इन्द्रिय-सुख,		

जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्

आद्यन्तवद्यद्विकृतस्य दृष्टम् ।

स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र

तर्ह्युच्यतेऽसौ विधिकृत्ययोगः ॥११॥

जीवन् मृतः त्वं नियमेन राजन् आदि अन्तवत् यत् विकृतस्य दृष्टं
स्वस्वाम्यभावः ध्रुव ईड्य यत्र तर्हि अच्युते असौ विधिकृत्य योगः ॥११॥

राजन्	राजन् !	दृष्टं	उसपर तुम्हारी
नियमेन	नियमतः तो		दृष्टि है,
त्वं	तुम	स्वस्वाम्य-	
जीवन् मृतः	जीते हुए ही मरेके	भावः	अपनेमें स्वामी भाव
	समान हो	यत्र	जहाँ
यत्	क्योंकि	ध्रुव ईड्य	निश्चित प्रशंसनीय
आदि अन्तवत्	आदि (जन्म) अन्त		है
	(मरण)वाला	तर्हि असौ	तब तो यह
	(और)	विधिकृत्य	विधानसे प्राप्त
विकृतस्य	विकारवान (शरीर)	योगः	योग
	है	अच्युते	(केवल) श्रीहरि
			में है ॥११॥

विशेषबुद्धेविवरं मनाक् च

पश्याम यन्न व्यवहारतोऽन्यत् ।

क ईश्वरस्तत्र किमोशितव्यं

तथापि राजन् करवाम किं ते ॥१२॥

विशेष बुद्धेः विवरं मनाक् च पश्याम यत् न व्यवहारतः अन्यत्
क ईश्वरः तत्र किं ईशितव्यं तथा अपि राजन् करवाम किं ते ॥१२॥

यत्	क्योंकि	तत्र	ऐसी स्थितिमें वहाँ
व्यवहारतः	व्यवहारसे	क ईश्वरः	कौन स्वामी (शासक)
अन्यत्	भिन्न	किं ईशितव्यं	कौन शासित
विशेष बुद्धेः	(व्यक्तिकी)		(सेवक) ?
	विशेषता बुद्धिके	राजन्	राजन् !
	लिए	तथा अपि	ऐसा होनेपर भी
मनाक् च	तनिक भी	ते किं	तुम्हारा क्या काम
विवरं	छिद्र (अवसर)	करवाप्त	करूँ ॥१२॥
न पश्याम	नहीं देखता हूँ		

उन्मत्तमत्तजडवत्स्वसंस्थां

गतस्य मे वीर चिकित्सितेन ।

अर्थः कियान् भवता शिक्षितेन

स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥१३॥

उन्मत्त मत्त जडवत् स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन अर्थः
कियान् भवता शिक्षितेन स्तब्ध प्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥१३॥

वीर	वीर !	कियान् अर्थः	कितना प्रयोजन
उन्मत्त	पागल,	भवता	आपकी
मत्त	मतवाले,	शिक्षितेन	शिक्षासे होगा ।
जडवत्	मूर्खके समान	स्तब्धः	जड़
स्वसंस्थां	अपनी स्थितिमें	च प्रमत्तस्य	तथा प्रमादीके लिए
गतस्य	पहुँचे	पीषपेषः	पीसेको फिर पीसने
मे चिकित्सितेन	मेरी चिकित्सासे		जैसा (व्यर्थ) है ॥१३॥

श्रीशुक उवाच—

एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील
उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन् राजयानमपि
तथोवाह ॥१४॥

एतावत् अनुवाद परिभाषया प्रति उदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरत अनात्म्य निमित्त उपभोगेन कर्म आरब्धं व्यपनयन् राजयानं अपि तथा उवाह ॥१४॥

एतावत्	इतना ही	मुनिवर	(वे) मुनिश्रेष्ठ
अनुवाद		आरब्धं कर्म	प्रारब्ध कर्मको
परिभाषया	संक्षिप्त ढंगसे	उपभोगेन	भोग करके
प्रति उदीर्य	उत्तरमें कहकर	व्यपनयन्	क्षय करते हुए
उपशमशील	शान्तवृत्ति,	राजयानं अपि	राजाकी सवारी भी
अनात्म्य	आत्मासे भिन्न	तथा उवाह	वैसे ही ढोते
निमित्त	निमित्तोंसे		रहे ॥१४॥
उपरत	उपरत		

स चापि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिस्तत्त्वजिज्ञासायां सम्यक्-
श्रद्धयाधिकृताधिकारस्तद्धृदयग्रन्थिमोचनं द्विजवच आश्रुत्य बहु-
योगग्रन्थसम्मतं त्वरयावरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन्
विगतनृपदेवस्मय उवाच ॥१५॥

स च अपि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिः तत्त्व जिज्ञासायां सम्यक्
श्रद्धया अधिकृत अधिकारः तत् हृदयग्रन्थि मोचनं द्विजवच आश्रुत्य बहु-
योगग्रन्थ सम्मतं त्वरया अवरुह्य शिरसा पादमूलं उपसृतः क्षमापयन् विगत
नृपदेव स्मय उवाच ॥१५॥

पाण्डवेय	परीक्षित !	अधिकृत	
स च अपि	वह भी	अधिकारः	अधिकार पा चुका
सिन्धु-			था,
सौवीरपतिः	सिन्ध-सौराष्ट्रका	तत् हृदय-	
	राजा	ग्रन्थि	(अतः) उस हृदय
सम्यक् श्रद्धया	आम श्रद्धासे		ग्रन्थि
तत्त्व		मोचनं	छुड़ानेवाले
जिज्ञासायां	तत्त्व जिज्ञासाका	बहुयोगग्रन्थ	बहुतसे योग ग्रन्थोंसे

सम्मतं	सम्मत	शिरसा	
द्विजवच	ब्राह्मणके वचन	उपसृतः	मस्तक रखकर
आश्रुत्य	सुनकर	विगत नृपदेव	
त्वरया	शीघ्रतापूर्वक	स्मय	राजा होनेका अभि-
अवरुह्य	(पालकी से)		मान त्यागकर
	उतरकर	क्षमापयन्	क्षमा माँगते हुए
पादमूलं	(उनके) चरणोंमें	उवाच	बोला ॥१५॥

ब्रह्मण उवाच-*

कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां
बिर्भाषि सूत्रं कतमोऽवधूतः ।
कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात्
क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्लः ॥१६॥

कः त्वं निगूढः चरसि द्विजानां बिर्भाषि सूत्रं कतमः अवधूतः
कस्य असि कुत्र अत्य इह अपि कस्मात् क्षेमाय नः चेत् असि न उत
शुक्लः ॥१६॥

द्विजानां सूत्रं	ब्राह्मणों (का चिह्न)	कुत्र अत्य	कहाँसे आये हैं ?
	यज्ञोपवीत	इह अपि	यहाँ भी
बिर्भाषि	धारण किया है	कस्मात्	किस लिए (आये)
	(आपने)		हैं ?
निगूढः चरसि	छिपकर विचरण	चेत् नः क्षेमाय	यदि हमारा कल्याण
	करने वाले		करने आये हैं
त्वं कः	आप कौन हैं ?	उत	तो क्या
कतमः		शुक्लः न	भगवान् कपिल तो
अवधूतः	कौनसे अवधूत हैं ?		नहीं हैं ॥१६॥
कस्य असि	किनसे पुत्र हैं ?		

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

नाहं विशङ्के सुरराजवज्रा-

न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् ।

नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्रा-

च्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥१७॥

न अहं विशङ्के सुरराज वज्रात् न त्र्यक्ष शूलात् न यमस्य दण्डात्
न अग्नि अर्क सोम अनिल वित्तप अस्त्रात् शङ्के भृशं ब्रह्मकुल अव-
मानात् ॥१७॥

अहं	मैं	अग्नि अर्क	अग्नि, सूर्य,
सुरराज		सोम अनिल	चन्द्रमा, वायु,
वज्रात्	देवराज (इन्द्र)के वज्रसे	वित्तप	
न विशङ्के	डरता नहीं,	अस्त्रात् न	कुबेरके अस्त्रोंसे नहीं
त्र्यक्ष शूलात्	त्रिनयन (रुद्र)के त्रिशूलसे	ब्रह्मकुल	(किन्तु) ब्राह्मण कुलके
न	नहीं	अवमानात्	अपमानसे
यमस्य		भृशं शङ्के	बहुत डरता हूँ ॥१७॥
दण्डात् न	यमराजके डण्डेसे नहीं,		

तद् ब्रूहसङ्गो जडवन्निगूढ-

विज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः ।

वचांसि योगग्रथितानि साधो

न नः क्षमन्ते मनसापि भेत्तुम् ॥१८॥

तत् ब्रूहि असङ्गः जडवत् निगूढ विज्ञानवीर्यः विचरसि अपारः
वचांसि योगग्रथितानि साधो न नः क्षमन्ते मनसा अपि भेत्तुम् ॥१८॥

तत् ब्रूहि	अतः बतलाइये,	जडवत्	मूर्खकी भाँति
विज्ञानवीर्यः	(अपने) विज्ञान और शक्तिको	निगूढ	छिपाकर (आप)
		असङ्गः	अनासक्त

विचरसि	घूमते हैं,	वचांसि	(आपके) वचनोंको
साधो	साधो !	नः मनसा अपि	मैं मनसे भी
योगप्रथितानि	योगसे युक्त	भेत्तुं	भेद न (समझने)में
अपारः	अपार	क्षमन्ते न	सक्षम नहीं हूँ॥१८॥

अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्व-

विदां मुनीनां परमं गुरुं वै ।

प्रष्टुं प्रवृत्तः किमिहारणं तत्

साक्षाद्धरिं ज्ञानकलावतीर्णम् ॥१९॥

अहं च योगेश्वरं आत्मतत्त्व विदां मुनीनां परमं गुरुं वै प्रष्टुं प्रवृत्तः
किं इह अरणं तत् साक्षात् हरिं ज्ञानकला अवतीर्णम् ॥१९॥

आत्मतत्त्व		साक्षात् हरिं	साक्षात् श्रीहरि
विदां	आत्मतत्त्वके		(कपिलजी)से
	जाननेवाले	अहं च	मैं तो
मुनीनां परमं		प्रष्टुं प्रवृत्तः	पूछने जा रहा था कि
गुरुं	मुनियोंके परमगुरु	इह किं	इस संसारमें वह
योगेश्वरं	योगेश्वर		कौन है
वै	निश्चय	तत् अरणं	जिसकी शरण ली
ज्ञानकला			जाय ॥१९॥
अवतीर्णम्	ज्ञानकलासे अवतार		
	लिये		

स वै भवाँल्लोकनिरीक्षणार्थ-

मव्यक्तलिङ्गो विचरत्यपिस्त्रित् ।

योगेश्वराणां गतिमन्धबुद्धिः

कथं विचक्षोत गृहानुबन्धः ॥२०॥

स वै भवान् लोक निरीक्षण अर्थम् अव्यक्त लिङ्गः विचरति अपि
स्वित् योगेश्वराणां गतिं अन्धबुद्धिः कथं विचक्षीत गृह अनुबन्धः ॥२०॥

अपि स्वित्	अथवा क्या	विचरति	घूम रहे हैं ।
स वै	वही (भगवान्	गृह अनुबन्धः	घरमें आसक्त
	कपिल) तो	अन्धबुद्धिः	अन्धी बुद्धिवाला
भवान्	आप नहीं हैं ?	योगेश्वराणां	(आप) योगेश्वरोंकी
लोक निरीक्षण		गतिं	गति
अर्थम्	लोगोंको देखनेके	कथं विचक्षीत	कैसे जान सकता
	लिए		है ॥२०॥
अव्यक्त लिङ्गः	(अपने) चिह्न		
	छिपाये		

दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो वै

भर्तुर्गन्तुर्भवतश्चानुमन्ये ।

यथासतोदानयनाद्यभावात्

समूल इष्टो व्यवहारमार्गः ॥२१॥

दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनः वै भर्तुः गन्तुः भवतः च अनुमन्ये यथा
असतः उद आनयनादि अभावात् समूल इष्टः व्यवहारमार्गः ॥२१॥

वै	निश्चय	अनुमन्ये	अनुमान करता हूँ ।
कर्मत	कर्म करनेसे	यथा	जैसे
आत्मनः	अपनेको	असतः	मिथ्या (घड़े)से
श्रमः	परिश्रम होते	उद आनयनादि	पानी लाना इत्यादि
दृष्टः	(मैंने) देखा है,	अभावात्	नहीं होता (अतः)
भर्तुः	भार ढोकर	व्यवहारमार्गः	व्यवहारका मार्ग
गन्तुः	चलनेमें	समूल इष्टः	जड़ (कारण) सहित
भवतः च	आपको भी (होता		अभीष्ट है ॥२१॥
	होगा ऐसा)		

स्थाल्यग्नितापात्पयसोऽभिताप-

स्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरन्धिः ।

देहेन्द्रियास्वाशयसन्निकर्षात्

तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥२२॥

स्थालि अग्नि तापात् पयसः अभितापः तत् तापतः तण्डुल गर्भ
रन्धिः देह इन्द्रिय आस्व आशय सन्निकर्षात् तत् संसृतिः पुरुषस्य
अनुरोधात् ॥२२॥

स्थालि	वर्तनको	देह इन्द्रिय	(इसी प्रकार)
अग्नि तापात्	अग्निका ताप		शरीर, इन्द्रिय,
	लगनेसे	आस्व आशय	प्राण, अन्तःकरणकी
पयसः	(उसमें रखा) दूध	सन्निकर्षात्	सन्निकटतासे,
अभितापः	तप जाता है ।	तत् अनुरोधात्	उनके पीछे लगे
तत् तापतः	उस (दूध)के तपनेसे		होनेसे
गर्भ तण्डुल	उसके भीतरका	पुरुषस्य	पुरुष(आत्मा)का भी
	चावल	संसृतिः	आवागमन होता
रन्धिः	पक जाता है ।		है ॥२२॥

शास्ताभिगोप्ता नृपतिः प्रजानां

यः किङ्करो वै न पिनष्टि पिष्टम् ।

स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य

यदीहमानो विजहात्यघौघम् ॥२३॥

शास्ता अभिगोप्ता नृपतिः प्रजानां यः किङ्करः वै न पिनष्टि पिष्टं
स्वधर्म आराधनं अच्युतस्य यत् ईहमानः विजहाति अघ ओघम् ॥२३॥

नृपतिः	राजा	शास्ता	
प्रजानां	प्रजाका	अभिगोप्ता	शासक और रक्षक
			है ।

वै यः किङ्करः	निश्चय जो(प्रजाका) सेवक है ।	अच्युतस्य	भगवान्की
पिनष्टि		आराधनं	आराधना है,
पिष्टं न	(उसका प्रमत्तादिको दण्ड देना) पीसेको	यत् ईहमानः	जिसकी चेष्टा (पालन) करनेसे
	पीसना नहीं है ।	अघ ओघं	पाप-प्रवाहको
स्वधर्मम्	अपने धर्मका पालन	विजहाति	नष्ट कर देता है ॥२३॥

तन्मे भवान्नरदेवाभिमान-

मदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य ।

कृषीष्ट मैत्रीदृशमार्तबन्धो

यथा तरे सदवध्यानमंहः ॥२४॥

तत् मे भवान् नरदेव अभिमान मदेन तुच्छीकृत सत्तमस्य कृषीष्ट
मैत्री दृशं आर्तबन्धो यथा तरे सत् अवध्यानं अंहः ॥२४॥

आर्तबन्धो	दुःखीके बन्धु !	मैत्री दृशं	(अब आप अपनी) मित्रताकी दृष्टिसे
नरदेव		कृषीष्ट	कृपा कीजिए
अभिमान	राजा होनेके गर्वमें	यथा	जिससे
मदेन	उन्मत्त होकर	सत् अवध्यानं	सत् पुरुषके अपमानके
सत्तमस्य	(आप) सत्पुरुष- श्रेष्ठको	अंहः तरे	पापसे पार होऊँ ॥२४॥
मे तत्	मैंने इस प्रकार		
तुच्छीकृत	तुच्छ बनाया		

न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य

साम्येन वीताभिमतस्तवापि ।

महद्विमानात् स्वकृताद्धि मादृङ्

नङ्क्षत्यदूरादपि शूलपाणिः ॥२५॥

न विक्रिया विश्व सुहृत् सखस्य साम्येन वीत अभिमतेः तव अपि महत्
विमानात् स्वकृतात् हि मादृक् नङ्क्ष्यति अदूरात् अपि शूलपाणिः ॥२५॥

विश्व सुहृत्	विश्वके सुहृद (भगवान्)के	स्वकृतात् हि	अपने कर्मसे ही
सखस्य	सखा (निज-जन)	मादृक्	मेरे जैसे
वीत अभिमतेः	अभिमान रहित	शूलपाणिः	शिव जैसे (प्रभावशाली)
तव विक्रिया	आपमें विकार (क्रोध)	अपि	भी
न अपि	न होनेपर भी	अदूरात्	
महत्		नङ्क्ष्यति	शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥२५॥
विमानात्	महापुरुषोंके अप- मानरूप		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां

पञ्चमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच-

अकोविदः कोविदवादवादान्

वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ।

न सूरयो हि व्यवहारमेनं

तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥१॥

अकोविदः कोविदवाद वादान् वदसि अथो न अतिविदां वरिष्ठः
न सूरयः हि व्यवहारं एनं तत्त्व अवमर्शेन सह आमनन्ति ॥१॥

अकोविदः	अज्ञानी होकर	वरिष्ठः न	श्रेष्ठ नहीं हो ।
कोविदवाद	ज्ञानियोंकी चर्चाके	हि सूरयः	क्योंकि तत्त्वज्ञानी
	समान	एनं व्यवहारं	इस व्यवहारको
वादान्	तर्क-वितर्क	तत्त्व अवमर्शेन	तत्त्व-विचारके
वदसि	करते हो,	सह न	
अथो	अतः	आमनन्ति	साथ नहीं स्वीकार
अतिविदां	बहुज्ञ लोगोंमें		करते ॥१॥

तथैव राजन्नुरुगार्हमेध-

वितानविद्योरुविजृम्भितेषु ।

न वेदवादिषु हि तत्त्ववादः

प्रायेण शुद्धो नु चकास्ति साधुः ॥२॥

तथा एव राजन् उरु गार्हमेध वितान विद्या उरु विजृम्भितेषु न वेद-
वादिषु हि तत्त्ववादः प्रायेण शुद्धः नु चकास्ति साधुः ॥२॥

राजन्	राजन् !	वेदवादेषु हि	वैदिक-व्यवहारमें
तथा एव	इसी प्रकार		भी
उरु गार्हमेध	गृहस्थ-धर्म बहुल	प्रायेण	प्रायः
वितान विद्या	यज्ञ-विद्याके	शुद्धः तत्त्ववादः	शुद्ध तत्त्व-विचार
उरु		साधुः नु	भली प्रकार तो
विजृम्भितेषु	बहुत विस्तारसे भरे	न चकास्ति	नहीं प्रकाशित हुआ है ॥२॥

न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद्

वरीयसीरपि वाचः समासन् ।

स्वप्ने निरुक्तया गृहमेधिसौख्यं

न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥३॥

न तस्य तत्त्व ग्रहणाय साक्षाद् वरीयसीः अपि वाचः समासन् स्वप्ने निरुक्तया गृहं एधि सौख्यं न यस्य हेय अनुमितं स्वयं स्यात् ॥३॥

यस्य	जिसे	तत्त्व	तत्त्वज्ञान
गृहम्	गृहस्थोचित	गृहणाय	करानेमें
एधि	यज्ञादि कर्मोंसे प्राप्त होनेवाला	साक्षात्	साक्षात्
सौख्यं	स्वर्गादि सुख	स्वयं	स्वयं
स्वप्ने	स्वप्नके समान	निरुक्त्वा	उपनिषद्
हेय	त्यागने योग्य (हेय)	वाचः	वाक्य
अनुमितं	तुच्छ	वरीयसीः	श्रेष्ठ होनेपर
न	नहीं	अपि	भी
स्यात्	जान पड़ता (होवे)	समासन्	समर्थ
तस्य	उसे	न	नहीं है ॥३॥

यावन्मनो रजसा पूरुषस्य

सत्त्वेन वा तमसा वानुरुद्धम् ।

चेतोभिराकूतिभिरातनोति

निरङ्कुशं कुशलं चेतनं वा ॥४॥

यावत् मनः रजसा पुरुषस्य सत्त्वेन वा तमसा वा अनुरुद्धं चेतः अभिः
आकूतिभिः आतनोति निरंकुशं कुशलं च इतरं वा ॥४॥

यावत् पुरुषस्य	जब तक पुरुषका	अभिः	
मनः रजसा	मन रजोगुणके	आकूतिभिः	सब ओर ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियोंसे
वा सत्त्वेन	अथवा सत्त्वगुणके	कुशलं च	शुभ और
वा तमसा	अथवा तमोगुणके	अकुशलं	(अशुभ)
अनुरुद्धं	वशमें है,	वा इतरं	अथवा इनसे भिन्न (मनोराज्य)
चेतः निरंकुशं	(तब तक) चित्त बिना नियन्त्रण	आतनोति	फैलता रहता है ॥४॥

✓ स वासनात्मा विषयोपरक्तो

गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा ।

बिभ्रत्पृथङ्नामभि रूपभेद-

मन्तर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति ॥५॥

स वासनात्मा विषय उपरक्तः गुणप्रवाहः विकृतः षोडशात्मा बिभ्रत्
पृथक् नामभिः रूपभेदं अन्तः बहिष्ट्वं च पुरैः तनोति ॥५॥

स वासनात्मा	वह (मन) वासना- मय है,	रूपभेदं	
विषय उपरक्तः	विषयासक्त है,	बिभ्रत्	भिन्न-भिन्न रूप धारण करके
गुणप्रवाहः	गुणों (त्रिगुण)की धारामें ही रहता है,	अन्तः	भीतर (स्वप्नमें)
विकृतः	विकारी है,	च बहिष्ट्वं	और बाहर (संसारमें)
षोडशात्मा	पंचभूत तथा दस इन्द्रियोंमें मुख्य (सोलहवां) है ।	पुरैः	शरीर (रूप नगरों) को
पृथक् नामभिः	अलग-अलग नामोंसे	तनोति	फैलाता (शरीरका कारण होता है)॥५॥

दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं
कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति ।
आलिङ्ग्य मायारचितान्तरात्मा
स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूटः ॥६॥

दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं काल उपपन्नं फलं आव्यनक्ति
आलिङ्ग्य माया रचित अन्तरात्मा स्वदेहिनं संसृति चक्र कूटः ॥६॥

संसृति चक्र	संसार-चक्र (चलानेवाला)	दुःखं सुखं	दुःख-सुख
कूटः	यह छलनामय	च व्यतिरिक्तिं	तथा इनसे भिन्न (मोह रूप)
माया रचित	मायासे उत्पन्न	काल उपपन्नं	कालके अनुसार प्राप्त
अन्तरात्मा	मन	फलं	फलको
स्वदेहिनं	अपनी देहके अभि- मानी जीवसे	आव्यनक्ति	अभिव्यक्त करता है ॥६॥
आलिङ्ग्य	आलिङ्गन करके		

तावानयं व्यवहारः सदाविः
क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः ।
तस्मान्मनो लिङ्गमदो वदन्ति
गुणागुणत्वस्य परावरस्य ॥७॥

तावात् अयं व्यवहारः सदाविः क्षेत्रज्ञ साक्ष्यः भवति स्थूल सूक्ष्मः
तस्मात् मनः लिङ्गं अदः वदन्ति गुण अगुणत्वस्य पर अवरस्य ॥७॥

तावात्	तभी तक	व्यवहारः	व्यवहार
अयं	यह	क्षेत्रज्ञ	क्षेत्रज्ञ (जीव)का
स्थूल सूक्ष्मः	जाग्रत और स्वप्नका	साक्ष्यः	दृश्य
		सदाविः	सदा प्रकाशित

भवति	होता है ।	अगुणत्वस्य	गुणातीत श्रेष्ठ
तस्मात्	इसलिए	पर	(मोक्ष)का
गुण अवरस्य	त्रिगुणमय, होन (संसार)का	मनः लिंगं	मनको ही
		अदः	कारण
		वदन्ति	बतलाते हैं ॥७॥

गुणानुरक्तं व्यसनाय जन्तोः

क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात् ।

यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नन्

शिखाःसधूमा भजति ह्यन्यदा स्वम् ।

पदं तथा गुणकर्मानुबद्धं

वृत्तीर्मनः श्रयतेऽन्यत्र तत्त्वम् ॥८॥

गुण अनुरक्तं व्यसनाय जन्तोः क्षेमाय नैर्गुण्यं अथः मनः स्यात् यथा प्रदीपः घृतवर्तिमश्नन् शिखाः सधूमा भजति हि अन्यदा स्वं पदं तथा गुण कर्म अनुबद्धं वृत्तीः मनः श्रयते अन्यत्र तत्त्वम् ॥८॥

मनः	मन	अश्नन्	(जब तक) खाता है,
गुण अनुरक्तं	विषयासक्त रहनेपर	सधूमा शिखाः	धुएँके साथ लौ
जन्तोः		भजति	देता है
व्यसनाय	जीवके क्लेशका	हि	क्योंकि
	हेतु है	अन्यदा	अन्यथा (घी-बत्ती
अथः नैर्गुण्यं	और जब विषय		न होनेपर)
	रहित होता है		
क्षेमाय स्यात्	कल्याणका हेतु हो	स्व	अपने स्वरूप (अग्नि)
	जाता है		में रहता है,
यथा	जैसे	तथा	वैसे ही
प्रदीपः	दीपक	गुण कर्म	विषयों और कर्मके
घृतवर्ति	घी (से भीगी)	अनुबद्धं	साथ बँधा हुआ
	बत्तीको		

मनः वृत्तोः

श्रयते

अन्यत्र

मन वृत्तियोंका

आश्रय लेता है,

(गुण-कर्मके

तत्त्वं

आश्रयसे) पृथक्

आत्म-तत्त्वका

(आश्रय लेता

है) ॥८॥

एकादशासन्मनसो हि वृत्तयः

आकूतयः पञ्च धियोऽभिमानः ।

मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां

वदन्ति हैकादश वीर भूमिः ॥९॥

एकादश आसन् मनसः हि वृत्तयः आकूतयः पञ्च धियः अभिमानः
मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदन्ति ह एकादश वीर भूमिः ॥९॥

वीर

मनसः

एकादश

ह

वृत्तयः

आसन्

पञ्च आकूतयः

धियः

अभिमानः

वीरवर !

मनकी

ग्यारह (दस इन्द्रियां
तथा अहंकार)

निश्चित

वृत्तियां

हैं ।

पांच प्रकारके कर्म
हैं ।

बुद्धि और अभिमान,

मात्राणि

कर्माणि

च तासां पुरं

एकादश

ह भूमिः

वदन्ति

पञ्च-तन्मात्रामें

(शब्द-स्पर्शादि)

पांच प्रकारके कर्म,

और इनका नगर

(शरीर)

(इन) ग्यारहको

निश्चित आधार

(जन्मस्थान) कहते

हैं ॥९॥

गन्धाकृतिस्पर्शरसश्रवांसि

विसर्गैरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ।

एकादशं स्वीकरणं ममेति

शय्यामहं द्वादशमेक आहुः ॥१०॥

गन्ध आकृति स्पर्श रस श्रवांसि विसर्ग रति अर्त अभिजल्प शिल्पाः
एकादशं स्वीकरणं मम इति शय्यां अहं द्वादशं एक आहुः ॥१०॥

गन्ध आकृति	गन्ध, रूप	एकादशं	ग्यारहवां
स्पर्श रस	स्पर्श, रस	मम इति	ये मेरे हैं इस प्रकार
श्रवांसि	शब्द (ये पांच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय)	स्वीकरणं	(इन दसका) स्वीकार करना
विसर्ग	मल त्याग,	एक	कोई
रति	सम्भोग,	अहं	अहंकारको (तथा)
अर्त	गमन,	शय्यां	(उसके) आधार
अभिजल्प	बोलना,		(शरीर)को
शिल्पाः	शिल्प (व्यवहार- काम करना) (ये पांच कर्मेन्द्रियोंके विषय)	द्वादशं आहुः	(मनकी) बारहवीं वृत्ति कहते हैं ॥१०॥

द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालै-

रेकादशामी मनसो विकाराः ।

सहस्रशः शतशः कोटिशश्च

क्षेत्रज्ञतो न मिथो न स्वतः स्युः ॥११॥

द्रव्य स्वभाव आशय कर्म कालैः एकादश अमी मनसः विकाराः
सहस्रशः शतशः कोटिशः च क्षेत्रज्ञतः न मिथः न स्वतः स्युः ॥११॥

द्रव्य	विषय (पदार्थ)	मनसः	
स्वभाव	स्वभाव (द्रव्यके गुण)	विकाराः	मनके विकार (वृत्तियां)
आशय	आशय (संस्कार)	सहस्रशः	हजारों,
कर्म	क्रिया	शतशः	सैकड़ों,
कालैः	समय (के भेदसे)	च कोटिशः	और करोड़ों (हो जाती हैं, किन्तु)
अमी एकादश	ये ग्यारह		

क्षेत्रज्ञतः	क्षेत्रज्ञ (जीव)से	न स्वतः स्युः	न स्वतः (सत्) हैं ।
न मिथः	(ये) न मिली हैं,		(ये प्रतीति मात्र हैं) ॥११॥

क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूतो-

जीवस्य मायारचितस्य नित्याः ।

आविहिताः क्वापि तिरोहिताश्च

शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥१२॥

क्षेत्रज्ञ एता मनसः विभूतोः जीवस्य माया रचितस्य नित्याः आवि-
हिताः क्वापि तिरोहिताः च शुद्धः विचष्टे हि अविशुद्ध कर्तुः ॥१२॥

माया रचितस्य	माया-निर्मित	च तिरोहिताः	और (कभी) तिरो-
मनसः	मनकी		हित रहती है
एता	ये (वृत्तियां)	हि	क्योंकि
क्षेत्रज्ञ जीवस्य	क्षेत्रज्ञ जीवकी	कर्तुः अविशुद्ध	कर्ता (अहंकार)
नित्याः			अशुद्ध है
विभूतोः	(प्रवाह रूपसे)	शुद्धः विचष्टे	शुद्ध (क्षेत्रज्ञ द्रष्टा)
	नित्य विभूति है		साक्षीरूपसे देखता
क्वापि			रहता है ॥१२॥
आविहिताः	कभी प्रकट हो		
	जाती हैं		

✓

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः

साक्षात्स्वयं ज्योतिरजः परेशः ।

नारायणो भगवान् वासुदेवः

स्वमाययाऽऽत्मन्यवधीयमानः ॥१३॥

क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात् स्वयं ज्योतिः अजः परेशः
नारायणः भगवान् वासुदेवः स्वमायया आत्मनि अवधीयमानः ॥१३॥

क्षेत्रज्ञ	(यही) क्षेत्रज्ञ	भगवान्	
आत्मा	आत्मा	वासुदेवः	भगवान् वासुदेव हैं
पुराणः पुरुषः	सनातन पुरुष	स्वमायया	अपनी मायासे
साक्षात् स्वयं		आत्मनि	अपनेमें ही
ज्योतिः	साक्षात् स्वयं प्रकाश	अवधीयमानः	(जगतकी) अव-
अजः परेशः	अजन्मा, सर्वेश्वर,		धारणा (कल्पना)
नारायणः	नारायण		करते हैं ॥१३॥

यथानिलः स्थावरजङ्गमाना-

मात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ।

एवं परो भगवान् वासुदेवः

क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ॥१४॥

यथा अनिलः स्थावर जङ्गमानां आत्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् एवं परः भगवान् वासुदेवः क्षेत्रज्ञ आत्मा इदं अनुप्रविष्टः ॥१४॥

यथा अनिलः	जैसे वायु	एवं परः	इसी प्रकार परम-
स्थावर			पुरुष
जङ्गमानां	अचर-चर (प्राणियोंमें)	भगवान्	
आत्मस्वरूपेण	उनके अपने स्वरूपमें	वासुदेवः	भगवान् वासुदेव
निविष्ट	प्रवेश करके	क्षेत्रज्ञ आत्मा	क्षेत्रज्ञ आत्मा रूपसे
ईशेत्	उनका सञ्चालन करता है,	इदं	इस संसारमें
		अनुप्रविष्टः	सर्वत्र प्रविष्ट हैं ॥१४॥

न यावदेतां तनुभृन्नरेन्द्र

विधूय मायां वयुनोदयेन ।

विमुक्तसङ्गो जितषट्सपत्नो

वेदात्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत् ॥१५॥

न यावत् एतां तनुभृत् नरेन्द्र विधूय मायां वयुना उदयेन विमुक्त
सङ्गः जितषट्सपत्नः वेद आत्मतत्त्वं भ्रमति इह तावत् ॥१५॥

नरेन्द्र	राजन् !	एतां मायां	इस मायाको
यावत्	जब तक	विधूय	नष्ट करके
तनुभृत्	शरीरधारी (पुरुष)	आत्मतत्त्वं	आत्मतत्त्वको
जितषट्-		न वेद	नहीं जानता,
सपत्नः	(कामादि) छोड़ो	इह तावत्	इस संसारमें
	शत्रुओंको जीतकर		तब तक
विमुक्त सङ्गः	आसक्तिका त्याग	भ्रमति	(जन्म-मरण चक्रमें)
	करके		धूमता है ॥१५॥
वयुना उदयेन	ज्ञानोदयसे		

न यावदेतन्मन आत्मलिङ्गं

संसारतापावपनं जनस्य ।

यच्छोकमोहामयरागलोभ-

वैरानुबन्धं ममतां विधत्ते ॥१६॥

न यावत् एतत् मनः आत्मलिङ्गं संसार ताप आवपनं जनस्य यत्
शोक मोह आमयराग लोभ वैर अनुबन्धं ममतां विधत्ते ॥१६॥

यावत्	जब तक	यत्	क्योंकि
एतत् आत्म-		शोक मोह	शोक, मोह,
लिङ्गं	इस आत्माके चिह्न	आमयराग	रोग, राग,
	(उपाधि)	लोभ	
मनः	मनको	वैर अनुबन्धं	लोभ, शत्रुता (तथा)
जनस्य	पुरुषके लिए	ममतां	ममताको
संसार ताप	संसारके संतापोंका	विधत्ते	(यह मन ही) उत्पन्न
आवपनं	बोनेवाला		करता है ॥१६॥
न	नहीं (जानलेता)		

भ्रातृव्यमेनं तददभ्रवीर्य-

मुपेक्षयाध्येधितमप्रमत्तः ।

गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो

जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम् ॥१७॥

भ्रातृव्यं एनं तत् अदभ्रवीर्यं उपेक्षया एधितं अप्रमत्तः गुरोः हरेः
चरण उपासन अस्त्रः जहि व्यलीकं स्वयं आत्ममोषम् ॥१७॥

भ्रातृव्यम्	भाई !	अप्रमत्तः	प्रमादहीन होकर
तत्	अतः	गुरोः हरेः	गुरुदेव तथा
अदभ्रवीर्यं	अत्यन्त बलवान्	श्रीहरिके	
उपेक्षया	(तुम्हारी) उपेक्षासे	चरण उपासन	चरणोंकी उपासना
एधितं	बढ़ हुए	रूपी	
व्यलीकं	मिथ्या (असत्)	अस्त्रः	अस्त्रसे
स्वयं आत्म-	स्वयं आत्माको	जहि	मार डालो ॥१७॥
मोषं	चुराने (ढकने) वाले		
एनं	इस मनको		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे

ब्राह्मणरहूगण सम्वादे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

बृहस्पति उवाच-

नमो नमः कारणविग्रहाय
स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ।
नमोऽवधूत द्विजबन्धुलिङ्ग-
निगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥१॥

नमो नमः कारणविग्रहाय स्वरूप तुच्छीकृतविग्रहाय नमः अवधूत
द्विजबन्धु लिङ्ग निगूढ नित्य अनुभवाय तुभ्यम् ॥१॥

कारण- विग्रहाय	(जीवोंका उद्धार करनेके लिए) सका- रण शरीर धारण किए	नमो नमः (आपको) बार-बार नमस्कार अवधूत मलिनवेष द्विजबन्धु लिङ्ग उपेक्षणीय ब्राह्मण वेशमें
स्वरूप	(अपने) स्वरूपके अनुभवसे	निगूढ नित्य अनुभवाय अपने नित्य अनुभव रूपको छिपाये
तुच्छीकृत- विग्रहाय	स्थूल शरीरको तुच्छ मानने वाले	तुभ्यं नमः आपको नमस्कार ॥१॥

ज्वरामयार्तस्य यथागदं सत्
निदाघदग्धस्य यथा हिमाम्भः ।

कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेः

ब्रह्मन् वचस्तेऽमृतमौषधं मे ॥२॥

ज्वर आमय आर्तस्य यथा अगदं सत् निदाघदग्धस्य यथा हिम अम्भः
कुदेहमान अहि विदष्ट दृष्टेः ब्रह्मन् वचः ते अमृतं औषधं मे ॥२॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	कुदेहमान	
यथा	जैसे	अहि	इस बुरे शरीरके अभिमान रूपी सर्पसे
ज्वर आमय	ज्वर-रोगसे	विदष्ट दृष्टेः	डँसी दृष्टि (विवेक- बुद्धि)
आर्तस्य	पीड़ितके लिए	मे	मेरे लिए
सत् अगदं	अच्छी औषधि हो,	ते वचः	आपके वचन
यथा	जैसे	अमृतं औषधं	अमृतमय औषधि
निदाघदग्धस्य	गर्मीसे संतप्तके लिए		हैं ॥२॥
हिम अम्भः	शीतल जल हो,		

तस्माद्भवन्तं मम संशयार्थम्
प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ।
अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्त-
माख्याहि कौतूहलचेतसो मे ॥३॥

तस्मात् भवन्तं मम संशय अर्थं प्रक्ष्यामि पश्चात् अधुना सुबोधं
अध्यात्मयोग ग्रथितं तव उक्तं आख्याहि कौतूहल चेतसः मे ॥३॥

तस्मात्	इसलिए	ग्रथितं	संयुक्त
भवन्तं	आपसे	तव उक्तं	आपने जो कहा
मम संशय अर्थं	अपने संशयको (दूर करनेके)लिए	सुबोधं	सरलतासे समझमें आने
पश्चात्		आख्याहि	(इस प्रकार उसे)
प्रक्ष्यामि	पीछे पूछूंगा,	मे चेतसः	कहिए,
अधुना	इस समय	कौतूहल	मेरे चित्तमें
अध्यात्म-योग	अध्यात्म-योगसे		उत्सुकता है ॥३॥

यदाह योगेश्वर दृश्यमानं
क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम् ।
न ह्यञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय
भवानमुष्मिन् भ्रमते मनो मे ॥४॥

यत् आह योगेश्वर दृश्यमानं क्रियाफलं सत् व्यवहार मूलं न हि
अञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय भवान् अमुष्मिन् भ्रमते मनः मे ॥४॥

योगेश्वर	योगेश्वर !	अञ्जसा	सरलतासे
भवान्	आपने	तत्त्वविम-	
यत्	जो	र्शनाय न	तत्त्व विचारके लिए
दृश्यमानं	(प्रत्यक्ष) दिखलाई		(उपयुक्त) नहीं
	देनेवाला	आह	कहा
सत् व्यवहार	अच्छे व्यवहारकी	अमुष्मिन्	इस विषयमें
मूलं	जड़ (कारण)	मे मनः	मेरा मन
क्रियाफलं	कर्मका फल	भ्रमते	भटक रहा है ॥४॥
हि	क्योंकि		

ब्राह्मण उवाच-

अयं जनो नाम चलन् पृथिव्यां
यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ।
तस्यापि चाङ्घ्रिर्धौ गुल्फजङ्घा-
जानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥५॥

अयं जनः नाम चलन् पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः
तस्य अपि च अङ्घ्रिर् अधि गुल्फ जङ्घा जानु उरु मध्य उर शिरः
अधर अंसाः ॥५॥

पार्थिव	राजन्	यः	जो
अयं जनः नाम	यह मनुष्य कहा	पृथिव्यां चलन्	पृथ्वीपर चलता है,
	जानेवाला	कस्य हेतोः	किस कारणसे

पार्थिवः	पृथ्वी-तत्त्वसे बने (पाषाणादि)से भिन्न है ?	जङ्घा जानु उरु मध्य	पिण्डलियां, घुटने जाँघें, बीचका भाग (कटि)
तस्य अपि च अङ्घ्रि अधि गुल्फ	उसके भी तो पैरोंके ऊपर टखने,	उरः शिरः अधर अंसाः	वक्षस्थल, शिर गर्दन, कन्धे हैं ॥५॥

अंसेऽधि दावीं शिबिका च यस्यां
सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते ।

यस्मिन् भवान् रूढनिजाभिमानो
राजास्मि सिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ॥६॥

अंसे अधि दावीं शिबिका च यस्यां सौवीरराज इति अपदेश आस्ते
यस्मिन् भवान् रूढ निज अभिमानः राजा अस्मि सिन्धुषु इति दुर्मद
अन्धः ॥६॥

अंसे	कन्धेपर	निज	
दावीं शिबिका	लकड़ीकी पालकी	अभिमानः	निजत्वका अभिमान
अधि	रखी है	रूढ	करके
च यस्यां	और जिसमें	सिन्धुषु राजा	
सौवीरराज	सौवीरराज	अस्मि	(मैं) सिन्धका राजा
इति अपदेश	इस नामका		हूँ
आस्ते	(एक शरीर) बैठा है,	इति दुर्मद	इस प्रकारके बुरे गर्वसे
यस्मिन्	जिसमें	अन्धः	अन्धे (विवेकहीन)
भवान्	आप		हो रहे हैं ॥६॥

शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान्
विष्टया निगृह्णन्निरनुग्रहोऽसि ।

जनस्य गोप्तास्मि विकत्थमानो
न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥७॥

शोच्यान् इमान् त्वं अधिकष्ट दीनान् विष्ट्या निगृह्णन् निरनुग्रहः
असि जनस्य गोप्ता अस्मि विकथ्यमानः न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥७॥

इमान्	इन	असि	हो ।
शोच्यान्	शोचनीय (बेचारे)	जनस्य गोप्ता	लोगोंका रक्षक
अधिकष्ट	कष्ट पाते	अस्मि	हूँ (ऐसी)
दीनान्	दीन (कहारों) को	विकथ्यमानः	बकवाद करते हुए
विष्ट्या	बेगारमें	धृष्टः	ढीठ होनेसे
निगृह्णन्	पकड़कर लगाये	वृद्धसभासु	बड़ोंकी सभामें
त्वं	तुम	न शोभसे	शोभित नहीं
निरनुग्रहः	अनुग्रह हीन (क्रूर)		होते ॥७॥

यदा क्षितावेव चराचरस्य
विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ।

तन्नामतोऽन्यद् व्यवहारमूलं
निरूप्यतां सत् क्रिययानुमेयम् ॥८॥

यदा क्षिताः एव चर अचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यं तत्
नामतः अन्यत् व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत् क्रियया अनुमेयम् ॥८॥

यदा	जब	अनुमान किये
क्षिताः एव	पृथ्वीको ही	जानेवाले
चर अचरस्य	जङ्गम-जड़के	नामतः अन्यत् नाम (भेदको)
निष्ठां	रहने	छोड़कर
च प्रभवं	तथा उत्पत्तिका	व्यवहारमूलं व्यवहारका कारण
नित्यं निष्ठां	नित्य स्थान	सत् सत्-वस्तु
विदाम	हम जानते हैं	निरूप्यतां निरूपित करो
तत्	तब	(बतलाओ) ॥८॥
क्रियया		
अनुमेयं	(उनकी) क्रियासे	

एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्त-
 मसन्निधानात्परमाणवो ये ।
 अविद्यया मनसा कल्पितास्ते
 येषां समूहेन कृतो विशेषः ॥६॥

एवं निरुक्तं क्षितिशब्द वृत्तं असत् निधानात् परमाणवः ये अविद्यया
 मनसा कल्पिताः ते येषां समूहेन कृतः विशेषः ॥६॥

एवं निरुक्तं	इस प्रकार कहा गया	येषां समूहेन विशेषः कृतः	जिनके समूहसे पृथ्वी बनी है,
क्षितिशब्द वृत्तं	पृथ्वी शब्दका हाल भी	ये परमाणवः अविद्यया	वे जो परमाणु हैं अविद्यासे
असत्		ते मनसा	
निधानात्	असत् उत्पत्ति ही है ।	कल्पिताः	वे मनःकल्पित हैं ॥६॥

एवं कृशं स्थूलमणुर्बृहद्यद्
 असच्च सञ्जीवमजीवमन्यत् ।

द्रव्यस्वभावाशयकालकर्म-

नाम्नाजयावेहि कृतं द्वितीयम् ॥१०॥

एवं कृशं स्थूलं अणुः बृहत् यत् असत् च सञ्जीवं अजीवं अन्यत् द्रव्य
 स्वभाव आशय काल कर्म नाम्ना अजया अवेहि कृतं द्वितीयम् ॥१०॥

एवं	इसी प्रकार	अजीवं	निर्जीव,
कृशं स्थूलं	दुबला-मोटा	अन्यत्	इनसे भिन्न
अणुः बृहत्	छोटा-बड़ा,	द्रव्य स्वभाव	द्रव्य (पदार्थ)
यत्	जो है,		स्वभाव (गुण)
असत् च	असत् ही है ।	आशय	अन्तःकरण,
सञ्जीवं।	जीवन वाले,	काल कर्म	काल कर्म

नाम्ना	नामसे	द्वितीयं	(समस्त) द्वैत
अजया कृतं	माया कृत	अवेहि	प्रपञ्च
			जानो ॥१०॥

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेक-
मनन्तरं स्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं
यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥११॥

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थं एकं अनन्तरं स्वबहिः ब्रह्म सत्यं प्रत्यक् प्रशान्तं
भगवत् शब्द संज्ञं यत् वासुदेवं कवयः वदन्ति ॥११॥

विशुद्धं ज्ञानं	विशुद्ध ज्ञान	प्रत्यक्	(वही) अन्तर्यामी
परमार्थं	परमार्थ स्वरूप,	प्रशान्तं	प्रशान्त
एकं	अद्वितीय	भगवत् शब्द	
अनन्तरं	अन्तर (भीतर- बाहर)के भेदसे रहित	संज्ञं	भगवान् शब्दसे कहा जाता है ।
स्वबहिः	अपनेसे बाहर	यत् कवयः	जिसे विद्वान्
ब्रह्म सत्यं	ब्रह्म रूपसे सत्य है ।	वासुदेवं वदन्ति	वासुदेव कहते हैं ॥११॥

रहूगणैतत्तपसा न याति
न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद्वा ।
नच्छन्दसा नैव जलाग्निसूर्य-
विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥१२॥

रहूगण एतत् तपसा न याति न च ईज्यया निर्वपणाद् गृहात् वा न
छन्दसा न एव जल अग्नि सूर्यैः विना महत् पादरजः अभिषेकम् ॥१२॥

रहूगण	राजा रहूगण !	पादरजः	चरण-धूलिमें
महत्	महापुरुषाकी	अभिषेकं विना	स्नान किये बिना

एतत्	इसको	छन्दसा न	वेदाध्ययनसे नहीं,
तपसा न यति	तपस्यासे नहीं	जल अग्नि	
	पहुँचता	सूर्यः	जल, अग्नि, सूर्य
च ईज्यया न	और यज्ञसे भी		(की उपासना) से
	नहीं,	न	नहीं (पा
निर्वपणात्	(अन्नादि पुण्य)		सकता) ॥१२॥
	बोने (करने)से,		
वा गृहात्	अथवा गृहस्थ-धर्म-		
	पालनसे,		

यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः

प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ।

निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षो-

मर्तिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥१३॥

यत्र उत्तमश्लोक गुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्य कथा विघातः निषेव्य-
माणः अनुदिनं मुमुक्षुः मर्तिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥१३॥

यत्र	जहाँ (महापुरुषोंके समीप)	निषेव्यमाणः	उसका भली प्रकार सेवन करनेसे
ग्राम्य कथा	विषय-चर्चाको	मुमुक्षुः	मुक्त होनेकी इच्छा- वालेको
विघातः	नष्ट करनेवाला	वासुदेवे	भगवान् वासुदेवमें
उत्तमश्लोक	पवित्र-कीर्ति (भगवान्)का	सतीं मर्तिं	शुद्ध-बुद्धि
गुणानुवादः	गुण वर्णन	यच्छति	(वह चर्चा) प्रदान करती है ॥१३॥
प्रस्तूयते	होता रहता है ।		
अनुदिनं	प्रतिदिन		

अहं पुरा भरतो नाम राजा

विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ।

**आराधनं भगवत ईहमानो
मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ॥१४॥**

अहं पुरा भरतः नाम राजा विमुक्त दृष्टश्रुत सङ्गबन्धः आराधनं
भगवत ईहमानः मृगः अभवं मृगसङ्गात् हतार्थः ॥१४॥

पुरा अहं	पहिले मैं	भगवत	
भरतः नाम		आराधनं	भगवान्की आरा-
राजा	भरत नामका राजा		धना की,
	था ।	ईहमानः	चेष्टाकर रहा था,
दृष्टश्रुत	देखे (लौकिक) सुने		किन्तु
	(स्वर्गादि)की	मृगसङ्गात्	मृगमें आसक्ति
			होनेसे
सङ्गबन्धः	आसक्ति रूपी	हतार्थः	परमार्थ नष्ट होकर
	बन्धनसे	मृगः अभवं	(मैं) मृग हो
विमुक्त	छूट गया था ।		गया ॥१४॥

**सा मां स्मृतिमृगदेहेऽपि वीर
कृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति ।**

**अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो
विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि ॥१५॥**

सा मां स्मृतिः मृगदेहे अपि वीर कृष्णार्चन प्रभवा नो जहाति अथो
अहं जनसङ्गात् असङ्गः विशङ्कमानः अविवृतः चरामि ॥१५॥

वीर	वीरवर !	सा स्मृतिः	उस (पूर्व-जन्मकी)
कृष्णार्चन	भगवान् श्रीकृष्णकी		स्मृतिने
	पूजासे	मृगदेहे अपि	मृग शरीरमें होने-
			पर भी
प्रभवा	उत्पन्न	मां नो जहाति	मुझे नहीं छोड़ा

अथो अहं	अतः मैं	असङ्गः	असंग भावसे
जनसङ्गात्	लोगोंके साथसे	अविवृतः	गुप्त रूपसे
विशङ्कमानः	आशंकित होकर	चरामि	घूमता हूँ ॥१५॥

तस्मान्नरोऽसङ्गमुसङ्गजात-

ज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ।

हरिं तदीहाकथनश्रुताभ्यां

लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः ॥१६॥

तस्मात् नरः असङ्ग मुसङ्ग जात ज्ञान असिना हि एव विवृक्णमोहः
हरिं तत् ईहा कथन श्रुताभ्यां लब्धस्मृतिः याति अतिपारं अध्वनः ॥१६॥

तस्मात्	इसलिए	हरिं	श्रीहरिकी
नरः	मनुष्य	तत् ईहा	उस लीला
असङ्ग	आसक्तिहीन	कथन	वर्णन और
मुसङ्ग	सत्पुरुषोंके संगसे	श्रुताभ्यां	श्रवणसे
जात	उत्पन्न	लब्धस्मृतिः	भगवत्स्मृति पाकर
ज्ञान असिना		अध्वनः	(आवागमनके)
हि एव	ज्ञान रूपी तलवारसे		मार्गसे
	ही	अतिपारं	सर्वथा पार
विवृक्णमोहः	मोहको काटकर	याति	पहुँचता है ॥१६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरहूगण संवादे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

ब्राह्मण उवाच-

दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो

रजस्तमःसत्त्वविभक्तकर्मदृक् ।

स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन्

भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥ १ ॥

दुरत्यये अध्वनि अजया निवेशितः रजः तमः सत्त्वविभक्त कर्मदृक्
स एष सार्थः अर्थपरः परिभ्रमन् भव अटवीं याति न शर्म विन्दति ॥१॥

अजया	माया द्वारा	अर्थपरः	धन-लोलुप
दुरत्यये	दुष्पार	सार्थः	(अनेक स्थानोंमें)
अध्वनि	मार्गमें		घूमकर व्यापार
निवेशितः	प्रविष्ट कराये		करनेवाला
	जाकर	परिभ्रमन्	चारों ओर घूमता
रजः तमः	रजोगुण, तमोगुण	भव अटवीं	संसार रूप वनमें
सत्त्वविभक्त	सत्त्वगुणमें बँटे	याति	पहुँचता है ।
कर्मदृक्	कर्मोंपर दृष्टि	शर्म न	शान्ति नहीं
	रखकर	विन्दति	पाता ॥१॥
स एष	वह यह		

यस्यामिमे षण्णरदेव दस्यवः

सार्थं बिलुम्पन्ति कुनायकं बलात् ।

गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं

प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः ॥२॥

यस्यां इमे षट् नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात्
गोमायवः यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तं आविश्य यथा उरणं वृकाः ॥ २ ॥

नरदेव	राजन् !	यत्र	जहाँ
यस्यां	जिस (वन)में	आविश्य	प्रवेश करके
इमे षट्	ये छः	यथा वृकाः	जैसे भेड़िये
दस्यवः	डाकू	उरणं	भेड़ोंको (उठा ले
कुनायकं	दुष्ट नायक वाले		जाते हैं)
सार्थं	व्यापारीको	प्रमत्तं सार्थिकं	असावधान व्या-
बलात्	बलपूर्वक		पारीका
विलुम्पन्ति	लूट लेते हैं ।	हरन्ति	हरण कर लेते
गोमायवः	शृगाल		हैं ॥२॥

प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे

कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः ।

क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति

क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम् ॥३॥

प्रभूत वीरुत् तृण गुल्म गह्वरे कठोरदंशैः मशकैः उपद्रुतः क्वचित् तु
गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित् क्वचित् आशुरयः उत्मुकग्रहम् ॥३॥

प्रभूत	बहुत अधिक	गन्धर्वपुरं	गन्धर्व नगर
वीरुत् तृण	पौधे, घास	प्रपश्यति	देखता है,
गुल्म	झाड़ियोंसे	क्वचित्	
गह्वरे	(उस) सधन (वन)में	क्वचित् तु	कभी-कभी तो
कठोरदंशैः	तोक्षण डाँस,	आशुरयः	बहुत वेगवान
मशकैः	मच्छरोंसे	उत्मुकग्रहं	अगिया-वैताल
उपद्रुतः	पीड़ित होता		(दोखता है) ॥३॥
क्वचित्	कभी		

निवासतोयद्रविणात्मबुद्धि-

स्तस्ततो धावति भो अटव्याम् ।

क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रा

दिशो न जानाति रज स्वलाक्षः ॥ ४ ॥

निवास तोय द्रविण आत्मबुद्धिः ततः ततः धावति भो अढव्यां
क्वचित् च वात्या उत्थित पांसु धूम्रा दिशः न जानाति रज स्वल अक्षः ॥४॥

निवास	ठहरनेके स्थान	वात्या उत्थित	बवण्डरसे उठी
तोय द्रविण	जल तथा धनको	पांसु	धूलिसे
आत्मबुद्धिः	अपना स्वरूप	धूम्रा दिशः	धुंधली दिशाओंको
	मानकर	रज स्वल अक्षः	आँखोंमें धूलि भर
ततः ततः	जहाँ-तहाँ		जानेसे
भो अढव्यां	इस वनमें	न जानाति	नहीं जानता ॥४॥
धावति	दौड़ता रहता है ।		
च क्वचित्	और कभी		

अदृश्यश्चिल्लोस्वनकर्णशूल

उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा ।

अपुण्यवृक्षान् श्रयते क्षुधादितो

मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ॥५॥

अदृश्यश्चिल्लोस्वन कर्णशूल उलूक वाग्भिः व्यथित अन्तरात्मा
अपुण्य वृक्षान् श्रयते क्षुधा अदितः मरीचि तोयान् अभिधावति
क्वचित् ॥५॥

अदृश्य	दिखायी न देनेवाले	क्षुधा अदितः	भूखसे पीड़ित होकर
कर्णशूल	कर्ण-कटु	अपुण्य वृक्षान्	अपवित्र वृक्षोंका
श्चिल्लोस्वन	झींगुरोंका शब्द	श्रयते	आश्रय लेता है,
	और	क्वचित्	कभी
उलूक	उल्लूकी	मरीचि तोयान्	किरणोंमें दीखने-
वाग्भिः	बोलीसे		वाले जलकी ओर
अन्तरात्मा		अभिधावति	दौड़ता है ॥५॥
व्यथित	(उसका) चित्त		
	दुःखी होता है ।		

क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति
 परस्परं चालषते निरन्धः
 आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो
 निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हतासुः ॥६॥

क्वचित् वितोयाः सरितः अभियाति परस्परं च आलषते निरन्धः
 आसाद्य दावं क्वचिद् अग्नितप्तः निर्विद्यते क्व च यक्षैः हत असुः ॥६॥

क्वचित्	कभी	दावं आसाद्य	दावानलमें पहुँचकर
वितोयाः	जलहीन	अग्नितप्तः	अग्निसे संतप्त
सरितः	नदियों		होता है,
अभियाति	की ओर जाता है,	क्व च	कभी
निरन्धः	अन्न न मिलनेपर	यक्षैः	यक्षों द्वारा
परस्परं च	आपसमें ही	हत असुः	प्राण हरण होते
आलषते	(अन्न) पाना		(देखकर)
	चाहता है ।	निर्विद्यते	खिन्न हो जाता
क्वचित्	कभी		है ॥६॥

शूरैर्हतस्वः क्व च निर्विण्णचेताः
 शोचन् विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम् ।
 क्वचिच्च गन्धर्वपुरं प्रविष्टः
 प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्तम् ॥७॥

शूरैः हत स्वः क्व च निर्विण्ण चेताः शोचन् विमुह्यन् उपयाति
 कश्मलं क्वचित् च गन्धर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवत् मुहूर्तम् ॥७॥

क्व च	कभी	विमुह्यन्	मोहग्रस्त हो
शूरैः	बलवानों द्वारा	कश्मलं	मूर्छामें
स्वः हतः	स्वत्व हरण होनेपर	उपयाति	पहुँच जाता
निर्विण्ण चेताः	दुःखी-चित्त		है
शोचन्	शोक करते,		

च क्वचित्	और कभी	मुहूर्त	घण्टे भर
गन्धर्वपुरं	गन्धर्व नगरमें	प्रमोदते	आनन्द मनाता
प्रविष्टः	प्रवेश करके		है ॥७॥
निवृत्तवत्	दुःखोंसे मुक्तकी		
	भाँति		

चलन् क्वचित्कण्टकशर्कराङ्घ्रि-
नगारुरुक्षुविमना इवास्ते ।

पदे पदेऽभ्यन्तरवह्निनादितः
कौटुम्बिकः क्रुध्यति वै जनाय ॥८॥

चलन् क्वचित् कण्टक शर्करा अङ्घ्रि नग आरुरुक्षुः विमना इव आस्ते
पदे पदे अभ्यन्तर वह्निना अदितः कौटुम्बिकः क्रुध्यति वै जनाय ॥८॥

क्वचित्	कभी	अभ्यन्तर	(अपने) भीतरकी
नग आरुरुक्षुः	पर्वतपर चढ़ना	वह्निना	आग (भूख)से
	चाहता है तो	अदितः	पीड़ित
कण्टक शर्करा	काँटे-कंकड़	कौटुम्बिकः	कुटुम्बवान होनेसे
अङ्घ्रिः	पैरमें चुभनेसे	वै जनाय	अपने ही लोगोंपर
विमना इव	उदास-सा	क्रुध्यति	क्रोध करता
आस्ते	हो जाता है ।		है ॥८॥
पदे पदे	पद-पदपर		

क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो
नावेति किञ्चिद्विपिनेऽपविद्धः ।

दष्टः स्म शेते क्व च दन्दशूकै-
रन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिस्त्रे ॥९॥

क्वचित् निगीर्णः अजगर अहिना जनः न अवेति किञ्चित् विपिने
अपविद्धः दष्टः स्म शेते क्व च दन्द शूकैः अन्धः अन्धकूपे पतितः
तमिस्त्रे ॥९॥

क्वचित्	कभी	अवेति	जानता ।
अजगर अहिना	अजगर सर्प द्वारा	क्व च	कभी
निगीर्णः	निगल लिये जानेपर	दन्द शूकैः	डँसने वालोंसे
विपिने	वनमें	दष्टः स्म	डँसे जानेपर
अपविद्धः	फेंकें के समान	तमिस्रे	अन्धकार पूर्ण
जनः	मनुष्य	अन्धकूपे	अन्धे कुएँमें
किञ्चित् न	कुछ भी नहीं	अन्धः	अन्धा होकर
		पतितः	गिरता है ॥६॥

कहि स्म चित्क्षुद्ररसान् विचिन्वं-

स्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः ।

तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो

बलाद्विलुम्पन्त्यथ तं ततोऽन्ये ॥१०॥

कहि स्म चित् क्षुद्ररसान् विचिन्वन् तत् मक्षिकाभिः व्यथितः विमानः
तत्र अतिकृच्छ्रात् प्रतिलब्धमानः बलात् विलुम्पन्ति अथ तं ततः
अन्येः ॥१०॥

कहि स्म चित्	किसी समय	अतिकृच्छ्रात्	बड़े कष्टसे
क्षुद्ररसान्	शहद	प्रतिलब्धमानः	(जो कुछ) पाता है
विचिन्वन्	ढूँढ़ते समय	तं	उसे
तत्	उस (शहद)की	अथ बलात्	फिर बलपूर्वक
मक्षिकाभिः	मक्खियों द्वारा	विलुम्पन्ति	(कोई) लूट लेते हैं,
व्यथितः	पीड़ित होकर	ततः अन्ये	उन (लूटने
विमानः	गलित अभिमान		वालों)से
	हो जाता है	अन्ये	दूसरे (लूट लेते
तत्र	वहाँ		हैं ।) ॥१०॥

क्वचिच्च शीतातपवातवर्ष-

प्रतिक्रियां कर्तुमनीश आस्ते ।

**क्वचिन्मिथो विपणन् यच्च किञ्चित्
विद्वेषमृच्छत्युत वित्तशाठ्यात् ॥११॥**

क्वचित् च शीत आतप वात वर्ष प्रतिक्रियां कर्तुं अनीश आस्ते
क्वचित् मिथः विपणन् यत् च किञ्चित् विद्वेषं ऋच्छति उत वित्त-
शाठ्यात् ॥११॥

क्वचित् च	कभी तो	मिथः विपणन्	परस्पर उसका
शीत आतप	सर्दी-गर्मी		व्यापार करनेमें
वात वर्ष	आँधी, वर्षाका		
प्रतिक्रियां	प्रतिकार (निवारण)	वित्तशाठ्यात्	धनकी शठता
कर्तुं	करनेमें		(कृपणता)से
अनीश आस्ते	असमर्थ हो जाता है,	उत	उनसे ही
क्वचित्	कभी	विद्वेषं	शत्रुता
यत् च	जो भी	ऋच्छति	ठान लेता है ॥११॥
किञ्चित्	कुछ (पास)		
	है,		

**क्वचित्क्वचित्क्षीणधनस्तु तस्मिन्
शय्यासनस्थानविहारहीनः ।**

**याचन् परादप्रतिलब्धकामः
पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥१२॥**

क्वचित् क्वचित् क्षीण धनः तु तस्मिन् शय्याआसन स्थान
विहार हीनः याचन् परात् अप्रतिलब्ध कामः पारक्यदृष्टिः लभते
अवमानम् ॥१२॥

क्वचित्	कभी-	तस्मिन्	उस (वन)में
क्वचित्	कभी	शय्या आसन	शय्या, आसन,
क्षीण धनः तु	धन नष्ट हो	स्थान विहार	रहनेके स्थान,
	जानेपर तो		आमोद प्रमोदसे

हीनः	रहित होकर	पारक्यदृष्टिः	परायी वस्तुपर
परात् याचन्	दूसरोंसे माँगनेपर		दृष्टि रखनेसे
कामः	कामनाके अनुसार	अवमान	अपमान
अप्रतिलब्ध	न मिलनेसे	लभते	पाता
			है ॥१२॥

अन्योन्यवित्तव्यतिषङ्गवृद्ध-

वैरानुबन्धो विवहन्मिथश्च ।

अध्वन्यमुष्मिन्नुत्कृच्छ्रवित्त-

बाधोपसर्गैर्विहरन् विपन्नः ॥१३॥

अन्योन्य वित्तव्यतिषङ्ग वृद्ध वैर अनुबन्धः विवहन् मिथः च अध्वनि
अमुष्मिन् उत्कृच्छ्र वित्तबाध उपसर्गैः विहरन् विपन्नः ॥१३॥

वित्तव्यतिषङ्गः	धनकी आसक्तिसे	उत्कृच्छ्र	भारी कष्ट तथा
अन्योन्य	परस्पर	वित्तबाध	धनकी बाधा आदि
वैर अनुबन्ध	शत्रुताका भाव	उपसर्गैः	संकटोंको
वृद्ध	बढ़ जानेपर भी	विहरन्	झेलता हुआ
मिथः च	आपसमें ही	विपन्नः	मृतवत् हो जाता
विवहन् च	विवाह करते हैं,		है ॥१३॥
अमुष्मिन्	इस		
अध्वनि	मार्गमें		

तांस्तान् विपन्नान् स हि तत्र तत्र

विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ।

आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र

वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ॥१४॥

तान् तान् विपन्नान् स हि तत्र तत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः
आवर्तते अद्यापि न कश्चित् अत्र वीर अध्वनः पारं उपैति योगम् ॥१४॥

तान् तान्	उन-उन	वीर	वीरवर !
विपन्नान्	मरे लोगोंको	अद्यापि	आज तक भी
तत्र तत्र	जहाँ का तहाँ	कश्चित् अत्र	कोई यहाँ
विहाय	छोड़कर	आवर्तते न	लौटता नहीं,
सार्थः	(दूसरे) व्या- पारियोंको	(न) अध्वनः	(न) इस मार्गसे
परिगृह्य	साथ लेकर	पारं	पार जानेके
हि स	क्योंकि वह	योगं उपैति	साधनके समीप
जातं	(व्यापारी-दल) (आगे) जाता है,		पहुँचता ॥१४॥

मनस्विनो निर्जितदिग्गजेन्द्रा

ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ।

मृधे शयीरन्न तु तद्ब्रजन्ति

यन्न्यस्तदण्डो गतवैरोऽभियाति ॥१५॥

मनस्विनः निर्जित दिक् गजेन्द्राः मम इति सर्वे भुवि बद्धवैराः मृधे
शयीरन् न तु तत् ब्रजन्ति यत् न्यस्त दण्डः गतवैरः अभियाति ॥१५॥

दिक् गजेन्द्राः	दिग्गजोंको भी	न तत्	उस (पद) पर नहीं
निर्जित	जीत लेनेवाले,	ब्रजन्ति	जा पाते
सर्वे	सब	यत्	जिसपर
मनस्विनः	मनस्वी लोग	न्यस्त दण्डः	(किसीको भी)
भुवि मम इति	पृथ्वी मेरी है, इस		दण्ड देना त्याग
	भावसे		देनेवाले
बद्धवैरा.	शत्रुता बाँधकर	गतवैरः	शत्रुता रहित
मृधे शयीरन्	युद्धमें सो गये	अभियाति	(महापुरुष) पहुँचते
तु	किन्तु		हैं ॥१५॥

प्रसज्जति क्वापि लताभुजाश्रय-

स्तदाश्रयाव्यक्तपदद्विजस्पृहः ।

क्वचित्कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन्

सख्यं विधत्ते बककङ्कगृध्रैः ॥१६॥

प्रसज्जति क्वापि लताभुज आश्रयः तत् आश्रय अव्यक्तपद द्विजस्पृहः
क्वचित् कदाचित् हरिचक्रतः त्रसन् सख्यं विधत्ते बक कङ्क गृध्रैः ॥१६॥

कदाचित्		क्वापि	कभी
क्वचित्	कदाचित् कभी	हरिचक्रतः	सिंहोंके झुण्डसे
लताभुज	लताकी डालियोंका	त्रसन्	डरकर
आश्रयः	आश्रय लेकर	बक कङ्क	बगुले, काँक* और
प्रसज्जति	(उसमें) आसक्त होता है,	गृध्रैः आश्रय	गीधोंका आश्रय लेकर
अव्यक्त पद	(उसमें) छिपकर रहनेवाले	तत् सख्यं विधत्ते	वह मित्रता करता है ॥१७॥
द्विजस्पृहः	पक्षियोंसे स्पृहा करता है ।		

तैर्वञ्चितो हंसकुलं समाविश-

न्नरोचयन् शीलमुपैति वानरान् ।

तज्जातिरासेन सुनिवृत्तेन्द्रियः

परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः ॥१७॥

तैः वञ्चितः हंसकुलं समाविशत् न रोचयन् शीलं उपैति वानरान्
तत् जाति रासेन सुनिवृत्त इन्द्रियः परस्पर उद्वीक्षण विस्मृत अवधिः ॥१७॥

*गीध और चीलके बीचके इस पक्षीको चमर-गिद्धा भी कहा जाता है । मद्रासके पासके पक्षि-तीर्थमें इसीका दर्शन दोपहरमें यात्रियोंको वहाँ के पंडे कराते हैं ।

तैः वञ्चितः	उनके द्वारा ठगे जानेपर	तत् जाति	उनकी जातिके
हंसकुलं	हंसोंके समाजमें	रासेन	समान रहते
समाविशत्	प्रविष्ट हुआ,	इन्द्रियः	(उसकी) इन्द्रियां
न रोचयन्	(वह उसे) रुचिकर नहीं लगा,	सुनिर्वृत	बहुत सुखी हुई ।
वानरान् शीलं	(तब) बन्दरोंका आचरण	परस्पर	परस्पर (एक-दूसरे को) देखनेमें
उपैति	अपना लिया ।	उद्बोक्षण	(आयुकी) सीमा
		अवधिः	भूल गयी ॥१७॥
		विस्मृत	

द्रुमेषु रंस्यन् सुतदारवत्सलो
व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने ।

क्वचित्प्रमादादिगिरिकन्दरे पतन्

वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥१८॥

द्रुमेषु रंस्यन् सुतदार वत्सलः व्यवायदीनः विवशः स्वबन्धने क्वचित् प्रमादात् गिरिकन्दरे पतन् वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥१८॥

द्रुमेषु	पेड़ोंपर	क्वचित्	कभी
रंस्यन्	क्रीड़ा करता हुआ	प्रमादात्	असावधानीवश
सुतदार	पुत्र-स्त्रीसे	गिरिकन्दरे	पर्वतकी गुफामें
वत्सलः	प्रेम करता है,	पतन्	गिरते समय
व्यवायदीनः	सम्भोगकी इच्छासे दीन	वल्लीं गृहीत्वा	लता पकड़कर (लटका)
स्वबन्धने	अपने ही (स्नेह) बन्धनसे	गजभीत	हाथीसे डरता
विवशः	विवश रहता है ।	आस्थितः	रहता है ॥१८॥

अतः कथञ्चित्स विमुक्त आपदः

पुनश्च सार्थं प्रविशत्यरिन्दम ।

अध्वन्यमुष्मिन्नजया निवेशितो

भ्रमञ्जनोऽद्यापि न वेद कश्चन ॥१९॥

अतः कथञ्चित् स विमुक्त आपदः पुनः च सार्थं प्रविशति अरिन्दम
अध्वनि अनुष्मिन् अजया निवेशितः भ्रमन् जनः अद्य अपि न वेद
कश्चन ॥१६॥

अरिन्दम	शत्रुदमन !	निवेशितः	प्रविष्ट कराया
अतः			गया
कथञ्चित्	किसी प्रकार कभी	अनुष्मिन्	
स आपदः		अध्वनि	इस मार्गमें
विमुक्तः	वह आपत्तिसे	भ्रमन् जनः	भटकते हुए
	छूटा (तो)		लोगोंमें-से
पुनः च	फिरसे	अद्य अपि	अब तक भी
सार्थं प्रविशति	वे व्यापारी-दलमें	कश्चन	कोई
	प्रवेश करता है ।	वेद न	(अपना भटकना)
अजया	मायाके द्वारा		जानता नहीं ॥१६॥

रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽस्य

संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः ।

असञ्जितात्मा हरिसेवया शितं

ज्ञानासिमादाय तरातिपारम् ॥२०॥

रहूगण त्वं अपि हि अध्वनः अस्य संन्यस्त दण्डः कृत भूतमैत्रः
असञ्जित आत्मा हरिसेवया शितं ज्ञान अस्मि आदाय तर अति-
पारम् ॥२०॥

रहूगण	रहूगण !	असञ्जित	अनासक्त
हि	क्योंकि	आत्मा	चित्त होकर
त्वं अपि	तुम भी	हरिसेवया	श्रीहरिकी सेवासे
अस्य	इसके	शितं	तीक्ष्ण हुई
अध्वनः	✓ पथिक हो (अतः)	ज्ञान अस्मि	ज्ञान रूपी तलवार
दण्डः संन्यस्त	(लोगोंको) दण्ड देना	आदाय	लेकर
	त्यागकर,	अतिपारं तर	(इस) दुष्पारको
भूतमैत्रः कृतः	प्राणियोंसे मित्रता		पारकर जाओ ॥२०॥
	करके		

ब्रह्मण उवाच-*

अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनं
किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ।
न यद्धृषीकेशयशःकृतात्मनां
महात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥२१॥

अहो नृ जन्म अखिलजन्म शोभनं किं जन्मभिः तु अपरैः अपि
अमुष्मिन् न यत् हृषीकेश यशः कृत आत्मनां महात्मनां वः प्रचुरः
समागमः ॥२१॥

अहो	अहो,	हृषीकेश यशः	भगवान् हृषीकेशके
अखिलजन्म	समस्त (योनियोंमें)	यशसे	
	जन्मसे	आत्मनां कृत	चित्तको शुद्ध किये
नृजन्म	मनुष्य-जन्म	वः महात्मनां	आपसे महा-
शोभनं	सुन्दर हूँ,		त्माओंका
अपरैः अपि	दूसरे (देवादि) भी	प्रचुरः	अधिकाधिक
जन्मभिः तु	जन्मोंसे तो	समागमः	मिलन
किं	क्या (लाभ)	न	नहीं होता ॥२१॥
यत् अमुष्मिन्	क्योंकि उनमें		

न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभि-
र्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला ।
मौहूर्तिकाद्यस्य समागमाच्च मे
दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥२२॥

न हि अद्भुतं त्वत् चरणाब्ज रेणुभिः हत अंहसः भक्तिः अधोक्षजे
अमला मौहूर्तिकात् यस्य समागमात् च मे दुस्तर्क मूलः अपहत
अविवेकः ॥२२॥

*अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'राजोवाच' है ।

त्वत्	आपके	न हि	नहीं है,
चरणाब्ज	चरण-कमलोंकी	यस्य	जिनके
रेणुभिः	रजसे	मौहूर्तिकात्	दो घड़ीके
अंहसः हत	पाप नष्ट हो	समागमात् च	मिलन (सत्संग)से
	जानेसे		ही
अधोक्षजे	भगवान् हृषीकेशमें	मे	मेरा
अमला	निर्मल	दुस्तर्क मूलः	कुतर्ककी जड़
भक्तिः	भक्ति (हो जाना)	अविवेकः	अज्ञान
अद्भुतं	आश्चर्यजनक	अपहतः	नष्ट हो गया ॥२२॥

नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो

नमो युवभ्यो नम आ वटुभ्यः ।

ये ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गा-

श्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥२३॥

नमः महद्भ्यः अस्तु नमः शिशुभ्यः नमः युवभ्यः नमः आ वटुभ्यः
ये ब्राह्मणाः गां अवधूत लिङ्गाः चरन्ति तेभ्यः शिवं अस्तु राज्ञाम् ॥२३॥

महद्भ्यः नमः	महापुरुषोंको नमस्कार	ये ब्राह्मणाः	जो ब्रह्मज्ञानी
शिशुभ्यः नमः	(वे) शिशु हों (तो भी) उन्हें नमस्कार	गां	पृथ्वीपर
युवभ्यः नमः	युवक हों (तो) उन्हें नमस्कार	अवधूत लिङ्गाः	अवधूत वेशमें
आ वटुभ्यः	सब ब्रह्मचारियोंको	चरन्ति	घूमते हैं
नमः अस्तु	नमस्कार होवे ।	तेभ्यः	उनसे
		राज्ञां	राजाओंका
		शिवं अस्तु	कल्याण हो ॥२३॥

श्रीशुक उवाच-

इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मविभुतः सिन्धुपतय आत्मस-
तत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन

सकरुणमभिवन्दितचरण आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्याशयो
धरणिमिमां विचचार ॥२४॥

इति एवं उत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षि सुतः सिन्धुपतयः आत्म अस-
तत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतया उपदिश्य रहूगणेन सकरुणं
अभिवन्दितचरण आपूर्णं अर्णव इव निभृत करण उर्मि आशयः धरणि इमां
विचचार ॥२४॥

उत्तरामातः	उत्तरानन्दन !	रहूगणेन	रहूगण द्वारा
इति एवं	इस प्रकार	सकरुणं	दीन भावसे
वै	निश्चय	अभिवन्दित-	
परानुभावः	परम प्रभावशाली	चरण	चरणोंमें प्रणामकर
स ब्रह्मर्षि सुतः	उन ब्रह्मर्षि पुत्रने		लेनेपर
आत्म असतत्त्वं	अपने अनादरकी	आपूर्ण अर्णव	परिपूर्ण समुद्रकी
विगणयतः	अवगणना (उपेक्षा)	इव	भाँति
	करके	करण उर्मि	इन्द्रिय लहरों तथा
सिन्धुपतय	सिन्धु-नरेशको	आशयः	चित्तको
परम-		निभृत	शान्त किये
कारुणिकतया	परम-करुणकर	इमां धरणि	इस पृथ्वीपर
	होनेसे	विचचार	विचरने लगे ॥२४॥
उपदिश्य	उपदेश करके		

सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्याविद्या-
ध्यारोपितां च देहात्ममति विससर्ज । एवं हि नृप भगवदाश्रिता-
श्रितानुभावः ॥२५॥

सौवीरपतिः अपि सुजन समवगत परमात्म सतत्त्व आत्मनि
अविद्या अध्यारोपितां च देहात्ममति विससर्ज । एवं हि नृप भगवत्
आश्रित आश्रित अनुभावः ॥२५॥

सौवीरपतिः		विससर्ज	त्याग दिया
अपि	सौवीर राजाने भी	नृप	राजन् (परोक्षित)
सुजन	(उन) सत्पुरुषसे	भगवत्	भगवान्के
परमात्म	परमात्माके	आश्रित	आश्रितोंके
सतत्त्व	तत्त्वको	आश्रित	आश्रितों (दासानु-
समवगत	भली प्रकार		दासों)का
	जानकर	एवं हि	ऐसा ही
आत्मनि	आत्मामें	अनुभावः	प्रभाव (होता)
अविद्या च	अविद्यासे ही		है ॥२५॥
अध्यारोपितां	अध्यारोपित		
देहात्ममर्ति	शरीरमें आत्मबुद्धि		

राजोवाच-

यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोकभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नाञ्जसाव्युत्पन्नलोकसमधिगमः। अथ तदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकल्पेन निर्दिश्यतामिति ॥२६॥

यः ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वया अभिहितः परोक्षेण वचसा जीवलोक भव अध्वा स हि आर्य मनोषया कल्पित विषयः न अञ्जसाव्युत्पन्न लोक समधिगमः अथ तत् एव एतत् दुरवगमं समवेत अनुकल्पेन निर्दिश्यतां इति ॥२६॥

यः ह वा	जो निश्चित ही	जीवलोक	जीवोंका
इह	यहाँ	भव अध्वा	संसार-मार्ग
बहुविदा	बहुज्ञ	अभिहितः	वर्णन किया,
महाभागवत	परम भगवद्भक्त	हि स	क्योंकि वह
त्वया	आपने	आर्य मनीषया	श्रेष्ठ बुद्धि द्वारा
परोक्षेण वचसा	परोक्ष वाणीसे		

कल्पित	कल्पित	तत् एव	
विषयः	विषय है,	दुरवगमं	उसी दुर्बोध
एतत् अण्युत्पन्न	यह अल्प बुद्धिवाले		(विषय)को
लोक	लोगोंको	समवेत	
अञ्जसा	सरलतासे	अनुकल्पेन	स्पष्टीकरणकी
समधिगमः न	भली प्रकार समझमें		विधिसे
	नहीं आ सकता ।	इति	इस प्रकार
अथ	अतः	निर्दिश्यताम्	समझाइये ॥२६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां

पञ्चमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

शुक उवाच-*

य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशला-
कुशलसमवहारविनिर्मितविविधदेहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादि-
संसारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन्दुर्गाध्ववदसुगमे-
ऽध्वन्यापतित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीव-
लोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मानुभवः
श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रति-
योगेहस्तत्तापोपशमनीं हरिगुरुचरणारविन्दमधुकरानुपदवीमवरुन्धे
यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥१॥

य एष देह आत्म मानिनां सत्त्वादि गुणविशेष विकल्पित कुशल अकुशल
समवहार विनिर्मित विविध देह अवलिभिः वियोग संयोग आदि अनादि
संसार अनुभवस्य द्वारभूतेन षट् इन्द्रिय वर्गेण तस्मिन् दुर्ग अध्ववत् असुगमे
अध्वनि आपतित ईश्वरस्य भगवतः विष्णोः वशवर्तिन्या मायया जीव लोकः
अयं यथा वणिक् सार्थः अर्थपरः स्वदेह निष्पादित कर्म अनुभवः श्मशानवत्
अशिवतमायां संसार अटव्यां गतः न अद्य अपि विफल बहु प्रतियोग इहः
तत् ताप उपशमनीं हरिगुरु चरणारविन्द मधुकर अनुपदवीं अवरुन्धे यस्यां
उ ह वा एते षडिन्द्रिय नामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥१॥

य एष	जो यह	सत्त्वादि गुण-
देह आत्म		विशेष
मानिनां	शरीरको ही आत्मा	सत्त्व आदि गुणोंमें-से
	माननेवालोंका	किसीकी विशेषतासे
		कुशल अशकुल शुभ, अशुभ,

*अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'स होवाच' है ।

समवहार मिश्रित (कर्मों)से
विनिर्मित बने हुए
विविध नाना प्रकारके
देह शरीर
अवलिभिः समुदायके
वियोग संयोग वियोग-संयोग
आदि आदि
संसार संसार
अनुभवस्य (उसके) अनुभवके
द्वार भूतेन द्वार रूप
षट् इन्द्रिय छः इन्द्रिय
वर्गेण समूह (मन और
पाँच ज्ञानेन्द्रियों)
द्वारा
तस्मिन् उस
दुर्ग अध्ववत् बीहड़ मार्गके समान
असुगमे दुर्गम
अध्वनि मार्गमें
भगवतः भगवान्
ईश्वरस्य सर्वेश्वर
विष्णोः विष्णुके
वशवर्तिन्या वशमें रहनेवाली
मायया माया द्वारा
अयं जीव यह जीव
लोकः समुदाय
आपतित गिर (लग) गया है।
यथा वणिक् जैसे व्यापारी-दल
सार्थः धन परायण हो।
अर्थ परः अपने शरीरसे
स्वदेह

निष्पादित सम्पन्न किये गये
कर्म अनुभवः कर्मोंके अनुभवसे
श्मशानवत् श्मशानकी भाँति
अशिवतमायां अत्यन्त अमंगल
रूप
संसार अटव्यां संसार रूपी वनमें
गतः चला गया है।
अद्य अपि आज तक भी
बहु प्रतियोग बहुतसे उद्योगोंके
विफल असफल होनेसे
उ ह निश्चय ही
तत् ताप (उत्पन्न) उसके
तापको
उपशमनीं शान्त करनेवाली
हरिगुरु श्रीहरि और
गुरुदेवके
चरणारविन्द चरण-कमलोंके
मधुकर भ्रमरका
अनुपदवीं स्थान
न अवरुन्धे नहीं ले सका।
यस्यां जिस (भवाटवी) में
उ ह वा निश्चय ही ये
एते इतने
षट् इन्द्रिय छः इन्द्रिय
नामानः नामवाले
ते कर्मणा वे कर्मसे
दस्यव एव डाकू ही (रहते)
हैं ॥१॥

तद्यथा पुरुषस्य धनं यत्किञ्चिद्धर्मोपयिकं बहुकृच्छ्राधिगतं
साक्षात्परमपुरुषाराधनलक्षणो योऽसौ धर्मस्तं तु साम्परायं उदा-
हरन्ति । तद्धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसङ्कल्प-
व्यवसायगृहग्राम्योपभोगेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य
विलुम्पन्ति ॥२॥

तत् यथा पुरुषस्य धनं यत् किञ्चित् धर्म उपयिकं बहु कृच्छ्र अधिगतं
साक्षात् परमपुरुष आराधन लक्षणः यः असौ धर्मः तं तु साम्परायं उदा-
हरन्ति । तत् धर्म्यं धनं दर्शन स्पर्श न श्रवण आस्वादन अवघ्राण सङ्कल्प
व्यवसाय गृहग्राम्य उपभोगेन कुनाथस्य अजित आत्मनः यथा सार्थस्य
विलुम्पन्ति ॥२॥

तत् यथा	वह जैसे
पुरुषस्य	पुरुषका
बहु कृच्छ्र	बहुत कष्टसे
अधिगतं	पाया
यत् किञ्चित्	जो कुछ थोड़ा
धनं	धन
धर्म उपयिकं	धर्मोपार्जन है ।
साक्षात्	साक्षात्
परमपुरुष	परम-पुरुषकी
आराधन	आराधना
लक्षणं	रूप
असौ यः धर्मः	यह जो धर्म है,
तं तु साम्परायं	उसे तो परलोकके
	लिए
उदाहरन्ति	बतलाया गया है ।
तत् धर्म्यं	उस धर्मरूप
धनं	धनको
दर्शन स्पर्श न	देखने, छूने,

श्रवण	सुनने,
आस्वादन	स्वाद लेने,
अवघ्राण	सूँघने,
सङ्कल्प	संकल्प करनेके
व्यवसाय	व्यापार रूप
गृहग्राम्य	गृहस्थके विषय
उपभोगेन	भोगोंको भोगनेमें
	(लगाकर)
यथा	जैसे
अजित	बिना जीते
आत्मनः	मनवाले
कुनाथस्य	बुरे (वेइमान)
	स्वामीवाले
सार्थस्य	व्यापारी दलका
विलुम्पन्ति	(डाकू) लूट लेते हैं
	(इन्द्रियाँ - इसका
	धर्म-धन लूट लेती
	हैं) ॥२॥

अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्यादयो नाम्ना कर्मणा वृक-
शृगाला एवानिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत्संरक्ष्यमाणं
मिषतोऽपि हरन्ति ॥३॥

अथ च यत्र कौटुम्बिका दारा अपत्य आदयः नाम्ना कर्मणा वृक
शृगाला एव अनिच्छतः अपि कदर्यस्य कुटुम्बिनः उरणकवत् संरक्ष्यमाणं
मिषतः अपि हरन्ति ॥३॥

अथ च	फिर और भी,	कुटुम्बिनः	कुटुम्बीका
यत्र	जहाँ (संसार-वनमें)	उरणकवत्	भेड़ोंके समान
कौटुम्बिका	कुटुम्बके सदस्य	संरक्ष्यमाणं	सुरक्षित किये
दारा अपत्य	स्त्री, पुत्र		(घन) को
आदयः	इत्यादि	अनिच्छतः	(उसकी) इच्छा न
नाम्ना	नामक हैं	अपि	होनेपर भी
कर्मणा	कर्मसे (वे)	मिषतः अपि	(उसके) देखते
वृक शृगाला	भेड़िये, सियार		होनेपर भी
एव	ही हैं,	हरन्ति	छीन लेते हैं ॥३॥
कदर्यस्य	कंजूस		

यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपन-
काले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गृह्णन्तमिव भवत्येवमेव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं
यस्मिन्न हि कर्माण्युत्सीदन्ति यदयंकामकरण्ड एष
आवसथः ॥४॥

यथा हि अनुवत्सरं कृष्यमाणं अपि अदग्ध बीजं क्षेत्रं पुनः एव आवपन
काले गुल्म तृण वीरुत्भिः गृह्णन्त इव भवति एवं एव गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं
यस्मिन् हि कर्माणि उत्सीदन्ति यत् अयं काम करण्ड एष आवसथः ॥४॥

यथा हि	जैसे कि	कृष्यमाणं	जोते जानेपर
अनुवत्सरं	प्रति वर्ष	अपि	भी

अदग्ध बीजं	बीज जलाये न गये हों तो	यस्मिन् हि	जिसमें कि
क्षेत्रं	(वह) खेत	कर्माणि	कर्म
पुनः एव	फिरसे	उत्सीदन्ति	नष्ट किये जाते हैं (किन्तु)
आवपन काले	बोनेके समय	यत् अयं	क्योंकि यह
गुल्म तृण	झाड़ियों, घास,	काम करण्ड	कामनाओंकी
वीरुत्भिः	पौधोंसे		पिटारी है
गह्वरं इव	सघन जैसा	एष आवसथः	इस आश्रमकी
भवति	हो जाता है,		कामनाएँ उच्छिन्न
एवं एव	ठीक ऐसे ही		नहीं होतीं ॥४॥
गृहाश्रमः	गृहस्थाश्रम		
कर्मक्षेत्रं	कर्मक्षेत्र (कर्मों- त्पादनका खेत) है,		

तत्रगतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूष-
कादिभिरुपरुध्यमानबहिःप्राणः क्वचित् परिवर्तमानोऽस्मिन्-
ध्वन्यविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसानुपपन्नार्थं नरलोकं गन्धर्व-
नगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥५॥

तत्रगतः दंश मशक सम अपसदैर् मनुजैः शलभ शकुन्त तस्कर मूषक
आदिभिः उपरुध्यमान बहिःप्राणः क्वचित् परिवर्तमानः अस्मिन् अध्वनि
अविद्या काम कर्मभिः उपरक्त मनसा अन उपपन्न अर्थं नरलोकं गन्धर्व
नगरं उपपन्नं इति मिथ्या दृष्टिः अनुपश्यति ॥५॥

तत्रगतः	उस (गृहस्थाश्रम)में प्रवेश करके	आधिभिः	आदिसे
दंश मशक सम	डांस और मच्छरोंके समान	बहिःप्राणः	बाहरी प्राण (धन)को
अपसदैः मनुजैः	नीच मनुष्यों द्वारा,	उपरुध्यमानः	उपरोध (हानि) पहुँचते रहते हैं ।
शकुन्त तस्कर	पक्षी, चोर,	क्वचित्	कभी
मूषक	चूहे		

परिवर्तमानः	(स्थितिमें) परि- वर्तन होनेपर	अन उपपन्न	पूर्ण हुए बिना ही
अस्मिन्	इस	नरलोकं	मनुष्य जीवन
अध्वनि	(संसार) मार्गमें	गन्धर्व नगरं	गन्धर्व नगर (न होनेपर भी अनु- भावना दृश्य)
अविद्या	अविद्या जनित	उपपन्नं	पूर्ण हो गया
काम कर्मभिः	कामना और कर्मोंमें	इति	ऐसा
उपरक्त मनसा	आसक्त मन होनेसे	अनुपश्यति	बार-बार देखता
मिथ्या दृष्टिः	भ्रान्त दृष्टि होनेसे		है ॥५॥
अर्थ	प्रयोजन		

तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान् विषयानुपधावति पानभोजन-
व्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥६॥

तत्र च क्वचित् आतप उदकनिभान् विषयान् उपधावति पानभोजन
व्यवाय आदि व्यसन लोलुपः ॥६॥

तत्र च	वहाँ (गृहस्थाश्रममें) भी	पानभोजन	पीने, खाने,
क्वचित्	कभी	व्यवाय आदि	मैथुन आदि
आतप	सूर्यकी किरणोंमें (प्रतीत होते)	व्यसन लोलुपः	व्यसनोंके लालचमें
उदकनिभान्	जलके समान	विषयान्	विषयोंकी ओर
		उपधावति	दौड़ता है ॥६॥

क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः
सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥७॥

क्वचित् च अशेष दोष निषदनं पुरीष विशेषं तत् वर्ण गुण
निर्मित मतिः सुवर्णम् उपात् इति असत्य अग्नि काम कातर इव उल्मुक
पिशाचम् ॥७॥

क्वचित् च	कभी तो	निषदनं	मूल निवास
अशेष दोष	सम्पूर्ण दोषोंके	पुरीष विशेषं	(अग्निके) मल विशेष

तत् वर्णं गुण	उसके रंग, गुणसे	कातर	आकुल
निर्मित मतिः	आकर्षित बुद्धि	उत्सुक	अगिया
सुवर्ण उपात्	स्वर्ण मिल गया	पिशाचं	बैताल
इति	ऐसा मानता है	इव	(की ओर दौड़ने)की
अग्नि काम	(जैसे सर्दीसे व्याकुल)		भाँति ॥७॥
	अग्नि पीनेकी		
	इच्छासे		

अथ कदाचिन्निवासपानीयद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभि-
निवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति ॥८॥

अथ कदाचित् निवास पानीय द्रविण आदि अनेक आत्म उपजीवन
अभिनिवेश एतस्यां संसार अटव्यां इतः ततः परिधावति ॥८॥

अथ कदाचित्	फिर कभी	अभिनिवेश	चित्त लगे होनेसे
निवास	रहनेके स्थान	एतस्यां	इस
पानीय	पीनेके द्रव	संसार अटव्यां	संसार-वनमें
द्रविण आदि	धन आदि	इतः ततः	इधर-उधर
अनेक	अनेक	परिधावति	चारो ओर दौड़ता
आत्म	अपने जीवन		है ॥८॥
उपजीवन	निर्वाहकी		
	(वस्तुओंमें)		

क्वचिच्च वात्योपम्यया प्रमदयाऽऽरोहमारोपितस्तत्कालरजसा
रजनीभूत इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षोऽपि दिग्देवता अतिरज-
स्वलमतिर्न विजानाति ॥९॥

क्वचित् च वात्या उपम्यया प्रमदया आरोहं आरोपितः तत् काल
रजसा रजनीभूत इव असाधु मर्यादः रजस्वल अक्षः अपि दिक् देवता अति
रजस्वल मतिः न विजानाति ॥९॥

क्वचित् च	कभी तो	असाधु	दुष्टोंकी
वात्या उपम्यया	बवण्डरके समान	मर्यादः	मर्यादा (उच्छिख्र- लता)से
प्रमदया	स्त्री द्वारा	अक्षः	आँखोंमें
आरोहं	गोदमें	रजस्वल	धूल पड़ेके समान
आरोपितः	बैठा लेनेपर	दिक् देवता	दिशाओंके देवता
तत् काल	उसी समय	अपि	(सत्पुरुषों)को भी
रजसा	रजोगुणसे	अति रजस्वल	अत्यन्त रजोगुणी
रजनीभूतः	रात्रिके समान	मतिः	बुद्धि (हो जाने)से
	(अन्धकार) अविवेक	न विजानाति	नहीं समझ
	युक्त होनेके		पाता ॥२॥
इव	समान		

क्वचित्सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वयं पराभिध्यानेन विभ्रंशि-
तस्मृतिस्तथैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति ॥१०॥

क्वचित् सकृत् अवगत विषय वै तथ्यः स्वयं पर अभिध्यानेन विभ्रं-
शित स्मृतिः तथा एव मरीचि तोय प्रायाण् तान् एव अभिधावति ॥१०॥

क्वचित्	कभी	स्मृतिः	(आत्म) स्मृति
स्वयं	स्वयं	विभ्रंशित	नष्ट होनेसे
सकृत्	एक बार	तथा एव	उन्हीं
विषय वै तथ्यः	विषय भोगोंकी	मरीचि	मृग-मरीचिकाके
	व्यर्थता	तोय प्रायाण्	जल-प्राय
अवगत	जानकर भी	तान् एव	उन्हीं (विषयों)की
पर अभि-	अपनेसे भिन्न (देह)के	अभिधावति	ओर दौड़ता
ध्यानेन	निरन्तर चिन्तनसे		है ॥१०॥

क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं
वा रिपुराजकुलनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥११॥

क्वचित् उलूक झिल्ली स्वनवत् अति परुष रभस आटोपं प्रत्यक्षं
परोक्षं वा रिपुराजकुल निर्भर्त्सितेन अति व्यथित कर्णमूल हृदयः ॥११॥

कदाचित्	कभी	रिपुराजकुल	शत्रु या शासक
उलूक झिल्लो	उल्लू, झींगुरों के		वर्गकी
स्वनवत्	शब्दके समान	निर्भर्त्सितेन	डांट-डपटसे
अति परुष	अत्यन्त रूक्ष	कर्णमूल	कान तथा
रभस आटोपं	वेगवान (तेज)	हृदयः	मन
	ढंगकी	अति व्यथित	बहुत पीड़ित
प्रत्यक्षं	प्रत्यक्ष		होता है ॥११॥
वा परोक्षं	अथवा पीछेकी		

स यदा दुग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुण्डाद्यपुण्यद्रुमलता
विषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान् जीवन्मृतान् स्वयं जीवन्म्रि-
यमाण उपधावति ॥१२॥

स यदा दुग्ध पूर्व सुकृतः तदा कारस्कर काक तुण्ड आदि अपुण्य
द्रुमलता विष उदपानवत् उभय अर्थ शून्य द्रविणान् जीवन् मृतान् स्वयं
जीवन् म्रियमाणः उपधावति ॥१२॥

स यदा	उसके जब	उभय अर्थ शून्य	दोनों (लोक पर-
पूर्वं सुकृतः	पहलेके पुण्य		लोक)के प्रयोजनसे
दुग्ध	क्षीण हो जाते हैं		रहित
तदा	तब	द्रविणान्	धनवाले
कारस्कर	कारस्कर,	जीवन् मृतान्	जीते ही मरेके
काक तुण्ड	काकतुण्ड		समान (लोगों)के
आदि अपुण्य	आदि अपवित्त		पास
द्रुमलता	वृक्ष लताके	स्वयं जीवन्	स्वयं जीवित ही
विष	विषैले	म्रियमाणः	मरेके समान (होकर)
उदपानवत्	रसको पीनेके समान	उपधावति	जाता है ॥११॥

एकदासत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपि
दुःखदं पाखण्डमभियाति ॥१३॥

एकदा असत् प्रसङ्गात् निकृतमतिः व्युदक स्रोतः स्खलनवत् उभयतः
अपि दुःखदं पाखण्डं अभियाति ॥१३॥

एकदा	एकबार		परलोकमें) ही
असत् प्रसङ्गात्	दुर्जनोके साथसे	दुःखदं	दुःखदायी
निकृतमतिः	बुद्धि बिगड़ जानेसे	पाखण्डम्	पाखण्डमें
व्युदक स्रोतः	गहरे स्रोतमें	अभियाति	(फँस) जाता
स्खलनवत्	गिरनेके समान		है ॥१३॥
उभयतः अपि	दोनों ओर (लोक-		

यदा तु परबाधयान्ध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्र-
बहिष्मतः पितृपुत्रान् वा स खलु भक्षयति ॥१४॥

यदा तु परबाधया अन्ध आत्मने न उपनमति तदा हि पितृपुत्र
बहिष्मतः पितृपुत्रान् वा स खलु भक्षयति ॥१४॥

यदा तु	जब तो	बहिष्मतः	तिनका भी रखने-
परबाधया	दूसरोंको सतानेमें		वालोकों
अन्ध	अन्धा (होनेपर भी)	वा	अथवा
आत्मने	अपनेको	पितृपुत्रान्	(सगे) पिता या
न उपनमति	(कुछ) नहीं मिलता		पुत्रोंको
तदा हि खलु	तब तो निश्चय	भक्षयति	खा लेना चाहता
स	वह		है ॥१४॥
पितृपुत्र	पिता या पुत्रका		

क्वचिदासाद्य गृहं दाववत्प्रियार्थविधुरमसुखोदकं शोकाग्निना
दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥१५॥

क्वचित् आसाद्य गृहं दाववत् प्रिय अर्थ विधुरं असुख उदकं शोक
अग्निना दह्यमानः भृशं निर्वेदं उपगच्छति ॥१५॥

क्वचित्	कभी	असुख उदकं	परिणाममें दुखद,
प्रिय अर्थ विधुरं	प्रिय विषयोंसे	दाववत्	दावाग्निके समान
	रहित	गृहं आसाद्य	घरमें पहुँचकर

शोक अग्निना	शोककी आगसे	निर्वेदं	खिन्न
भृशं दह्यमानः	अत्यन्त जलता हुआ	उपगच्छति	हो जाता है ॥१५॥

क्वचित्कालविषमितराजकुलरक्षसापहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक
इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥१६॥

क्वचित् काल विषमित राजकुलरक्षसा अपहृत प्रियतम धन असुः
प्रमृतक इव विगत जीव लक्षण आस्ते ॥१६॥

क्वचित्	कभी	धन असुः	धन रूपी प्राण
काल विषमित	समयके फेरसे	अपहृत	छीन लिए जानेपर
	विरोधी बने	अमृतक इव	मर गयेके समान
राजकुलरक्षसा	राजकुल रूपी	जीव	जीवनके
	राक्षस द्वारा	लक्षण विगत	लक्षणोंसे हीन सा
प्रियतम	अत्यन्त प्रिय	आस्ते	हो जाता है ॥१६॥

कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत्सदिति स्वप्ननिर्वृति-
लक्षणमनुभवति ॥१७॥

कदाचित् मनोरथ उपगत पितृपितामहात् असत् सत् इति स्वप्न
निर्वृति लक्षणं अनुभवति ॥१७॥

कदाचित्	कभी	स्वप्न निर्वृति	स्वप्नके आनन्दके
मनोरथ	मनोरथ	लक्षणं	समान
उपगत	प्राप्त होने जैसे	अनुभवति	(आनन्द) अनुभव
पितृपितामह	पिता-पितामहके		करता है ॥१७॥
असत्	मिथ्या साथको		
सत् इति	(यही) सत् है इस		
	प्रकार (मानकर)		

क्वचिद् गृहाश्रमकर्मचोदनातिभरगिरिमारुक्षमाणो लोक-
व्यसनकर्षितमनाः कण्टकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥१८॥

क्वचित् गृहाश्रमकर्म चोदना अति भर गिरिम् आरुक्षमाणः
लोकव्यसन कर्षितमनाः कण्टक शर्करा क्षेत्रं प्रविशन् इव सीदति ॥१८॥

क्वचित्	कभी	गिरि	पर्वतपर
लोकव्यसन	लोगों के व्यसन	आरुक्षमाणः	चढ़नेके प्रयत्नमें
कर्षितमनाः	आकर्षित चित्त	कण्टक शर्करा	कांटे-कंकड़ों से
गृहाश्रमकर्म	गृहस्थाश्रमके	क्षेत्रं	(भरी) भूमि में
	कर्मों के	प्रविशन् इव	प्रवेश करनेके
चोदना	(शास्त्रीय) प्रेरणा		समान
	रूप	सीदति	कण्ट पाता है ॥१८॥
अति भर	भारी भार सहित		

क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यन्तरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटु-
म्बाय क्रुध्यति ॥१९॥

क्वचित् दुःसहेन काय अभ्यन्तर वह्निना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय
क्रुध्यति ॥१९॥

क्वचित्	कभी	गृहीतसारः	सारतत्त्व (धृति)
दुःसहेन	दुःसह		छीन लेनेपर
काय	शरीरके	स्वकुटुम्बाय	अपने कुटुम्बपर
अभ्यन्तर	भीतर की	क्रुध्यति	क्रोध करता
वह्निना	आग (भूख) से		है ॥१९॥

स एव पुनर्निद्राजगरगृहीतोऽन्धे तमसि मग्नः शून्यारण्य इव
शते नान्यत् किञ्चन वेद शव इवापविद्धः ॥२०॥

स एव पुनः निद्रा अजगर गृहीतः अन्धे तमसि मग्नः शून्य अरण्य इव
शते न अन्यत् किञ्चन वेद शव इव अपविद्धः ॥२०॥

स एव पुनः	वही फिर	अन्धे तमसि	धोर अन्धकारमें
निद्रा अजगर	निद्रा रूपी अजगरसे	मग्नः	डूबा
गृहीतः	पकड़े जानेपर	अपविद्धः	फँके

शव इव	मुर्देके समान	शेते	सोता है,
शून्य	सूने	अन्यत्	दूसरा
अरण्य इव	जंगलमें (पड़े)की	किञ्चन	कुछ भी
	भाँति	न वेद	नहीं जानता ॥२०॥

कदाचिद्भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदन्दशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्य-
थितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोऽन्धकूपेऽन्धवत्पतति ॥२१॥

कदाचित् भग्न मानदंष्ट्रः दुर्जन दन्दशूकैः अलब्धः निद्राक्षणः व्यथित
हृदयेन अनुक्षीयमाण विज्ञानः अन्धकूपे अन्धवत् पतति ॥२१॥

कदाचित्	कभी	अलब्धः	नहीं मिलनेसे
मानदंष्ट्रः	अभिमान रूपी दाँत	व्यथित हृदयेन	दुःखी चित्तसे
भग्न	टूट जानेसे	अनुक्षीयमाण	बराबर क्षय होती
दुर्जन	दुर्जनों रूपी	विज्ञानः	चेतनाके कारण
दन्दशूकैः	काटनेवाले (जीवों)से	अन्धकूपे	अन्धे कुएँ (नरक)में
निद्राक्षणः	नींद लेनेका समय	अन्धवत्	अन्धेके समान
		पतति	गिर पड़ता है ॥२१॥

कर्हि स्म चित्काममधुलवान् विचिन्वन् यदा परदारपरद्रव्या-
ण्यवरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ॥२२॥

कर्हि स्म चित् काम मधुलवान् विचिन्वन् यदा परदार परद्रव्याणि
अवरुन्धानः राज्ञा स्वामिभिः वा निहतः पतति अपारे निरये ॥२२॥

कर्हि स्म चित्	किसी समय	परद्रव्याणि	दूसरेके धनका
काम	भोग रूपी	अवरुन्धानः	अवरोध करना
मधुलवान्	शहद सींकरोंको		(उड़ाना) चाहता
विचिन्वन्	ढूँढ़ता हुआ		है (तब)
यदा	जब	राज्ञा	राजा द्वारा
परदार	परस्त्री या	वा	अथवा

स्वामिभिः (उसके) स्वामी द्वारा अपारे निग्ये अपार नरकमें
निहतः मारा जाकर पतति गिरता है ॥२२॥

अथ च तस्मादुभयथापि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपन-
मुदाहरन्ति ॥२३॥

अथ च तस्मात् उभयथा अपि हि कर्म अस्मिन् न आत्मनः संसार
आवपनं उदाहरन्ति ॥२३॥

अथ च	इससे भी	कर्म	कर्म
तस्मात्	इसलिए	संसार	संसारको ही
उभयथा अपि	दोनों (लोक पर- लोक दृष्टि)से भी	आवपनं	बोने (बढ़ाने) वाला
हि	क्योंकि	उदाहरन्ति	बतलाया जाता
अस्मिन्	इस (प्रवृत्ति मार्ग)में		है ॥२३॥
न आत्मनः	आत्माको छोड़कर		
	किये गये		

मुक्तस्ततो यदि बन्धाद्देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णु-
मित्र इत्यनवस्थितिः ॥२४॥

मुक्तः ततः यदि बन्धात् देवदत्त उप आच्छिनत्ति तस्मात् अपि
विष्णुमित्र इति अनवस्थितिः ॥२४॥

यदि	यदि	तस्मात् अपि	उससे भी
ततः	वहाँ (राजा आदिके)	विष्णुमित्र	विष्णुमित्र (छीन
बन्धात्	बन्धनसे		लेता है)
मुक्तः	छूट भी गये (तो)	इति	इस प्रकार की
उप देवदत्त	पासका देवदत्त	अनवस्थितिः	(कहीं) निश्चित
आच्छिनत्ति	छीन लेता है।		स्थिति नहीं है ॥२४॥

क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां
प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तचिन्तया विषण्ण आस्ते ॥२५॥

क्वचित् च शीतवात आदि अनेक आधिदैविक भौतिक आत्मीयानां
दशानां प्रतिनिवारणे अकल्पः दुरन्त चिन्तया विषण्ण आस्ते ॥२५॥

क्वचित् च	कभी तो	दशानां	अवस्थाओंके
शीतवात	सर्दी, आंधी	प्रतिनिवारणे	दूर करनेमें
आदि	आदि	अकल्पः	असमर्थ होकर
अनेक	अनेक	दुरन्त चिन्तया	दुष्पार चिन्तासे
आधिदैविक	आधिदैविक	विषण्ण आस्ते	उदास हो जाता
भौतिक	आधिभौतिक		है ॥२५॥
आत्मीयानां	आध्यात्मिक		

क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किञ्चिद्धनमन्येभ्यो वा काकिणि-
कामात्रमप्यपहरन् यत्किञ्चिद्वाविद्वेषमेति वित्तशाठ्यात् ॥२६॥

क्वचित् मिथः व्यवहरन् यत् किञ्चित् धनं अन्येभ्यः वा काकिणिका
मात्रं अपि अपहरन् यत् किञ्चित् वा विद्वेषं एति वित्त शाठ्यात् ॥२६॥

क्वचित्	कभी	वा	अथवा
मिथः व्यवहरन्	परस्पर व्यवहार	यत् किञ्चित्	जो कुछ भी
	करने में	अन्येभ्यः	दूसरे से
यत् किञ्चित्	जो कुछ भी	अपहरन्	चुरा लेनेमें
धनं	धन	वित्त शाठ्यात्	धनकी शठता
वा	भले		(लोभ) से
काकिणिका	कौड़ी	विद्वेषं एति	शत्रुता कर लेता
मात्रं अपि	बराबर ही		है ॥२६॥

अध्वन्यमुष्मिन्निव उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभि-
मानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्यावमानक्षुत्पिपासाधिव्या-
धिजन्मजरामरणादयः ॥२७॥

अध्वनि अमुष्मिन् नव उपसर्गाः तथा सुखदुःख रागद्वेष भय अभि-
मान प्रमाद उन्माद शोक मोह लोभ मात्सर्य ईर्ष्या अवमान क्षुत् पिपासा
आधि व्याधि जन्मजरा मरण आदयः ॥२७॥

अमुष्मिन्	इस	प्रमाद उन्माद	प्रमाद-उन्माद,
अध्वनि	(संसारके) मार्गमें	शोक मोह	शोक-मोह,
नव उपसर्गाः	नये-नये कष्ट (होते ही रहते हैं)	लोभ मात्सर्य	लोभ-मत्सरता,
तथा	जैसे	ईर्ष्या अवमान	ईर्ष्या-अपमान,
सुखदुःख	सुख-दुःख,	क्षुत् पिपासा	भूख-प्यास,
रागद्वेष	राग-द्वेष,	आधि व्याधि	चिन्ता-रोग,
भय अभिमान	भय-अभिमान,	जन्मजरा	जन्म-बुढ़ापा,
		मरण आदयः	मृत्यु आदि ॥२७॥

क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढः प्रस्कन्नविवेक-
विज्ञानो यद्विहारगृहारम्भाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्तसुतदुहितृकल-
त्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्मापारेऽन्धे
तमसि प्रहिणोति ॥२८॥

क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलता उपगूढः प्रस्कन्न विवेक विज्ञानः
यत् विहार गृह आरम्भ आकुल हृदयः तत् आश्रय अवसक्त सुत दुहितृ
कलत्र भाषित अवलोक विचेष्टित अपहृत हृदय आत्मानं अजित आत्मा अपारे
अन्धे तमसि प्रहिणोति ॥२८॥

क्वापि	कभी	आकुल हृदयः	चित्त व्याकुल हुआ
देवमायया	देवमाया रुपिणी		था
स्त्रिया	स्त्रीकी	तत् आश्रय	उसीके आश्रयमें
भुजलता	भुजपाशमें	अवसक्त	आसक्त होकर
उपगूढः	आलिङ्गित	सुत दुहितृ	पुत्र-पुत्री
विवेक विज्ञानः	विवेक विचारके	कलत्र	पत्नीकी
प्रस्कन्न	नष्ट हो जानेसे	भाषित	मधुर बोली,
यत् विहार	जिसके साथ विहार करनेसे	अवलोक	देखने तथा
गृह आरम्भ	गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ होनेसे	विचेष्टित	चेष्टाओं द्वारा
		अपहृत हृदय	चित्त चुरा लिया ।
			गया, (अतः)

अजित आत्मा मनको वशमें न
करने वाला
आत्मानं अपनेको

अपारे अन्धे अपार अन्धकारमय
तमसि ग्रहिणोति नरकमें गिरा देता
है ॥२८॥

कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात्परमाण्वादिद्विपरार्ध-
पिपवर्गकालोपलक्षणात्परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृ-
णस्तम्बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां विव्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं
कालचक्रनिजायुधं साक्षाद्भगवन्तं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखण्डदेवताः
कङ्कगृध्रबकवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः साङ्केत्येना-
भिधत्ते ॥२९॥

कदाचित् ईश्वरस्य भगवतः विष्णोः चक्रात् परमाणु आदि द्विपरार्धं
अपवर्ग काल उपलक्षणात् परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्म तृण स्तम्ब
आदीनां भूतानां अनिमिषतः मिषतां विव्रस्त हृदयः तं एव ईश्वरं कालचक्र
निज आयुधं साक्षात् भगवन्तं यज्ञपुरुषं अनादृत्य पाखण्ड देवताः कङ्क गृध्र
बक वट प्राया आर्यसमय परिहृताः साङ्केत्येन अभिधत्ते ॥२९॥

ईश्वरस्य सर्व समर्थ
भगवतः भगवान्
विष्णोः विष्णुके
परमाणु आदि परमाणु (काल)से
लेकर
द्विपरार्धं दोपरार्धके
अपवर्ग काल (ब्रह्माके) मोक्षकाल
तकसे
उपलक्षणात् उपलक्षित होनेवाले
चक्रात् चक्रके
परिवर्तितेन घूमनेसे
आब्रह्म ब्रह्मासे लेकर
तृण स्तम्ब छुद्र तृण

पर्यन्त तक (सब)
भूतानां प्राणियों के
अनिमिषतः पलक न गिराने
(सावधान रहने)
पर भी
मिषतां देखते हुए
भूतानां प्राणियोंकी
वयसा आयुको
रंहसा हरत (अपने) वेगसे हरण
करता है
विव्रस्त हृदयः (उस काल-चक्रसे)
संवस्त चित्त संवस्त चित्त
तं एव उन्हीं

कालचक्र	कालचक्र रूप	प्रायाः कङ्क	(जो) प्रायः कंक,
निज आयुधं	अपने अस्त्रसे युक्त	गृध्रबकवट	गोध बगुले, वट-वृक्ष
ईश्वरं	सर्वेश्वर		आदि हैं
साक्षात्	साक्षात्	साङ्केत्येन	(उनका) संकेत
भगवन्तं	भगवान्		(इशारों-मुद्राओं)
यज्ञपुरुषं	यज्ञपुरुषका		द्वारा
अनादृत्य	अनादर करके	अभिधत्ते	आश्रय लेता
आर्यसमय	आर्यकालसे		है ॥२६॥
परिहृताः	बहिष्कृत		
पाखण्डदेवताः	पाखण्डियोंके		
	देवता		

यदा पाखण्डिभिरात्मवञ्चितैस्तेरु वञ्चितो ब्रह्मकुलं समा-
वसंस्तेषां शीलमुपनयनादि श्रौतस्मार्तकर्मनुष्ठानेन भगवतो यज्ञ-
पुरुषस्याराधनमेव तदरोचयन् शुद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो
यस्य मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं यथा वानरजातेः ॥३०॥

यदा पाखण्डिभिः आत्म वञ्चितैः तैः उरु वञ्चितः ब्रह्मकुलं समा-
वसन् तेषां शीलं उपनयन आदि श्रौतस्मार्त कर्म अनुष्ठानेन भगवतः यज्ञ-
पुरुषस्य आराधनं एव तत् अरोचयन् शुद्रकुलं भजते निगम आचारे अशुद्धितः
यस्य मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं यथा वानरजातेः ॥३०॥

आत्म	स्वयं		आश्रय लेता है,
वञ्चितैः	धोखेमें रहनेवाले	तेषां शीलं	(लेकिन) उनका
तैः पाखण्डिभिः	उन पाखण्डियों द्वारा		आचार तो
यदा	जब	उपनयन आदि	यज्ञोपवीत-संस्कार
उरु वञ्चितः	बहुत ठगा जाता है		आदि
	(तब)	श्रौतस्मार्त	वैदिक, स्मृति विहित
ब्रह्मकुलं	ब्राह्मणोंके कुल	कर्म	कर्मोंको
	(के सम्पर्क)में	अनुष्ठानेन	करके
समावसन्	अच्छी प्रकार	भगवतः	भगवान्

यज्ञपुरुषस्य	यज्ञ-पुरुषका
आराधनं एव	आराधना ही है,
निगम आचारे	(उस) वैदिक आचारमें
अशुद्धितः	अपनेमें अशुद्धि होनेसे
तत् अरोचयन्	वह रुचिकर न लगनेसे
शूद्रकुलं	शूद्र कुलका

भजते	आश्रय लेता है
यथा	जैसे
वानरजातेः	वानर-जातिमें
यस्य	जिन (शूद्र-कुलों)में
मिथुनीभावः	स्त्री-पुरुष मिलकर रहना और
कुटुम्बभरणं	(अपने) कुटुम्बका पालन है ॥३०॥

तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योन्य-
मुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव विस्मृतकालावधिः ॥३१॥

तत्र अपि निःअवरोधः स्वैरेण विहरन् अति कृपणबुद्धिः अन्योन्य
मुखनिरीक्षण आदिना ग्राम्यकर्मणा एव विस्मृत काल अवधिः ॥३१॥

तत्र अपि	वहाँ भी
निःअवरोधः	बिना रोक-टोक
स्वैरेण विह न	स्वच्छन्द-विहार करते
अति	अत्यन्त
कृपणबुद्धिः	दीन-बुद्धि (यह)
अन्योन्य	एकदूसरेका

मुखनिरीक्षण	मुख-दर्शन
आदिना	आदिसे
ग्राम्यकर्मणा	विषय-भोगोंमें
एव	ही (लगे रहकर)
काल	मृत्युका
विस्मृत अवधिः	स्मरण भी भूल जाता है ॥३१॥

क्वचिद् द्रुमवदैहिकार्थेषु गृहेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदार-
वत्सलो व्यवायक्षणः ॥३२॥

क्वचित् द्रुमवत् ऐहिक अर्थेषु गृहेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदार
वत्सलः व्यवायक्षणः ॥३२॥

यथा	जैसे
सुतदार	पुत्र, स्त्रीसे
वत्सलः	स्नेह करता

व्यवायक्षणः	मैथुनमें समय बिताता
-------------	------------------------

वानरः	बन्दरे हो (ऐसे)	गृहेषु	घरमें
क्वचित्	कभी	रंस्यन्	रमता रहता
द्रुमवत्	वृक्षकी भाँति		है ॥३२॥
ऐहिक अर्थेषु	इसी लोकका सुख देने वाले		

एवमध्वन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥३३॥

एवं अध्वनि अवरुन्धानः मृत्युगज भयात् तमसि गिरिकन्दर प्राये ॥३३॥

एवं	इस प्रकार	प्राये	समान
अध्वनि	(संसार) मार्गमें	तमसि	अन्धकार (रोगसे
अवरुन्धानः	अटका (भटका)		ग्रस्त दशा)में
	हुआ	मृत्युगज	मृत्युरूपी हाथीसे
गिरिकन्दर	पर्वतकी गुफाके	भयात्	डरता रहता ॥३३॥

क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणेऽकल्पो दुरन्तविषयविषण्ण आस्ते ॥३४॥

क्वचित् शीतवात आदि अनेक दैविक भौतिक आत्मीयानां दुःखानां प्रतिनिवारणे अकल्पः दुरन्तविषय विषण्ण आस्ते ॥३४॥

क्वचित्	कभी	आत्मीयानां	आध्यात्मिक
शीतवात	सर्दी-आँधी		(शोक-मोहादि)
आदि	आदि	दुःखानां	दुःखोंके
अनेक	अनेक	प्रतिनिवारणे	दूर करनेमें
दैविक	आधिदैविक	अकल्पः	असमर्थ होकर
	(ग्रहबाधादि)	दुरन्तविषय	दुष्पार चिन्तासे
भौतिक	आधिभौतिक	विषण्ण आस्ते	उदास हो जाता है ॥३४॥
	(रोगादि)		

क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किञ्चिद्धनमुपयाति
वित्तशाठ्येन ॥३५॥

क्वचित् मिथः व्यवहरन् यत् किञ्चित् धनं उपयाति वित्त-
शाठ्येन ॥३५॥

क्वचित्	कभी	धनं उपयाति धन मिलता है (वह भी) वित्त शाठ्येन कञ्जूसीसे ॥३५॥
मिथः	परस्पर	
व्यवहरन्	व्यवहार करनेपर	
यत् किञ्चित्	जो थोड़ा	

क्वचित्क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रति-
लब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जना-
दभिलभते ॥३६॥

क्वचित् क्षीणधनः शय्या आसन अशन आदि उपभोग विहीनः
यावत् अप्रतिलब्ध मनोरथः उपगत आदाने अवसित मतिः ततः ततः अव-
मान आदीनि जनात् अभिलभते ॥३६॥

क्वचित्	कभी	आदाने उपगत (अनधिकार) लेने (चुराने आदि)में अवसित मतिः बुद्धि लगनेपर ततः ततः जहाँ-तहाँ जनात् लोगोंसे अवमान अपमान आदीनि अपमान आदि अभिलभते सब कहीं पाता है ॥३६॥
क्षीणधनः	धन नष्ट होनेपर	
शय्या आसन	सोने, बैठने,	
अशन	भोजन	
आदि उपभोग	आदि उपभोग	
	सामग्रीसे	
विहीनः	रहित हो जाता है ।	
यावत्	जब-तक	
मनोरथः	मनोरथ (कामनाएँ)	
अप्रतिलब्ध	मिलती (पूरी होती) नहीं	

एवं वित्तव्यतिषङ्गविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनया मिथ
उद्वह्यथापवहति ॥३७॥

एवं वित्त व्यतिषङ्गः विवृद्ध वैर अनुबन्धः अपि पूर्व वासनया मिथ
उद्वहति अथ अपवहति ॥३७॥

एवं	इस प्रकार	पूर्व वासनया	पहिलेकी वासनासे
वित्त व्यतिषङ्गः	धनकी आसक्तिसे	मिथ उद्वहति	परस्पर विवाह
विवृद्ध	बढ़ी हुई		करता है
वैर अनुबन्धः	दृढ़ शत्रुता	अथ अपवहति	अथवा छोड़ता
अपि	होनेपर भी		हैं ॥३७॥

एतस्मिन् संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविप-
न्नो यत्र यस्तमु ह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमुपादाय शोच-
न्मुह्यन् बिभ्यद्विवदन् क्रन्दन् संहृष्यन् गायन्नह्यमानः साधुर्वजितो
नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पार-
मुपदिशन्ति ॥३८॥

एतस्मिन् संसार अध्वनि नानाक्लेश उपसर्ग बाधित आपन्नविपन्नः
यत्र यः तं उ ह वाव इतरः तत्र विसृज्य जातं जातं उपादाय शोचन् मुह्यन्
बिभ्यत् विवदन् क्रन्दन् संहृष्यन् गायन् नह्यमानः साधु र्वजितः न एव आव-
र्तते अद्य अपि यत आरब्ध एष नरलोक सार्थः यं अध्वनः पारं
उपदिशन्ति ॥३८॥

एतस्मिन्	इस	यत्र यः	जो जहाँ है
संसार अध्वनि	संसार-मार्गमें	तं उ ह वाव	उसे निश्चय ही
नानाक्लेश	अनेक प्रकारके क्लेशों,	इतरः तत्र	दूसरा वहीं
उपसर्ग बाधित	बाधाओंसे पीड़ित,	विसृज्य	छोड़कर
आपन्नविपन्नः	आपत्तिग्रस्त तथा मृत (लोगों)को	जातं जातं	(नये) जन्मे हुआओंको
		उपादाय	साथ लेकर

शोचन् मुह्यन्	(कभी) शोक करते, मूर्छित होते	एष	यह
बिभ्यत्	डरते,	नरलोक सार्थः	मनुष्यरूपी व्यापारी
विवदन्	झगड़ते,	यं अध्वनः पारं	जिसे मार्गका पार
क्रन्दन्	रोते,	उपदिशन्ति	कहा जाता है
संहृष्यन्	हर्ष मनाते,	अद्य अपि	(उस ओर)
गायन्	गाते,	न आवर्तते	आज भी
नह्यमानः	बन्धनमें पड़ता		नहीं लौटता
साधु वर्जितः	सत्पुरुषोंसे त्यक्त		है ॥३८॥
यत आरब्ध	जहाँसे प्रारम्भ करके		

यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदण्डा मुनयः
उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छन्ति ॥३६॥

यत् इदं योग अनुशासनं न वा एतत् अवरुन्धते यत् न्यस्त दण्डा
मुनयः उपशमशीलाः उपरत आत्मानः सम अवगच्छन्ति ॥३६॥

यत् इदं	क्योंकि यह जो	दण्डा	(दण्डको त्याग देने वाले)
योग अनुशासनं	योग-शास्त्र है (वह भी)	उपशमशीलाः	निवृत्ति परायण
एतत्	इस (परमात्मा)को	उपरत	शान्त
न वा	नहीं ही	आत्मानः	चित्त
अवरुन्धते	अवरुद्धकर (पकड़) पाता ।	मुनयः	मुनिगण
यत्	जिस तक	सम	भली प्रकार
न्यस्त	परम अहिंसक	अवगच्छन्ति	पहुँचते हैं ॥३६॥

यदपि दिगिभजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किं तु परं
मृधे शयीरन्नस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबन्धायां विसृज्य स्वय-
मुपसंहृताः ॥४०॥

यदपि दिक् अभिजयिनः यज्विनः ये वै राजर्षयः किं तु परं मृधे शयीरन् न अस्यां एव मम इयं इति कृत वैर अनुबन्धायां विसृज्य स्वयं उपसंहृताः ॥४०॥

यदपि	यद्यपि	अस्यां एव	इस (पृथ्वी)में ही
ये वै	निश्चय जो	इयं मम	यह मेरी है
राजर्षयः	राजर्षिगण	इति	इस भावनासे
दिक् अभि-		कृत वैर	दृढ़ शत्रुता
जयिनः	दिग्विजयी हुए	अनुबन्धायां	करके
यज्विनः	(बड़े-बड़े) यज्ञ	विसृज्य	(इस पृथ्वीको)
	करने वाले हुए		छोड़कर
किं तु	किन्तु	स्वयं	स्वयं
मृधे शयीरन्	फिर युद्धमें सो गये	उपसंहृताः	समाप्त हो गये ॥४०॥
	(मारे गये)		
न परं	परमतत्त्व नहीं		
	(पा सके)		

कर्मवल्लीमवलम्ब्य तत आपदः कथञ्चिन्नरकाद्विमुक्तः पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरि गतोऽपि ॥४१॥

कर्म वल्ली अवलम्ब्य तत आपदः कथञ्चित् नरकात् विमुक्तः पुनः अपि एवं संसार अध्वनि वर्तमानः नरलोक सार्थं उपयाति एवं उपरि गतः अपि ॥४१॥

कर्मवल्लीं	(पुण्य) कर्मरूप	विमुक्तः	छूटनेपर
	लताका	पुनः अपि	फिरसे भी
अवलम्ब्य	सहारा लेकर	एवं	इसी प्रकार
तत आपदः	वहाँ आपत्तियोंसे	संसार अध्वनि	संसार-मार्गमें
कथञ्चित्	किसी प्रकार	वर्तमानः	लगे हुए
नरकात्	नरकसे		

नरलोक सार्थं	मनुष्य-समाज रूपी	उपरि गतः	ऊपर (स्वर्गादिमें)
	व्यापारी लोगोंके		जानेपर
उपयाति	साथ जाता है,	अपि	भी (यही दशा
एवं	इसी प्रकार		होती है ।) ॥४१॥

तस्येदमुपगायन्ति—

तस्य इदं उपगायन्ति—

तस्य	उन (भरतके	इदं	यह (लोग)
	सम्बन्धमें)	उपगायन्ति	कहते हैं--

आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसापि महात्मनः ।

नानुवर्तमर्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ॥४२॥

आर्षभस्य इह राजर्षेः मनसा अपि महात्मनः न अनुवर्तमर्हति नृपः
मक्षिका इव गरुत्मतः ॥४२॥

मक्षिका	(कोई) मक्खी	महात्मनः	महात्मा
गरुत्मतः	(जैसे) गरुड़की	आर्षभस्य	ऋषभ-नन्दन
	(बराबरी नहीं कर		(भरत)का
	सकती)	नृपः	(कोई) राजा
इव	इसी प्रकार	मनसा अपि	मनसे भी
इह	इस संसारमें	अनुवर्तमर्	अनुकरण
राजर्षेः	राजर्षि	न अर्हति	नहीं कर सकता ॥४२॥

यो दुस्त्यजान्दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ।

जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥४३॥

यः दुस्त्यजान् दार सुतान् सुहृत् राज्यं हृदिस्पृशः जहौ युवा एव
मलवत् उत्तमश्लोक लालसः ॥४३॥

यः	जिन्होंने	दार सुतान्	स्त्री, पुत्रोंको,
उत्तमलोक	पुण्य कीर्ति (श्रीहरिको)	हृदिस्पृशः	हृदयस्पर्शी
लालसः	(पानेकी) लालसासे	सुहृत्	मित्रों (तथा)
युवा एव	युवावस्थामें ही	राज्यं	राज्यको
दुस्त्यजान्	दुस्त्यज	मलवत्	विष्ठाके समान
		जहौ	त्याग दिया ॥४३॥

यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान्

प्राथ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ।

नैच्छन्तृपस्तदुचितं महतां मधुद्विद-

सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥४४॥

यः दुस्त्यजान् क्षिति सुत स्वजन अर्थ दारान् प्राथ्यां श्रियं सुरवरैः
सदय अवलोकां न इच्छन् नृपः तत् उचितं महतां मधुद्विद सेवा अनुरक्त
मनसां भवः अपि फल्गुः ॥४४॥

दुस्त्यजान्	दुस्त्यज	यः नृपः	जिन राजाने
क्षिति	पृथ्वी	न इच्छन्	इच्छा नहीं की
सुत स्वजन	पुत्र, स्वजन,	तत्	वह (उनके लिए)
अर्थ दारान्	धन, स्त्रियोंको,	उचितं	उचित ही था
सुरवरैः	बड़े-बड़े देवताओंद्वारा		(क्योंकि)
सदय अवलोकां	दया पूर्वक दृष्टि- पात की	मधुद्विद	श्रीमधुसूदनकी
प्राथ्यां	जिनसे प्रार्थना की जाती है	सेवा अनुरक्त	सेवामें अनुरक्त
श्रियं	(उन) लक्ष्मीकी	मनसां	मनवालोंके लिए
		अभवः अपि	मोक्ष भी
		फल्गुः	तुच्छ है ॥४४॥

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय

योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ।

नारायणाय हरये नम इत्युदारं

हास्यन्मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥४५॥

यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृति ईश्वराय
नारायणाय हरये नम इति उदारं हास्यन् मृगत्वं अपि यः समुद
आजहार ॥४५॥

मृगत्वं	मृग शरीरको	प्रकृति ईश्वराय	प्रकृतिेश्वर,
हास्यन्	त्यागते समय	नारायणाय	नारायण,
यः	जिन्होंने	हरये नम	‘हरये नमः’
यज्ञाय	यज्ञस्वरूप,	इति	इस प्रकार
धर्मपतये	धर्मेश्वर,	उदारं	उच्च स्वरसे
विधिनैपुणाय	विधि निपुण,	समुदं	आनन्द पूर्वक
योगाय	योग स्वरूप,	आजहार	कहा था ॥४५॥
सांख्यशिरसे	सांख्य प्रतिपाद्य,		

य इदं भागवतसभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्या-
नुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यपवर्ग्यं वानुशृणो-
त्याख्यास्यत्यभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न
काञ्चन परत इति ॥४६॥

य इदं भागवत सभाजित अवदात गुण कर्मणः राजर्षेः भरतस्य अनु-
चरितं स्वस्त्ययनं आयुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्य अपवर्ग्यं वा अनुशृणोति आख्या-
स्यति अभिनन्दति च सर्वा एव आशिष आत्मन आशास्ते न काञ्चन परत
इति ॥४६॥

भागवत	भक्तों द्वारा	धन्यं	धन देनेवाला,
सभाजित	सम्मानित	यशस्यं	सुयशदायी,
अवदात	निर्मल	स्वर्ग्य अपवर्ग्य	स्वर्ग तथा मोक्ष- देने वाला है ।
गुण कर्मणः	गुण-कर्म वाले	य इदं	जो इसको
राजर्षेः भरतस्य	राजर्षि भरतका	अनुशृणोति	बार-बार सुनता है
अनुचरितं	यह (वर्णित) चरित	आख्यास्यति	(या) सुनाता है
स्वस्त्ययनं	कल्याणकारी		
आयुष्यं	आयु देनेवाला		

वा	अथवा	✓ आशास्ते	पूर्ण हो जाती हैं
अभिनन्दति च	इसका अभिनन्दन	काञ्चन	किसी दूसरेसे
	ही करता है	न परत	नहीं (माँगना पड़ता
सर्वा एव	उसकी सभी	इति	यह ऐसा (प्रभाव-
आशिष	कामनायें		शाली) है ॥४६॥
आत्मन	स्वयं ही		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
भरतोपाख्याने पारोक्ष्यविवरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

शुक उवाच-

भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित्पा-
खण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां
स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥१॥

भरतस्य आत्मजः सुमतिः नाम अभिहितः यं उ ह वाव केचित् पाख-
ण्डिनः ऋषभ पदवीं अनुवर्तमानं च अनार्या अवेद समाम्नातां देवतां
स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥१॥

भरतस्य	भरतजीका	केचित्	कुछ
आत्मजः	पुत्र	पाखण्डिनः	पाखण्डी
सुमतिः नाम	सुमति नामका था।	अनार्या	अनार्य
अभिहितः	(यह) पहिले कहा जा चुका है*	अवेद	अवैदिक मतके
यं उ ह वाव	जिसे निश्चित रूपसे ही	समाम्नात	नियमसे
ऋषभ पदवीं	ऋषभजीकी स्थितिका	पापीयस्यां	पाप-परायण
अनुवर्तमानं च	अनुसरण करनेके कारण	स्वमनीषया	अपनी बुद्धिसे
		कलौ	कलियुगमें
		देवतां	देवता
		कल्पयिष्यन्ति	कल्पित कर लेंगे ॥१॥

तस्माद् वृद्धसेनायां देवताजिज्ञाम पुत्रोऽभवत् ॥२॥

तस्मात् वृद्धसेनायां देवताजित् नाम पुत्रः अभवत् ॥२॥

तस्मात्	उससे	देवताजित्	देवताजित्
वृद्धसेनायां	(उसकी पत्नी) वृद्ध	नाम	नामक
	सेनामें	पुत्रः अभवत्	पुत्र हुआ ॥२॥

अथासुर्या तत्तनयो देवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी
तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥३॥

अथ असुर्या तत् तनयः देवद्युम्नः ततः धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य
सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥३॥

अथ असुर्या	फिर असुर्यासे	सुतः परमेष्ठी	परमेष्ठी नामक
तत् तनयः	उस (देवताजित्का)		पुत्र हुआ ।
	पुत्र	तस्य	उसके
देवद्युम्नः	देवद्युम्न हुआ ।	सुवर्चलायां	सुवर्चलासे
ततः	उसके	प्रतीह	प्रतीह
धेनुमत्यां	धेनुमतीसे	उपजातः	उत्पन्न हुआ ॥३॥

य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनु-
सस्मार ॥४॥

यः आत्मविद्यां आख्याय स्वयं संशुद्धः महापुरुषं अनुसस्मार ॥४॥

यः	जिसने	महापुरुषं	भगवान्
आत्मविद्यां	आत्मविद्याका		पुरुषोत्तमका
आख्याय	उपदेश करके	अनुसस्मार	बराबर स्मरण
स्वयं संशुद्धः	स्वयं अत्यन्त शुद्ध (चित्त) होकर		किया ॥४॥

प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः
सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानावजनिषाताम् ॥५॥

प्रतीहात् सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रा आदयः त्रय आसन् इज्याकोविदाः
सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यां अजभूमान अवजनिषाताम् ॥५॥

प्रतीहात्	प्रतीहसे	प्रतिहर्तुः	प्रतिहर्तसे
सुवर्चलायां	सुवर्चलामें*	स्तुत्यां	स्तुति (नामक
प्रतिहर्त्वा	प्रतिहर्त्वा		पत्नी)में
आदयः	आदि	अजभूमान	अज और भूमा
त्रयः	तीन		(दो पुत्र)
इज्याकोविदाः	यज्ञ करनेमें निपुण	अवजनिषातां	उत्पन्न हुए ॥५॥
सूनवः	पुत्र हुए ।		

भूमन् ऋषिकुल्यायामुद्गीथस्ततः प्रस्तावो देवकुल्यायां प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुर्विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्ताद् द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलाऽऽत्मवत्त्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥६॥

भूमन् ऋषिकुल्यायां उद्गीथः ततः प्रस्तावः देवकुल्यायां प्रस्तावात् नियुत्सायां हृदयज आसीत् विभुः विभोः रत्यां च पृथुषेणः तस्मात् नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्ताद् द्रुतिपुत्रः गयः राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षात् भगवतः विष्णोः जगत् रिरक्षिषया गृहीत सत्त्वस्य कला आत्मवत् तु आदि लक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥६॥

भूमन्:	भूमाके	नियुत्सायां	नियुत्सासे
ऋषिकुल्यायां	ऋषिकुल्यासे	विभुः हृदयज	विभु पुत्र
उद्गीथः	उद्गीथ	आसीत्	हुए
ततः	उनके	विभोः रत्यां च	विभुके रतिसे ही
देवकुल्यायां	देवकुल्यासे	पृथुषेणः	पृथुषेण
प्रस्तावः	प्रस्ताव	तस्मात्	उनसे
प्रस्तावात्	प्रस्तावके	आकूत्यां	आकूतिमें

*प्रतीहकी माताका नाम भी इसी अध्यायमें (३) सुवर्चला था, यह कहा गया है ।

नक्त जज्ञे	नक्त उत्पन्न हुए ।	रिरक्षिषया	रक्षाके लिए
नक्तात्	नक्तसे	गृहीत सत्त्वस्य	सत्त्वगुण स्वीकार
द्रुतिपुत्रः	द्रुतिके पुत्र		करके
राजर्षिप्रवर	राजर्षि श्रेष्ठ	कला	कला (अवतार)थे ।
उदरश्रवा	उदार-कीर्ति	आत्मवत्	संयम
गयः अजायत	गय उत्पन्न हुए ।	आदि	आदि
तु साक्षात्	(ये) तो साक्षात्	लक्षणेन	लक्षणोंसे
भगवतः	भगवान्	महापुरुषतां	महापुरुषताको
विष्णोः	विष्णुकी	प्राप्तः	प्राप्त हुए ॥६॥
जगत्	जगतकी		

स वै स्वधर्मेण प्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासन-
लक्षणेनेज्यादिना च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वा-
त्मनार्पितपरमार्थलक्षणे न ब्रह्मविच्चरणानुसेवयाऽऽपादित-
भगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः परिभावितातिशुद्धमतिरुपरताना-
त्म्य आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान
एवावनिमज्जुपत् ॥७॥

स वै स्वधर्मेण प्रजापालन पोषण प्रीणन उपलालन अनुशासन लक्ष-
णेन इज्यादिना च भगवति महापुरुषे पर अवरे ब्रह्मणि सर्वात्मना अर्पित
परमार्थ लक्षणे न ब्रह्मवित् चरण अनुसेवया आपादित भगवत् भक्तियोगेन च
अभीक्ष्णशः परिभावित अतिशुद्ध मतिः उपरत अनात्म्य आत्मनि स्वयं उप-
लभ्यमान ब्रह्म आत्म अनुभवः अपि निरभिमानः एव अवनि अज्जुपत् ॥७॥

स वै	उन्होंने तो	अनुशासन	मर्यादामें रखने
प्रजापालन	प्रजाके पालन	लक्षणेन	स्वरूप
पोषण प्रीणन	पोषण, प्रसन्न करने	स्वधर्मेण	अपने धर्मपालन
उपलालन	स्नेह करने	च इज्यादिना	तथा यज्ञादि द्वारा

भगवति	भगवान्	परिभावित	(भगवद्) भावनासे
महापुरुषे	परमपुरुष	अतिशुद्ध मतिः	अत्यन्त शुद्ध बुद्धि,
पर अवरे	कारण कार्य स्वरूप	उपरत	उपरत (तटस्थ)
ब्रह्मणि	ब्रह्ममें		होकर
सर्वात्मना	पूरे हृदयसे	अनात्म्य	अनात्म (देहादि)
अर्पित	अर्पित होकर		वस्तुओंसे
परमार्थ	परमार्थ	आत्मनि	अपने भीतर ही
लक्षणे न	रूप हो गये	स्वयं	स्वतः
ब्रह्मवित्	ब्रह्मवेत्ता	उपलभ्यमान	प्राप्त होते
	(महापुरुष)की	ब्रह्म आत्म	अपने आत्माके ब्रह्म-
चरण	बराबर चरण-	अनुभवः	रूप होनेका अनुभव
अनुसेवया	सेवासे	अपि	होनेपर भी
आपादित	प्राप्त हुए	निरभिमानः एव	अभिमान रहित
भगवत्			होकर ही
भक्तियोगेन	भक्तियोग द्वारा	अवनि अजूगुप्त	पृथ्वीका पालन
च अभीक्षणशः	तथा निरन्तर		करते रहे ॥७॥

तस्येमां गाथां पाण्डवेय पुराविद् उपगायन्ति ॥८॥

तस्य इमां गाथां पाण्डवेय पुराविद् उपगायन्ति ॥८॥

पाण्डवेय	परीक्षित्	इमां गाथां	इस गाथा
तस्य	उन (गय)के		(महिमा)का
	विषयमें	उपगायन्ति	वर्णन करते हैं ॥८॥
पुराविद्	प्राचीन इतिहासज्ञ		

गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभि-

यंज्वाभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता ।

समागतश्रीः सदसस्पतिः सतां

सत्सेवकोऽन्यो भगवत्कलामृते ॥९॥

गयं नृपः कः प्रतियाति कर्मभिः इज्या अभिमानी बहुवित् धर्मगोप्ता
समागतः श्रीः सदसस्पतिः सतां सत् सेवकः अन्यः भगवत् कलां ऋते ॥६॥

कः नृपः	कौन राजा	सतां	सज्जनोके
कर्मभिः	(अपने) कर्मोंसे		(समाजके)
गयं प्रतियाति	राजा गयकी समता	सदसस्पतिः	शिरोमणि,
	कर सकता है,	सत् सेवकः	सत्पुरुषोंके सेवक
इज्या	(सविधि) यज्ञोंके	भगवत् कलां	भगवान्की कलाको
अभिमानी	कर्ता,	ऋते	छोड़कर (दूसरा
बहुवित्	बहुज्ञ,		कौन हो सकता
धर्मगोप्ता	धर्मरक्षक		है ।) ॥६॥
समागतः श्रीः	भलीप्रकार आयी		
	लक्ष्मीसे सम्पन्न,		

यमभ्यषिञ्चन् परया मुदा सतीः

सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्धिः ।

यस्य प्रजानां दुदुहे धराऽऽशिषो

निराशिषो गुणवत्सस्तुतोधाः ॥१०॥

यं अभ्यषिञ्चन् परया मुदा सतीः सत्य आशिषः दक्षकन्याः सरिद्धिः
यस्य प्रजानां दुदुहे धरा आशिषः निराशिषः गुणवत् सस्तुत ओधाः ॥१०॥

यं	जिनका	यस्य	जिन
सतीः	साध्वी	निराशिषः	जिन निष्कामकी
सत्य आशिषः	सच्चा आशीर्वाद	गुणवत्	गुणवत्तासे
	देनेवाली	सस्तुत ओधाः	झरते थनों वाली
दक्षकन्याः	दक्षकी कन्याओं	धरा	पृथ्वीने
	(श्रद्धा, मैत्री	प्रजानां	प्रजाके लिए
	आदि)ने	आशिषः	(सब) कामनाएँ
मुदा	प्रसन्नतापूर्वक	दुदुहे	दुह दिया (प्रदान
सरिद्धिः	नदियोंके द्वारा		किया) ॥१०॥
अभ्यषिञ्चन्	अभिषेक किया था		

छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान्

दुदूहुराजह्नु रथो बलिं नृपाः ।

प्रत्यञ्चिता युधि धर्मेण विप्रा

यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥११॥

छन्दांसि अकामस्य च यस्य कामान् दुदूहुः अथ बलिं नृपाः प्रत्य-
ञ्चिता युधि धर्मेण विप्राः यत् आशिषां षष्ठं अंशं परेत्य ॥११॥

यस्य	जिन	विप्राः	ब्राह्मणोंने
अकामस्य च	कामनाहीनको	यत् धर्मेण	क्योंकि धर्मपूर्वक
छन्दांसि	वेदों (वैदिक कर्मों)ने	आशिषां	(दक्षिणादि) अभीष्ट पाये
कामान् दुदूहुः	सब भोग दुह दिये,	परेत्य	परलोकमें
युधि	युद्धमें (वाणोंसे)	षष्ठं अंशं	(अपने धर्म तपादिका) छठवां
प्रत्यञ्चिता	सत्कृत होकर		भाग दिया ॥११॥*
अथ नृपाः	फिर राजाओंने		
बलिं	उपहार दिये		

यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा

मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ।

श्रद्धाविशुद्धाचलभक्तियोग-

समर्पितेज्याफलमाजहार ॥१२॥

यस्य अध्वरे भगवान् अध्वरात्मा मघोनि माद्यति उरु सोमपीथे श्रद्धा
विशुद्ध अचल भक्तियोग समर्पित इज्या फलं आजहार ॥१२॥

यस्य अध्वरे	जिनके यज्ञमें		करनेसे
उरु सोमपीथे	बहुत सोमपान	मघोनि	इन्द्र

*स्मृतियोंके अनुसार राजा (शासक)का भाग (कर) प्रजाके उत्पा-
दनका छठवां भाग होता है ।

माद्यति	उन्मत्त हो गये थे (तथा)	भक्तियोग	भक्तिसे
अध्वरात्मा	यज्ञात्मा	समर्पित	समर्पित
भगवान्	भगवान्ने	इज्या फलं	यज्ञके फलको
विशुद्ध श्रद्धा	विशुद्ध श्रद्धा एवं	आजहार	(प्रकट होकर)
अचल	निश्चल		ग्रहण किया ॥१२॥

यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यङ्-
मनुष्यवीरुत्तृणमाविरिञ्चात् ।

प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः

प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्गयस्य ॥१३॥

यत् प्रीणनात् बर्हिषि देव तिर्यक् मनुष्य वीरुत् तृणम् आविरिञ्चात्
प्रीयेत सद्यः स ह विश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीति अगात् गयस्य ॥१३॥

बर्हिषि	यज्ञमें	स ह	निश्चय वही
यत् प्रीणनात्	जिनको तृप्त करनेपर	प्रीतः	नित्य तृप्त
देव तिर्यक्	देवता, पशु-पक्षी आदि,	विश्वजीवः	भगवान् विश्वात्मा
वीरुत् तृणम्	वृक्ष, घास (से लेकर)	स्वयं	स्वयं
आविरिञ्चात्	ब्रह्मापर्यन्त सब	गयस्य	गयके (यज्ञमें)
सद्यः प्रीयेत	तत्काल तृप्त हो जाते हैं	प्रीति अगात्	तृप्त हो गये थे ॥१३॥

गयाद्गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः पुत्रा
बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट ॥१४॥

गयात् गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिः अवरोधनः इति त्रयः पुत्राः बभूवुः
चित्ररथात् ऊर्णायां सम्राट् अजनिष्ट ॥१४॥

गयात् गयन्त्यां	राजा गयके गयन्तीसे	बभूवुः	हुए ।
चित्ररथः	चित्ररथ,	चित्ररथात्	चित्ररथसे
सुगतिः	सुगति	ऊर्णायां	ऊर्णामें
अवरोधनः	अवरोधन	सम्राट्	सम्राट् (नामका
इति त्रयः	इस प्रकार ये तीन	अजनिष्ट	पुत्र) उत्पन्न
पुत्राः	पुत्र		हुआ ॥१४॥

तत उत्कलायां मरीचिर्मरीचेर्बिन्दुमत्यां बिन्दुमानुदपद्यत
तस्मात्सरघायां मधुर्नामाभवन्मधोः सुमनसि वीरव्रतस्ततो
भोजायां मन्थुप्रमन्थु जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवनस्ततो दूषणायां
त्वष्टाजनिष्ट त्वष्टुर्विरोचनायां विरजो विरजस्य शतजित्प्रवरं
पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥१५॥

ततः उत्कलायां मरीचिः मरीचेः बिन्दुमत्यां बिन्दुमान् उदपद्यत
तस्मात् सरघायां मधुः नाम अभवत् मधोः सुमनसि वीरव्रतः ततः भोजायां
मन्थुः प्रमन्थुः जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवनः ततः दूषणायां त्वष्टा अजनिष्ट
त्वष्टुः विरोचनायां विरजः विरजस्य शतजित् प्रवरं पुत्रशतं कन्या च
विषूच्यां किल जातम् ॥१५॥

ततः	उससे	मधोः सुमनसि	मधुके सुमनासे
उत्कलायां	उत्कलामें	वीरव्रतः	वीरव्रत,
मरीचिः	मरीचि,	ततः भोजायां	उससे भोजामें
मरीचेः	मरीचिके	मन्थुः प्रमन्थुः	मन्थु और प्रमन्थु
बिन्दुमत्यां	बिन्दुमतीसे	जज्ञाते	उत्पन्न हुए ।
बिन्दुमान्	बिन्दुमान	मन्थोः सत्यायां	मन्थुके सत्यासे
उदपद्यत	उत्पन्न हुआ ।	भौवनः	भौवन,
तस्मात्	उससे	ततः दूषणायां	उससे दूषणामें
सरघायां	सरघामें	त्वष्टा	त्वष्टा
मधुः नाम	मधु नामका	अजनिष्ट	उत्पन्न हुआ ।
अभवत्	(पुत्र) हुआ ।	त्वष्टुः	त्वष्टाके

विरोचनायां	विरोचनासे	शतजित् प्रवरं	शतजित प्रधान
विरजः	विरज,	पुत्रशतं	सौ पुत्र
विरजस्य	विरजके	च कन्या	और एक कन्या
विषूच्यां किल	विषूचीमें तो	जातं	उत्पन्न हुई ॥१५॥

तत्रायं श्लोकः—

तत्र अयं श्लोकः—

तत्र अयं इस सम्बन्धों में यह | श्लोकः श्लोक है—

प्रियव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः ।

अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥१६॥

प्रियव्रतं वंशं इमं विरजः चरम उद्भवः अकरोत् अति अलं कीर्त्या
विष्णुः सुरगणं यथा ॥१६॥

यथा	जैसे	चरम उद्भवः	सबसे अन्तमें*
विष्णुः	भगवान् वामनने		उत्पन्न होकर
सुरगणं	देवताओंमें (अन्तमें)	विरजः	विरजने
	उत्पन्न होकर वैसेही	कीर्त्या	(अपनी) कीर्तिसे
इमं	इस	अति अलं	अत्यन्त अलंकृत
प्रियव्रतं	प्रियव्रतके	अकरोत्	किया ॥१६॥
वंशं	वंशको		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

*वंशावलीमें केवल राज्य पाने वाले पुत्रके वंशकी चर्चिका क्रम है ।
अतः 'चरमोद्भवः' का अर्थ है कि प्रियव्रतके वंशका अन्तिम राजा विरज
हुआ । अन्यथा यहीं उसके सौ पुत्र होना तो कहा ही गया है ।

अथ षोडशोऽध्यायः

राजोवाच-

उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र
चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥१॥

उक्तः त्वया भूमण्डल आयाम विशेषः यावत् आदित्यः तपति यत्र
असौ ज्योतिषां गणैः चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥१॥*

त्वया	आपने	सह चन्द्रमा	साथ चन्द्रमा
यावत्	जहाँ तक	दृश्यते	दीखता है
आदित्यः तपति	सूर्य तपता है	भूमण्डल	भू-मण्डलका
वा	अथवा	आयाम	विस्तार
यत्र च असौ	जहाँ तो यह	विशेषः	विशेष
ज्योतिषां गणैः	तारागणोंके	उक्तः	बतलाया ॥१॥

तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिन्धव
उपक्लृप्ता यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन्
खलु सूचित एतदेवाखिलमहं मानतो लक्षणतश्च सर्वं
विजिज्ञासामि ॥२॥

तत्र अपि प्रियव्रत रथचरण परिखातैः सप्तभिः सप्तसिन्धवः उप-
क्लृप्ताः यत एतस्याः सप्तद्वीप विशेष विकल्पः त्वया भगवन् खलु सूचितः
एतत् एव अखिलं अहं मानतः लक्षणतः च सर्वं विजिज्ञासामि ॥२॥

*यहाँसे लेकर स्कन्धके अन्त तक भूगोल खगोलका जो वर्णन है, वह स्थूल-सूक्ष्म जगतका मिला-जुला वर्णन है। यह वर्णन केवल हमारे स्थूल जगतका नहीं है। अतः इसको ठीक-ठीक समझाना सम्भव नहीं है। केवल शब्दार्थ मात्र दिया जा रहा है। यही भू-मण्डलका विस्तार समस्त तारागणों तक कहा गया—यह विशेष ध्यान देने योग्य है।

तत्र अपि	वहाँ (भू-मण्डल विस्तारमें) भी●	विकल्पः	रचना
प्रियव्रत	प्रियव्रतके	भगवन् त्वया	भगवन् आपने
रथचरण	रथके पहियेसे	खलु सूचितः	जो बतलायी
सप्तभिः	सात बार घूमनेसे	एतत् एव	इसी
परिखातैः	खाई के रूपमें	अखिलं	सम्पूर्णको ही
सप्तसिन्धवः	सात समुद्र	अहं	मैं
उपक्लृप्ताः	बन गये	मानतः	परिमाण तथा
यत एतस्याः	जिससे इस (पृथ्वी)के	लक्षणतः	लक्षणों सहित
सप्तद्वीप	सात द्वीप	सर्व	सब (पूरा विवरण)
विशेष	विशेषकी	विजिज्ञासामि	जानना चाहता हूँ ॥२॥

भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्म-
तम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममा-
वेशितुं तद् ह्येतद् गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥३॥

भगवतः गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनः हि अगुणे अपि सूक्ष्मतम
आत्म ज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेव आख्ये क्षमं आवेशितुं तत् उ ह
एतत् गुरोः अर्हसि अनुवर्णयितुं इति ॥३॥

हि भगवतः	क्योंकि भगवान् के	आवेशितं	प्रविष्ट कराया
गुणमये	गुणमय	मनः	मन
	(त्रिगुणात्मक)	अगुणे	निर्गुण
स्थूलरूपे	स्थूल (विराट्)	सूक्ष्मतम	अत्यन्त सूक्ष्म
	रूपमें		

●स्पष्ट है कि ये सात समुद्र और सात द्वीप विशेष वर्तमान ज्ञात पृथ्वीमें ही नहीं हैं। वर्तमान ज्ञात पृथ्वी तो केवल कर्म-क्षेत्र भारतवर्ष ही है। जम्बू द्वीपका शेषभाग और अन्य द्वीप तथा क्षार समुद्रसे भिन्न समुद्रादि सूक्ष्म जगतमें ही होने चाहिए।

आत्म	स्वयं	आवेशितं	प्रविष्ट करानेमें
ज्योतिषि	प्रकाश	क्षमं	सक्षम हो जाता है*
भगवति	भगवान्	तत् उ ह	अतः निश्चय
वासुदेव आख्ये	वासुदेव कहलाने	एतत्	इसका
	वाले	गुरोः	गुरुदेव ! (आपको)
परेब्रह्मणि	परमब्रह्ममें	अनुवर्णयितुं	वर्णन
अपि	भी	अहंसि	करना चाहिए ॥३॥

शुक उवाच- •

न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा
वचसा वाधिगन्तुमलं विबुधायुषापि पुरुषस्तस्मात्प्राधान्येनैव
भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥४॥

न वै महाराज भगवतः माया गुण विभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वा
अधिगन्तुं अलं विबुध आयुष अपि पुरुषः तस्मात् प्राधान्येन एव भूगोलक
विशेषं नाम रूप मान लक्षणतः व्याख्यास्यामः ॥४॥

महाराज	महाराज !	विभूतेः	वैभवकी
भगवतः	भगवान्की	काष्ठां	पराकाष्ठाका पार
माया गुण	मायाके गुणोंके	वचसा	वाणीसे

* यहाँ यह स्पष्ट है कि यह भूगोल-खगोलका वर्णन भूगोल-
खगोलकी जानकारीके लिए नहीं पूछा गया है। भूगोल तथा खगोलमें
परिवर्तन होते ही रहते हैं। ग्रह-नक्षत्रादि भी बनते-नष्ट होते रहते हैं।
उनका स्थायी कोई रूप नहीं है। स्थूल जगत तो परिवर्तनशील है। यहाँ
विराट् रूपका जो शाश्वत है—ऐसा वर्णन पूछा गया है, जिसमें मन लगने
पर भगवान्के सूक्ष्म परंब्रह्म रूपमें मनको प्रविष्ट किया जा सके। अतः
यहाँका सब वर्णन भावनापूर्वक ध्यानके उपयोगका ही है।

• अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है।

वा मनसा	अथवा मनसे	तस्मात्	इसलिए
पुरुषः	पुरुष	प्राधान्येन एव	प्रधानतासे ही
विबुध	देवताओंकी	भूगोलक	भूगोलकी
आयुष अपि	आयुसे भी	विशेषं	विशेषताओंको
अधिगन्तुं	पा जानेमें	नाम रूप मान	नाम, रूप, परिमाण
अलं	पूरा	लक्षणतः	(तथा) लक्षणद्वारा
न वै	नहीं ही है,	व्याख्यास्यामः	वर्णन करेंगे ॥४॥

यो वायं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजन-
विशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥५॥

यः वा अयं द्वीपः कुवलय कमलकोश अभ्यन्तर कोशः नियुतयोजन
विशालः समवर्तुलः यथा पुष्करपत्रम् ॥५॥

यः वा अयं	जो यह (हमारे रहनेका)	कोशः	कोशके समान
द्वीपः	द्वीप है,	नियुतयोजन	एक लाख योजन
कुवलय	भू-मण्डल रूप	विशालः	बड़ा
कमलकोश	कमलके भीतरी भागके	यथा पुष्कर- पत्रं	जैसे कमल- पत्र हो
अभ्यन्तर	आन्तरिक (सबसे भीतरी)	समवर्तुलः	(वैसा) गोलाकार है ॥५॥

यस्मिन्नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादा-
गिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥६॥

यस्मिन् नव वर्षाणि नव योजनसहस्र आयामानि अष्टभिः मर्यादा
गिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥६॥

यस्मिन्	जिसमें	योजनसहस्र	सहस्र योजनके
नव वर्षाणि	नौ देश	आयामानि	विस्तार वाले
नव	नौ-नौ		

अष्टभिः	आठ	सुविभक्तानि	भलीप्रकार बड़े हुए
मर्यादा	सीमा-विभाजक	भवन्ति	हैं ॥६॥
गिरिभिः	पर्वतों द्वारा		

एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुद्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत् सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावतान्तर्भूम्यां प्रविष्टः ॥७॥

एषां मध्ये इलावृतं नाम अभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यां अवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजः मेरुः द्वीपायां असम उन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलय कमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत् सहस्र योजन विततः मूले षोडश सहस्रं तावता अन्तः भूम्यां प्रविष्टः ॥७॥

एषां मध्ये	इन (देशोंके)	कमलस्य	कमलकी
	बीचमें	कर्णिकाभूतः	कर्णिकाके समान है।
इलावृतं नाम	इलावृत नामका	मूर्धनि	शिखर भागमें
अभ्यन्तरवर्षं	सबसे भीतरी देश है	द्वात्रिंशत्	बत्तीस
यस्य नाभ्यां	जिसके मध्यमें	सहस्र योजन	हजार योजन
सर्वतः सौवर्णः	सब ओरसे सोनेका	विततः	फैला हुआ है।
कुलगिरिराजः	कुल पर्वतोंका राजा	मूले षोडश	जड़के पास सोलह
मेरुः	सुमेरु	सहस्रं	सहस्र (योजन) है।
अवस्थितः	स्थित है।	तावता	इतना ही (सोलह सहस्र योजन)
द्वीपायां	द्वीपमें	अन्तः भूम्यां	पृथ्वीके भीतर
असम उन्नाहः	विषम रूपसे ऊपर उठा है।	प्रविष्टः	घुसा हुआ है ॥७॥
कुवलय	भूमण्डल रूप		

उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवानिति त्रयो रम्यक-
हिरण्मयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारो-

दावधयो द्विसहस्रपृथ्व एकैकशः पूर्वस्मात्पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥८॥

उत्तर उत्तरेण इलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवान् इति त्रयः रम्यक हिरण्मय कुरूणां वर्षाणां मर्यादा गिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोद अवधयः द्विसहस्र पृथ्वः एक एकशः पूर्वस्मात् पूर्वस्मात् उत्तर उत्तरः दशांश अधिक अंशेन दैर्घ्य एव ह्रसन्ति ॥८॥

इलावृतं	इलावृतके	क्षारोद	खारे पानी(समुद्रके)
उत्तर उत्तरेण	उत्तरके उत्तरमें	अवधयः	तक फैले हैं
नीलः श्वेतः	नील, श्वेत,	द्विसहस्र	(प्रत्येक) दो सहस्र
शृङ्गवान्	शृङ्गवान्	पृथ्वः	(योजन) चौड़ा है।
इति त्रयः	इस प्रकार तीन	एक एकशः	एक-एक करके
रम्यक	रम्यक,	पूर्वस्मात्	पूर्व-
हिरण्मय	हिरण्मय,	पूर्वस्मात्	पूर्व वालों से
कुरूणां वर्षाणां	कुरु देशोंके	उत्तर उत्तरः	पिछले-पिछले
मर्यादा	सीमा निर्धारक	दशांश अधिक	दशांसे कुछ अधिक
गिरयः	पर्वत	अंशेन	अंशसे
प्रागायता	बतलाये जाते हैं।	दैर्घ्य एव	लम्बाई में ही
उभयतः	(ये) दोनों ओर	ह्रसन्ति	कम होते हैं ॥८॥
	(पूर्वसे पश्चिम तक)		

एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादयोऽयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिम्पुरुषभारतानां यथा संख्यम् ॥९॥

एवं दक्षिणेन इलावृतं निषधः हेमकूटः हिमालयः इति प्रागायता यथा नीलादयः अयुत योजन उत्सेधा हरिवर्ष किम्पुरुष भारतानां यथा संख्यम् ॥९॥

एवं	इसी प्रकार	दक्षिणेन	दक्षिणमें
इलावृतं	इलावृतके	निषधः	निषध,

हेमकूटः	हेमकूट,	उत्सेधा	ऊँचे हैं ।
हिमालयः	हिमालय	हरिवर्ष	हरिवर्ष
इति	इस प्रकार	किम्पुरुष	किम्पुरुष वर्ष
प्रागायता	बतलाये गये हैं ।	भारतानां	भारतवर्षके
यथा	जैसे	यथा संख्यं	क्रमानुसार
नीलादयः	नील आदि पर्वत हैं		(सीमा पर्वत हैं)॥६॥
अयुत योजन	(ये भी) दस हजार योजन		

तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानील
निषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते
॥१०॥

तथा एव इलावृतं अपरेण पूर्वेण च माल्यवत् गन्धमादनः आनील
निषध आयतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमाल भद्राश्वयोः सीमानं विदधाते
॥१०॥

तथा एव	इसी प्रकार	निषध	निषध पर्वत तक
इलावृतं	इलावृतके	आयतौ	फैले हुए
अपरेण	दूसरी (पश्चिम और	द्विसहस्रं	दो हजार योजन
च पूर्वेण	तथा पूर्वमें	पप्रथतुः	चौड़ाई वाले
माल्यवत्	माल्यवान तथा	केतुमाल	केतुमाल वर्ष
गन्धमादनः	गन्धमादन (पर्वत)	भद्राश्वयोः	भद्राश्व वर्षकी
आनील-	नील और	सीमानं	सीमायें
		विदधातेः	बनाते हैं ॥१०॥

मन्दरो मेरुमन्दरः सुपाश्वः कुमुद इत्ययुतयोजनविस्तारो-
न्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्लृप्ताः ॥११॥

मन्दरः मेरुमन्दरः सुपाश्वः कुमुदः इति अयुत योजन विस्तार उन्नाहा
मेरोः चतुर्दिशं अवष्टम्भ गिरयः उपक्लृप्ताः ॥११॥

मन्दरः	मन्दर,	योजन विस्तार	योजन चौड़े
मेरुमन्दरः	मेरुमन्दर,	उन्नाहा	(इतने ही) ऊँचे
सुपाश्वः	सुपाश्व	मेरोः चतुर्दिशं	सुमेरुके चारों ओर
कुमुदः	कुमुद	अवष्टम्भ	उसे सम्हालने वाले
इति	इस नामके	गिरयः	पर्वत
अयुत	दस-दस हजार	उपबलृप्ताः	बने हैं ॥११॥

चतुर्ष्वेतेषु चूतजम्बूकदम्बन्यग्रोधाश्रत्वारः पादपप्रवराः
पर्वतकेतव इवाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद् विटपविततयः शत-
योजनपरिणाहाः ॥१२॥

चतुःषु एव तेषु चूत जम्बू कदम्बन्यग्रोधाः चत्वारः पादपप्रवराः
पर्वतकेतव इव अधिसहस्र योजन उन्नाहाः तावत् विटप विततयः शतयोजन
परिणाहाः ॥१२॥

तेषु चतुःषु	उन चारों ही	अधिसहस्र	(ये) ग्यारह सौ
एव	(पर्वतों) पर	योजन	योजन
चूत जम्बू	आम, जामुन,	उन्नाहाः	ऊँचे हैं।
कदम्ब-	कदम्ब,	तावत् विटप	इनकी शाखाओंका
न्यग्रोधाः	बटके	विततयः	फैलाव भी इतना
चत्वारः	चार		ही है।
पादपप्रवराः	वृक्षश्रेष्ठ	शतयोजन	(ये) सौ योजन
पर्वतकेतव	पर्वतोंके झण्डोंके	परिणाहाः	परिधि वाले (मोटे)
इव	समान हैं		हैं ॥१२॥

ह्रदाश्रत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेव-
गणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥१३॥

ह्रदाः चत्वारः पयः मधु इक्षुरस मृष्टजलाः यत् उपस्पर्शिनः उपदेव-
गणाः योग ऐश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥१३॥

भरतर्षभ	भरतवंशमें श्रेष्ठ (परीक्षित)	उपस्पर्शिनः	सेवन करने वाले
चत्वारः	(इन पर्वतोंपर) चार	उपदेवगणाः	उपदेवगण (गन्धर्व किन्नरादि)
ह्लादाः	सरोवर हैं,	स्वाभाविकानि	नैसर्गिक
पयः मधु	दूध, मधु,	योग ऐश्वर्याणि	योगकी सिद्धियाँ
ईक्षुरस	गन्नेके रस (तथा)	धारयन्ति	धारण करते
मृष्टजलाः	मीठे पानीके		हैं ॥१३॥
यत्	जिनका		

देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं
सर्वतोभद्रमिति ॥१४॥

देव उद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतो-
भद्रं इति ॥१४॥

देव उद्यानानि	देवताओंके बगीचे	चैत्ररथं	चैत्ररथ
च चत्वारि	भी चार (इन पर)	वैभ्राजकं	वैभ्राजक.
भवन्ति	हैं	सर्वतोभद्रं	सर्वतोभद्र
नन्दनं	नन्दन*	इति	इस नामके ॥१४॥

येष्वमरपरिवृढाः सह सुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणै-
रुपगीयमानमहिमानः किल विहरन्ति ॥१५॥

येषु अमरपरिवृढाः सह सुरललना ललाम यूथ पतयः उपदेवगणैः
उपगीयमान महिमानः किल विहरन्ति ॥१५॥

येषु	जिनमें	महिमानः	(अपनी) महिमा
उपदेवगणैः	उपदेवता गण (गन्धर्वादि) द्वारा	उपगीयमानः	गाये जाते हुए

*स्पष्ट ही है कि यह वर्णन सूक्ष्म-जगतका है। क्योंकि नन्दन-
कानन तो स्वर्गका प्रसिद्ध है।

अमरपरिवृद्धाः प्रधान प्रधान देवता	किल	अहो,
सुरललना ललाम सुन्दर देवियोंके	विहरन्ति	विहार करते
सह साथ		हैं ॥१५॥

मन्दरोत्सङ्गः एकादशशतयोजनोत्तुङ्गदेवचूतशिरसो गिरिशि-
खरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति ॥१६॥

मन्दर उत्सङ्गः एकादशशत योजन उत्तुङ्ग देव चूतशिरसः गिरि-
शिखर स्थूलानि फलानि अमृत कल्पानि पतन्ति ॥१६॥

मन्दर उत्सङ्गः	मन्दराचलकी	चूतशिरसः	आम्र-वृक्षके ऊपरसे
	गोदमें	गिरिशिखर	पर्वत शिखरके
एकादशशत	ग्यारह सौ		समान
योजन	योजन	स्थूलानि	बड़े
उत्तुङ्ग	ऊँचे	अमृत कल्पानि	अमृतके समान
देव	देवताओंके	फलानि पतन्ति	फल गिरते हैं ॥१६॥

तेषां विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगन्धिबहुलारुणरसो-
देनारुणोदा नाम नदी मन्दरगिरिशिखरान्निपतन्ती पूर्वेणैलावृत-
मुपप्लावयति ॥१७॥

तेषां विशीर्यमाणानां अतिमधुर सुरभि सुगन्धि बहुल अरुणरसोदेन
अरुणोदा नाम नदी मन्दरगिरि शिखरात् निपतन्ती पूर्वेण इलावृतं
उपप्लावयति ॥१७॥

तेषां	उन (आम फलों)के	नाम नदी	नामकी नदी
विशीर्य-		मन्दरगिरि	मन्दराचलके
माणानां	फटते रहनेसे	शिखरात्	शिखरसे
अतिमधुर	बहुत मधुर	निपतन्ती	गिरती हुई
सुरभि सुगन्धि	उत्तम सुगन्धिसे	पूर्वेण इलावृतं	इलावृतके पूर्वी
बहुल	भरे		भागको
अरुणरसोदेन	लालरस प्रवाहसे	उपप्लावयति	सींचती है ॥१७॥
अरुणोदा	अरुणोदा		

यदुपजोषणाद्भुवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्श
सुगन्धवातो दशयोजनं समन्तादनुवासयति ॥१८॥

यत् उपजोषणात् भवानी अनुचरीणां पुण्यजनवधूनां अवयवस्पर्श
सुगन्धवातः दशयोजनं समन्तात् अनुवासयति ॥१८॥

यत्	जिसके	सुगन्धवातः	सुगन्धित हुआ वायु
उपजोषणात्	सेवनसे	समन्तात्	चारों ओर
भवानी	पार्वतीजीकी	दशयोजनं	दस योजन तक
अनुचरीणां	सेविका	अनुवासयति	सुगन्ध भरता है
पुण्यजनवधूनां	यक्षपत्नियोंके		॥१८॥
अवयवस्पर्श	अंगोंके स्पर्शसे		

एवं जम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणा-
भिभकायनिभानां रसेन जम्बू नामनदी मेरुमन्दरशिखरादयुत-
योजनादवनितले निपतन्ती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्य-
न्दयति ॥१९॥

एवं जम्बू फलानां अत्युच्च निपात विशीर्णानां अनस्थिप्रायाणां इभ-
कायनिभानां रसेन जम्बू नाम नदी मेरुमन्दर शिखरात् अयुत योजनात्
अवनितले निपतन्ती दक्षिणेन आत्मानं यावत् इलावृतं उपस्यन्दयति ॥१९॥

एवं	इसी प्रकार	जम्बू नाम नदी	जम्बू नामकी नदी
मेरुमन्दर	मेरुमन्दरके	अयुत	दस हजार
शिखरात्	शिखर से	योजनात्	योजन (ऊँचाई) से
इभकायनिभानां	हाथीके शरीर जैसे	अवनितले	भूतलपर
अनस्थिप्रायाणां	प्रायः गुठली रहित	निपतन्ती	गिरती हुई
जम्बू फलानां	जामुनके फलोंके	आत्मानं	अपनेसे
अत्युच्च	बहुत ऊँचेसे	दक्षिणेन	दक्षिण भागके
निपात	गिरनेके कारण	इलावृतं	इलावृतको
विशीर्णानां	फटे हुआँके	उपस्यन्दयति	सींचती है ॥१९॥
रसेन	रससे		

तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना
वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदा मरलोकाभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्णं
भवति ॥२०॥

तावत् उभयोः अपि रोधसोः या मृत्तिका तद् रसेन अनुविध्यमाना
वायु अर्क संयोग विपाकेन सदा मरलोक आभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्णं
भवति ॥२०॥

उभयोः	(उस नदीके) दोनों	तावत्	समय पाकर
अपि	ही	विपाकेन	परिपक्व होकर
रोधसोः	किनारे	सदा	नित्य
या	जो	अमरलोक	देवताओंको
मृत्तिका	मिट्टी है (वह)	आभरणं	भूषित करने वाला
तद् रसेन	उसके रससे	जाम्बूनदं नाम	जाम्बूनद नामका
अनु विध्यमाना	बराबर भीग कर	सुवर्णं	स्वर्ण
वायु	वायु (और)	भवति	हो जाती है ॥२०॥
अर्क संयोग	सूर्यकी धूप लगनेसे		

यद् उ ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्या-
भरणरूपेण खलु धारयन्ति ॥२१॥

यत् उ ह वाव विबुध आदयः सह युवतिभिः मुकुट कटक कटिसूत्र
आदि आभरण रूपेण खलु धारयन्ति ॥२१॥

यत् उ ह वाव	जिसे निश्चित ही	कटिसूत्र आदि	कटिसूत्र आदि
विबुध आदयः	देवता आदि	आभरण	आभूषणोंके
युवतिभिः	युवतियों	रूपेण	रूपमें
	(देवियों) के	खलु	निश्चय ही
सह	साथ	धारयन्ति	धारण करते
मुकुट कटक	मुकुट, कड़े,		हैं ॥२१॥

यस्तु महाकदम्बः सुपाश्वर्निरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिः-
सृताः पञ्चायामपरिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपाश्वर्शिशखरात्पत-
न्त्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयन्ति ॥२२॥

यः तु महाकदम्बः सुपाश्वर्निरूढः याः तस्य कोटरेभ्यः विनिःसृताः
पञ्च आयाम परिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपाश्वर् शिखरात् पतन्त्यः अपरेण
आत्मानं इलावृतं अनुमोदयन्ति ॥२२॥

सुपाश्वर्	सुपाश्वर् पर्वतपर	पञ्च	पांच
निरूढः	स्थित	मधुधाराः	रस धाराएँ हैं (वे)
यः तु	जो तो	सुपाश्वर्	सुपाश्वर्के
महाकदम्बः	महाकदम्ब है,	शिखरात्	शिखरसे
तस्य कोटरेभ्यः	उसके खोखलेसे	पतन्त्यः	गिरती हुई
विनिःसृताः	निकलती हुई	आत्मानं	अपनेसे
याः	जो	अपरेण	भिन्न दिशा
पञ्च	पांच		(पश्चिम भाग)
आयाम	पुरसा (हाथ ऊपर	इलावृतं	इलावृतको
	उठाये पुरुषकी	अनुमोदयन्ति	बराबर सुवासित
	ऊँचाई)		करती हैं ॥२२॥
परिणाहाः	जितनी मोटी		

या पयुञ्जानानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयो-
जनमनुवासयति ॥२३॥

या हि उपयुञ्जानानां मुख निर्वासितः वायुः समन्तात् शतयोजनं
अनुवासयति ॥२३॥

या हि	जिसके कि	समन्तात्	चारों ओर
उपयुञ्जानानां	उपयोग करने	शतयोजनं	सौ योजन (तक)
	वालोंके	अनुवासयति	सुगन्धि फैलाती
मुख निर्वासितः	मुखसे निकली		है ॥२३॥
वायुः	वायु		

एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात्पतन्तस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयन्ति ॥२४॥

एवं कुमुद निरूढः यः शतवल्शः नाम वटः तस्य स्कन्धेभ्यः नीचीनाः पयः दधि मधु घृत गुड अन्न आदि अम्बर शय्या आसन आभरण आदयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुद आग्रात् पतन्तः तं उत्तरेण इलावृतं उपयोजयन्ति ॥२४॥

एवं	इसी प्रकार	आदि	आदि
कुमुद	कुमुद पर्वतपर	अम्बर, शय्या,	वस्त्र, शय्या,
निरूढः	स्थित	आसन आभरण	आसन, आभूषण
यः शतवल्शः	जो शतवल्श	आदयः	आदि
नाम	नामका	सर्व एव	सभी
वटः	वट वृक्ष है,	कामदुघा	कामनाओंके देने
तस्य	उसके		वाले
स्कन्धेभ्यः	स्कन्ध (मुख्य शाखाओं) से	नदाः	नद
नीचीनाः	निकलने वाले	कुमुद अग्रात्	कुमुदके शिखरसे
पयः दधि	दूध, दही,	पतन्तः	गिरते हुए
मधु घृत	शहद, घी	इलावृतं	इलावृतके
गुड अन्न	गुड़, अन्न,	उत्तरेण	उत्तरी भागको
		उपयोजयन्ति	भिगाते हैं ॥२४॥

यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां वलीपलितक्लमस्वे-
षदौर्गन्ध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवन्ति
यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥२५॥

यान् उपजुषाणानां न कदाचित् अपि प्रजानां वली पलित क्लम स्वेद
दौर्गन्ध्य जरा आमय मृत्यु शीत उष्ण वैवर्ण्य उपसर्ग आदयः ताप विशेषा
भवन्ति यावत् जीवं सुखं निरतिशयं एव ॥२५॥

याप्	जिन (उन नदोंके दिये पदार्थों)का	मृत्यु	मृत्यु,
उपजुषाणानां	उपयोग करनेवाले	शीत उष्ण	सर्दी-गर्मी (लगना)
प्रजानां	प्रजाजनको	वैवर्ण्य	कान्ति हीनता
कदाचित् अपि	कभी भी	आदयः उपसर्ग	आदि कष्ट
वली पलित	झुरियां पड़ने, केश पकने,	ताप विशेषा	(मानसिक) सन्ताप विशेष
क्लम, स्वेद	थकावट, पसीना,	न भवन्ति	नहीं होते
दौर्गन्ध्य	(शरीरसे) दुर्गन्धि निष्पन्ना,	यावत् जीवं	जब तक जीते हैं,
जरा आमय	बुढ़ापा, रोग,	निरतिशयं सुखं	परिपूर्ण सुख ही
		एव	(रहता है) ॥२५॥

कुरङ्गकुररकुसुम्भवैकङ्कत्रिकूटशिशिरपतङ्गरुचकनिषधशि-
नीवासकंपिलशङ्खवैदूर्यजारुधिहंसर्षभ नागकालञ्जरनारदादयो
विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केशरभूता मूलदेशे परित
उपक्लृप्ताः ॥२६॥

कुरङ्ग, कुरर, कुसुम्भ, वैकङ्क, त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध,
शिनीवास, कपिल, शङ्ख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर,
नारद* । आदयः विंशति गिरयः मेरोः कर्णिकाया इव केशरभूता मूलदेशे
परित उपक्लृप्ताः ॥२६॥

आदयः	आदि (गिनाये गये)	केशरभूता	केशरके समान
विंशति गिरयः	बीस पर्वत	परित	चारों ओर
कर्णिकाया इव	(कमलकी)कर्णिका के समान	उपक्लृप्ताः	समीप स्थित हैं ॥२६॥
मेरोः मूलदेशे	सुमेरुके मूल प्रदेश		

*ये पर्वतों के नाम हैं । पर्वतोंके नामोंका अन्वय, अर्थ नहीं किया
जा सकता ।

जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतो द्विसहस्रं
पृथुतुङ्गौ भवतः । एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलास-
करवीरौ प्रागायतावेवमुत्तरस्त्रिशृङ्गमकरावष्टभिरेतैः परिस्तृतो-
ऽग्निरिव परितश्चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥२७॥

जठर देवकूटौ मेरुं पूर्वेण अष्टादश योजन सहस्रं उदगायतः द्विसहस्रं
पृथुतुङ्गौ भवतः एवं अपरेण पवन पारियात्रौ दक्षिणेन कैलास करवीरौ
प्रागायताः एवं उत्तरः त्रिशृङ्ग मकर अवष्टभिः एतैः परिस्तृतः अग्नि इव
परितः चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥२७॥

मेरुं पूर्वेण	सुमेरुके पूर्वकी ओर (इनके अतिरिक्त)	कैलास	कलास (एवं)
जठर देवकूटौ	जठर तथा देवकूट पर्वत	करवीरौ	करवीर
अष्टादश सहस्रं	अठारह हजार	प्रागायताः	बतलाये गये हैं ।
योजनं	योजन	एवं उत्तरः	इसी प्रकार उत्तरमें
उदगायतः	लम्बे कहे गये हैं ।	त्रिशृङ्ग मकर	त्रिशृङ्ग तथा मकरके
द्विसहस्रं	दो सहस्र (योजन)	अवष्टभिः	स्थित होनेसे
पृथुतुङ्गौ	मोटे (इतने ही) ऊँचे	एतैः परिस्तृतः	इनसे चारों ओरसे घिरा
भवतः	हैं ।	काञ्चनगिरिः	स्वर्ण-पर्वत (सुमेरु)
एवं अपरेण	इसी प्रकार	अग्निः इव	अग्निके समान
पवन	पश्चिमकी ओर	परितः	चारों ओरसे
पारियात्रौ	पवन (तथा)	चकास्ति	चमकता रहता
दक्षिणेन	परियात्रा (पर्वत)		है ॥२७॥
	दक्षिणकी ओर		

मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुत-
योजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥२८॥

मेरोः मूर्धनि भगवत आत्मयोनेः मध्यत उपक्लृप्तां पुरीं अयुतयोजन
साहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥२८॥

मेरोः मूर्धनि	सुमेरुके शिखर पर	अयुतयोजन-	करोड़ योजना-
मध्यत	बीचमें	साहस्रों	(विस्तार)की
उपक्लृप्तां	बनी	पुरीं वदन्ति	पुरी बतलायी
भगवत	भगवान्		जाती है ॥२८॥
आत्मयोनेः	ब्रह्माकी		
शतकौम्भीं	स्वर्णमयी		
समचतुरस्रां	समचतुर्भुज (चौरस)		

तामनु परितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं
तुरीयमानेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥२९॥

तां अनु परितः लोकपालानां अष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीय
मानेन पुरः अष्टाः उपक्लृप्ताः ॥२९॥

तां अनु	उस (ब्रह्मपुरी)से	यथादिशं	उन-उनकी
	नीचे		दिशाओंमें
परितः	सब ओर	यथारूपं	उन-उनके अनुरूप
अष्टानां	आठों	तुरीय मानेन	(ब्रह्माजीकी पुरीसे)
लोकपालानां	लोकपालोंकी		चौथाई परिमाणकी
अष्टाः पुरः	आठ पुरियां	उपक्लृप्ताः	बनी हैं ॥२९॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
भुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वाम-
पादांगुष्ठनखनिभिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तःप्रविष्टा या बाह्य-
जलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरञ्जिताखिल-
जगदघमलापहोपस्पर्शनामला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचो-
ऽभिधीयमानातिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्धन्य-
वततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥१॥

तत्र भगवतः साक्षात् यज्ञलिङ्गस्य विष्णोः विक्रमतः वामपाद अंगुष्ठ
नख निभिन्न ऊर्ध्व अण्डकटाह विवरेण अन्तः प्रविष्टा या बाह्य जलधारा
तत् चरण पंकजअवनेजन अरुण किञ्जल्क उपरञ्जित अखिल जगत् अघमल
अपहा उपस्पर्शन अमला साक्षात् भगवत्पदी इति अनुपलक्षित वचः अभि-
धीयमान अतिमहता कालेन युगसहस्र उपलक्षणेन दिवः मूर्धनि अवततार
यत् तत् विष्णुपदं आहुः ॥१॥

तत्र भगवतः	परम पूज्य भगवान्	अण्डकटाह	ब्रह्माण्डावरणके
साक्षात्	साक्षात्	ऊर्ध्व	ऊपरी भागके
यज्ञलिङ्गस्य	यज्ञस्वरूप	विवरेण	छिद्रसे
विष्णोः	विष्णु (विराट् रूप धारी वामन) के	या बाह्य	जो बाहरी
विक्रमतः	(त्रिलोक) नापते	जलधारा	जलधारा
	समय	अन्तः	(ब्रह्माण्डके) भीतर
वामपद	बायें पैरके	प्रविष्टा	आ गयी
अंगुष्ठ नख	अँगूठेके नखसे	तत् चरण पंकज	वह (भगवान्)
निभिन्न	फूटे हुए		के चरण-कमल
		अवनेजन	धूलनेसे

अरुण	(उनमें लगी) लाल	वचः	वाणीसे
किञ्जल्क	केशरसे	अभिधीयमान	कही जाने वाली
उपरञ्जित	रंग गयी ।	युगसहस्र	सहस्रों युगोंसे
उपस्पर्शन	(वह) स्पर्श मात्रसे	उपलक्षणेन	लक्षित
अखिल जगत्	सम्पूर्ण संसारके	अतिमहता	बहुत अधिक
अघमल	पाप रूपी मलको	कालेन	समय बीतनेपर
अपहा	दूर करने वाली	यत् तत्	जिसे कि
अमला	(स्वयं) निर्मल है ।	विष्णुपदं	विष्णुपद
साक्षात्	साक्षात्	आहुः	कहा जाता है
भगवत्पदी	भगवत्पदी	दिवः मूर्धनि	उस स्वर्गके
इति	इस प्रकार		शिरो भागमें
अनुपलक्षित	सांकेतिक	अवततार	उतरी ॥१॥

यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुल-
देवताचरणारविन्दोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्ति-
योगेन दृढं क्लिद्यमानान्तर्हृदय औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचन-
युगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाभिव्यज्यमानरोमपुलककुल-
कोऽधुनापि परमादरेण शिरसा बिभर्ति ॥२॥

यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतः अस्मत् कुलदेवता
चरणारविन्द उदकं इति यां अनुसवनं उत्कृष्यमाण भगवत्भक्तियोगेन दृढं
क्लिद्यमान अन्तः हृदय औत्कण्ठ्य विवश अमीलित लोचनयुगल कुड्मल
विगलित अमल बाष्पकलया अभिव्यज्यमान रोमपुलककुलकः अधुना अपि
परम आदरेण शिरसा बिभर्ति ॥२॥

वीरव्रत	वीरव्रत परीक्षित !	अस्मत्	हमारे
यत्र ह वाव	जहाँ निश्चित ही	कुलदेवता	कुल-देवताके
परम-भागवतः	परम भगवद्-भक्त	चरणारविन्द	चरण-कमलोंका
औत्तानपादिः	उत्तानपादके पुत्र	उदकं इति	जल है, इस भावसे
	ध्रुव		

भगवत्भक्ति	भगवद्-भक्ति	विगलित	झरती
योगेन	योगसे	अमल	निर्मल
दृढं	बड़े जोरसे	बाष्पकलया	अश्रुधारा तथा
उत्कृष्यमाण	आकर्षित होते	रोमपुलक कुलकः	रोमावलीमें
विलस्यमान	द्रवित हुए		पुलक
अन्तः हृदय	अन्तःकरणके	अभिव्यज्यमान	प्रकट करते हुए
	कारण	यां अनुसवनं	जिसे नित्यप्रति
औत्कण्ठ्य	उत्कण्ठासे	अधुना अपि	आज भी
विवश	विवश	परम आदरेण	बड़े आदरसे
अमीलित	खले हुए	शिरसा	सिरपर
लोचनयुगल	दोनों नेत्रोंसे	बिभर्ति	धारण करते
कुङ्मल	कमल कलिका जैसे		हैं ॥२॥

ततः सप्त ऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा यां ननु तपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभे-
नैवोपेक्षितान्यार्थान्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमान-
मद्यापि जटाजूटैरुद्धहन्ति ॥३॥

ततः सप्त ऋषयः तत् प्रभाव अभिज्ञाः यां ननु तपसः आत्यन्तिकी सिद्धिः एतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवे अनुपरत भक्तियोगलाभेन एव उपेक्षितानि अर्थ आत्मगतयः मुक्ति इव आगतां मुमुक्षव इव सबहुमानं अद्यापि जटाजूटैः उद्धहन्ति ॥३॥

ततः	इसके पश्चात्	सिद्धिः	सिद्धि है,
सप्त ऋषयः	सप्तर्षिगण	एतावती	ऐसा मानकर
तत् प्रभाव	उनका प्रभाव	मुमुक्षव इव	मुमुक्षु जनके समान
अभिज्ञाः	जाननेके कारण	आगतां	प्राप्त हुई
यां ननु	यही निश्चय ही	मुक्ति इव	मुक्तिकी भांति
तपसः	तपस्याकी	आत्मगतयः	आत्मज्ञानकी
आत्यन्तिकी	आत्यन्तिक	उपेक्षितानि अर्थ	उपेक्षा करनेके लिए

सर्वात्मनि	सर्वात्मा	अद्यापि	आज भी
भगवति	भगवान्	सबहुमानं	अत्यन्त आदर
वासुदेवे	वासुदेवकी		सहित
अनुपरत	निश्चल	जटाजूटैः	जटाजूटपर
भक्तियोगलाभेन	भक्ति-प्राप्तिके लिए	उद्वहन्ति	धारण करते
एव	ही		हैं ॥३॥

ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानोक्तसंकुलदेवयानेनावतरन्तीन्दु-
मण्डलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥४॥

ततः अनेक सहस्र कोटि विमान अनीक संकुल देवयानेन अवतरन्ती
इन्दुमण्डलं आवार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥४॥

ततः	वहाँसे	अवतरन्ति	उतरती हुई
अनेक सहस्र	अनेक सहस्र	इन्दुमण्डलं	चन्द्र-मण्डलको
कोटि	करोड़	आवार्य	प्लावित करती
विमान अनीक	विमान समूहोंसे	ब्रह्मसदने	(सुमेरु-शिखरसे)
संकुल	भरे हुए		ब्रह्मपुरीमें
देवयानेन	देवयान-मार्गसे	निपतति	गिरती है ॥४॥

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पन्दन्ती
नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीतालकनन्दा चक्षुर्भद्रेति ॥५॥

तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिः नामभिः चतुः दिशं अभिस्पन्दन्ती
नदनदीपति एव अभिनिविशति सीता अलकनन्दा चक्षुः भद्रा इति ॥५॥

तत्र	वहाँसे	सीता	सीता,
चतुर्धा	चार धाराओंमें	अलकनन्दा	अलकनन्दा■
भिद्यमाना	बँटकर		

■ भागवतमें ही श्रीबद्रीनाथमें अलकनन्दाका वर्णन है (११-२६-४२)
पर यह अलकनन्दा उस समय समुद्र तक जाती थी। भागीरथीके आनेपर
उनसे देवप्रयागमें मिली होंगी।

चक्षुः भद्रा	चक्षु, भद्रा	नदनदीपति	नद-नदियोंके
इति चतुःभिः	इस प्रकार चार		स्वामी
नामभिः	नामोंसे	एव	(समुद्र)में ही
चतुःदिशं	चारों दिशाओंमें	अभिनिविशति	प्रवेश करती
अभिस्पन्दन्ती	बहती हुई		हैं ॥५॥

सीता तु ब्रह्मसदनात्केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः
प्रलवन्ती गन्धमादनमूर्धसु पतित्वान्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां
दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥६॥

सीता तु ब्रह्मसदनात् केसर अचला आदि गिरिशिखरेभ्यः अधः अधः
प्रलवन्ती गन्धमादन मूर्धसु पतित्वा अन्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षार
समुद्रं अभिप्रविशति ॥६॥

सीता तु	सीता तो	गन्धमादन	गन्धमादनके
ब्रह्मसदनात्	ब्रह्मपुरीसे	मूर्धसु	शिखरपर
केसर अचला	केसर भूत पर्वतों	पतित्वा	गिरकर
आदि	आदिके	भद्राश्ववर्षं	भद्राश्व वर्षके
गिरिशिखरात्	एक-से दूसरे पर्वत	अन्तरेण	अन्दर होती
	शिखरपर गिरती	प्राच्यां दिशि	पूर्व दिशामें
अधः अधः	नीचे ही नीचेकी	क्षार समुद्रं	खारे समुद्रमें
प्रलवन्ती	ओर बहती	अभिप्रविशति	मिल जाती हैं ॥६॥

एवं माल्यवच्छिन्नान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमाल-
मभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥७॥

एवं माल्यवत् शिखरात् निष्पतन्ती ततः अनुपरतवेगा केतुमालं
अभि चक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥७॥

एवं चक्षुः	इसी प्रकार चक्षु	निष्पतन्ती	गिरकर
माल्यवत्	माल्यवानके	ततः	वहाँसे
शिखरात्	शिखरपर	अनुपरतवेगाः	वेग कम हुए बिना

केतुमालं अभि केतुमाल वर्षमें
होकर उसी ओर
प्रतीच्यां दिशि पश्चिम दिशामें

सरित्पति समुद्रमें
प्रविशति प्रवेश करती
है ॥७॥

भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखराद्गिरि-
शिखरमतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गादवस्यन्दमाना उत्तरांस्तु
कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥८॥

भद्रा च उत्तरतः मेरु शिरसः निपतिता गिरिशिखरात् गिरिशिखरं
अतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गात् अवस्यन्दमाना उत्तरान तु कुरून् अभित
उदीच्यां दिशि जलधि अभिप्रविशति ॥८॥

भद्रा च भद्रा भी
मेरु उत्तरतः सुमेरुके उत्तरी
शिरसः शिखरसे
निपतिता गिरकर
गिरिशिखरात् (एक) पर्वत
शिखरसे
गिरिशिखरं (दूसरे) पर्वत
शिखरको
अतिहाय पार करती हुई
(अन्तमें)

शृङ्गवतः शृङ्गमानके
शृङ्गात् शिखरसे
अवस्यन्दमाना गिरती हुई
उत्तरान् तु उत्तरे कुरु वर्षमें
कुरून् (होकर)
अभित उस ओरके
उदीच्यां दिशि उत्तर दिशाके
जलधि समुद्रमें
अभिप्रविशति मिल जाती
है ॥८॥

तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य
हेमकूटाद्वैमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठयन्ती भारतमभि वर्षं
दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः
पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ॥९॥

तथा एव अलकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनात् बहूनि गिरिकूटानि अतिक्रम्य
हेमकूटात् हेमकूटानि अति रभसतर रंहसा लुठयन्ती भारतं अभि वर्षं दक्षि-

णस्यां दिशि जलधिं अभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं च आगच्छतः पुंसः पदे-
पदे अश्वमेध राजसूय आदीनां फलं न दुर्लभं इति ॥६॥

तथा एष	इसी प्रकार	जलधि	समुद्रमें
अलकनन्दा	अलकनन्दा	अभिप्रविशति	मिल जाती है*
ब्रह्मसदनात्	ब्रह्मपुरीकी	यस्यां	जिनमें
दक्षिणेन	दक्षिण ओरसे	स्नानार्थं	स्नानके लिए
बहूनि	बहुतसे	आगच्छतः	आने वाले
गिरिकूटानि	पर्वत-शिखरोंको	पुंसः च	पुरुषके लिए भी
अतिक्रम्य	पार करके		(स्नान करनेसे
हेमकूटात्	हेमकूट पर्वतसे		पूर्व ही)
हेमकूटानि	हिमालयके	पदे पदे	पद-पदपर
	शिखरोंको■	अश्वमेध	अश्वमेध,
अति रभसतर	अत्यन्त तीव्र	राजसूय	राजसूय
रंहसा	बेगसे	आदीनां	आदि (यज्ञों) का
लुठयन्ती	लुढ़काती	फलं	फल
	(तोड़ती-फोड़ती)	दुर्लभं न	दुर्लभ नहीं रहता
भारतं अभि	भारतवर्षकी ओर	इति	ऐसी (महिमा
दक्षिणस्यां	दक्षिण		गंगाकी है) ॥६॥
दिशि	दिशामें		

अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशो मेर्वादिगिरि-
दुहितरः शतशः ॥१०॥

■ केवल यहाँ हिमालयसे भौतिक वर्णन चला है। अतः ब्रह्मपुरीसे चलने वाली शेष तीनों धाराएँ सीता, चक्षु और भद्राका अन्वेषण वर्तमान स्थूल पृथ्वीपर करना सम्भव नहीं।

* जहाँ आज गंगासागर है, वहाँ भागीरथी गंगाकी धारा राजा भगीरथ लाये। अलकनन्दा तब कहीं समुद्रमें मिलती थीं—पता नहीं है। अब तो भागीरथीमें मिल जाती हैं।

अन्ये च नदा नद्यः च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशः मेरु आदि गिरि दुहितरः
शतशः ॥१०॥

अन्ये च	दूसरे भी	दुहितरः	पुत्रियाँ
नद नद्यः च	नद-नदियाँ भी	शतशः	सैकड़ों हैं (वे)
मेरु आदि	मेरु आदि	वर्षे वर्षे	प्रत्येक वर्षमें
	(पर्वतों) की	बहुशः सन्ति	बहुत-सी हैं ॥१०॥

तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां
पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति
॥११॥

तत्र अपि भारतं एव वर्षं कर्मक्षेत्रं अन्यानि अष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां
पुण्यशेष उपभोग स्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥११॥

तत्र अपि	उन देशों) में भी	पुण्यशेष	बचे हुए पुण्योंके
भारतं वर्ष एव	भारतवर्ष ही■	उपभोग	भोगनेके
कर्मक्षेत्रं	कर्मक्षेत्र है (जहाँके	स्थानानि	स्थान हैं।
	कर्मका फल होता	भौमानि	(इन्हें) 'भूलोकके
	है।)	स्वर्गपदानि	स्वर्ग' शब्दसे भी
अन्यानि	दूसरे	व्यपदिशन्ति	कहा जाता
अष्टवर्षाणि	आठ वर्ष (देश)		है ॥११॥
स्वर्गिणां	स्वर्ग गये लोगोंके		

एषु पुरुषाणामयुतपुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुत-
प्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवाया-
पवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालो वर्तते
॥१२॥

■ वर्तमान ज्ञात सम्पूर्ण पृथ्वी भारतवर्ष ही है। पृथ्वीके बहुतसे देशोंमें भारतीय मूलके लोग रहते हैं। इस पृथ्वीपर कहीं भी रहने वाले पुरुषको कर्मयोनि का प्राणी ही माना जाता है। अतः यह पूरी पृथ्वी कर्म-क्षेत्र भारतवर्ष है, हमारा यह भारतवर्ष तो भरतखण्ड है।

एषु पुरुषाणां अयुत पुरुष आयुः वर्षाणां देवकल्पानां नाग अयुत प्राणानां वज्र संहनन बल वयः आमोद प्रमुदित महासौरत मिथुन व्यवाय अपवर्ग वर्ष धृत एक गर्भ कलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालः वर्तते ॥१२॥

एषु	इन (भारतेतर आठ देशों) में	प्रमुदित	आनन्दित
देवकल्पानां	देवताओंके समान (देवोपम)	मिथुन	स्त्री-पुरुषके जोड़े
पुरुषाणां	पुरुषोंकी	महासौरत	बहुत समय तक
पुरुष वर्षाणां	मनुष्यके वर्षसे	व्यवाय	मैथुनादि करते रहते हैं
अयुत	दस सहस्र वर्षकी	अपवर्ग	मोक्ष (मरण) के
आयुः	आयु होती है	वर्ष	(अन्तिम)वर्षमें
अयुत	दस हजार	कलत्राणां	उनकी पत्नियाँ
नाग	हाथियों जैसा	धृत	धारण करती हैं
प्राणानां	बल होता है ।	एक गर्भ	एक ही गर्भ
वज्र संहनन	वज्रके समान सुदृढ़	तत्र तु	वहाँ तो
बल वयः	बल, यौवन और	त्रेतायुगसमः	त्रेतायुगके समान
आमोद	उल्लास होनेसे	कालः वर्तते	काल रहता है ॥१२॥

यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वर्गनायकैर्विहितमहार्हणाः सर्वर्तु-
कुसुमस्तबकफलकसलयश्रियाऽऽनम्यमानविटपलताविटपिभिरुप-
शुम्भमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामल-
जलाशयेषु विकचविविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुट-
कारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु
जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां कामकलिल-
विलासहासलीलावलोककृष्टमनोदृष्टयः स्वरं विहरन्ति ॥१३॥

■ पृथ्वीके भारतेतर आठ देशोंका यह वर्णन वर्तमान पृथ्वीके किसी देशका तो होना सम्भव नहीं है । अतः वर्तमान पृथ्वी भारतवर्ष है और ये शेष आठ वर्ष दिव्य सूक्ष्म जगतके हैं ।

यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैः गणनायकैः विहित महा अहंणाः सर्व ऋतु
कुसुम स्तबक फल किसलय श्रिया आनम्यमान विटपलता विटपिभिः उप-
शुम्भमान रुचिर कानन आश्रम आयतन वर्षगिरि द्रोणीषु तथा च अमल
जलाशयेषु विकच विविध नव वनरुह आमोद मुदित राजहंस जलकुक्कुट
कारण्डव सारस चक्रवाक आदिभिः मधुकर निकर आकृतिभिः उपकृजितेषु
जलक्रीडाभिः विचित्र विनोदः सुललित सुरसुन्दरीणां कामकलिल विलास
हास लीला अवलोक आकृष्ट मनः दृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥१३॥

यत्र ह जहाँ कि
देवपतयः देवनायक
स्वैः स्वैः अपने-अपने
गणनायकैः गणनायकों द्वारा
विहित महती
महा अहंणाः पूजा पाते हुए,
सर्व ऋतु सभी ऋतुओंमें
कुसुम स्तबक पुष्प-गुच्छ,
फल किसलय फल, नवपल्लवकी
श्रिया शोभासे युक्त
विटपलता वृक्षों और
लताओंकी और
विटपिभिः डालियोंके
आनम्यमान झुके हुए
उपशुम्भमान सुशोभित
रुचिर कानन सुन्दर वन,
आश्रम आश्रम,
आयतन भवन तथा
वर्षगिरि देशके पर्वतोंकी
द्रोणीषु घाटियोंमें
तथा और
विकच विविध खिले हुए अनेक
नव वनरुह नये कमलोंकी
आमोद मुदित सुगन्धिसे प्रसन्न
राजहंस राजहंस,

जलकुक्कुट जलमुर्गे,
कारण्डव कारण्डव (लेदी)
सारस सारस
चक्रवाक चक्रवा
आदिभिः आदिके
उपकृजितेषु समीप कूजन
(बोलने)से
मधुकर निकर भौरेंके समूहके
आकृतिभिः गुंजारसे युक्त
अमल निर्मल
जलाशयेषु जलाशयोंमें
जलक्रीडाभिः जलक्रीड़ा द्वारा
विचित्र अनेक प्रकारके
विनोदः विनोदसे,
सुललित परम सुन्दर
सुरसुन्दरीणां देवाङ्गनाओंके
कामकलिल कामावेश सूचक
विलास हास हाव-भाव, हँसी
लीला अवलोक लीला कटाक्षसे
मनः दृष्टयः मन और नेत्र
आकृष्ट (उनकी ओर)
स्वैरं विहरन्ति आकर्षित किये
स्वच्छन्द विहार करते हैं ॥१३॥

नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनु-
ग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाद्यापि संनिधीयते ॥१४॥

नवसु अपि वर्षेषु भगवान् नारायणः महापुरुषः पुरुषाणां तत् अनु-
ग्रहाय आत्मतत्त्व व्यूहेन आत्मन अद्य अपि संनिधीयते ॥१४॥

नवसु	(इन) नौके नौ	आत्मनः	अपनी
वर्षेषु अपि	देशोंमें ही	अनुग्रहाय	कृपा करनेके लिए
महापुरुषः	परमपुरुष	आत्मतत्त्व	अपनी विभिन्न
भगवान्	भगवान्	व्यूहेन	मूर्तियोंके रूपमें
नारायणः	नारायण	अद्य अपि	आजभी (इनके)
तत् पुरुषाणां	वहाँके पुरुषोंपर	संनिधीयते	समीप रहते हैं॥१४॥

इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान् ह्यन्यस्तत्रापरो
निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञो यत्प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत्पश्चा-
द्वक्ष्यामि ॥१५॥

इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान् न हि अन्यः तत्र अपरः निर्वि-
शति भवान्याः शाप निमित्तज्ञः यत् प्रवेक्ष्यतः स्त्री भावः तत् पश्चात्
वक्ष्यामि ॥१५॥

इलावृते तु	इलावृतमें तो	न हि निर्विशति	नहीं प्रवेश करता
भगवान् भव	भगवान् शिव	यत् प्रवेक्ष्यतः	जहाँ प्रवेश करनेसे
एक एव पुमान्	अकेले ही पुरुष हैं,	स्त्री भावः	स्त्रीत्व (प्राप्त) हो
भवान्याः	भवानीके		जाता है
शाप निमित्तज्ञः	शापका कारण	तत्	उस (के कारण)को
	जाननेवाला	पश्चात्	पीछे
तत्र अपरः	वहाँ दूसरा कोई अन्य	वक्ष्यामि	बतलाऊँगा ॥१५॥

भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्ते-
र्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः सङ्कर्षणसंज्ञा-
मात्मसमाधिरूपेण संनिधाप्येतदभिगुणन् भव उपधावति ॥१६॥

भवानीनाथैः स्त्रीगण अर्बुद सहस्रैः अवरुध्यमानः भगवतः चतुःमूर्तेः
महापुरुषस्य तुरीयां तामसी मूर्ति प्रकृति आत्मनः सङ्कर्षण संज्ञां आत्म-
समाधिरूपेण संनिधाप्य एतत् अभिगूणन् भव उपधावति ॥१६॥

स्त्रीगण अर्बुद सहस्रैः	अरबों-खरबों स्त्री-गण (पार्वतीकी दासियों)से	सङ्कर्षण संज्ञां	संकर्षण नामवालो का
अवरुध्यमानः	सेवित	आत्मसमाधि-रूपेण	अपनी एकाग्रताके द्वारा
भवानीनाथैः	उमापति द्वारा	संनिधाप्य	(मनोमय विग्रहके रूपमें) सामीप्य प्राप्त करके
चतुः मूर्तेः	चतुर्व्यूहात्मक [■] स्वरूपवाले		
भगवतः	भगवान्	एतत्	यह
महापुरुषस्य	परमपुरुषकी	अभिगूणन्	कहते हुए
तुरीयां	चौथी	भव उपधावति	शंकरजी स्तुति करते हैं ॥१६॥
आत्मनः प्रकृति	अपनी कारण रूपा		
तामसीं मूर्ति	तमः प्रधान मूर्ति		

श्रीमहादेव उवाच-*

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसङ्ख्यानान्यनन्ताया-
व्यक्ताय नम इति ॥१७॥

ॐ नमः भगवते महापुरुषाय सर्वगुण सङ्ख्यानान्य अनन्ताय अव्यक्ताय
नमः इति ॥१७॥

ॐ नमः भगवते	प्राणस्वरूप भगवान्	अव्यक्ताय नमः	अव्यक्तको नमस्कार ।
	को नमः	इति	इस प्रकार (यह भगवान् संकर्षणका मन्त्र है ।)
सर्वगुण	सब गुणोंको		मन्त्रका अनुवाद न करके मूल ही पढ़ा जाना चाहिए ॥१७॥
सङ्ख्यानान्य	संख्या देने (प्रकट करने)वाले		
अनन्ताय	अनन्त स्वरूप		

■ वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षण यह चतुर्व्यूह है ।

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'श्रीभगवानुवाच' है ।

भजे

भजन्यारणपादपङ्कजं

भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ।

भक्तेष्वलं

भावितभूतभावनं

भवापहं त्वा भवभावमोश्वरम् ॥१८॥

भजे भजन्या अरणपाद पङ्कजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणं भक्तेषु
अलं भावित भूतभावनं भव अपहं त्वां भवभावं ईश्वरम् ॥१८॥

कृत्स्नस्य	सम्पूर्ण	भवभावं	संसारकी भावना
भगस्य	ऐश्वर्यके		(उत्पत्ति) करनेवाले
परं परायणं	परमनिवास	ईश्वरं	सर्वसमर्थ
भक्तेषु	भक्तोंके लिए	त्वां भजन्या	आज भजनीयके
अलं भूतभावनं	परमप्राणि परि-	अरणपाद-	लाल-चरण-
	पालक रूप	पङ्कजं	कमलका
भावित	प्रकटकर देने वाले	भजे	(हम) भजन करते
भव अपहं	(जन्म-मरण रूप)		हैं ॥१८॥
	संसारको मिटानेवाले		

न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभि-

निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ।

ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां

कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥१९॥

न यस्य मायागुण चित्तवृत्तिभिः निरीक्षतः हि अणु अपि दृष्टिः
इज्यते ईशे यथा नः अजित मन्यु रंहसां कः तं न मन्येत जिगीषुः
आत्मनः ॥१९॥

मायागुण	मायाके गुणोंवाली	अणु अपि	तनिक भी
चित्तवृत्तिभिः	चित्तकी वृत्तियोंसे	दृष्टिः	दृष्टि
निरीक्षतः	देखते रहनेपर भी	न इज्यते	संसक्त नहीं होती,
हि	क्योंकि	मन्यु रंहसां	क्रोधके वेगको
यस्य ईशे	जिस आप समर्थकी	अजित	न जीत सकनेवाले

यथा नः	जैसे हमारी (हो जाती है)	जिगीषुः	जीतनेकी इच्छावाला
तं	उन (आपका)	कः न मन्येत	कौन सम्मान नहीं करेगा ॥१९॥
आत्मनः	चित्तको		

असदृशो यः प्रतिभाति मायया

क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः ।

न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया

यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥२०॥

असत् दृशः यः प्रतिभाति मायया क्षीब इव मधु आसव ताम्रलोचनः
न नागवध्वः अर्हण ईशिरे ह्रिया यत् पादयोः स्पर्शन धर्षित इन्द्रियाः ॥२०॥

मायया	मायाके द्वारा (वे)	स्पर्शन	स्पर्शसे
असत् दृशः	मिथ्या दृष्टि हैं	धर्षित इन्द्रियाः	चञ्चल इन्द्रिय हुई
यः	जो (जिनको आप)	नागवध्वः	नाग-पत्नियां
मधु आसव	मधु-आसव (पीनेसे)	ह्रिया	लज्जाके कारण
ताम्रलोचनः	लाल नेत्रवाले	अर्हण	पूजा करनेमें
प्रतिभाति	प्रतीत होते हैं ।	ईशिरे न	समर्थ नहीं
यत् पादयोः	जिनके चरणोंके		हुई ॥२०॥

यमाहुरस्य

स्थितिजन्मसंयमं

त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ।

न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं

भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥२१॥

यं आहुः अस्य स्थिति जन्म संयमं त्रिभिः विहीनं यं अनन्तं ऋषयः
न वेद सिद्धार्थं इव क्वचित् स्थितं भूमण्डलं मूर्धं सहस्र धामसु ॥२१॥

ऋषयः	ऋषिगण	अस्य	इस (संसार) की
यं अनन्तं	जिन्हें अनन्त (कहते हैं)	स्थिति जन्म संयमं	स्थिति, उत्पत्ति प्रलय (का हेतु)

यं	(श्रुति) जिसे	सिद्धार्थ	सरसोंके दानेके
आहुः	बतलाती है	इव	समान
त्रिभिः	(वह आप इन) तीनों	क्वचित् स्थितं	कहीं स्थित
	(उत्पत्ति, स्थिति,	भूमण्डलं	भू-मण्डलको(आप)
	लय) से	न वेद	नहीं जान पाते
विहीनं	रहित हैं ।		(कि वह कहाँ
सहस्र	(आपके) सहस्र		है) ॥२१॥
धामसु	मस्तकोंपर		

यस्याद्य आसीद् गुणविग्रहो महान्

विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ।

यत्सम्भवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा

वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥२२॥

यस्य अद्य आसीत् गुणविग्रहः महान् विज्ञानधिष्ण्यः भगवान् अजः
किल यत् सम्भवः अहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसं ऐन्द्रियं
सृजे ॥२२॥

यत् सम्भवः	जिनसे उत्पन्न हुआ	सृजे	सृष्टि करता हूँ
अहं	मैं	किल	निश्चय (वे)
त्रिवृता	(अहंकार रूप) त्रिविध हो जाने वाले	विज्ञानधिष्ण्यः	विज्ञानके आश्रय
		भगवान् अजः	भगवान् ब्रह्मा (जो)
स्वतेजसा	अपने तेजसे	अद्य	इस समय
वैकारिकं	वैकारिक (देवता)	आसीत्	हैं
तामसं	तामस (पंच महा- भूत)	यस्य	जिस (आपके)
ऐन्द्रियं	इन्द्रियोंकी	महान्	महत्तत्त्वरूप
		गुणविग्रहः	प्रथम गुणसे उत्पन्न हैं ॥२२॥

एते वयं यस्य वशे महात्मनः

स्थिताः शकुन्ता इवसूत्र यन्त्रिताः ।

महानहं

वैकृततामसेन्द्रियाः

सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥२३॥

एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः
महान् अहं वैकृत तामस एन्द्रियाः सृजाम सर्वे यत् अनुग्रहात् इदम् ॥२३॥

सूत्रयन्त्रिताः	सूत्रमें बँधे (नियन्त्रित)	वैकृत	इन्द्रियाभिमानी देवता,
शकुन्ता इव	पक्षियोंकी भाँति	तामस	पञ्चमहाभूत,
एते वयं	ये हम सब	एन्द्रियाः	इन्द्रियां
यस्य महात्मनः	जिन महापुरुषके	सर्वे	सब (मिलकर)
वशे स्थिताः	वशमें हैं और	इदं	इस (जगत) की
यत् अनुग्रहात्	जिनके अनुग्रहसे	सृजाम	रचना करते
महान् अहं	महत्तत्त्व, अहंकार,		हैं ॥२३॥

यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं

मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ।

न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा

तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥२४॥

यत् निर्मितां कर्हि अपि कर्म पर्वणीं मायां जनः अयं गुणसर्ग मोहितः
न वेद निस्तारण योगं अञ्जसा तस्मै नमः ते विलय उदय आत्मने ॥२४॥

गुणसर्ग	सृष्टिके गुणोंसे	यत् निर्मितां	जिनकी निर्मित
मोहितः	मोहित	मायां	मायासे
अयं जनः	यह मनुष्य	कर्हि अपि	कभी भी
कर्म पर्वणीं	कर्म-ग्रन्थि वाली	अञ्जसा	सरलतासे

निस्तारण योगं पार होनेका उपाय	आत्मने	स्वरूप
न वेद नहीं जानता	ते नमः	आपको नमस्कार
तस्मै उन		॥२४॥
विलय उदय- प्रलय सृष्टि-		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्व-
वर्षे साक्षाद्भगवतो वासुदेवस्य प्रियां तनुं धर्ममयीं ह्यशीर्षाभि-
धानां परमेण समाधिना संनिधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति ॥१॥

तथा च भद्रश्रवा नाम धर्मसुतः तत् कुलपतयः पुरुषाः भद्राश्ववर्षे
साक्षात् भगवतः वासुदेवस्य प्रियां तनुं धर्ममयीं ह्यशीर्षाभिधानां परमेण
समाधिना संनिधाप्य इदं अभिगृणन्त उपधावन्ति ॥१॥

तथा च	इसी प्रकार	ह्यशीर्ष	ह्यशीर्ष
भद्राश्ववर्षे	भद्राश्व वर्षमें	अभिधानां	नामके
भद्रश्रवा नाम	भद्रश्रवा नामके	प्रियां तनुं	प्रिय विग्रहका
धर्मसुतः	धर्मके पुत्र (तथा)	परमेण	अत्यन्त
तत् कुलपतयः	उनके कुलके	समाधिना	एकाग्रतासे
पुरुषाः	प्रमुख पुरुष	संनिधाप्य	(हृदयमें) सामीप्य
साक्षात्	साक्षात्		पाकर
भगवतः	भगवान्	इदं अभिगृणन्त	यह (मन्त्र) बोलते
वासुदेवस्य	वासुदेवके		हुए
धर्ममयीं	धर्ममय	उपधावन्ति	स्तुति करते हैं ॥१॥

भद्रश्रवस ऊचुः-

ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥२॥

ॐ नमः भगवते धर्माय आत्म विशोधनाय नमः इति ॥२॥

आत्म	चित्तको	ॐ	ओंकार स्वरूप
विशोधनाय	शुद्ध करने वाले		

भगवते धर्माय	भगवान् धर्मको	इति	इस प्रकार (यह
नमः नमः	बार-बार नमस्कार		मन्त्र है) ॥२॥

अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं

घनन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ।

ध्यायन्नसर्थाह् विकर्म सेवितुं

निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥३॥

अहो विचित्रं भगवत् विचेष्टितं घनन्तं जनः अयं हि मिषन् न पश्यति
ध्यायत् असत् र्थाह् विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषति ॥३॥

अहो	अहो,	विकर्म सेवितुं	असत् कर्मके
भगवत्	भगवान्की		करनेका
विचेष्टितं	लीला	असत् ध्यायत्	पापमय चिन्तन
विचित्रं	विचित्र है ।		करता है
हि मिषन्	क्योंकि देखते हुए	पुत्रं पितरं	(तब) पुत्र और
अयं जनः	यह मनुष्य		पिता (के शवको)
घनन्तं	मारनेवाले	निर्हृत्य	जलाकर आनेपर भी
	(काल)को	जिजीविषति	(स्वयं) जीवित
न पश्यति	नहीं देखता ।		रहनेकी इच्छा
र्थाह्	जब		करता है ॥३॥

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं

पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः ।

तथापि मुह्यन्ति तवाज मायया

सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥४॥

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति च अध्यात्मविदः विपश्चितः
तथापि मुह्यन्ति तव अज मायया सुविस्मितं कृत्यं अजं नतोऽस्मि तम् ॥४॥

कवयः	बुद्धिमान् लोग	तव	आपकी
विश्वं	संसारको	अज मायया	अनादि मायासे
नश्वरं	विनाशशील	मुह्यन्ति	मोहित हो जाते हैं
वदन्ति स्म	कहते ही हैं,	सुविस्मितं	अत्यन्त विस्मयकारी
च अध्यात्म-	तथा अध्यात्म-	कृत्यं अजं	कर्मवाले आप
विदः	तत्त्वको जाननेवाले		अजन्मा
विपश्चित्तः	विवेकी	तं नतोऽस्मि	उस आपको (हम)
पश्यन्ति	(ऐसा ही) देखते		नमस्कार करते
	भी हैं,		हैं ॥४॥
तथापि	फिर भी		

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते

ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ।

युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे

सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥५॥

विश्व उद्भव स्थान निरोध कर्म ते हि अकर्तुः अङ्गीकृतं अपि अपा-
वृतः युक्तं न चित्रं त्वयि कार्य कारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥५॥

हि	क्योंकि	कारणे	कारण रूप
ते अकर्तः	आप अकर्ता द्वारा	सर्वात्मनि	सर्वात्मामें
विश्व उद्भव	संसारकी उत्पत्ति,	युक्तं	यह उपयुक्त है,
स्थान निरोध	स्थित, प्रलय	न चित्रं	(इसमें कुछ) विचित्र
कर्म अङ्गीकृतः	कर्म स्वीकार किया		नहीं है
	गया है ।	वस्तुतः च	वस्तुतः तो
अपि अपावृतः	फिर भी (आप)	व्यतिरिक्ते	आप (इन सबसे)
	आवरण रहित हैं-		अतीत हैं ॥५॥
त्वयि कार्यं	आप कार्य-		

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्

रसातलाद्यो

नृत्तुरङ्गविग्रहः ।

प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते

तस्मै नमस्तेऽवितथेहिताय इति ॥६॥

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान् रसातलात् यः नूतुरङ्ग विग्रहः
प्रति आददे वै कवये अभियाचते तस्मै नमः ते अवितथ ईहिताय इति ॥६॥

युगान्ते	प्रलयके समय	अभियाचते	प्रार्थना करने वाले
तमसा	तमोगुणी (राक्षस)	कवये वै	ब्रह्माजीको
	द्वारा	प्रति आददे	लौटा कर दिया
तिरस्कृतान्	छिपा दिये गये	इति	इस प्रकारके
वेदान् यः	वेदोंको जिन	अवितथ	अमोघ
नूतुरङ्ग	मनुष्य एवं घोड़ेके	ईहिताय	सङ्कल्प
	सम्मिलित	तस्मै ते	उस आपको
विग्रहः	स्वरूप वाले	नमः	(हम) नमस्कार
	(प्रभु) ने		करते हैं ॥६॥

श्रीशुक उवाच-*

हरिवर्षे चापि भगवान्नरहरिरूपेणास्ते । तद्रूपग्रहणनिमित्त-
मुत्तरत्राभिधास्ये । तद्दयितं रूपं महापुरुषगुणभाजनो महा-
भागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यव-
धानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरुपास्ते इदं चोदाहरति ॥७॥

हरिवर्षे च अपि भगवान् नरहरिरूपेण आस्ते । तत् रूप ग्रहण
निमित्तं उत्तरत्रा अभिधास्ये । तत् दयितं रूपं महापुरुष गुण भाजनः महा-
भागवतः दैत्यदानवकुल तीर्थीकरण शील आचरितः प्रह्लादः अव्यवधान
अनन्य भक्तियोगेन सह तत् वर्ष पुरुषैः उपास्ते इदं च उदाहरति ॥७॥

हरिवर्षे च अपि	हरिवर्षमें भी	नरहरिरूपेण	नृसिंह रूपमें
भगवान्	भगवान्	आस्ते	रहते हैं

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तत् रूप	उस रूपके	शील	शीलका
ग्रहण	धारणका	आचरितः	आचरण करने वाले
निमित्तं	कारण	प्रह्लादः	प्रह्लादजी
उत्तरत्र	इसी प्रसंगमें आगे	अव्यवधान	निर्बाध
अभिधास्ये	बतलाऊंगा ।	अनन्य	अनन्य
तत्	उस (अपने)	भक्तियोगेन	भक्ति द्वारा
दयितं रूपं	परमप्रिय रूपकी	तत् वर्ष	उस वर्षके
महापुरुष	महापुरुषोचित	पुरुषैः सह	पुरुषोंके साथ
गुण भाजनः	गुणोंसे युक्त	उपास्ते	उपासना करते हैं,
महाभागवतः	परमभगवद् भक्त	च इदं	और इस
दैत्यदानवकुल	दैत्यदानवकुलको		(स्तोत्र) का
तीर्थीकरण	पवित्र करने वाले	उदाहरति	पाठ करते हैं ॥७॥

प्रह्लाद उवाच-*

ॐ नमो भगवते नरसिहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव
वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्ध्रय रन्ध्रय तमो ग्रस ग्रस ॐ
स्वाहा । अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठा ॐ क्षौम् ॥८॥

ॐ नमः भगवते नरसिहाय नमः तेजः तेजसे आविः आविः भव
वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्म आशयान् रन्ध्रय रन्ध्रय तमः ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा ।
अभयं अभयं आत्मनि भूयिष्ठा ॐ क्षौम् ॥८॥

ॐ	ओंकार स्वरूप	नमः	(आपको)
भगवते	भगवान्		नमस्कार ।
नरसिहाय नमः	नृसिंहको नमस्कार	वज्रनख	वज्रनख,
तेजः तेजसे	तेजस्वियोंके भी	वज्रदंष्ट्र	वज्रदाढ़ों वाले !
	तेज	आविः	प्रकट होइये !

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

आविः भव	प्रकट होइये !	ग्रस	खा लीजिये,
कर्म	कर्म संस्कार रूप	ॐ स्वाहा	ॐ स्वाहा ।
आशयान्	चित्तको	आत्मनि	अन्तःकरणमें
रन्धय	भून दीजिये !	अभयं अभयं	परमअभय
रन्धय	भून दीजिये !	भूयिष्ठा	देने वाले बनिये ।
तमः	अज्ञानधकारको	ॐ क्षौम्	ॐ क्षौम ॥८॥
ग्रस	खा लीजिये,		

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां

ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ।

मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे

आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥६॥

स्वस्ति अस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथः
धिया मनः च भद्रं भजतात् अधोक्षजे आवेश्यतां नः मतिः अपि
अहैतुकी ॥६॥

विश्वस्य	विश्वका	च मनः भद्रं	और मन शुभमें
स्वति अस्तु	कल्याण हो,	भजतात्	लगे ।
खलः प्रसीदतां	दुष्टोंका (चित्त)	नः मतिः अपि	हमारी बुद्धि भी
	निर्मल हों,	अधोक्षजे	भगवान् हृषीकेशमें
भूतानि मिथः	प्राणी परस्पर	अहैतुकी	निष्काम भावसे
धिया	बुद्धिसे (एक-	आवेश्यतां	प्रवेश करें ॥६॥
शिवं ध्यायन्तु	दूसरेका) कल्याण		
	चिन्तन करें ।		

मागारदारात्मजविस्रबन्धुषु

सङ्गो यदि स्याद्भूगवत्प्रियेषु नः ।

यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्

सिद्धयत्यदूरात् तथेन्द्रियप्रियः ॥१०॥

मा आगार दारा आत्मज वित्त बन्धुषु सङ्गः यदि स्यात् भगवत् प्रियेषु नः यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान् सिद्धयति अदूरात् न तथा इन्द्रिय प्रियः ॥१०॥

नः यदि सङ्गः	यदि हमारी	परितुष्ट	सन्तुष्ट रहनेवाला
स्यात्	आसक्ति हो	आत्मवान्	संयमी है,
भगवत् प्रियेषु	(तो) भगवान्के	अदूरात्	(वह) शीघ्र
	प्रेमियोंसे हो,	सिद्ध्यति	सिद्ध (सफलता)
आगार दारा	घर, स्त्री,		पा लेता है,
आत्मज वित्त	पुत्र, धन,	तथा इन्द्रिय	उस प्रकार इन्द्रियोंसे
बन्धुषु मा	सम्बन्धियोंसे न हो।	प्रियः न	प्रेम करनेवाला
यः प्राणवृत्त्या	जो जीवन-निर्वाह		नहीं (पाता) ॥१०॥
	मात्रसे		

यत्सङ्गलब्धं

निजवीर्यवैभवं

तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ।

हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं

को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥११॥

यत् सङ्ग लब्धं निजवीर्यं वैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसं
हरति अजः अन्तः श्रुतिभिः गतः अङ्गजं कः वै न सेवेत मुकुन्द
विक्रमम् ॥११॥

यत् सङ्ग	उन (महापुरुषों)के	लब्धं	(वर्णन सुननेको)
	सत्संगसे		मिलता है,
हि	क्योंकि	अजः	(जिससे) अजन्मा
मुहुः मानसं	बार-बार हृदयको		प्रभु
संस्पृशतां	स्पर्श करनेवाला	श्रुतिभिः	श्रवण-मार्गसे
तीर्थं	परम-पवित्र	अन्तः गतः	अन्तःकरणमें जाकर
निजवीर्यं वैभवं	(आपके) अपने	अङ्गजं हरति	दैहिक-मानसिक
	पराक्रम तथा		मल-हरणकर लेते हैं,
	ऐश्वर्यका		

मुकुन्द विक्रमं	(ऐसे) श्रीहरिके	सेवेत न	सेवन नहीं
	पराक्रमका		करे ॥११॥
बै कः	भला कौन		

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना

सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ।

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा

मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥१२॥

यस्य अस्ति भक्तिः भगवति अकिञ्चना सर्वैः गुणैः तत्र समासते सुराः
हराः अभक्तस्य कुतः महत् गुणा मनोरथेन असति धावतः बहिः ॥१२॥

यस्य भगवति	जिसकी भगवान्में	मनोरथेन	(उस) कामनाओंके
अकिञ्चना	निष्काम		कारण
भक्ति अस्ति	भक्ति है	असति	असत् (संसार) में
तत्र सुराः	वहाँ देवता	बहिः	बाहर
सर्वैः गुणैः	सब गुणोंके साथ	धावतः	भागते हुएमें
समासते	स्थिर रहते हैं ।	महत् गुणाः	महान गुण
हराः	जो श्रीहरिका	कुतः	कहाँसे (हो सकते
अभक्तस्य	भक्त नहीं हैं		है) ॥१२॥

हरिर्हि साक्षाद्भगवान् शरीरिणा-

मात्मा श्लषाणामिव तोयमीप्सितम् ।

हित्वा महान्स्तं यदि सज्जते गृहे

तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥१३॥

हरिः हि साक्षात् भगवान् शरीरिणां आत्मा श्लषाणां इव तोयं ईप्सितं
हित्वा महान् तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥१३॥

हि	क्योंकि.	ईप्सितं	परम अभीष्ट
श्लषाणां	मछलियोंके लिए	तोयं इव	पानीके समान

साक्षात् भगवान्	साक्षात् भगवान्	सज्जते	आसक्त होता है
हरिः	श्रीहरि	तदा दम्पतीनां	तब स्त्री-पुरुषका
शरीरिणां	शरीर धारियोंकी	महत्त्वं	बड़प्पन
आत्मा	आत्मा है	वयसा	(केवल) आयुसे
तं महान्	उन महत्तमको		(रह जाता)
हित्वा	छोड़कर		है ॥१३॥
यदि गृहे	यदि (कोई) घरमें		

तस्माद्रजोरागविषादमन्यु-

मानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ।

हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं

नृसिंहपादं भजताकुतोभयमिति ॥१४॥

तस्मात् रजः राग विषाद मन्यु मान स्पृहाभय दैन्य आधिमूलं हित्वा
गृहं संसृति चक्रवालं नृसिंह पादं भजत अकुतः भयम् इति ॥१४॥

तस्मात्	इसलिए	अकुतः	(जहाँ) किसी
रजः राग	अतिप्रवृत्ति, राग,		औरका
विषाद मन्यु	शोक, क्रोध,	भयं	भय नहीं है
मान स्पृहा	अभिमान, स्पर्धा	नृसिंह	(उस) भगवान्
भय दैन्य	भय, दीनता आदि		नृसिंहके
आधिमूलं	चिन्ताओंकी जड़	पादं	चरणोंका
संसृति	जन्म-मरण	भजत	भजन करो ।
चक्रवालं	चक्रको ढोने वाले	इति	इस प्रकार (स्तुति
गृहं हित्वा	गृहस्थाश्रमको		करते है) ॥१४॥
	त्यागकर		

श्रीशुक उवाच-*

केतुमालेऽपि भगवान् कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकी-
र्षया प्रजापतेर्दुहितृणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुषायुषाहोरात्रपरि-

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

संख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता
व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥१५॥

केतुमाले अपि भगवान् कामदेव स्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया
प्रजापतेः दुहितृणां पुत्राणां तद्वर्षपतीनां पुरुष आयुष अहोरात्र परिसंख्या-
नानां यासां गर्भा महापुरुष महास्त्र तेजसा उद्वेजित मनसां विध्वस्ता व्यसवः
संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥१५॥

केतुमाले अपि	केतुमाल वर्षमें भी	संख्याके बराबर
लक्ष्म्याः	लक्ष्मीजीका तथा	(छत्तीस हजार
प्रजापतेः	प्रजापति	वर्ष) है।
	(संवत्सर) की	यासां गर्भा
दुहितृणां	पुत्रियों और	महापुरुष
पुत्राणां	पुत्रोंका	महास्त्र तेजसा
प्रियचिकीर्षया	प्रिय करनेकी	महान अस्त्र
	इच्छासे	(सुदर्शन-चक्र)के
कामदेव	कामदेवके	तेजसे
स्वरूपेण	रूपमें (रहते हैं)	उद्वेजित
तद्वर्षपतीनां	उस वर्षके	मनसां
	प्रमुखके	विध्वस्ता
पुरुष आयुषः	पुरुषोंकी आयु	व्यसवः
अहोरात्र	दिन-रात	संवत्सरान्ते
परिसंख्यानानां	(मनुष्यकी सौ वर्षकी	विनिपतन्ति
	आयुके) दिन-रातकी	गिर जाते हैं ॥१५॥

अतीव सुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोक-
लीलया किञ्चिदुत्तम्भितसुन्दरभ्रूमण्डलसुभगवदनारविन्दश्रिया
रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥१६॥

अतीव सुललित गतिविलास विलसित रुचिरहासलेश अवलोक
लीलया किञ्चित् उत्तम्भित सुन्दर भ्रूमण्डल सुभग वदनारविन्द श्रिया रमां
रमयन् इन्द्रियाणि रमयते ॥१६॥

अतीव सुललित	अत्यन्त सुन्दर	भ्रूमण्डल	भौंहोंसे
गतिविलास	लीलापूर्ण	सुभग	और सुन्दर
विलसित	चेष्टायुक्त	वदनारविन्द	मुख-कमल
रुचिरहासलेश	मनोहर	श्रिया	(की) शोभासे
	मुस्कानपूर्वक	रमां रमयन्	लक्ष्मीको आनन्दित
अवलोक	देखते हुए		करते
लीलया	कटाक्ष सहित	इन्द्रियाणि	(अपनी) इन्द्रियोंको
किञ्चित्	तनिक		भी
उत्तम्भित	उठी हुई	रमयते	सुखी करते हैं ॥१६॥
सुन्दर	सुन्दर		

तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमा देवी संव-
त्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताहःसु च तद्भर्तृभिरुपास्ते
इदं चोदाहरति ॥१७॥

तत् भगवतः मायामयं रूपं परम समाधियोगेन रमा देवी संवत्सरस्य
रात्रिषु प्रजापतेः दुहितृभिः उपेता अहःसु च तत् भर्तृभिः उपास्ते इदं च
उदाहरति ॥१७॥

भगवतः	भगवान्के	तत् भर्तृभिः	उनके पतियोंके
तत् मायामयं	उस मायामय	उपेता	साथ
रूपं	रूपकी	परम	अत्यन्त
रात्रिषु	रात्रिमें	समाधियोगेन	एकाग्रतापूर्वक
संवत्सरस्य	प्रजापति संवत्सरकी	उपास्ते	उपासना करती हैं।
दुहितृभिः	पुत्रियोंके	च इदं	और यह
च अहःसु	और दिनमें	उदाहरति	स्तुति करती
			हैं ॥१७॥

यमा उवाच*

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेष-
विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये
षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे
ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥१८॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमः भगवते हृषीकेशाय सर्व गुणविशेषैः
विलक्षित आत्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां च अधिपतये
षोडशकलाय छन्दोमयाय अन्नमयाय अमृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे
बलाय कान्ताय कामाय नमः ते उभयत्र भूयात् ॥१८॥

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप	अधिपतये	अधिपति
हृषीकेशाय	भगवान्	षोडशकलाय	सोलह कलायुक्त,
सर्व	इन्द्रियोंके नियन्ता,	छन्दोमयाय	वेदमय,
गुणविशेषैः	सब	अन्नमयाय	अन्नमय.
विलक्षित	विशिष्ट गुणोंसे	अमृतमयाय	अमृतमय,
आत्मने	जिनकी	सर्वमयाय	सर्वमय,
	अपनी पहिचान	कान्ताय	प्रियतम
	होती है,	कामाय	कामदेव
आकूतीनां	क्रिया-शक्ति,	ह्रां ह्रीं ह्रूं	ह्रां ह्रीं ह्रूं (इन
चित्तीनां	ज्ञान-शक्ति,		बीज मन्त्रों) से
च	तथा	उभयत्र	सब ओरसे
चेतसां	(संकल्प, धैर्यादि)	ते नमः भूयात्	आपको नमस्कार
	चित्तकी		हो ॥१८॥
विशेषाणां	विशेषताओंके		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

स्त्रियो व्रतैस्त्वा हृषिकेश्वरं स्वतो

ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ।

तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं

प्रियं धनार्यूषि यतोऽस्वतन्त्रा ॥१६॥

स्त्रियः व्रतैः त्वां हृषीक ईश्वरं स्वतः हि आराध्य लोके पति
आशासते अन्यं तासां न ते वै परिपान्ति अपत्यं प्रियं धन आर्यूषि यतः
अस्वतन्त्राः ॥१६॥

हि स्त्रियः	क्योंकि स्त्रियां	ते वै	निश्चय वे
स्वतः	स्वयं	तासां	उन (स्त्रियों) के
त्वां हृषीक	आप इन्द्रियोंके	प्रियं अपत्यं	प्रिय पुत्रों (तथा)
ईश्वरं	स्वामीकी	धन आर्यूषि	धन, आयुकी
व्रतैः	व्रतोंके द्वारा	परिपान्ति न	रक्षा नहीं कर पाते
आराध्य	आराधना करके	यतः	क्योंकि (वे)
लोके	संसारमें	अस्वतन्त्राः	स्वतन्त्र नहीं
अन्यं पति	दूसरा पति		हैं ॥१६॥
आशासते	चाहती हैं,		

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं

समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ।

स एक एवेतरथा मिथो भयं

नैवात्मलाभादधि मन्यते परम् ॥२०॥

स वै पतिः स्यात् अकुतः भयः स्वयं समन्ततः पाति भय आतुरं जनं
स एक एव इतरथा मिथः भयं न एव आत्मलाभात् अधि मन्यते परम् ॥२०॥

स वै	निश्चय वही	भय	भय न हो
पतिः स्यात्	(सच्चा) पति	भय आतुरं	भयसे व्याकुल
	(रक्षक) है	जनं	लोगोंकी
स्वयं अकुतः	(जिसे) स्वयं कहींसे	समन्ततः	सब ओरसे

पाति	रक्षा करता है,	आत्मलाभात्	(अतः आप) अपनी
स एक एव	वह (तो) एक ही है		प्राप्तिसे
इतरया	दूसरेकी सत्ता होने	परं	बढ़कर कुछ
	पर	न एव	नहीं ही
मिथः भयं	(उन्हें) परस्पर	अधि मन्यते	मानते ॥२०॥
	(एक दूसरेसे) भय		
	होगा		

या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं
निकामयेत्साखिलकामलम्पटा ।

तदेव रासोप्सितमीप्सितोऽर्चितो

यद्भग्नयाञ्चा भगवन् प्रतप्यते ॥२१॥

या तस्य ते पाद सरोरुह अर्हणं निकामयेत् सा अखिल काम लम्पटा
तत् एव रासि ईप्सितं ईप्सितः अर्चितः यत् भग्न याञ्चा भगवन् प्रतप्यते ॥२१॥

तस्य ते	ऐसे आपके	ईप्सितं अर्चितः	अभीष्ट (विशेष) से
पाद सरोरुह	चरण-कमलकी		पूजा किये जानेपर
अर्हणं	पूजा ही	तत् एव ईप्सितं	वही अभीष्ट (आप)
या निकामयेत्	जो (स्त्री) चाहती है	रासि	दे देते हैं ।
सा अखिल	वह समस्त	भगवन्	भगवन् (पर)
काम	कामनाएँ	यत् भग्न याञ्चा	क्योंकि वह मांगी
लम्पटा	चाहने वाली है ।		वस्तु नष्ट होगी ही
	(उसकी सब	प्रतप्यते	(तब वह)
	कामनाएँ पूर्ण होती		संतप्त होती है ॥२१॥
	हैं ।)		

मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयः

स्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः ।

ऋते भवत्पादपरायणान्न मां

विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥२२॥

मत् प्राप्तये अज ईश सुर असुरादयः तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रिय
एधियः ऋते भगत् पाद परायणात् न मां विन्दन्ति अहं त्वत् हृदया यतः
अजित ॥२२॥

अजित	अजित !	भवत् पाद	आपके चरणोंके
ऐन्द्रिय एधियः	ऐन्द्रियक-सुखमें लगी	परायणात्	परायणोंको
	बुद्धि वाले	ऋते	छोड़कर (दूसरे)
अज ईश	ब्रह्मा, शिव,	न मां विन्दन्ति	मुझे नहीं पाते
सुर असुरादयः	देवता, असुर आदि	यतः	क्योंकि
मत् प्राप्तये	मेरी प्राप्तिके लिए	अहं त्वत् हृदया	मेरा हृदय आपमें
उग्रं तप	घोर तपस्या		लगा है ॥२२॥
तप्यन्त	करते हैं (किन्तु)		

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णिं वन्दितं

कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ।

बिर्भाषि मां लक्ष्म वरेण्य मायया

क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुरिति ॥२३॥

स त्वं मम अपि अच्युत शीर्ष्णिं वन्दितं कराम्बुजं यत्तु अदधायि
सात्वतां बिर्भाषि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्य ईहितुं अहितुं विभुः
इति ॥२३॥

त्वं यत्तु	आप तो जिस	लक्ष्म वरेण्य	वरणीय लक्षण
वन्दितं	वन्दनीय		(श्रीवत्सके रूपमें)
कराम्बुजं	कर-कमलको	मां बिर्भाषि	(आप) मुझे धारण
सात्वतां	भक्तोंके (ऊपर)		करते हैं (सो)
अदधायि	रखते हैं	विभुः ईश्वरस्य	सर्वव्यापक, सर्व
अच्युत	अच्युत !		समर्थकी
स मम अपि	वह मेरे भी	ईहितुं	चेष्टाको
शीर्ष्णिं	मस्तकपर (रखिये)	क अहितुं	कौन समझ सकता
मायया	(अपनी) मायासे		है
		इति	इस प्रकार ॥२३॥

श्रीशुक उवाच—*

रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक्प्रदर्शितं स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीदं चोदाहरति ॥२४॥

रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यं अवतार रूपं तद् वर्ष पुरुषस्य मनोः प्राक् प्रदर्शितं स इदानीं अपि महता भक्तियोगेन आराधयति इदं च उदाहरति ॥२४॥

रम्यके च	रम्यक वर्षमें भी	स इदानीं अपि	वे (मनु) अब भी
तद् वर्षं	उस वर्षके	महता	महान
पुरुषस्य मनोः	पुरुषोंके मनुको	भक्तियोगेन	भक्तियोगसे
भगवतः	भगवान्ने	आराधयति	(उसी रूपकी) आरा-
प्रियतमं रूपं	(अपना) अत्यन्त		धना करते हैं
	प्रिय रूप	च इदं	और यह
मात्स्यं अवतार	मत्स्यावतार	उदाहरति	स्तुति करते
प्राक् प्रदर्शितं	पहिले दिखलाया		हैं ॥२४॥
	था,		

मनुरुवाच—*

ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति ॥२५॥

ॐ नमः भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणाय ओजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः इति ॥२५॥

ॐ भगवते	ओंकार रूप भगवान्	नमः	नमस्कार ।
मुख्यतमाय	सबसे प्रमुखको		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सत्त्वाय नमः	सत्त्व स्वरूपको नमस्कार ।	बलाय	शरीरबल स्वरूप
प्राणाय	प्राणस्वरूप	महामत्स्याय	महामत्स्य
ओजसे	मनोबल,	नमः	भगवान्को
सहसे	इन्द्रियबल	इति	नमस्कार, इस प्रकार ॥२५॥

अन्तर्बहिःश्रिखिललोकपालकै-

रदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ।

स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनय-

न्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥२६॥

अन्तः बहिः च अखिल लोकपालकैः अदृष्ट रूपः विचरसि उरु स्वनः
स ईश्वरः त्वं य इदं वशे अनयत् नाम्ना यथा दारुमयीं नरः
स्त्रियम् ॥२६॥

अखिल	सब	यथा नरः	जैसे मनुष्य
लोकपालकैः	लोकपालों द्वारा	दारुमयीं स्त्रियं	कठपुतलीको (नचावे)
अदृष्ट रूपः	जिनका रूप दीखता नहीं	य इदं	जो इस जगत्को
अन्तः	(पर प्राणियोंके)	नाम्ना	नाम (रूपी रस्सी)से
च बहिः	भीतर (प्राण रूपसे)	वशे अनयत्	वशमें किये हैं
विचरसि	और बाहर (वायु रूपसे)	स ईश्वरः त्वं	वे सर्व संचालक आप ही हैं ॥२६॥
उरुस्वनः	विचरण करते हैं । (वेदरूप) महाशब्द वाले (आप)		

यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा

हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च ।

पातुं न शेकुर्द्विषदश्चतुष्पदः

सरीसृपं स्थाणुं यदत्र दृश्यते ॥२७॥

यं लोकपालाः किल मत्सर ज्वराः हित्वा यतन्तः अपि पृथक् समेत्य
च पातुं न शेकुः द्विपदः चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यद् अत्र दृश्यते ॥२७॥

किल	अहो,	चतुष्पदः	चौपायोंको
मत्सर ज्वराः	डाह रूपी ज्वरसे	सरीसृपं	सरकने वालोंको
	ग्रस्त	स्थाणु	स्थावरोंको
लोकपालाः	लोकपाल लोग	यद् अत्र दृश्यते	(जो कुछ) यहाँ
यं हित्वा	जिस (प्राण रूप		संसारमें दिखलायी
	आप) को छोड़कर		पड़ता है,
यतन्तः अपि	प्रयत्न करते हुए भी	पातुं	(किसीकी भी) रक्षा
पृथक्	अकेले-अकेले		करनेमें
च समेत्य	और सब मिलकर	शेकुः न	समर्थ नहीं हुए ॥२७॥
	भी		
द्विपदः	दो पैर वाले		
	प्राणियोंको,		

भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि

क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ।

मया सहोऽहं क्रमतेऽज ओजसा

तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नम इति ॥२८॥

भवान् युगान्त अर्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीं इमां ओषधि वीरुधां
निधिं मया सह उहं क्रमते अज ओजसा तस्मै जगत् प्राणगण आत्मने नमः
इति ॥२८॥

अज	अजन्मा प्रभु !	युगान्त अर्णव	प्रलय-समुद्रमें
मया सह	मेरे साथ	ओजसा	उत्साह पूर्वक
ओषधि	औषधियों और	उहं क्रमते	बहुत विहार किया
वीरुधां	क्षुपोंकी	तस्मै	उस
निधिं	खजाना रूप	जगत् प्राणगण	संसारके प्राणोंके
इमां क्षोणीं	इस पृथ्वी (रूप	आत्मने	स्वरूपको
	नौका) को	नमः	नमस्कार
ऊर्मिमालिति	उत्ताल तरंगायमान	इति	इस प्रकार ॥२८॥

श्रीशुक उवाच[■]

हिरण्मयेऽपि भगवान्निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य
तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति
मन्त्रमिमं चानुजपति ॥२६॥

हिरण्मये अपि भगवान् निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणः तस्य तत् प्रियतमां
तनुं अर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगण अधिपतिः उपधावति मन्त्रं इमं च
अनुजपति ॥२६॥

हिरण्मये अपि	हिरण्मय वर्षमें भी	अधिपतिः	अधिपति
भगवान्	भगवान्	अर्यमा	अर्यमा
कूर्मतनुं	कूर्म शरीर	वर्षपुरुषैः सह	उस वर्षके पुरुषोंके
बिभ्राणः	धारण करके		साथ
निवसति	निवास करते हैं ।	उपधावति	उपासना करते हैं
तस्य तत्	उनके उस	च इमं मन्त्रं	और इस मन्त्रको
प्रियतमां तनुं	अत्यन्त प्रिय	अनुजपति	बराबर जपते
	स्वरूपकी		हैं ॥२६॥
पितृगण	पितरगणोंके		

अर्यमोवाच^{*}

ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय-
नुपलक्षितस्थानाय नमो वष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय
नमस्ते ॥३०॥

ॐ नमः भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुण विशेषणाय अनुपलक्षित
स्थानाय नमः वष्मणे नमः भूम्ने नमो नमः अवस्थानाय नमः ते ॥३०॥

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप	नमः	नमस्कार
	भगवान्	वर्त्मणे नमः	कालातीतको
अकूपाराय नमः	कच्छपको नमस्कार		नमस्कार
सर्वसत्त्वगुण	सम्पूर्ण सत्त्वगुणकी	भूम्ने नमो नमः	सर्व व्यापकको
विशेषणाय	विशेषतासे युक्त		बार-बार नमस्कार
अनुपलक्षित	(जलमें रहनेसे)	ते अवस्थानाय	आप सर्वाधारको
	अलक्षित	नमः	नमस्कार ॥३०॥
स्थानाय	निवास वाले		
	(प्रभुको)		

यद्रूपमेतन्निजमाययापित-

मर्थस्वरूपं

बहुरूपरूपितम् ।

संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भनात्

तस्मै

नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥३१॥

यत् रूपं एतत् निज मायया अपितं अर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितं
संख्या न यस्य अस्ति अथवा उपलम्भनात् तस्मै नमः ते अव्य पदेश
रूपिणे ॥३१॥

निज मायया	अपनी मायासे	उपलम्भनात्	प्रतीति होनेसे
अपितं	दिया हुआ (होनेपर भी)	यस्य संख्या	जिनकी गणना
		न अस्ति	नहीं है,
एतत् यत् रूपं	यह जो (कूर्म) रूप है,	तस्मै	उस
अर्थस्वरूपं	परमार्थ स्वरूप है,	अव्य पदेश	अनिर्देश्य
बहुरूपरूपितं	(आपके) बहुत रूप (श्रुतिमें) वणित हैं	रूपिणे	रूप
		ते नमः	आपको
अथवा	अवास्तविक (माया)		नमस्कार ॥३१॥

जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं

चराचरं

देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् ।

द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्र-

द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय

एकः ॥३२॥

जरायुजं स्वेदजं अण्डज उद्भिदं चर अचरं देवः ऋषि पितृ भूतं
ऐन्द्रियं द्यौः खं क्षितिः शैल सरित् समुद्र द्वीप ग्रह ऋक्ष इति अभिधेयः
एकः ॥३२॥

जरायुज	जरायुज,	शैल, सरित्,	पर्वत, नदियां,
स्वेदजं अण्डज	स्वेदज, अण्डज,	समुद्र	समुद्र,
उद्भिदं	उद्भिज,	द्वीप, ग्रह, ऋक्ष	द्वीप, ग्रह, नक्षत्र
चर अचरं	चर, अचर,	इति	इस प्रकार (अनेक
देवः ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर,		नाम रूपोंसे)
भूतं ऐन्द्रियं	पञ्चमहाभूत,	अभिधेयः	कहे जाने वाले
	इन्द्रियां,	एकः	एक (आप) ही
द्यौः खं क्षितिः	स्वर्ग, आकाश,		हैं ॥३२॥
	पृथ्वी,		

यस्मिन्नसंख्येयविशेषनाम-

रूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ।

संख्या यया तत्त्वदृशापनीयते

तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते इति ॥३३॥

यस्मिन् असंख्येय विशेष नाम रूप आकृतिः कविभिः कल्पिता इयं
संख्या यया तत्त्वदृशा अपनीयते तस्मै नमः सांख्य निदर्शनाय ते इति ॥३३॥

यस्मिन्	जिसमें		लेने) से
असंख्येय	असंख्य	इयं संख्या	यह संख्या
विशेष	विशेष विशेष	अपनीयते	निवृत्त हो जाती है
नाम रूप	नाम, रूप	तस्मै	उस
आकृति	आकृति	सांख्य	संख्याका
कविभिः	विद्वानों द्वारा	निदर्शनाय	तत्त्व निर्दिष्ट
कल्पिता	कल्पित की गई है,		करनेवाले
यया तत्त्वदृशा	जिस तत्त्वको	ते नमः	आपको नमस्कार
	देखने (साक्षात् कर	इति	इस प्रकार ॥३३॥

श्रीशुक उवाच-*

उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते
तं तु देवी हैषा भूः सह कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति इमां
च परमामुपनिषदमावर्तयति ॥३४॥

उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृत वराहरूपः आस्ते तं तु देवी
हि एषा भूः सह कुरुभिः अस्खलित भक्तियोगेन उपधावति इमां च परमां
उपनिषदं आवर्तयति ॥३४॥

उत्तरेषु	उत्तरमें	सह कुरुभिः	(वहाँके निवासी)
कुरुषु च	कुरुमें भी		कुरुओंके साथ
यज्ञपुरुषः	यज्ञपुरुष	अस्खलित	अविचल
भगवान्	भगवान्	भक्तियोगेन	भक्तिभावसे
वराहरूपः कृतः	वाराहरूप धारण	उपधावति	उपासना करती हैं ।
	करके	च इमां	और इस
आस्ते	रहते हैं,	परमां	सर्वश्रेष्ठ
तं तु	उनका तो	उपनिषदं	उपनिषदकी
एषा हि	यही	आवर्तयति	आवृत्ति (पाठ)
भूः देवी	भू देवी		करती हैं ॥३४॥

श्रीमिश्रुवाच-•

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञकृतवे महाध्वराव-
यवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥३५॥

ॐ नमः भगवते मन्त्र तत्त्व लिङ्गाय यज्ञकृतवे महाध्वर अवयवाय
महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमः ते ॥३५॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

• यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्	महाध्वर	महायज्ञ रूपी
मन्त्र तत्त्व	मन्त्रोंके तत्त्व (वास्तविक अर्थ)	अवयवाय	अङ्गोंवाले
लिङ्गाय	स्वरूप	महापुरुषाय	महापुरुषको
नमः	(आप)को नमस्कार ।	नमः	नमस्कार ।
यज्ञकृतवे	यज्ञ (हवनात्मक) ऋतु (कथात्मक) स्वरूप	कर्मशुक्लाय	सात्विक कर्मस्वरूप,
		त्रियुगाय	त्रियुग मूर्ति
		ते नमः	आपको नमस्कार

॥३५॥

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो

गुणेषु दारुणिव जातवेदसम् ।

मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो

गूढं क्रियार्थेनम ईरितात्मने ॥३६॥

यस्य स्वरूपं कवयः विपश्चितः गुणेषु दारुण इव जातवेदसं मथ्नन्ति
मथ्ना मनसा दिदृक्षवः गूढं क्रिया अर्थः नमः ईरित आत्मने ॥३६॥

दारुण	काष्ठमें	गूढं	(रूपमें) छिपेको
मथ्ना	मथानी(अरणि)से	मनसा मथ्नन्ति	मनसे मथते (मनन करते) हैं,
जातवेदसं	अग्नि	ईरित आत्मने	(इस प्रकार)
इव	की भाँति		अपनेको प्रकट
विपश्चितः	विवेकी		करनेवाले
कवयः	बुद्धिमान	नमः	(आपको) नमस्कार
यस्य स्वरूपं	जिसके स्वरूपको		॥३६॥
दिदृक्षवः	देखनेकी इच्छासे		
गुणेषु	गुणोंमें		
क्रिया अर्थः	क्रिया और उसके प्रयोजन (फल)के		

द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभि-

र्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ।

अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभि-

निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥३७॥

द्रव्य क्रियाहेतु अयन ईश कर्तृभिः मायागुणैः वस्तु निरीक्षित आत्मने
अन्वीक्षया अङ्ग अतिशय आत्मबुद्धिभिः निरस्त मायाकृतये नमो
नमः ॥३७॥

द्रव्य क्रिया	पदार्थ, क्रिया,	अङ्ग अतिशय	साधनोंकी
हेतु अयन	हेतु (इन्द्रिय) अयन (शरीर)		विशेषतासे
ईश कर्तृभिः	ईश्वर और कर्ता (अहंकार)	आत्मबुद्धिभिः	(शुद्ध) अपनी बुद्धिसे
मायागुणैः	(आदि) मायाके गुण (कार्य)के द्वारा	मायाकृतये	मायाकी कृति (रचना)को
वस्तु निरीक्षत	वस्तु-तत्त्वको देखनेमें	निरस्त	निरस्तकर देनेपर (शेष)
आत्मने	अपनेमें ही	नमो नमः	आपको बार-बार नमस्कार ॥३७॥
अन्वीक्षया	अन्वेषण (मनन) करनेसे		

करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं

यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ।

माया यथायो ध्रुमते तदाश्रयं

प्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥३८॥

करोति विश्व स्थिति संयम उदयं यस्य ईप्सितं न ईप्सितं ईक्षितुः
गुणैः माया यथा अयः भ्रमते तत् आश्रयं ग्राव्णो नमः ते गुणकर्म
साक्षिणे ॥३८॥

यथा अयः	जैसे लोहा	विश्व	संसारकी
तत् आश्रयं	उसके आश्रय	स्थिति संयम	स्थिति, प्रलय,
	(चुम्बक) के घूमनेसे	उदयं	सृष्टि
भ्रमते	घूमता है (ऐसे ही)	करोति	करती है,
यस्य ईक्षितुः	जिस साक्षीके	गुणकर्म	उस गुणों एवं
न ईप्सितं	अपने लिए अभीष्ट		कर्मोंके
	न होनेपर भी	साक्षिणे	साक्षी
ईप्सितं	(सब प्राणियोंके	ग्राव्णो	भगवान् वाराह
	लिए) अभीष्ट	ते नमः	आपको
गुणैः	प्रभावसे		नमस्कार ॥३८॥
माया	माया		

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे

यो मां रसाया जगदादिसूकरः ।

कृत्वाग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः

क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ॥३९॥

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यः मां रसाया जगत् आदि सूकरः
कृत्वा अग्र दंष्ट्रे निरगात् उदन्वतः क्रीडन् इव इभः प्रणतः आस्मि तं विभुम्
इति ॥३९॥

मृधे	युद्धमें	यः	जो
प्रतिवारणं	रोकनेवाले	जगत् आदि	जगतके कारण
दैत्यं	दैत्य (हिरण्याक्ष) को	सूकरः	भगवान् वाराह
प्रमथ्य	मथ (मार) कर	मां	मुझे

अग्र दंष्ट्रे कृत्वा	दाढ़की नोकपर	निरगात्	निकले
	रखकर	तं विभुं	(उस) आप सर्व-
रसाया	रसातलसे		व्यापकको
उदन्वतः	समुद्रसे	प्रणतः अस्मि	प्रणाम करती हूँ
इभः इव	हाथीके समान	इति	इस प्रकार ॥३३॥
क्रीडन्	खेल-सा करते		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
भुवनकोशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१६॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं
रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पु-
रुषैरविरतभक्तिरूपास्ते ॥१॥

किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तं आदिपुरुषं लक्ष्मण अग्रजं सीता अभिरामं
रामं तत् चरण संनिकर्ष अभिरतः परमभागवतः हनुमान् सह किम्पुरुषैः
अविरत भक्तिः उपास्ते ॥१॥

किम्पुरुषे वर्षे	किम्पुरुष वर्षमें	संनिकर्ष	सान्निध्यमें
भगवन्तं	भगवान्	अभिरतः	भलीप्रकार लगे
आदिपुरुषं	आदिपुरुष	परमभागवतः	परमभगवद-भक्त
लक्ष्मण अग्रजं	लक्ष्मणजीके बड़े भाई	हनुमान्	हनुमानजी
सीता अभिरामं	सीताजीको प्रसन्न करनेवाले	किम्पुरुषैः सह	किम्पुरुषोंके साथ
रामं	श्रीरामकी	अविरत भक्तिः	अविचल भक्तिसे
तत् चरण	उनके चरणोंके	उपास्ते	उपासना करते हैं ॥१॥

आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृ-
भगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥२॥

आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैः अनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्-
कथां समुपशृणोति स्वयं च इदं गायति ॥२॥

सह गन्धर्वैः	गन्धर्वोंके साथ	अनुगीयमानां	नित्य गायी जाती
आर्ष्टिषेणेन	आर्ष्टिसेन द्वारा	परमकल्याणीं	परमकल्याणदायिनी

भर्तृभगवत्कथां अपने स्वामी
भगवान्की कथा
समुपशृणोति भली प्रकार सुनते
हैं ।

स्वयं च स्वयं भी
इदं गायति यह गाते हैं ॥२॥

श्रीहनुमान उवाच—*

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय
नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवाद निकषणाय
नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥३॥

ॐ नमः भगवते उत्तमश्लोकाय नमः आर्य लक्षणशील व्रताय नमः
उपशिक्षित आत्मन उपासित लोकाय नमः साधुवाद निकषणाय नमः
ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नमः इति ॥३॥

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्	साधुवाद	सत्पुरुषताकी (परीक्षाके लिए)
उत्तम श्लोकाय	उत्तम कीर्तिको	निकषणाय नमः	कसौटीके समानको
नमः	नमस्कार,		नमस्कार ।
आर्य	सत्पुरुषोंके	ब्रह्मण्यदेवाय	ब्राह्मणोंको देवता
लक्षणशील	लक्षण, आचरण,		माननेवाले
व्रताय नमः	नियमनिष्ठको नमस्कार,	महापुरुषाय	महापुरुष (पुरुषोत्तम)
उपशिक्षित	संयत	महाराजाय	महाराजको
आत्मन	चित्त	नमः	नमस्कार ।
उपासितलोकाय	लोकाराधकको	इति	इस प्रकार ॥३॥
नमः	नमस्कार ।		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं

स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ।

प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं

ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥४॥

यत् तत् विशुद्ध अनुभव मात्रं एकं स्वतेजसा ध्वस्त गुण व्यवस्थं प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियः उपलम्भनं हि अनाम रूपं निः अहं प्रपद्ये ॥४॥

यत्	जो	प्रत्यक्	अन्तरात्मा,
विशुद्ध अनुभव	अनुभव	प्रशान्तं	अत्यन्त शान्त
मात्रं	स्वरूप,	सुधियः	शुद्ध बुद्धिमें
एकं	अद्वितीय	उपलम्भनं	लक्षित होनेवाले
स्वतेजसा	अपने तेजसे	हि अनाम रूपं	क्योंकि नाम-रूप
गुण व्यवस्थं	त्रिगुणोंकी व्यवस्था	तत् निः अहं	रहित हैं
	(प्रपंच)का	प्रपद्ये	उस अहंकारहीनकी
ध्वस्त	निरास किए		शरण हूँ ॥४॥

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं

रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ।

कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः

सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥५॥

मर्त्य अवतारः तु इह मर्त्यशिक्षणं रक्षः वधाय एव न केवलं विभोः कुतः अन्यथा स्यात् रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानि ईश्वरस्य ॥५॥

विभोः	सर्वव्यापकका	मर्त्यशिक्षणं	मनुष्योंको शिक्षा
इह	इस पृथ्वीपर	केवलं	देनेके लिए हुआ ।
मर्त्य अवतारः	मनुष्यावतार		केवल
तु	तो		

रक्षः	राक्षसोंको	सीताकृतानि	सीताजीके द्वारा
वधाय एव	मारनेके लिए ही		(उनके वियोगमें)
न	नहीं हुआ,	व्यसनानि	दुःख
अन्यथा	नहीं तो	ईश्वरस्य	सर्वेश्वरको
स्व आत्मनः	अपने आत्मामें ही	कुतः	कहाँसे होंगे ॥५॥
रमतः	रमण करते हुए		

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः

सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः ।

न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत

न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति ॥६॥

न वै स आत्मा आत्मवतां सुहृत्तमः सक्तः त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः
न स्त्रीकृतं कश्मलं अश्नुवीत न लक्ष्मणं च अपि विहातुं अर्हति ॥६॥

स वै	वे निश्चय ही		(अतः)
आत्मवतां	धीर-पुरुषोंके	स्त्रीकृतं	पत्नीके लिए
आत्मा	आत्मा (तथा)	कश्मलं	कष्ट
सुहृत्तमः	परम-सुहृद	न अश्नुवीत	नहीं पा सकते
भगवान्	भगवान्	च लक्ष्मणं	और लक्ष्मणको
वासुदेवः	वासुदेव	अपि	भी
त्रिलोक्यां	त्रिलोकीमें (कहीं भी)	विहातुं	त्याग
		न अर्हति	नहीं सकते ॥६॥
सक्तः न	आसक्त नहीं होते		

न जन्म नूनं महतो न सौभगं

न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ।

तैर्यद्विमृष्टानपि नो वनौकस-

श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥७॥

न जन्म नूनं महतः न सौभगं न वाङ् न बुद्धिः न आकृतिः तोष हेतुः
तं यत् विसृष्टान् अपि नः वनौकसः चकार सख्ये बत लक्ष्मण अग्रजः ॥७॥

तोष हेतुः	(आपको) सन्तुष्ट करनेका कारण	यत्	क्योंकि
नूनं	निश्चय	तैः	इन
महतः जन्म न	उत्तम कुलमें जन्म नहीं,	विसृष्टान्	सबसे रहित होनेपर
सौभगं न	सुन्दरता नहीं,	अपि	भी
वाङ् न	बोलनेकी चतुराई नहीं,	नः वनौकसः	हम वन-वासियोंसे
बुद्धिः न	बुद्धिमानो नहीं	लक्ष्मण अग्रजः	लक्ष्मणजी के बड़े
आकृतिः न	आकृति नहीं होती	बत	भाईने
		सख्ये चकार	अहो,
			मित्रता की ॥७॥

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः

सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।

भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं

य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥८॥

सुरः असुरः वा अपि अथ वानरः नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञं
उत्तमं भजेत रामं मनुज आकृतिं हरिं यः उत्तरान् अनयत् कोसलान् दिवं
इति ॥८॥

सुरः	देवता हो	भजेत	भजन करे
वा असुरः	या असुर,	मनुज	(वे) मनुष्य
वानरः	वानर हो	आकृति	रूपमें
अथ नरः	या मनुष्य	हरिं	श्रीहरि हैं
अपि यः	कोई भी जो	यः उत्तरान्	जो उत्तरी
सर्वात्मना	सम्पूर्ण हृदयसे	कोसलान्	कोसल (अयोध्या)
उत्तमं	सर्वश्रेष्ठ		वासियोंको
सुकृतज्ञं	अत्यन्त कृतज्ञ	दिवं अनयत्	अपने धाम ले गये,
रामं	श्रीरामका	इति	इस प्रकार ॥८॥

श्रीशुक उवाच-*

भारतेऽपि वर्षे भगवान्नरनारायणाख्य आकल्पा-
न्तमुपचितधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोपलम्भनमनुग्रहाया-
त्मवतामनुकम्पया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥६॥

भारते अपि वर्षे भगवान् नर नारायण आख्य आकल्पान्तं उपचित
धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य उपशमः परमात्म उपलम्भनं अनुग्रहाय आत्मवतां
अनुकम्पया तपः अव्यक्त गतिः चरति ॥६॥

भारते वर्षे अपि	भारत वर्षमें भी	धर्म ज्ञान	धर्म, ज्ञान,
नर	नर	वैराग्य	वैराग्य
नारायण आख्य	नारायण नामसे	ऐश्वर्य	ऐश्वर्य,
भगवान्	भगवान्	उपशमः	शान्ति (तथा)
अनुग्रहाय	दयावश	परमात्म	परमात्माको
आत्मवतां	संयमी पुरुषोंपर	उपलम्भनं	प्राप्त कराने वाला
अनुकम्पया	कृपा करके	तपः	तप
आकल्पान्तं	कल्पके प्रारम्भसे	अव्यक्त गतिः	अव्यक्त रहकर
	अन्त तक	चरति	करते हैं ॥६॥

तं भगवान्नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगव-
त्प्रोक्ताभ्यां सांख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्ण्यरूपदेक्ष्य-
माणः परमभक्तिभावेनोपसरति इदं चाभिगृणाति ॥१०॥

तं भगवान् नारदः वर्ण आश्रमवतीभिः भारतीभिः प्रजाभिः भगवत्
प्रोक्ताभ्यां सांख्य योगाभ्यां भगवत् अनुभाव उपवर्णनं सावर्ण्यः उपदेक्ष्यमाणः
परमभक्ति भावेन उपसरति इदं च अभिगृणाति ॥१०॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवान् नारदः	भगवान् नारद	उपदेक्ष्यमाणः	उपदेश करते हुए
भगवत्	(स्वयं) भगवान्के	वर्ण आश्रम-	वर्ण-आश्रम
	द्वारा	वतीभिः	धर्मका पालन
प्रोक्ताभ्यां	उपदिष्ट		करनेवाली
सांख्य योगाभ्यां	सांख्य और योग-	भारतीभिः	भारतीय
	शास्त्र सहित	प्रजाभिः	प्रजाके साथ
भगवत्	भगवान्के	परमभक्ति	परमभक्ति
अनुभाव	प्रभावका	भावेन	भावसे
उपवर्णनं	वर्णन (करनेवाले	तं उपसरति	उन (नर-नारायण)
	पाञ्चरात्र) का		के समीप जाकर
सावर्णेः	(आगामी मनु)	इदं च	यह (जप) करते
	सार्वणिको	अभिगृणाति	और गाते हैं ॥१०॥

तावद उवाच[■]

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमो-
ऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे
आत्मारामाधिपतये नमो नम इति ॥११॥

ॐ नमः भगवते उपशम शीलाय उपरत अनात्म्याय नमः अकिञ्चन
वित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंस परमगुरवे आत्माराम
अधिपतये नमो नमः इति ॥११॥

ॐ भगवते	ॐ स्वरूप भगवान्	ऋषिऋषभाय	ऋषिश्रेष्ठ
उपशम शीलाय	शान्त स्वरूपको	परमहंस	परमहंसोंके
नमः	नमस्कार	परमगुरवे	परमगुरु
उपरत	अनात्म	आत्माराम	आत्मारामोंके
अनात्म्याय	पदार्थोंसे विरक्त	अधिपतये	अधीश्वर
अकिञ्चन	निर्धनोंके	नरनारायणाय	नर-नारायणको
वित्ताय नमः	परम-धनको	नमो नमः	बार-बार
	नमस्कार		नमस्कार ॥११॥

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

गायति चेदम्—

गायति च इदं०

इदं यह । गायति च गाते भी हैं
कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते
न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः ।
द्रष्टुर्न दृश्यस्य गुणैर्विदूष्यते
तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥१२॥

कर्ता अस्य सर्गादिषु यः न बध्यते न हन्यते देहगतः अपि
दैहिकैः द्रष्टुः न दृक् यस्य गुणैः विदूष्यते तस्मै नमः असक्त विविक्त
साक्षिणे ॥१२॥

अस्य सर्गादिषु	इस संसारकी सृष्टि आदिके	यस्य द्रष्टुः	जिस द्रष्टाकी
कर्ता	कर्ता होनेपर भी	द्रक् गुणैः	दृष्टि गुणोंसे
यः न बध्यते	जो (कर्म) बन्धनमें नहीं पड़ते,	विदूष्यते न	दूषित नहीं होती,
देहगतः अपि	शरीरोंमें रहनेपर भी	तस्मै	उन
दैहिकैः	शरीरके धर्म (भूख-प्यासादि) से	असक्त	अनासक्त
हन्यते न	पीड़ित नहीं होते,	विविक्त साक्षिणे	विशुद्ध साक्षी
		स्वरूपको	
		नमः	नमस्कार ॥१२॥

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं

हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत् ।

यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो

भक्त्या दधीतोऽजितदुष्कलेवरः ॥१३॥

• यह वाद्य श्रीशुकदेवजीका है; किन्तु इतने अंशके लिए उवाच
पृथक् करना उपयुक्त नहीं लगता ।

इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भः भगवान् जगाद यत् यत्
अन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनः भक्त्या दधीत उज्झित दुष्कलेवरः ॥१३॥

योगेश्वर	योगेश्वर !	यत् अन्तकाले	जो अन्त (मरने) के
इदं हि	यही		समय
योगनैपुणं	योग साधनकी	उज्झित	देहाभिमान
	निपुणता हैं	दुष्कलेवरः	त्यागकर
यत्	जिसे	भक्त्या	भक्तिसे
भगवान्	भगवान्	त्वयि निर्गुणे	आप निर्गुणमें
हिरण्यगर्भः	ब्रह्माने	मनः दधीत	मन लगावे ॥१३॥
जगाद	बतलाया है		

✓ यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः

सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ।

शङ्केत विद्वान् कुकलेवरात्ययाद्

यस्तस्य यतनः श्रम एव केवलम् ॥१४॥

यथा ऐहिक अमुष्मिक कामलम्पटः सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन्
शङ्केत विद्वान् कुकलेवर अत्ययात् यः तस्य यतनः श्रम एव केवलम् ॥१४॥

यथा	जैसे	विद्वान्	(वैसे ही) विद्वान्
ऐहिक	लौकिक,		(यदि)
अमुष्मिक	पारलौकिक	कुकलेवर	(इस) निन्दित
कामलम्पटः	भोगेच्छु		शरीरकी
सुतेषु दारेषु	पुत्र-स्त्री	✓ अत्ययात्	मरणकी
धनेषु	धनकी	शङ्केत	चिन्ता करे तो
चिन्तयन्	चिन्ता करता	तस्य यः यतनः	उसका जो साधन है
	रहता है	केवलं श्रम एव	केवल परिश्रम ही
			(व्यर्थ) है ॥१४॥

तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरापितां

त्वन्माययाहंममतामधोक्षज

।

भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां

विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावमिति ॥१५॥

तत् नः प्रभो त्वं कुकलेवर अपितां त्वत् मायया अहं ममतां अधोक्षज
भिन्द्याम येन आशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावम्
इति ॥१५॥

अधोक्षज	अधोक्षज !	येन्	(गांठको) जिससे
प्रभो	प्रभो !	वयं आशु	हम शीघ्र
तत्	अतः	भिन्द्याम	काट सकें (वह)
त्वत् मायया	आपकी मायासे	त्वयि योगं	आपमें लगे रहें
कुकलेवर	इस निन्दित शरीरमें	इति	ऐसा
अपितां	लगायी	नः स्वभावं	हमारा स्वभाव
नः	हमारी	विधेहि	बना दीजिये ॥१५॥
अहं ममतां	अहंता-ममताको		
सुदुर्भिदां	बहुत कठिनाईसे		
	कटनेवालो		

श्रीशुक उवाच-*

भारतेऽप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवो मलयो
मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देव-
गिरिः ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः
शुक्तिमानृक्षगिरिः पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रंमतकः
ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च
शतसहस्रशः शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्य-
सङ्ख्याताः ॥१६॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भारते अपि अस्मिन् वर्षे सरित् शैलाः सन्ति बहवः मलयः मङ्गलप्रस्थः
 मैनाकः त्रिकूट ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्याः देवगिरिः ऋष्यमूकः श्रीशैलः
 वेङ्कटः महेन्द्रः वारिधारः विन्ध्यः शुक्तिमान् ऋक्षगिरिः पारियात्रः द्रोणः
 चित्रकूटः गोवर्धनः रैवतकः ककुभः नीलः गोकामुखः इन्द्रकीलः कामगिरिः
 इति च अन्ये च शतसहस्रशः शैलाः तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यः च सन्ति
 असङ्ख्याताः ॥१६॥

अस्मिन् इस
 भारते वर्षे अपि भारतवर्षमें भी
 सरित् शैलाः नदियाँ और पर्वत
 बहवः सन्ति बहुतसे हैं (जैसे)
 मलयः मलय,
 मङ्गलप्रस्थः मङ्गलप्रस्थ,
 मैनाकः मैनाक,
 त्रिकूटः त्रिकूट,
 ऋषभः ऋषभ,
 कूटकः कूटक,
 कोल्लकः कोल्लक,
 सह्याः सह्य,
 देवगिरिः देवगिरि,
 ऋष्यमूकः ऋष्यमूक
 श्रीशैलः श्रीशैल,
 वेङ्कटः वेङ्कट,
 महेन्द्रः महेन्द्र,
 वारिधारः वारिधार,
 विन्ध्यः विन्ध्य,
 शुक्तिमान् शुक्तिमान्,
 ऋक्षगिरिः ऋक्षगिरि,

पारियात्रः परियात्र,
 द्रोणः द्रोण,
 चित्रकूटः चित्रकूट,
 गोवर्धनः गोवर्धन,
 रैवतकः रैवतक,
 ककुभः नीलः ककुभ, नील,
 गोकामुखः गोकामुख,
 इन्द्रकीलः इन्द्रकील,
 कामगिरिः कामगिरि
 इति इसप्रकार (ये)
 च अन्ये और दूसरे
 शतसहस्रशः सैकड़ों-हजारों
 शैलाः पर्वत हैं ।
 तेषां उनके
 नितम्बप्रभवा मध्यभागसे
 निकलनेवाली
 नदा नद्यः च नद और नदियाँ
 भी
 असंख्याताः असंख्य
 सन्ति हैं ॥१६॥■

■ पर्वतोंके तथा नदियोंके भी वर्तमान नाम तथा स्थानका पता भूगोलके विद्वानोंके शोधका विषय है। इनमें अनेक लुप्त हो गये हो सकते हैं।

एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना
चोपस्पृशन्ति ॥१७॥

एतासां अपः भारत्यः प्रजा नामभिः एव पुनन्तीनां आत्मना
च उपस्पृशन्ति ॥१७॥

नामभिः	(केवल) नामसे	भारत्यः प्रजा	भारतीय प्रजा
एव	ही	आत्मना च	शरीरसे भी
पुनन्तीनां	पवित्रकर देनेवाली	उपस्पृशन्ति	स्पर्श करती
एतासां	इनके		है ॥१७॥
अपः	जल		

चन्द्रवसा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी
वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी
गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती
सिन्धुरन्धा शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृतिऋषिकुल्या त्रिसामा
कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोध-
स्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता
असिन्की विश्वेति महानद्यः ॥१८॥

चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी,
पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्वि-
न्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्धुः अन्धः, शोणः
च नदौ (ये नद हैं ।) महानदी, वेदस्मृतिः, ऋषिकुल्या, त्रिसामा,
कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती,
सप्तस्वती, सुषोमा, शतद्रूः चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिन्की,
विश्वा, इति महानद्यः ॥१८॥

इति महानद्यः ये महानदियाँ हैं ॥१८॥

अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन
स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्व्य आत्मन
आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्ग-
श्चापि भवति ॥१६॥

अस्मिन् एव वर्षे पुरुषैः लब्ध जन्मभिः शुक्ललोहित कृष्ण
वर्णेन स्व आरब्धेन कर्मणा दिव्य मानुष नारक गतयः बह्व्य आत्मन
आनुपूर्व्येण सर्वा हि एव सर्वेषां विधीयन्ते यथा वर्ण विधानं अपवर्गः च
अपि भवति ॥१६॥

अस्मिन् एव वर्षे	इस वर्षमें ही	आत्मन	अपने
लब्ध जन्मभिः	जन्म लेने वाले	आनुपूर्व्येण	क्रमानुसार
पुरुषैः	पुरुषोंको	सर्वा हि एव	सभी ही (गतियाँ)
स्व आरब्धेन	अपने किये हुये	सर्वेषां	सबकी
शुक्ललोहित	सात्त्विक, राजस,	विधीयन्ते	होती हैं ।
कृष्ण	तामस	च यथा वर्णं	और अपने वर्णके
कर्मणा	कर्मोंके अनुसार	विधानं	अनुसार (धर्माचरण
दिव्य मानुष	देवता, मनुष्य		करनेसे)
नारक	और नारकीय	अपवर्गः	मोक्ष
बह्व्य गतयः	बहुत-सी गतियाँ	अपि भवति	भी होता है ॥१६॥

योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने
परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागतिनि-
मित्ताविद्याग्रन्थिरन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसङ्गः ॥२०॥

यः असौ भगवति सर्वभूत आत्मनि अनात्म्ये अनिरुक्ते अनिलयने
परमात्मनि वासुदेवे अनन्य निमित्त भक्तियोग लक्षणः नानागति निमित्त
अविद्या ग्रन्थि रन्धन द्वारेण यदा हि महापुरुष पुरुष प्रसङ्गः ॥२०॥

यः असौ	जो यह (मोक्ष है वह)	नानागति	नाना गतियोंके
सर्वभूत	समस्त प्राणियोंके	निमित्त	कारण
आत्मनि	आत्मा	अविद्या ग्रन्थि	अविद्या ग्रन्थिको
अनात्म्ये	सर्वदोष रहित,	रन्ध्रन द्वारेण	भस्म कर देनेके
अनिरुक्ते	अनिर्वचनीय,		मार्गसे (प्राप्त होती है)
अनिलयने	निराधार,	हि यदा	क्योंकि जब
परमात्मनि	परमात्मा	महापुरुष पुरुष	पुरुषोत्तम भगवान्के
वासुदेवे	वासुदेवमें		भक्तोंका
अनन्य निमित्त	अनन्य निष्काम	प्रसङ्गः	सङ्ग मिलता है
	भावसे		(तब वह भक्ति
भक्तियोग	भक्ति-योग		प्राप्त होती है) ॥२०
लक्षणः	स्वरूप ही है ।		

एतदेव हि देवा गायन्ति—

एतत् एव हि देवा गायन्ति—

देवा	देवता	एतत् एव	इसी प्रकार
हि	इसीलिए	गायन्ति	गाते हैं ।

अहो अमीषां किमकारि शोभनं

प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।

यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे

मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥२१॥

अहो अमीषां किं अकारि शोभनं प्रसन्न येषां स्विदुत स्वयं हरिः
यैः जन्म लब्धं नृषु भारत अजिरे मुकुन्दसेवा उपयिकं स्पृहा हि नः ॥२१॥

अहो अमीषां	अहो, इन लोगोंने	येषां स्वयं हरिः	जिनपर स्वयं
किं शोभनं	क्या पुण्य		श्रीहरि
अकारि	किया है	प्रसन्न	प्रसन्न हैं,
उत स्विदुत	अथवा तो	यैः	जिससे

मुकुन्दसेवा	श्रीमुकुन्दकी सेवाके	जन्म लब्धं	जन्म पाया,
उपयिकं	उपयुक्त	हि नः स्पृहा	क्योंकि हम भी
भारत अजिरे	भारतवर्षके		(इस सौभाग्यकी)
	आंगनमें		स्पृहा करते हैं ॥२१॥
नृषु	मनुष्य-योनिमें		

किं दुष्करैः क्रतुभिस्तपोव्रतै-

र्दानादिभिर्वाद्युजयेन

फल्गुना ।

न यत्र नारायणपादपङ्कज-

स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥२२॥

किं दुष्करैः नः क्रतुभिः तपः व्रतैः दानादिभिः वा युजयेन फल्गुना
न यत्र नारायण पादपङ्कज स्मृतिः प्रमुष्टा अतिशय इन्द्रिय उत्सवात् ॥२२॥

नः	हमारे	नारायण	श्रीनारायणके
फल्गुना	तुच्छ	पादपङ्कज	चरण-कमलकी
युजयेन	✓ स्वर्गदायी	स्मृतिः	स्मृति
दुष्करैः	कठिनाईसे किये गये	अतिशय	बहुत अधिक
क्रतुभिः	यज्ञोंसे,	इन्द्रिय	ऐन्द्रियक
तपः व्रतैः	तपस्यासे, व्रतसे,	उत्सवात्	भोग भोगनेसे
वा दानादिभिः	अथवा दानादिसे,	प्रमुष्टा	छिन गयी,
किं	क्या लाभ	न	नहीं रही ॥२२॥
यत्र	जहां		

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्

क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ।

क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः

संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥२३॥

कल्प आयुषां स्थान जयात् पुनर्भवात् क्षण आयुषां भारत भूजयः
वरं क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयाति अभयं पदं हरेः ॥२३॥

कल्प आयुषां	कल्प पर्यन्त आयु वालोकै	मनस्विनः	मनस्वी
स्थानजयात्	स्थान (ब्रह्मलोक) पानेसे,	मर्त्येन	मनुष्य
पुनर्भवात्	जहाँसे फिर जन्म लेना पड़ता है	क्षणेन	एक क्षणमें
क्षण आयुषां	क्षण जीवियोंकी	कृतं संन्यस्य	अपने सब कर्म (भगवत्) अर्पित करके
भारतभूजयः	भारत भूमि पाना	हरेः अभयं पदं	श्रीहरिके अभय पदको
वरं	श्रेष्ठ है (क्योंकि)	संयान्ति	पहुँच जाते हैं ॥२३॥

✓ न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।

न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः ।

सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥२४॥

न यत्र वैकुण्ठ कथा सुधा आपगा न साधवः भागवताः तत् आश्रयाः
न यत्र यज्ञेश मखा महोत्सवाः सुरेश लोकः अपि न वै स सेव्यताम् ॥२४॥

यत्र	जहाँ	यत्र यज्ञेश	जहाँ यज्ञेश
वैकुण्ठ कथा	भगवान् वैकुण्ठनाथ की कथा रूपी	मखाः	यज्ञोंका
सुधा आपगा न	अमृत-सरिता नहीं है,	महोत्सवाः	महोत्सव
तत् आश्रयाः	उनकी ही शरणमें रहने वाले	न	नहीं होता
भागवताः	भगवद्-भक्त	स वै	वह निश्चय
साधवः न	साधु नहीं है,	सुरेशः लोकः	इन्द्रलोक हो तो
		अपि	भी
		न सेव्यतां	(उसका) सेवन मत करे ॥२४॥

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो

ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृताम् ।

न वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते

भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥२५॥

प्राप्ता नृजातिं तु इह ये च जन्तवः ज्ञान क्रिया द्रव्य कलाप सम्भृतां
न वै यतेरन् अपुनर्भवाय ते भूयः वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥२५॥

इह तु ये	इस भारतमें हो जो	अपुनर्भवाय	मोक्षके लिए
जन्तवः	प्राणी	न च यतेरन्	प्रयत्न नहीं ही करते
ज्ञान क्रिया	ज्ञान (बुद्धि) कर्म	ते भूयः	वे फिरसे
द्रव्य कलाप	पदार्थादि सामग्रीसे	वनौका इव	जंगली-पशु-पक्षियोंके
सम्भृतां	सम्पन्न		समान
नृजातिं प्राप्ता	मनुष्य-जन्म पाकर	बन्धनं यान्ति	बन्धनमें पड़ते
वै	निश्चित रूपसे		हैं ॥२५॥

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हवि-

निरुप्तमिष्टं

विधिमन्त्रवस्तुतः ।

एकः पृथङ् नामभिराहुतो मुदा

गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥२६॥

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशः हविः निरुप्तम् इष्टं विधि मन्त्र वस्तुतः
एकः पृथङ् नामभिः आहुतः मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयं आशिषां प्रभुः ॥२६॥

यैः	जिन (भारत	मन्त्र वस्तुतः	मन्त्र, पदार्थ पूर्वक
	वासियों) के द्वारा	निरुप्तं आहुतः	निरूपित करके
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक		आहुति देनेपर
पृथङ् नामभिः	(इन्द्रादि) अलग-	एकः पूर्णः	एक परिपूर्ण
	अलग नामोंसे	स्वयं आशिषां	स्वयं सब कामनाओंके
बर्हिषि	यज्ञमें	प्रभुः	स्वामी (प्रदाता)
भागशः हविः	विभाग पूर्वक हवि	मुदा	प्रसन्नता पूर्वक
इष्टं विधि	देवता, विधि,	गृह्णाति	ग्रहण करते हैं ॥२६॥

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः ।

स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-

मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥२७॥

सत्यं दिशति अर्थितं अर्थितः नृणां न एव अर्थदः यत् पुनः अर्थिता
यतः स्वयं विधत्ते भजतां अनिच्छतां इच्छापिधानं निज पादपल्लवम् ॥२७॥

सत्यं	यह सच है कि	जाता है (अतः)
नृणां अर्थितः	मनुष्योंके चाहनेसे	स्वयं भगवान् स्वयं
अर्थितं	उनके चाहे पदार्थ	इच्छापिधानं इच्छाओंको बन्द
न दिशति	(भगवान्) नहीं देते	कर देनेवाले
अर्थदः	भोग-पदार्थ देने	निज अपने
	वाले (वे)	पादपल्लवं चरण-पल्लव
न एव	नहीं ही हैं ।	भजतां भजन करनेवालेको
यतः	क्योंकि (पानेवाला)	अनिच्छतां न चाहनेपर भी
पुनः अर्थिता	फिर मंगन ही रह	विधत्ते प्रदान करते हैं ॥२७॥

यद्यत्र नः स्वर्गमुखावशेषितं

स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ।

तेनाजनाभे स्मृतिमञ्जन्म नः स्याद्

वर्षे हरिर्यद्भुजतां शं तनोति ॥२८॥

यत् अत्र नः स्वर्गमुख अवशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनं
तेन अजनाभे स्मृतिमत् जन्म नः स्यात् वर्षे हरिः यत् भजतां शं तनोति ॥२८॥

अत्र नः	यहाँ हमारा	कृतस्य	कर्मोंका
स्वर्गमुख	स्वर्ग-मुख (भोगनेसे)	शोभनं	पुण्य
यत् स्विष्टस्य	जो (पूर्वकृत)	अवशेषितं	बचा हो
	यज्ञका	तेन	उस (के फल) से
सूक्तस्य	प्रवचनका,	अजनाभे	अजनाभ (भारत) में

नः स्मृतिमत्	हमारा (भगवान्की)	भजतां	भजन करनेवालों का
	स्मृति युक्त	यत्	जो
जन्म स्यात्	जन्म हो,	हरिः शं तनोति	श्रीहरि कल्याण
वर्षे	जिस वर्षमें		करते हैं ॥२८॥

श्रीशुक उवाच-

जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति
सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पि-
तान् ॥२९॥

जम्बूद्वीपस्य च राजन् उपद्वीपान् अष्टौ ह एक उपदिशन्ति सगर
आत्मजैः अश्वान्वेषण इमां महीं परितः निखनत्भिः उपकल्पितान् ॥२९॥

राजन्	परीक्षित् !	निखनत्भिः	खोदते समय
सगर आत्मजैः	राजा सागरके पुत्रों	उपकल्पितान्	बनाये गये
	द्वारा	जम्बूद्वीपस्य	जम्बूद्वीपके
अश्वान्वेषण	(यज्ञीय) अश्वके	ह एक	निश्चित कोई
	ढूंढनेमें	अष्टौ उपद्वीपान्	आठ उपद्वीप
इमां महीं	इस पृथ्वीको	उपदिशन्ति	बतलाते हैं ॥२९॥
परितः	चारों ओरसे		

तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणको मन्दर-
हरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्का इति ॥३०॥

तत् यथा स्वर्णप्रस्थः चन्द्रशुक्लः आवर्तनः रमणकः मन्दरहरिणः
पाञ्चजन्यः सिंहलः लङ्का इति ॥३०॥

तत् यथा	वे जैसे कि	मन्दरहरिणः	मन्दरहरिण,
स्वर्णप्रस्थः	स्वर्णप्रस्थ	पाञ्चजन्यः	पाञ्चजन्य
चन्द्रशुक्लः	चन्द्रशुक्ल,	सिंहलः	सिंहल
आवर्तनः	आवर्तन,	लङ्का इति	लङ्का, इस प्रकार
रमणकः	रमणक,		हैं ॥३०॥

एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेश-
मुपवर्णित इति ॥३१॥

एवं तव भारत उत्तम जम्बूद्वीप वर्षविभागः यथा उपदेशं उपवर्णित
इति ॥३१॥

भारत उत्तम	भरतवंशमें श्रेष्ठ परीक्षित !	जम्बूद्वीप	जम्बूद्वीपके
एवं तव	इस प्रकार तुमसे	✓ वर्षविभागः	✓ वर्षोंका विभाग
यथा उपदेशं	गुरु-मुखसे जैसा सुना था वैसा	उपवर्णित इति	वर्णन कर दिया है ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अथ विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥१॥

अतः परं प्लक्ष आदीनां प्रमाण लक्षण संस्थानतः वर्ष विभाग उपवर्ण्यते ॥१॥

अतः परं	इसके पश्चात्	संस्थानतः	स्थितिके अनुसार
प्लक्ष आदीनां	प्लक्ष आदि द्वीपोंका	वर्षविभाग	वर्ष-विभाग
प्रमाण	परिमाण	उपवर्ण्यते	वर्णन किया जा
लक्षण	चिह्न		रहा है ॥१॥

जम्बूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्बूवाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुण-विशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखा बाह्योपवनेन । प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्तवर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥२॥

जम्बूद्वीपः अयं यावत् प्रमाण विस्तारः तावता क्षार उदधिना परिवेष्टितः यथा मेरुः जम्बू आख्येन लवण उदधिः अपि ततः द्विगुण विशालेन प्लक्ष आख्येन परिक्षिप्तः यथा परिखा बाह्य उपवनेना प्लक्षः जम्बू प्रमाणः द्वीप आख्यकरः हिरण्मय उत्थितः यत्र अग्निः उपास्ते सप्तजिह्वः तस्य अधिपतिः प्रियव्रत आत्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्त वर्षाणि विभज्य सप्त वर्षनामभ्यः आत्मजेभ्यः आकलय्य स्वयं आत्मयोगेन उपरराम ॥२॥

अयं जम्बूद्वीपः यह जम्बूद्वीप
 यावत् प्रमाण जितने परिमाणमें
 विस्तारः विस्तृत है
 तावता उतने ही बड़े
 क्षार उदधिना खारे समुद्रसे
 परिवेष्टितः चारों ओरसे घिरा
 है,
 यथा मेरुः जैसे सुमेरु
 जम्बू आख्येन जम्बू नामके द्वीपसे
 लवण उदधिः क्षार-समुद्र
 अपि भी
 ततः उस (समुद्र) से
 द्विगुण विशालेन दुगुने बड़े
 प्लक्ष आख्येन प्लक्ष नाम वाले
 (द्वीप) से
 परिक्षिप्तः ✓ चारों ओरसे घिरा
 है,
 यथा परिखा जैसे परकोटा
 बाह्य उपवनेन बाहरी बगीचेसे
 (घिरा होता है) ✓
 द्वीप आख्यकरः उस द्वीपके नामका
 कारण,
 हिरण्मय स्वर्णमय

उत्थितः और ऊँचा
 प्लक्षः जम्बू- (जम्बूद्वीप वाले)
 प्रमाणः जामुनके पेड़के
 बराबर वहाँ पाकड़
 का पेड़ है।
 यत्र सप्तजिह्वः जहाँ सात जिह्वा
 वाले
 अग्निः उपास्ते अग्निकी उपासना
 होती है।
 तस्य अधिपतिः उस (द्वीप) के
 स्वामी
 प्रियव्रत आत्मज प्रियव्रतके पुत्र
 इध्मजिह्वः इध्मजिह्वने
 स्वं द्वीपं अपने (इस) द्वीपको
 सप्त वर्षाणि सात वर्षों (देशों) में
 विभज्य बांटकर
 वर्षनामभ्यः उन वर्षोंके ही नाम
 वाले
 सप्त आत्मजेभ्य अपने सात पुत्रोंको
 आकलय्य ✓ सौंपकर
 स्वयं स्वयं
 आत्मयोगेन आत्मयोगके द्वारा
 उपरराम उपरत हो
 गये ॥२॥

शिवं यवसं सुभद्रं शान्तं क्षेमममृतमभयमिति वर्षाणि
 तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥३॥

शिवं यवसं सुभद्रं शान्तं क्षेमं अमृतं अभयं इति वर्षाणि तेषु गिरयः
 नद्यः च सप्त एव अभिज्ञाताः ॥३॥

शिवं यवसं शिव, यवस,
 सुभद्रं शान्तं सुभद्र, शान्त,
 क्षेमं अमृतं क्षेम, अमृत,
 अभयं अभय
 इति वर्षाणि इस नामके वर्ष
 (देश) हैं ।

तेषु गिरयः उनमें पर्वत
 च नद्यः और नदियां
 सप्त एव सात-सात ही
 अभिज्ञाताः प्रसिद्ध हैं ॥३॥

मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान् सुपर्णो
 हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः । अरुणा नृम्णाऽऽङ्गिरसी
 सावित्री सुप्रभाता ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति महानद्यः । यासां
 जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतङ्गोऽर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञा-
 श्रत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसन्दर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं
 त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते ॥४॥

मणिकूटः वज्रकूटः इन्द्रसेनः ज्योतिष्मान् सुपर्णः हिरण्यष्ठीवः
 मेघमाल इति सेतुशैलाः । अरुणा नृम्णा आङ्गिरसी सावित्री सुप्रभाता
 ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति महानद्यः यासां जल उपस्पर्शन विधूत रजः तमसः
 हंस पतङ्ग ऊर्ध्वायन सत्याङ्ग संज्ञाः चत्वारः वर्णाः सहस्र आयुषः विबुध
 उपम सन्दर्शन प्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्य
 आत्मानं यजन्ते ॥४॥

मणिकूटः मणिकूट,
 वज्रकूटः वज्रकूट,
 इन्द्रसेनः इन्द्रसेन,
 ज्योतिष्मान् ज्योतिष्मान्
 सुपर्णः सुपर्ण,
 हिरण्यष्ठीवः हिरण्यष्ठीव,
 मेघमाल इति मेघमाल, इस प्रकार
 सेतुशैलाः (सात) मर्यादा
 गिरि हैं ।
 अरुणा नृम्णा अरुणा, नृम्णा,
 आङ्गिरसी आङ्गिरसी,

सावित्री सावित्री,
 सुप्रभाता सुप्रभाता,
 ऋतम्भरा ऋतम्भरा,
 सत्यम्भरा सत्यम्भरा,
 इति महानद्यः इस प्रकार (ये सात)
 महानदियां हैं ।
 यासां जल जिनके जलमें
 उपस्पर्शन स्नान करनेसे
 विधूत रजः धुले रजोगुण,
 तमसः तमोगुण
 हंस पतङ्ग हंस, पतङ्ग,

उध्वयिन	उध्वयिन,	तृया विद्यया	तृयी (कर्म, ज्ञान,
सत्याङ्ग संज्ञाः	सत्याङ्ग नामवाले		उपासनारूप वेद)
चत्वारः वर्णाः	चारों वर्णोंके लोग		विद्या द्वारा
सहस्र	एक हजार वर्षकी	स्वर्गद्वारं	स्वर्गके द्वार भूत
आयुषः	आयुवाले,	आत्मानं	आत्मस्वरूप
विबुध उपम	देवताओंके समान	भगवन्तं सूर्यं	भगवान सूर्यकी
सन्दर्शन	रूपवाले (तथा	यजन्ते	उपासना करते
	उन्हींके समान)		हैं ॥४॥
प्रजननाः	सन्तान उत्पन्न		
	करनेवाले		

प्रतनस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्य तस्य ब्रह्मणः ।

अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥५॥

प्रतनस्य विष्णोः रूपं यत् सत्यस्य ऋतस्य ब्रह्मणः अमृतस्य च मृत्योः
च सूर्यं आत्मानं ईमहि इति ॥५॥

इति	इस प्रकार (वे	अमृतस्य	अमरत्व (मोक्ष) के,
	स्तुति करते हैं)	च मृत्योः	तथा मृत्युके
यत् प्रतनस्य	जो पुराण-पुरुष	ब्रह्मणः	ब्रह्म (ज्योति-
विष्णोः	भगवान् विष्णुके,		स्वरूप) के
सत्यस्य	सत्य अनुष्ठान योग्य	रूपं	रूप हैं
	धर्म) के	आत्मानं सूर्यं	(उन) आत्मस्वरूप
ऋतस्य	ऋत (प्रतीत होने		सूर्यकी
	वाले धर्म) के,	ईमहि	(हम) शरण हैं ॥५॥

प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धि-
विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिरविशेषेण वर्तते ॥६॥

प्लक्ष आदिषु पञ्चसु पुरुषाणां आयुः इन्द्रियं ओजः सहः बलं बुद्धिः
विक्रम इति च सर्वेषां औत्पत्तिकी सिद्धिः अविशेषेण वर्तते ॥६॥

प्लक्ष आदिषु	प्लक्षसे लेकर	ओजः	ओज (मनोबल)
पञ्चसु	पांच (द्वीपों) में	सहः	सह (इन्द्रिय-बल)
सर्वेषां	सभी	बलं	(शरीर) बल,
पुरुषाणां	पुरुषोंको	बुद्धिः	बुद्धि,
औत्पत्तिकी	जन्मसे ही	विक्रम	पराक्रमकी
अविशेषेण	समान रूपसे	सिद्धिः	सिद्धि प्राप्त
आयु इन्द्रिय	आयु, इन्द्रिय,	वर्तते	रहती है ॥६॥

प्लक्षः स्वसमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृत्ते ॥७॥

प्लक्षः स्वसमानेन इक्षुरस उदेन आवृतः यथा तथा द्वीपः अपि शाल्मलः द्विगुण विशालः समानेन सुरोदेन आवृतः परिवृङ्क्ते ॥७॥

यथा प्लक्षः	जैसे प्लक्ष-द्वीप	विशालः	बड़ा
स्वसमानेन	अपने बराबरके	समानेन	अपने बराबरके
इक्षुरस	गन्नेके रसके	सुरोदेन	मदिरा-सागरसे
उदेन	समुद्रसे	आवृतः	घिरा
आवृतः	घिरा है	परिवृङ्क्ते	(इक्षुरस समुद्रके)
तथा शाल्मलः	वैसे ही शाल्मली		चारों ओर स्थित
द्वीपः अपि	द्वीप भी		है ॥७॥
द्विगुण	उससे दोगुना		

**यत्र ह वै शाल्मली प्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलय-
माहुर्भगवतश्छन्दःस्तुतः पतत्रिराजस्य सा द्वीपहृतये
उपलक्ष्यते ॥८॥**

**यत्र ह वै शाल्मली प्लक्ष आयामा यस्यां वाव किल निलयं आहुः
भगवतः छन्दः स्तुतः पतत्रिराजस्य सा द्वीपहृतये उपलक्ष्यते ॥८॥**

यत्र ह वै	जहाँ तो निश्चय		बराबरका
प्लक्ष आयामा	प्लक्ष वृक्षके	शाल्मली	सेमरका वृक्ष है ।

यस्यां	जिसपर	निलयं आहुः	निवास कहा
वाव किल	अरे निश्चय ही		गया है।
भगवतः	भगवान् (विष्णु) की	सा	वह (शात्मलिवृक्ष)
छन्दः स्तुतः	(अपने पंखोंसे) वेद-	द्वीपहृतये	द्वीपके नामका हेतु
	मन्त्रोंद्वारा स्तुति	उपलक्ष्यते	दिखायी पड़ता
	करनेवाले		है ॥८॥
पतन्निराजस्य	पक्षिराज (गरुड़) का		

तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्त-
भ्यस्तन्नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत्सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं
देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥६॥

तत् द्वीप अधिपतिः प्रियव्रत आत्मजः यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यः
तत् नामानि सप्तवर्षाणि व्यभजत् सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं
पारिभद्रं आप्यायनं अविज्ञातं इति ॥६॥

तत् द्वीप	उस द्वीपके	सुरोचनं	सुरोचन,
अधिपतिः	स्वामी	सौमनस्यं	सौमनस्य,
प्रियव्रत	प्रियव्रतके	रमणकं	रमणक,
आत्मजः	पुत्र	देववर्षं	देववर्ष,
यज्ञबाहुः	यज्ञबाहुने	पारिभद्रं	पारिभद्र,
स्वसुतेभ्यः	अपने पुत्रोंको	आप्यायनं	आप्यायन,
तत् नामानि	उनके ही नामवाले	अविज्ञातं इति	अविज्ञात इसप्रकार
सप्तवर्षाणि	सातवर्ष		(उनके नाम
व्यभजत्	बाँट दिये,		हैं) ॥६॥

तेषु वर्षाद्रियो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः स्वरसः शतशृङ्गो
वामदेवः कुन्दो मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति । अनुमतिः
सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति ॥१०॥

तेषु वर्षे अद्रयः नद्यः च सप्त एव अभिज्ञाताः स्वरसः शतशृङ्गः
वामदेवः कुन्दः मुकुन्दः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिः इति । अनुमतिः सिनीवाली
सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राका इति ॥१०॥

तेषु	उन	पुष्पवर्षः	पुष्पवर्ष,
वर्षे अद्रयः	वर्षोंमें पर्वत	सहस्रश्रुतिः	सहस्रश्रुति
च नद्यः	तथा नदियां	इति	ये (पर्वत) हैं ।
सप्त एव	सात-सात ही	अनुमतिः	अनुमति,
अभिज्ञाताः	प्रसिद्ध हैं ।	सिनीवाली	सिनीवाली,
स्वरसः	स्वरस,	सरस्वती कुहू	सरस्वती, कुहू,
शतशृङ्गः	शतशृंग,	रजनी नन्दा	रजनी, नन्दा,
वामदेवः कुन्दः	वामदेव, कुन्द,	राका इति	राका ये (नदियां)
मुकुन्दः	मुकुन्द,		हैं ॥१०॥

तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुन्धरेषन्धरसंज्ञा भगवन्तं वेद-
मयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते ॥११॥

तद् वर्षं पुरुषाः श्रुतधर वीर्यधर वसुन्धर इषन्धर संज्ञा भगवन्तं वेद-
मयं सोमं आत्मानं वेदेन यजन्ते ॥११॥

तद्	उस	भगवन्तं	भगवान्
वर्षं पुरुषाः	वर्षके पुरुष	वेदमयं	वेदमय
श्रुतधर	श्रुतधर,	आत्मानं	आत्मस्वरूप
वीर्यधर	वीर्यधर,	सोमं	चन्द्रमाकी
वसुन्धर	वसुन्धर,	वेदेन यजन्ते	वेदके द्वारा यजन
इषन्धर	इषन्धर,		करते हैं ॥११॥
संज्ञा	नामक (चार वर्णके)		

स्वर्गोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः ।

प्रजानां सर्वासां राजान्धः सोमो न आस्त्विति ॥१२॥

स्वर्गोभिः पितृदेवेभ्यः विभजन् कृष्णशुक्लयोः प्रजानां सर्वासां
राजा अन्धः सोमः नः अस्तु इति ॥१२॥

स्व गोभिः	अपनी किरणों द्वारा	प्रजानां	प्रजाको भी
कृष्णशुल्कयोः	कृष्णपक्ष और शुक्ल पक्षका	अन्धः	अन्न (आहार) देनेवाले,
विभजन्	विभाग करके	सोमः नः	चन्द्रमा हमारे
पितृदेवेभ्यः	पितरों तथा देवताओंको	राजा अस्तु	राजा हों
सर्वासां	सब	इति	इसप्रकार (प्रार्थना करते हैं) ॥१२॥

एवं सुरोदाब्दहिस्तद्विगुणः समानेनावृतो घृतोदेन यथापूर्वः
कुशद्वीपो यस्मिन् कुशस्तम्बो देवकृतस्तद्वीपाख्याकरो ज्वलन
इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥१३॥

एवं सुरोदात् बहिः तत् द्विगुणः समानेन आवृतः घृतोदेन यथा पूर्वः
कुशद्वीपः यस्मिन् कुशस्तम्बः देवकृतः तत् द्वीप आख्याकरः ज्वलन इव अपरः
स्वशष्परोचिषा दिशः विराजयति ॥१३॥

एवं	इसी प्रकार	आख्याकरः	नामका कारण
सुरोदात्	मदिरा सागरके	देवकृतः	भगवान्का बनाया
बहिः	बाहर	अपरः	दूसरे
तत् द्विगुणः	उससे दुगुना	ज्वलन इव	अग्निके समान
समानेन	अपने बराबरके	कुशस्तम्बः	कुशका खम्भे जैसा (वृक्ष) है,
घृतोदेन	घृत-समुद्रसे	स्वशष्परोचिषा	अपनी टहनियोंकी
आवृतः	घिरा हुआ	दिशः	कान्तिसे
यथा पूर्वः	पहिलोके समान	विराजयति	दिशाओंको
कुशद्वीपः	कुश-द्वीप है,		शोभित करता
यस्मिन्	जिसमें		है ॥१३॥
तत् द्वीप	उस द्वीपके		

तद्द्वीपपतिः प्रियव्रतो राजन् हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपं
सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसु-
वसुदानहृदरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामभ्यः ॥१४॥

तत् द्वीपपतिः प्रियव्रतः राजन् हिरण्यरेता नाम स्वं द्वीपं
सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यः यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत वसु वसुदान
दृढरुचि नाभिगुप्त स्तुत्यव्रत विविक्त वामदेव नामभ्यः ॥१४॥

राजन्	परीक्षित !	स्तुत्यव्रत	स्तुत्यव्रत,
तत् द्वीपपतिः	उस द्वीपके स्वामी	विविक्त	विविक्त
प्रियव्रतः	प्रियव्रतके पुत्र	वामदेव	वामदेव,
हिरण्यरेता	हिरण्यरेता	नामभ्यः	नामवाले
नाम	नामकने	स्वपुत्रेभ्यः	अपने पुत्रोंको
स्वं द्वीपं	अपने द्वीपको	यथाभागं	विभागके अनुसार
वसु वसुवान	वसु, वसुदान,	विभज्य	बाँटकर
दृढरुचि	दृढरुचि,	स्वयं	स्वयं
नाभिगुप्त	नाभिगुप्त,	तप आतिष्ठत	तप करने लगे ॥१४॥

तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्त सप्तैव चक्रश्चतुः
शृङ्गः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रस-
कुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युता मन्त्र-
मालेति ॥१५॥

तेषां वर्षेषु सीमागिरयः नद्यः च अभिज्ञाताः सप्त सप्त एव चक्रः
चतुः शृङ्गः कपिलः चित्रकूटः देवानीक, ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति रसकुल्या
मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युता मन्त्रमाला इति ॥१५॥

तेषां वर्षेषु	उनके वर्षोंमें	देवानीक	देवानीक,
सीमागिरयः	सीमा-पर्वत	ऊर्ध्वरोमा	ऊर्ध्वरोम,
च नद्यः	तथा नदियाँ	द्रविण	द्रविण
सप्त सप्त एव	सात-सात ही	इति	ये (सात पर्वत) हैं,
अभिज्ञाताः	प्रसिद्ध हैं,	रसकुल्या	रसकुल्या,
चक्रः चतुः	चक्र, चतु,	मधुकुल्या	मधुकुल्या
शृङ्गः कपिलः	शृङ्ग, कपिल,	मित्रविन्दा	मित्रविन्दा,
चित्रकूटः	चित्रकूट,		

श्रुतविन्दा	श्रुतविन्दा	मन्त्र माला इति मन्त्रमाला ये (सात नदियां) हैं ॥१५॥
देवगर्भा	देवगर्भा	
घृतच्युता	घृतच्युता.	

यासां पयोभिः कुशद्वीपौकशः कुशलकोविदाभियुक्तकुलक-
संज्ञा भगवन्तं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥१६॥

यासां पयोभिः कुशद्वीप ओकशः कुशलकोविदाः अभियुक्त कुलक
संज्ञा भगवन्तं जातवेदस रूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥१६॥

कुशलकोविदा	कुशल, कोविद,	जातवेदस	अग्नि
अभियुक्त कुलक	अभियुक्त, कुलक	रूपिणं	स्वरूपकी
संज्ञा	नामके (चार वर्णके)	कर्मकौशलेन	(यज्ञादि) कर्म
कुशद्वीप ओकशः	कुशद्वीपवासी		निपुणतासे
यासां पयोभिः	जिनके जलसे	यजन्ते	भजन करते हैं ॥१६॥
भगवन्तं	भगवान्		

परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ।

देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥१७॥

परस्य ब्रह्मणः साक्षात् जातवेदः असि हव्यवाट् देवानां पुरुष
अङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यज इति ॥१७॥

जातवेदः	अग्निदेव (आप)	देवानां	देवताओंका (तथा)
साक्षात्	साक्षात्	पुरुषं	परमपुरुषका
परस्य ब्रह्मणः	परमब्रह्मको	यज्ञेन यज	यज्ञके द्वारा भजन
हव्यवाट्	हवि पहुँचानेवाले		कीजिये,
असि	हो अतः	इति	इस प्रकार (स्तुति
पुरुष	(विराट्) पुरुषके		करते हैं) ॥१७॥
अङ्गानां	अङ्गभूत		

तथा घृतोदाब्दहिः क्रौञ्चदीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन
परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चो
नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्तक आस्ते ॥१८॥

तथा घृतोदात् बहिः क्रौञ्चद्वीपः द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तः वृतः यथा कुशद्वीपः घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चः नाम पर्वतराजः द्वीपनाम निर्वर्तक आस्ते ॥१८॥

यथा	जैसे	क्षीरोदेन	क्षीर-समुद्रसे
कुशद्वीपः	कुशद्वीप	परित उपक्लृप्तः	चारों ओरसे
घृतोदेन	घृत-सागरसे (घिरा है)	वृतः	घिरा है
तथा	वैसे ही	यस्मिन्	जिसमें
घृतोदात् बहिः	घृत-सागरसे बाहर	द्वीपनाम	द्वीपके नामका
क्रौञ्चद्वीपः	क्रौञ्चद्वीप	निर्वर्तक	कारण
स्वमानेन	अपने परिमाणसे	क्रौञ्चः नाम	क्रौञ्च नामका
द्विगुणः	दो गुने	पर्वतराजः	पर्वतराज
		आस्ते	है ॥१८॥

योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्बकुञ्जोऽपि क्षीरोदेना-
सिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥१९॥

यः असौ गुहप्रहरण उन्मथित नितम्ब कुञ्जः अपि क्षीरोदेन आसिच्य-
मानः भगवता वरुणेन अभिगुप्तः विभयः बभूव ॥१९॥

यः असौ	जो यह (पर्वत)	क्षीरोदेन	क्षीर-समुद्र द्वारा
गुहप्रहरण	(पहिले) कुमार कार्तिकके शस्त्र प्रहारसे	आसिच्यमानः	सिञ्चित होते रहनेसे
उन्मथित	क्षत-विक्षत	भगवता वरुणेन	(तथा) भगवान् वरुण द्वारा
नितम्ब	मध्य भाग	अभिगुप्तः	संरक्षित होनेसे
कुञ्जः अपि	(तथा) कुञ्जोंके होने पर भी	विभयः बभूव	निर्भय हो गया ॥१९॥

तस्मिन्नपि प्रेयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे
वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान् वर्ष-
पान्निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य
हरेश्चरणारविन्दमुपजगाम ॥२०॥

तस्मिन् अपि प्रैयव्रतः घृतपृष्ठः नाम अधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान् वर्षपान् निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याण यशसः आत्मभूतस्य हरेः चरणारविन्दं उपजगाम ॥२०॥

तस्मिन् अपि उसमें भी
घृतपृष्ठः नाम घृतपृष्ठ नामके
प्रैयव्रतः प्रियव्रतके पुत्र
अधिपतिः स्वामी थे,
स्वे द्वीपे अपने द्वीपको
सप्त वर्षाणि सात वर्षोंमें
विभज्य विभाजित करके
पुत्रनामसु तेषु पुत्रोंके नामवाले
उनमें
सप्त रिक्थादान् सात उत्तराधिका-
रियोंको

वर्षपान् निवेश्य वर्षपाल नियुक्त
करके
स्वयं भगवान् स्वयं ऐश्वर्य
सम्पन्न होनेपर भी
भगवतः भगवान्
परमकल्याण परम कल्याणदायी
यशसः सुयशवाले
आत्मभूतस्य आत्मस्वरूप
हरेः श्रीहरिके
चरणारविन्दं पाद-पद्मोंकी
उपजगाम शरण ली ॥२०॥

आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो
वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्तैव
नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हिणो नन्दो
नन्दनः सर्वतोभद्र इति अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती
वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्लेति ॥२१॥

आमः मधुरुहः मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठः लोहितार्णः वनस्पतिः
इति घृतपृष्ठसुताः तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्त एव नद्यः च अभिख्याताः
शुक्लः वर्धमानः भोजनः उपबर्हिणः नन्दः नन्दनः सर्वतोभद्र इति अभया
अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्ला इति ॥२१॥

आमः मधुरुहः आम, मधुरुह,
मेघपृष्ठः मेघपृष्ठ,

सुधामा सुधामा,
भ्राजिष्ठः भ्राजिष्ठ,

लोहितार्णः	लोहितार्ण	उपबर्हिणः	उपबर्हिण,
वनस्पतिः इति	वनस्पति इस प्रकार (सात)	नन्दः नन्दनः	नन्द, नन्दन,
घृतपृष्ठसुताः	घृतपृष्ठके पुत्र हैं।	सर्वतोभद्र इति	सर्वतोभद्र ये (पर्वत) हैं
तेषां वर्षगिरयः	उनके वर्षके मर्यादा पर्वत	अभया अमृतौघा	अभया, अमृतौघा
च नद्यः	और नदियां भी	आर्यका	आर्यका,
सप्त सप्त एव	सात सात ही	तीर्थवती	तीर्थवती,
अभिख्याताः	प्रसिद्ध हैं।	वृत्तिरूपवती,	वृत्तिरूपवती,
शुक्लः वर्धमानः	शुक्ल, वर्धमान,	पवित्रवती	पवित्रवती,
भोजन	भोजन,	शुक्ला इति	शुक्ला ये (नदियां) हैं ॥२१॥

यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जानाः पुरुषऋषभ-
द्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनाञ्जलिना
यजन्ते ॥२२॥

यासां अम्भः पवित्रं अमलं उपयुञ्जानाः पुरुष ऋषभ द्रविण देवक
संज्ञा वर्षपुरुषाः आपोमयं देवं अपां पूर्णेन अञ्जलिना यजन्ते ॥२२॥

यासां	जिनके	वर्षपुरुषाः	उस वर्षके पुरुष
पवित्रं अमलं	पवित्र निर्मल	अपां पूर्णेन	जलसे भरी
अम्भः	जलका	अञ्जलिना	अञ्जलिसे
उपयुञ्जानाः	उपयोग करनेवाले	आपोमयं देवं	जलमय परमात्मा- की
पुरुष ऋषभ	पुरुष, ऋषभ,	यजन्ते	पूजा करते हैं ॥२२॥
द्रविण देवक	द्रविण, देवक नामके		
संज्ञा	(चारों वर्णके)		

आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः सुवः ।

ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुव इति ॥२३॥

आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीः भूः भुवः स्वः ता नः पुनीतां इव अघ्नीः
स्पृशतां आत्मना भुव इति ॥२३॥

आपः	जल	भुव स्पृशतां	शरीरसे स्पर्श करने
पुरुषवीर्याः स्थ	विराट्-पुरुषमें		वालोंको
	स्थित उसका वीर्य	अघ्नीः इव	पापहारीकी भांति
	है।	आत्मना	अपनी शक्तिसे
भू भुवः स्वः	भू, भुवः स्वर्गको	पुनीतां	पवित्र करें।
पुनन्तीः	पवित्र करता है,	इति	इस प्रकार (स्तुति
ता नः	वह हम		करते हैं) ॥२३॥

एवं पुरस्तात्क्षीरोदात्परित उपवेशितः शाकद्वीपो
द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतो
यस्मिन् शाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुर-
भिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति ॥२४॥

एवं पुरस्तात् क्षीरोदात् परित उपवेशितः शाकद्वीपः द्वात्रिंशत् लक्ष
योजन आयामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतः यस्मिन् शाकः नाम
महीरुहः स्वक्षेत्र व्यपदेशकः यस्य ह महासुरभि गन्धः तं द्वीपं अनुवास-
यति ॥२४॥

एवं क्षीरोदात्	इसी प्रकार क्षीर-	स्वक्षेत्र	अपने क्षेत्रके
	समुद्रसे	व्यपदेशकः	नामका सूचक
पुरस्तात्	आगे	यस्मिन्	जिसमें
परित	चारों ओरसे	शाकः नाम	शाक नामक
उपवेशितः	घेरे हुए	महीरुहः	वृक्ष है,
शाकद्वीपः	शाकद्वीप	यस्य ह	जिसकी ही
द्वात्रिंशत् लक्ष	बत्तीस लाख	महासुरभिः	महान् सौरभ
योजन आयामः	योजन विस्तारवाला	गन्धः	गन्ध
समानेन च	अपने बराबरके ही	तं द्वीपं	उस द्वीपको
दधिमण्डोदेन	मट्ठेके समुद्रसे	अनुवासयति	सर्वत्र सुवासित
परीतः	घिरा हुआ है,		करती है ॥२४॥

तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान् पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान्निधाप्याधिपतीन् स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥२५॥

तस्य अपि प्रैयव्रत एव अधिपतिः नाम्ना मेधातिथिः सः अपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्व आत्मजान् पुरोजव मनोजव पवमान धूम्रानीक चित्ररेफ बहुरूप विश्वधार संज्ञान् निधाप्य अधिपतीन् स्वयं भगवति अनन्त आवेशित मतिः तपोवनं प्रविवेश ॥२५॥

तस्य अपि	उस (द्वीप) के भी	धूम्रानीक	धूम्रानीक,
मेधातिथिः	मेधा तिथि नामके	चित्ररेफ	चित्ररेफ,
नाम प्रैयव्रत	प्रियव्रतके	बहुरूप	बहुरूप,
एव	पुत्र ही	विश्वधार	विश्वधार
अधिपतिः	स्वामी थे ।	संज्ञान्	नाम वालोंको
स अपि	उन्होंने भी	अधिपति	अधिपति
पुत्र नामानि	पुत्रोंके नामसे	निधाप्य	स्थापित करके
सप्त वर्षाणि	सात वर्षोंका	स्वयं	स्वयं
विभज्य	विभाजन करके	भगवति अनन्त	भगवान् अनन्तमें
तेषु	उनमें	आवेशितः मतिः	बुद्धि लगाकर
स्व आत्मजान्	अपने पुत्र	तपोवनं	तपोवनमें
पुरोजव	पुरोजव,	प्रविवेश	प्रवेश कर
मनोजव	मनोजव,		लिया ॥२५॥
पवमान	पवमान,		

एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव ईशान उरुशृङ्गो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति अनघाऽऽयुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति ॥२६॥

एतेषां वर्षमर्यादा गिरयः नद्यः च सप्त सप्त एव ईशानः उरुशृङ्गः
बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतः देवपालः महानस इति अनघा आयुर्दा
उभयस्पृष्टिः अपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिः निजधृतिः इति ॥२६॥

एतेषां इनमें
वर्षमर्यादा वर्ष सीमा बनाने
वाले
गिरयः पर्वत
च नद्यः और नदियां
सप्त सप्त एव सात-सात ही हैं ।
ईशानः ईशान,
उरुशृङ्गः उरुशृङ्ग,
बलभद्रः बलभद्र,
शतकेसरः शतकेसर,
सहस्रस्रोतः सहस्रस्रोत,

देवपालः देवपाल,
महानस इति महानस ये (पर्वत)
हैं,
अनघा आयुर्दा अनघा, आयुर्दा,
उभयस्पृष्टिः उभयस्पृष्टि,
अपराजिता अपराजिता,
पञ्चपदी पञ्चपदी,
सहस्रस्रुतिः सहस्रस्रुति,
निजधृतिः इति निजधृति ये
(नदियां हैं) ॥२६॥

तद्वर्षपुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो
भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसः परमसमाधिना
यजन्ते ॥२७॥

तत् वर्ष पुरुषाः ऋतव्रत सत्यव्रत दानव्रत अनुव्रत नामानः भगवन्तं
वायु आत्मकं प्राणायाम विधूत रजः तमसः परम समाधिना यजन्ते ॥२७॥

ऋतव्रत ऋतव्रत,
सत्यव्रत सत्यव्रत,
दानव्रत अनुव्रत दानव्रत, अनुव्रत
नामानः नामक (चार
वर्णोंके)
तत् वर्ष पुरुषाः उस वर्षके पुरुष
वायु आत्मकं वायु स्वरूप

भगवन्तं भगवान्की
प्राणायाम प्राणायाम द्वारा
रजः तमसः रजोगुण, तमोगुण
विधूत नष्ट करके
परम समाधिना परम समाधि द्वारा
यजन्ते आराधना करते
हैं ॥२७॥

अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ।

अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥२८॥

अन्तः प्रविश्य भूतानि यः बिभर्ति आत्मकेतुभिः अन्तर्यामी ईश्वरः
साक्षात् पातु नः यत् वशे स्फुटम् ॥२८॥

आत्मकेतुभिः	(प्राणदि रूप) अपनी	यत् वशे स्फुटं	जिसके वशमें जगत है (वह)
	ध्वजाओं द्वारा		
भूतानि अन्तः	प्राणियोंके भीतर	साक्षात्	साक्षात्
प्रविश्य	प्रवेश करके	अन्तर्यामी	अन्तर्यामी
यः बिभर्ति	जो उनका धारण करता है,	ईश्वरः	सर्वसञ्चालक
		नः पातु	हमारी रक्षा करें ॥२८॥

एवमेव दधिमण्डोदात्परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः
समन्तत उपकल्पितः समानेन स्वाद्दुदकेन समुद्रेण बहिरावृतो
यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः
कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम् ॥२९॥

एवं एव दधिमण्डोदात् परतः पुष्कर द्वीपः ततः द्विगुण आयामः
समन्ततः उपकल्पितः समानेन स्वाद्दु उदकेन समुद्रेण बहिः आवृतः यस्मिन्
बृहत् पुष्करं ज्वलन शिखा अमल कनकपत्र अयुत अयुतं भगवतः कमला-
सनस्य अध्यासनं परिकल्पितं ॥२९॥

एवं एव	इस प्रकार ही	समानेन	(वह) अपने बराबरके
दधिमण्डोदात्	मट्ठेके समुद्रसे	स्वाद्दु उदकेन	स्वादिष्ट जलके
परतः	आगे	समुद्रेण	समुद्रसे
ततः द्विगुण	उससे दुगुने	बहिः आवृतः	बाहरसे घिरा है ।
आयामः	विस्तार वाला	यस्मिन्	जिसमें
पुष्कर द्वीपः	पुष्कर द्वीप	अमल ज्वलन	अग्निकी निर्मल
समन्ततः	चारों ओर	शिखा	लपटके समान
उपकल्पितः	स्थित है,	कनकपत्र	स्वर्णमय

अयुत अयुतं	लाखों दलोंका	कमलासनस्य	ब्रह्माका
वृहत् पुष्करं	बहुत बड़ा कमल है।	अध्यासनं	बैठनेका आसन
भगवतः	(वह) भगवान्	परिकल्पितं	बनाया गया है ॥२६

तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवावाचीनपराचीन-
वर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु
चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्ठात्सूर्यरथस्य
मेरु परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परि-
भ्रमति ॥३०॥

तत् द्वीपमध्ये मानसोत्तर नाम एक एव अवाचीन पराचीन वर्षयोः
मर्यादा अचलः अयुत योजन उच्छ्राय आयामः यत्र तु चतसृषु दिक्षु
चत्वारि पुराणि लोकपालानां इन्द्रादीनां यत् उपरिष्ठात् सूर्यरथस्य मेरु
परिभ्रमतः संवत्सर आत्मकं चक्रं देवानां अहः रात्राभ्यां परिभ्रमति ॥३०॥

तत् द्वीपमध्ये	उस द्वीपके बीचमें	अयुत योजन	दस हजार योजन
अवाचीन	(उसके) पूर्वीय	उच्छ्राय	ऊँचा (उतना ही)
पराचीन	और पश्चिमी	आयामः	फैलाव वाला है।
वर्षयोः	प्रदेशको (पृथक् करनेवाला)	यत्र तु	जहाँ तो
मानसोत्तर	मानसोत्तर	चतसृषु दिक्षु	चारों दिशाओंमें
नाम	नामका	इन्द्रादीनां	इन्द्र आदि
एक एव	एक ही	लोकपालानां	लोकपालोंकी
मर्यादा अचलः	मर्यादा पर्वत है।	चत्वारि पुराणि	चार पुरियां हैं■

■ यहाँके लोकपालोंकी पुरियां ब्रह्माजीके स्थानका वर्णन इसी
स्कन्धके अध्याय १६ के गद्य २८-२९ के साथ देखते योग्य है। वहाँ जम्बू-
द्वीपके इलावृतके मध्यमें सुमेरुके ऊपर ब्रह्मपुरी और उसके चारों ओर
लोकपाल पुरियोंका वर्णन है।

यत् उपरिष्ठात् जिनके ऊपर
मेरुं परिभ्रमतः सुमेरुके चारों ओर
घूमते
सूर्यरथस्य सूर्यके रथके
संवत्सर आत्मकं संवत्सर स्वरूप

चक्र चक्र
देवानां देवताओंका
अहः रात्राभ्यां दिन-रात बनाता
परिभ्रमति घूमता है ॥३०॥

तद्द्वीपस्याप्यधिपतिः प्रियव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ
रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद्भग-
वत्कर्मशील एवास्ते ॥३१॥

तत् द्वीपस्य अपि अधिपतिः प्रियव्रतः वीतिहोत्रः नाम एतस्य आत्मजौ
रमणक धातकि नामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवत् भगवत् कर्मशील
एव आस्ते ॥३१॥

तत् द्वीपस्य उस द्वीपके
अपि भी
अधिपतिः अधिपति
प्रियव्रतः प्रियव्रतके पुत्र
वीतिहोत्रः वीतिहोत्र
नाम नामक थे ।
एतस्य आत्मजौ उनके पुत्र
रमणक रमणक और
धातकि धातकि

नामानौ नाम वालोंको
वर्षपती वर्षोंका स्वामी
नियुज्य बनाकर
स पूर्वजवत् वे (अपने) पूर्वजोंके
समान
भगवत् भगवान्की
कर्मशील सेवारूप कर्ममें
एव आस्ते ही लगे रहे ॥३१॥

तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेण कर्मणाऽऽ-
राधयन्तीदं चोदाहरन्ति ॥३२॥

तत् वर्ष पुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेण कर्मणा आराधयन्ति
इदं च उदाहरन्ति ॥३२॥

तत् वर्ष पुरुषा उस वर्षके निवासी
ब्रह्मरूपिणं ब्रह्मा स्वरूप
भगवन्तं भगवान्की
सकर्मकेण सकाम

कर्मणा कर्मों द्वारा
आराधयन्ति आराधना करते हैं ।
च इदं और यह
उदाहरन्ति स्तुति करते ॥३२॥

यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत् ।

एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नम इति ॥३३॥

यत् तत् कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनः अर्चयेत् एकान्तं अद्वयं
शान्तं तस्मै भगवते नमः इति ॥३३॥

यत् कर्ममयं	जो कर्ममय	एकान्तं	नैष्ठिक
लिङ्गं	प्रतीक हैं	अद्वयं	अद्वितीय
तत्	उन	शान्तं	शान्त
ब्रह्मलिङ्गं	ब्रह्मा स्वरूप (भगवान्) की	भगवते	भगवान्‌को
जनः अर्चयेत्	लोगोंको अर्चना	नमः	नमस्कार ।
	करनी चाहिए ।	इति	इस प्रकार (स्तुति
तस्मै	उन		करते हैं) ॥३३॥

श्रीशुक उवाच—*

ततः परस्ताल्लोकालोकनामाचलो लोकालोकयोरन्तराले
परित उपक्षिप्तः ॥३४॥

ततः परस्तात् लोकालोक नाम अचलः लोक अलोकयोः अन्तराले
परित उपक्षिप्तः ॥३४॥

ततः परस्तात्	उसके आगे	परित	सब ओर
लोक	लोक (सूर्यादि द्वारा प्रकाशित)	उपक्षिप्तः	(सर्वेश्वर द्वारा) डाला हुआ
अलोकयोः	अलोक (अप्रकाशित भाग) के	लोकालोक नाम	लोकालोक नामक
अन्तराले	बीचमें	अचलः	पर्वत है ॥३४॥

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

यावन्मानसोत्तरमेवोन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्या-
ऽऽदर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथञ्चित्पुनः प्रत्युपलभ्यते
तस्मात्सर्वसत्त्वपरिहृताऽऽसीत् ॥३५॥

यावत् मानसोत्तर मेरोः अन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्या आदर्श-
तल उपमा यस्यां प्रहितः पदार्थः न कथञ्चित् पुनः प्रति उपलभ्यते तस्मात्
सर्व सत्त्व परिहृता आसीत् ॥३५॥

यावत्	जितना	पदार्थः	पदार्थ
मानसोत्तर	मानसोत्तरसे	कथञ्चित् पुनः	कभी भी फिर
मेरोः अन्तरं	मेरुका अन्तर है	न प्रति	लोटकर नहीं
तावती भूमिः	उसका स्थल	उपलभ्यते	मिलता
	(शुद्धोदकके पार) है	तस्मात्	इसलिए
काञ्चन्यन्या	वह स्वर्णमय है,	सर्व	सब
आदर्शतल	दर्पणके समान	सत्त्व परिहृता	प्राणियोंने छोड़ी
उपमा	(स्वच्छ) है,	आसीत्	है (वहां कोई नहीं
यस्यां प्रहितः	जिसमें पहुँचा (गिरा)		रहता) ॥३५॥

लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोक-
स्यान्तर्वर्तिनावस्थाप्यते ॥३६॥

लोकालोक इति समाख्या यत् अनेन अचलेन लोक अलोकस्य
अन्तर्वर्तिना अवस्थाप्यते ॥३६॥

लोकालोक	लोकालोक	लोक	लोक और
इति समाख्या	यह नाम पड़नेका	अलोकस्य	अलोकके
	कारण है	अन्तर्वर्तिना	मध्यमें
यत् अनेन	क्योंकि यह	अवस्थाप्यते	स्थित है ॥३६॥
अचलेन	पर्वत		

स लोकत्रयान्ते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात्सूर्यादीनां
ध्रुवापवर्गणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनांस्त्रींल्लोकाना-
वितन्वाना न कदाचित्पराचीना भवितुमुत्सहन्ते तावदुन्नहना-
यामः ॥३७॥

स लोकत्रय अन्ते परित ईश्वरेण विहितः यस्मात् सूर्य आदीनां ध्रुव
अपवर्गणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयः अर्वाचीनाः त्रीन्लोकान् अवितन्वाना
न कदाचित् पराचीना भवितुं उत्सहन्ते तावत् उन्नहन आयामः ॥३७॥

स लोकत्रय	वह (पर्वत) तीनों	अर्वाचीनाः	नीचे ही
	लोकोंके	त्रीन्लोकान्	तीनों लोकोंमें
अन्ते	अन्तमें	अवितन्वाना	फैलती हुई
परति	चारों ओर	कदाचित्	कभी
ईश्वरेण	परमेश्वर द्वारा	पराचीना भवितुं	पार होनेका
विहितः	बनाया है।	उत्सहन्ते न	उत्साह नहीं करतीं
यस्मात्	जिससे	तावत्	वहीं तक
सूर्य आदीनां	सूर्य आदि	उन्नहन आयामः	ऊपर जानेका
ध्रुव अपवर्गणां	ध्रुव पर्यन्त		(उनका) विस्तार
ज्योतिर्गणानां	ज्योतिर्मण्डलकी		है ॥३७॥
गभस्तयः	किरणें		

एतावांल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः
कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं
लोकालोकाचलः ॥३८॥

एतावान् लोकविन्यासः मान लक्षण संस्थाभिः विचिन्तितः कविभिः
स तु पञ्चाशत् कोटि गणितस्य भूगोलस्य तुरीय भागः अयं लोकालोक
अचलः ॥३८॥

कविभिः	विद्वानों द्वारा	एतावान्	इतना ही
मान लक्षण	परिमाण, लक्षण,	लोकविन्यासः	लोकोंकी स्थिति
संस्थाभिः	स्थितिके द्वारा	विचिन्तितः	सोची गयी है।

स तु	वह तो	भूगोलस्य	(समस्त इस)
गणितस्य	गणितसे		भूगोलका
पञ्चाशत् कोटि	पचास करोड़ योजन	तुरीय भागः	चौथाई भाग
	है ।	अयं लोकालोक	यह लोकालोक
		अचलः	पर्वत है ॥३८॥

तदुपरिष्ठाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाखिलजगद्गुरुणा-
धिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित
इति सकललोकस्थितिहेतवः ॥३९॥

तत् उपरिष्ठात् चतसृषु आशासु आत्मयोनिना अखिल जगत् गुरुणा
अधिनिवेशिता ये द्विरद पतयः ऋषभः पुष्कर चूडः वामनः अपराजितः इति
सकललोक स्थिति हेतवः ॥३९॥

अखिल जगत्	सम्पूर्ण विश्वके	स्थिति हेतवः	स्थितिके लिए
गुरुणा	गुरु	ये द्विरद पतयः	जो गजराज
आत्मयोनिना	स्वयम्भू (ब्रह्माजी)	अधिनिवेशिता	नियुक्त किये हैं
	द्वारा	इति	(वे) इस प्रकार हैं
तत् उपरिष्ठात्	उस (लोका-लोक)	ऋषभः	ऋषभ,
	के ऊपर	पुष्करचूडः	पुष्करचूड,
चतसृषु आशासु	चारों दिशाओंमें	वामनः	वामन और
सकललोक	सब लोकोंकी	अपराजितः	अपराजित ॥३९॥

तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योप-
बृंहणाय भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो
विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं दिव्य-
क्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभि-
तैर्निजभुजदण्डैः सन्धारयमाणस्तस्मिन् गिरिवरे समन्तात्सकल-
लोकस्वस्तय आस्ते ॥४०॥

तेषां स्वविभूतीनां लोक पालानां च विविधवीर्यं उपबृंहणाय भगवान् परम महापुरुषः महाविभूति पतिः अन्तर्यामी आत्मनः विशुद्ध सत्त्वं धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य आदि अष्टमहासिद्धि उपलक्षणं विश्वक्सेन आदिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितः निजवर आयुध उपशोभित निजभुज-दण्डैः सन्धारयमाणः तस्मिन् गिरिवरे समन्तात् सकल लोक स्वस्त्य आस्ते ॥४०॥

तेषां	उन (दिग्गजों) की	वैराग्य ऐश्वर्य	वैराग्य, ऐश्वर्य
च स्वविभूतीनां	तथा अपनी विभूति रूप	आदि	आदि
लोक पालानां	लोकपालोंकी	अष्टमहासिद्धि	आठ महासिद्धियोंसे
विविधवीर्यं	अनेक प्रकारकी शक्तियोंको	उपलक्षणं	उपलक्षित,
उपबृंहणाय	बढ़ानेके लिए (तथा)	स्वपार्षदप्रवरैः	अपने पार्षद श्रेष्ठ
सकल लोक	सब लोकोंके	विश्वक्सेन	विश्वक्सेन
स्वस्त्य	कल्याणके लिए	आदिभिः	आदिसे
भगवान्	भगवान्	परिवारितः	घिरे हुए,
परम	सर्वोपरि	निजवर आयुध	अपने श्रेष्ठ आयुध (शंखचक्र आदि)
महापुरुषः	महापुरुष,	उपशोभित	सुशोभित
महाविभूति	महान् ऐश्वर्यके	निजभुजदण्डैः	अपनी भुजाओंसे
पतिः	स्वामी,	सन्धारयमाणः	धारण किये
अन्तर्यामी	अन्तर्यामी	तस्मिन् गिरिवरे	उस श्रेष्ठ पर्वत (लोकालोक) पर
विशुद्ध सत्त्वं	विशुद्ध सत्त्व	समन्तात् आस्ते	सब ओर विराज-
आत्मनः	विग्रह (श्रीहरि)		मान हैं ॥४०॥
धर्म ज्ञान	धर्म, ज्ञान,		

आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवान् आत्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपीयायेत्यर्थः ॥४१॥

आकल्पं एवं वेषं गतः एष भगवान् आत्म योगमायया विरचित विविध लोकयात्रा गोपीयाय इति अर्थः ॥४१॥

आत्म	अपनी	इति अर्थः	इसी प्रयोजनसे
योगमायया	योगमाया द्वारा	एष भगवान्	ये भगवान्
विरचित	निर्मित	आकल्पं	कल्प पर्यन्त
विविध	अनेक प्रकारके	एवं वेष गतः	इसी वेशमें रहते
लोकयात्रा	लोक-व्यवहारकी		हैं ॥४१॥
गोपीयाय	रक्षाके लिए		

योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं
यद्बहिर्लोकालोकाचलात् । ततः परस्ताद्योगेश्वरगतिं
विशुद्धामुदाहरन्ति ॥४२॥

यः अन्तः विस्तार एतेन हि अलोक परिमाणं च व्याख्यातं यत् बहिः
लोकालोक अचलात् ततः परस्तात् योगेश्वरगतिं विशुद्धां उदाहरन्ति ॥४२॥

यः	जो (लोकालोकके)	अलोक	अलोकके
अन्तः विस्तार	भीतरी भागका विस्तार है,	परिमाणं च	परिमाणको भी
एतेन हि	इसके द्वारा ही	व्याख्यातं	बतला दिया (गया)
यत्	जो	ततः परस्तात्	उससे आगे
लोकालोक	लोकालोक	विशुद्धां	ठीक-ठीक
अचलात्	पर्वतसे	योगेश्वरगतिं	योगेश्वरोंकी ही गति
बहिः	बाहर है (उस)	उदाहरन्ति	कही जाती है ॥४२॥

अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ।

सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥४३॥

अण्डमध्य गतः सूर्यः द्यावा भूम्योः यत् अन्तरं सूर्य अण्डगोलयोः
मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥४३॥

द्यावा	स्वर्ग		(उस)
भूम्योः	पृथ्वीके	अण्डमध्य	ब्रह्माण्डके मध्य
यत् अन्तरं	मध्यका जो भाग है		(केन्द्र) में

सूर्यः गतः	सूर्य स्थित है ।	पञ्चविंशतिः	पच्चीस
भूर्य	सूर्य तथा	कोट्यः स्युः	करोड़ योजन
अण्डगोलयोः	ब्रह्माण्ड-गोलकके		है ॥४३॥
मध्ये	बीचमें		

मृतेऽण्ड एष एतस्मिन् यदभूत्ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः ।

हिरण्यगर्भ इति यद्विरण्याण्डसमुद्भवः ॥४४॥

मृते अण्ड एष एतस्मिन् यत् अभूत् ततः मार्तण्ड इति व्यपदेशः
हिरण्यगर्भ इति यत् हिरण्य अण्ड समुद्भवः ॥४४॥

एष यत्	यह क्योंकि	हिरण्यगर्भ	हिरण्यगर्भ
एतस्मिन्	इस	इति यत्	इस प्रकार (कहा
मृते अण्ड	मरे हुए अण्ड		गया) क्योंकि
	(ब्रह्माण्ड) से	हिरण्य अण्ड	स्वर्णिम (ज्योतिमय)
अभूत्	उत्पन्न हुआ,		अण्डसे
ततः मार्तण्ड	इसलिए मार्तण्ड	समुद्भवः	उत्पन्न हुए ॥४४॥
इति व्यपदेशः	इस प्रकार निर्दिष्ट		
	हुआ ।		

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्मही भिदा ।

स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥४५॥

सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौः मही भिदा स्वर्ग अपवर्गौ नरका
रसा ओकांसि च सर्वशः ॥४५॥

हि सूर्येण	क्योंकि सूर्यके द्वारा	नरका	नरक
	ही	रसा ओकांसि	रसातलादि
दिशः खं	दिशाओं, आकाश,	सर्वशः	सभी
द्यौः मही	द्युलोक (अन्तरिक्ष)	भिदा	भागोंका
	भूलोक	विभज्यन्ते	विभाजन होता
स्वर्ग	स्वर्ग		है ॥४५॥
अपवर्गौ	मोक्षके प्रदेश		
	(वैकुण्ठादि)		

देवतिर्यङ्मनुष्याणां

सरीसृपसवीरुधाम् ।

सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥४६॥

देव तिर्यक् मनुष्याणां सरीसृप सवीरुधां सर्वजीव निकायानां सूर्य
आत्मा दृक् ईश्वरः ॥४६॥

देव तिर्यक्	देवता, तिर्यक् (पशु-पक्षी)	निकायानां	समूहोंका
मनुष्याणां	मनुष्योंके साथ	सूर्य आत्मा	सूर्य आत्मा और
सरीसृप	सरकने वाले प्राणी,	दृक् ईश्वरः	नेत्रोंके अधिष्ठाता
सवीरुधां	वनस्पतियोंके साथ		हैं ॥४६॥
सर्वजीव	सभी जीव		

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
भुवनकोशवर्णने समुद्वर्षसंनिवेशपरिमाणलक्षणो विंशोऽध्यायः ॥४६॥

अथ एकविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एतावानेव भूवलयस्य संनिवेशः प्रमाणलक्षणतो
व्याख्यातः ॥१॥

एतावान् एव भूवलयस्य संनिवेशः प्रमाण लक्षणतः व्याख्यातः ॥१॥

एतावान् एव	इतना ही	प्रमाण लक्षणतः परिमाण और लक्षण
भूवलयस्य	भू-मण्डलका	सहित
संनिवेशः	विस्तार है,	व्याख्यातः (वह) बतला दिया गया ॥१॥

एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति यथा
द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसन्धितम् ॥२॥

एतेन हि दिवः मण्डलमानं तद् विद उपदिशन्ति यथा द्विदलयोः
निष्पाः आदीनां ते अन्तरेण अन्तरिक्षं तत् उभय सन्धितम् ॥२॥

हि	क्योंकि	यथा निष्पाः	जैसे दालोंवाले
एतेन	इसीके अनुसार	द्विदलयोः	(चना, मटर आदि)
दिवः	द्युलोक		द्विदलोंमें होते हैं
मण्डलमानं	मण्डलका परिमाण	ते अन्तरेण	उनके मध्यमें
तद् विद	उसे जाननेवाले (विद्वान्)	अन्तरिक्षं	अन्तरिक्ष है,
उपदिशन्ति	बतलाते हैं,	तत् उभय सन्धितं	वह दोनोंका सन्धि स्थान है ॥२॥

यन्मध्यगतो भगवांस्तपताम्पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं
प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवत-
संज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु
यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घ-
ह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥३॥

यत् मध्यगतः भगवान् तपतां पतिः तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपति
अवभासयति आत्मभासा स एष उदगयन दक्षिणायन वैषुवत संज्ञाभिः
मान्द्य शैघ्र्यच समानाभिः गतिभिः आरोहण अवरोहण समान स्थानेषु यथा
सवनं अभिपद्यमानः मकर आदिषु राशिषु अहः रात्राणि दीर्घ ह्रस्व
समानानि विधत्ते ॥३॥

यत् मध्यगतः	जिसके मध्यमें स्थित	समानाभिः	समान
तपतां पतिः	तपाने वालों (ग्रह नक्षत्रादि) के स्वामी	गतिभिः	गतिसे
भगवान् तपन	भगवान् सूर्य	मकर आदिषु	मकर आदि
आतपेन	(अपनी) धूपसे	राशिषु	राशियोंमें (चलते हुए)
त्रिलोकीं	तीनों लोकोंको	आरोहण	ऊँचे चढ़ते,
प्रतपति	तपाते हैं,	अवरोहण	नीचे उतरते,
आत्मभासा	अपने प्रकाशसे	समान स्थानेषु	समान स्थानमें
अवभासयति	प्रकाशित करते हैं ।	यथा सवनं	समयानुसार
स एष	वह ये	अभिपद्यमानः	पहुँचकर
उदगयन	उत्तरायण,	अहः रात्राणि	दिन-रात्रिको
दक्षिणायन	दक्षिणायन,	दीर्घ ह्रस्व	बड़ी, छोटी या
वैषुवत	विषुवत	समानानि	समान
संज्ञाभिः	नामवाली (क्रमशः)	विधत्ते	बनाते हैं ॥३॥
मान्द्य शैघ्र्य	मन्द, शीघ्र,		

यदा मेषतुलयोर्वर्तन्ते तदाहोरात्राणि समानानि भवन्ति
यदा वृषभादिषु पञ्चषु च राशिषु चरति तदाहान्येव वर्धन्ते
ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥४॥

यदा मेष तुलयोः वर्तते तदा अहः रात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभ आदिषु पञ्चषु च राशिषु चरति तदा अहानि एव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मासि एक एका घटिका रात्रिषु ॥४॥

यदा	जब (सूर्य)	कर्क, सिंह, कन्या)
मेष तुलयोः	मेष या तुला राशिमें	पञ्चषु राशिषु पांच राशियोंमें
वर्तते	रहते हैं,	चरति चलते हैं
तदा	तब	तदा अहानि एव तब दिन ही
अहः रात्राणि	दिन और रात्रियाँ	वर्धन्ते बढ़ते हैं ।
समानानि	बराबर	च मासि मासि तथा प्रत्येक महीने
भवन्ति	होते हैं,	एक एका घटिका एक एक घड़ी
च यदा	और जब	रात्रिषु रात्रियोंकी
वृषभ आदिषु	वृषभ आदि (मिथुन,	ह्रसति घटती जाती है ॥४॥

यदा वृश्चिकादिषु पञ्चसु वर्तते तदा होरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥५॥

यदा वृश्चिक आदिषु पञ्चसु वर्तते तदा अहः रात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥५॥

यदा वृश्चिक	जब वृश्चिक	तदा अहः	तब दिन और
आदिषु	आदि	रात्राणि	रात्रियाँ
पञ्चसु	पांच (वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन)	विपर्ययाणि	उलटे (दिन घटते, रात्रियाँ बढ़ती)
	राशियोंमें	भवन्ति	होती हैं ॥५॥
वर्तते	रहते हैं		

यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्रयः ॥६॥

यावत् दक्षिणायनं अहानि वर्धन्ते यावत् उदगयनं रात्रयः ॥६॥

दक्षिणायनं (सूर्यके) दक्षिणायन । यावत् आरम्भ होने तक

अहानि वर्धन्ते	दिन बढ़ते हैं	रात्रयः	रात्रियां (बढ़ती हैं) ॥६॥
उदगयनं	उत्तरायण		
यावत्	आरम्भ होने तक		

एवं नव कोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मान-
सोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति तस्मिन्नेन्द्रो पुरीं पूर्वस्मान्मेरो-
देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्धारुणीं
निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्या-
ह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तानि समय-
विशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥७॥

एवं नव कोटय एकपञ्चाशत् लक्षाणि योजनानां मानसोत्तर गिरि
परिवर्तनस्य उपदिशन्ति तस्मिन् ऐन्द्रो पुरीं पूर्वस्मात् मेरोः देवधानीं नाम
दक्षिणतः याम्यां संयमनीं नाम पश्चात् वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः
सौम्यां विभावरीं नाम तासु उदय मध्याह्न अस्तमय निशीथानि इति भूतानां
प्रवृत्ति निवृत्ति निमित्तानि समय विशेषेण मेरोः चतुर्दिशम् ॥७॥

एवं	इस प्रकार	देवधानीं नाम	देवधानी नामकी है ।
नव कोटि	नौ करोड़		
एकपञ्चाशत्	इक्यावन	दक्षिणतः	दक्षिणकी ओर
लक्षाणि	लाख	याम्यां संयमनीं	यमकी संयमनी
योजनानां	योजन	नाम	नामक पुरी है ।
मानसोत्तर	मानसोत्तर	पश्चात्	पीछे (पश्चिम) की ओर
गिरि	गिरिकी	वारुणीं	वरुणकी
परिवर्तनस्य	परिक्रमा (मार्ग) को	निम्लोचनीं	निम्लोचनी
उपदिशन्ति	(जानकार) बतलाते हैं,	नाम	नामकी पुरी है ।
तस्मिन्	उस (पर्वत) पर	उत्तरतः	उत्तरकी ओर
मेरोः पूर्वस्मात्	सुमेरुसे पूर्वकी ओर	सौम्यां	चन्द्रमाकी पुरी
ऐन्द्रो पुरीं	इन्द्रकी पुरी		

विभावरीं नाम	विभावरी नामकी है ।*	अस्तमय	सायंकाल,
तासु	इन (पुरियोंमें)	निशोथानि	अर्धरात्रि
समय विशेषण	विशेष समयके अनुसार	इति	इस प्रकार
		भूतानां	प्राणियोंकी
		प्रवृत्ति निवृत्ति	प्रवृत्ति, निवृत्तिके
मेरोः चतुर्दिशं	सुमेरुके चारों ओर	निमित्तानि	निमित्त (होते रहते हैं) ॥७॥
उदय मध्याह्न	सूर्योदय, मध्याह्न,		

तत्रत्यानां दिवसमध्यङ्गत एव सदाऽऽदित्यस्तपति
सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥८॥

तत्रत्यानां दिवस मध्यङ्गत एव सदा आदित्यः तपति सव्येन अचलं
दक्षिणेन करोति ॥८॥

तत्रत्यानां	वहाँ (मानसोत्तर गिरिपर) रहने वालोंके लिए	आदित्यः तपति	सूर्य तपते हैं ।
सदा	सर्वदा	सव्येन अचलं	पर्वतके बायेंसे (चलते)
दिवस	दिनके	दक्षिणेन करोति	अपने दाहिने करते हैं ॥८॥
मध्यङ्गत एव	मध्याह्न कालीन ही		

यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र
क्वचन स्यन्देनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति
तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनुपश्येरन् ॥९॥

यत्र उदेति तस्य ह समान सूत्र निपाते निम्लोचति यत्र क्वचन
स्यन्देन अभितपति तस्य हि एष समान सूत्र निपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न
पश्यन्ति ये तं समनु पश्येरन् ॥९॥

* वरुणकी पुरीका नाम विभावरी आया है ३।१।२६

यत्र उदेति	जहाँ उदय होते हैं	निपाते	डालक देखनेके
तस्य ह	उसके ठीक		स्थानपर
सूत्र निपाते	सूत डालकर मापने	प्रस्वापयति	(लोगोंको) प्रसुप्त
	पर (दूसरी ओर)		कर देते हैं ।
निम्लोचति	अस्त होते लगते हैं ।	तत्र गतं	वहाँ रहनेवाले
यत्र वचन	जहाँ कहीं	ये तं समनु	जो उनको भली
स्यन्देन	पसीनेसे भिगाकर		प्रकार
अभितपति	संतप्त करते हैं	पश्येरन्	(दोपहरमें) देखते थे,
एष	ये (सूर्य भगवान्)	न पश्यन्ति	(रातके समय) नहीं
तस्य हि	उसके ही		देखते ॥६॥
समान सूत्र	ठीक सामने सूत		

यदा चैन्द्र्याः पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यां
सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि
चोपयाति ॥१०॥

यदा च ऐन्द्रयाः पुर्याः प्रचलते पञ्चदश घटिकाभिः याम्यां सपाद
कोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादश लक्षाणि स अधिकानि च उपयाति ॥१०॥

यदा च	जब भी (सूर्य)	सार्धद्वादश	साढ़े बारह
ऐन्द्रयाः पुर्याः	इन्द्रकी पुरीसे	लक्षाणि	लाखसे
प्रचलते	चलते हैं	स अधिकानि	कुछ (पचोस हजार)
पञ्चदश	पन्द्रह		आदिके
घटिकाभिः	घड़ीमें	योजनानां च	योजन भी
याम्यां	यमपुरीकी ओर	उपयाति	जाते हैं ॥१०॥
सपाद कोटिद्वयं	सवा दो करोड़		

एवं ततो वारुणीं सौम्यामैन्द्रीं च पुनस्तथान्ये च ग्रहाः
सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्ति सह वा
निम्लोचन्ति ॥११॥

एवं ततः वारुणीं सौम्यां एन्द्रीं च पुनः तथा अन्ये च ग्रहाः सोमादयः
नक्षत्रैः सह ज्योतिः चक्रे सम अभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति ॥११॥

एवं ततः	इसी प्रकार वहांसे	ज्योतिः चक्रे	ज्योतिश्चक्रमें
वारुणीं सौम्यां	वरुणकी, चन्द्रमाकी,	सम अभ्युद्यन्ति	साथ-साथ उदय
च पुनः ऐन्द्रीं	और फिर इन्द्रकी		होते
	पुरी (पहुँचते हैं)	वा सह	अथवा साथ-साथ
सोमादयः ग्रहाः	चन्द्रमा आदि ग्रह	निम्लोचन्ति	अस्त होते हैं ॥११॥
नक्षत्रैः सह	नक्षत्रोंके साथ		

एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षणयोजनान्यष्टशताधिकानि
सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥१२॥

एवं मुहूर्तेन चतुः त्रिंशत् लक्ष योजनानि अष्टशत अधिकानि सौरो
रथः त्रयीमयः असौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु ॥१२॥

एवं	इस प्रकार	अधिकानि	अधिक
असौ	यह	त्रिंशत् लक्ष	तीस लाख
त्रयीमयः	वेदमय	योजनानि	योजन (की गतिसे)
सौरो रथः	सूर्यका रथ	चतसृषु पुरीषु	चारों पुरियोंमें
मुहूर्तेन	एक मुहूर्तमें	परिवर्तते	धूमता रहता
अष्टशत	आठ सौ		है ॥१२॥

यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्णेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं
समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो
यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद् भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ
परिभ्रमति ॥१३॥

यस्य एकं चक्रं द्वादशारं षट् नैमिः त्रिणाभि संवत्सर आत्मकं समाम-
नन्ति तस्य अक्षः मेरोः मूर्धनिकृतः मानसोत्तरे कृतः इतर भागः यत्र प्रोतं
रविरथचक्रं तैलयन्त्र चक्रवत् भ्रमन् मानसोत्तर गिरौ परिभ्रमति ॥१३॥

यस्य	जिसका	रखा है,
एकं चक्रं	एक चक्र	इतर भागः दूसरा भाग (सिरा)
द्वादशारं	बाग्ह (मासरूप)	मानसोत्तरे कृतः मानसोत्तर गिरि-
	अरे,	पर रखा है ।
षट् नेमिः	छः (ऋतु रूप) नेमि	यत्र प्रोतं जिसमें पिरोया
	(हाल)	रविरथचक्रं सूर्यके रथका पहिया
त्रिणाभि	तीन (चौमासे रूप)	तैलयन्त्र कोल्हूके
	नाभि वाला	चक्रवत् पहियेके समान
संवत्सर आत्मकं	संवत्सर स्वरूप	भ्रमन् घूमता हुआ
समामनन्ति	मानते हैं ।	मानसोत्तर मानसोत्तर
तस्य अक्षः	उसकी धुरीका एक	गिरौ पर्वतके
	सिरा	परिभ्रमति चारों ओर घूमता
मेरोः मूर्धं निकृतः	सुमेरुकी चोटीपर	है ॥१३॥

तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन सम्मित-
स्तैलयन्त्राक्षवद् ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥१४॥

तस्मिन् अक्षे कृतमूलः द्वितीयः अक्षः तुर्यमानेन सम्मितः तैलयन्त्र
अक्षवत् ध्रुवे कृत उपरिभागः ॥१४॥

तस्मिन् अक्षे	उस धुरीमें	सम्मितः	बराबर है
कृतमूलः	मूल भाग जुड़ी	तैलयन्त्र	तेलके कोल्हूके
द्वितीयः अक्षः	दूसरी धुरी	अक्षवत्	धुरीके समान
तुर्यमानेन	उससे चौथाई	उपरिभागः	उसका ऊपरी भाग
	परिमाण	ध्रुवे कृत	ध्रुवपर रखा है ॥१४॥

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीय भाग-
विशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तरुण-
योजिता वहन्ति देवमादित्यम् ॥१५॥

रथनीडः तु षट्त्रिंशत् लक्ष योजन आयतः तत् तुरीय भाग विशालः
तावान् रविरथ युगः यत्र हयाः छन्दो नामानः सप्त अरुण योजिता वहन्ति
देवं आदित्यम् ॥१५॥

रथनीडः तु	रथमें बैठनेका स्थान तो	तावान्	उतना ही (छत्तीस लाख योजन)
षट्त्रिंशत् लक्ष योजन	छत्तीस लाख योजन	रविरथ युगः	सूर्य-रथका जूआ है।
आयतः	लम्बा	यत्र	जिसमें
तत् तुरीय भाग	उसका चौथाई (नौ लाख योजन) भाग	छन्दो नामानः	(गायत्री आदि) छन्दोंके नाम वाले
विशालः	विशाल (चौड़ा) है,	सप्त हयाः	सात घोड़े
		अरुण योजिता	(सारथि) अरुण द्वारा जोते
		देवं आदित्यं	सूर्य देवको
		वहन्ति	ढोते हैं ॥१५॥

पुरस्तात्सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि
किलास्ते ॥१६॥

पुरस्तात् सवितुः अरुणः पश्चात् च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किल
आस्ते ॥१६॥

सवितुः पुरस्तात् सूर्यके आगे	नियुक्तः	नियुक्त
पश्चात् च पीछेकी (सूर्यकी)	अरुणः किल	अरुण ही
ओर (मुख किये)	आस्ते	हैं ॥१६॥
सौत्ये कर्मणि सारथिके काममें		

तथा वालखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि
पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥१७॥

तथा वालखिल्या ऋषयः अङ्गुष्ठ पर्व मात्राः षष्टि सहस्राणि पुरतः
सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥१७॥

तथा	इसी प्रकार	मात्राः	बराबर
षष्टि सहस्राणि	साठ हजार	वालखिल्या	वालखिल्य
अङ्गुष्ठ पर्व	अँगुठेके पोर	ऋषयः	ऋषिगण

सूर्य पुरतः	सूर्यके आगे	नियुक्ताः	नियुक्त
सूक्तवाकाय	स्वस्ति वाचनके लिए	संस्तुवन्ति	(उनकी) स्तुति करते रहते हैं ॥१७॥

तथान्ये च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो
यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि
भगवन्तं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नानानामानः पृथक्-
कर्मभिर्द्वन्द्वश उपासते ॥१८॥

तथा अन्ये च ऋषयः गन्धर्वाः अप्सरसः नागाः ग्रामण्यः यातुधानाः
देवाः इति एक एकशः गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं
सूर्य आत्मानं नाना नामानं पृथक् नाना नामानः पृथक् कर्मभिः द्वन्द्वशः
उपासते ॥१८॥

तथा अन्ये च	इसी प्रकार दूसरे भी	नाना नामानं	अनेक नामवाले
ऋषयः गन्धर्वाः ऋषि, गन्धर्व,		भगवन्तं सूर्यं	भगवान् सूर्यकी
नागाः ग्रामण्यः नाग, यक्ष,		आत्मानं पृथक्	अपने भी अलग-अलग
यातु धानाः राक्षस,			
देवाः देवता		नाना नामानः	अनेक नामवाले
इति एक एकशः इस प्रकार प्रत्येक		पृथक् कर्मभिः	अलग-अलग कर्मों द्वारा
सप्त गणाः (जोड़ेसे रहनेसे)		द्वन्द्वशः उपासते	दो-दो मिलकर
सात गण			
चतुर्दश (कुल) चौदह			उपासना करते हैं ॥१८॥
मासि मासि प्रत्येक महीनेमें			

लक्षोत्तरं सार्धं नवकोटियोजनपरिमण्डलं भूत्रलयस्य क्षणेन
सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते ॥१९॥

लक्ष उत्तरं सार्धं नवकोटि योजन परिमण्डलं भूवल्यस्य क्षणेन
सगव्यूति उत्तरं द्विसहस्र योजनानि स भुङ्क्ते ॥१९॥

स	वे (सूर्य भगवान्)	परिमण्डलं	घेरेमें
भूवल्यस्य	भूमण्डलके	सगव्युति उत्तरं	दो ऊपर
लक्ष उत्तरं	एक लाख ऊपर	द्विसहस्र	दो सहस्र
सार्धं नवकोटि	आधा अधिक नौ	योजनानि	योजन
	करोड़ (नौ करोड़	क्षणेन भुङ्क्ते	एकक्षणमें भोगते
	इक्यावन लाख)		(जाते) हैं ॥१६॥
योजन	योजन		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
ज्योतिश्चक्रसूर्यरथमण्डलवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

राजोवाच

यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमिमीमहीति ॥१॥

यद् एतद् भगवतः आदि त्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतः राशीनां अभिमुखं प्रचलितं च प्रदक्षिणं भगवतः उपवर्णितं अमुष्य वयं कथं अनुमिमीमही इति ॥१॥

भगवतः	भगवन्	राशीनां	तथा राशियोंके
उपवर्णितं	आपके द्वारा वर्णित	अभिमुखं	सम्मुख
यद् एतद्	यह जो	प्रचलितं	चलते हुए
भगवतः	भगवान्	च प्रदक्षिणं	भी उनके बराबर
आदि त्यस्य	सूर्यके		दाहिने रहते हैं
मेरुं च ध्रुवं	सुमेर और ध्रुवकी	अमुष्य	इसका
प्रदक्षिणेन	प्रदक्षिणा करते	इति वयं कथं	इस प्रकार हम कैसे
परिक्रामतः	उनके चारों ओर	अनुमिमीमही	अनुमान करें ॥१॥
	घूमते हैं		

श्रीशुक उवाच—*

यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलभ्यमानत्वादेवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'स होवाच' है ।

परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रान्तरे राश्यन्तरे चोपलभ्यमानत्वात् ॥२॥

यथा कुलाल चक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तत् आश्रयाणां पिपीलिका आदीनां गतिः अन्य एव प्रदेश अन्तरेषु अपि उपलभ्य मानत्वात् एवं नक्षत्र राशिभिः उपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणेन परिधावता सह परिधावमानानां तत् आश्रयाणां सूर्य आदीनां ग्रहाणां गतिः अन्य एव नक्षत्र अन्तरे राशि अन्तरे च उपलभ्यमान त्वात् ॥२॥

यथा कुलाल	जैसे कुम्हारके	ध्रुवं च मेरुं	ध्रुव और सुमेरुकी
चक्रेण	चाकके	प्रदक्षिणेन	प्रदक्षिणा करते
भ्रमता सह	घूमते समय उसके साथ	परिधावता	दौड़ते हुएके
भ्रमतां	घूमते	सह	साथ
तत् आश्रयणां	उसीपर स्थित	परिधावमानानां	दौड़नेवाले
पिपीलिका	चींटी	तत् आश्रयाणां	उसी (काल-चक्र) में स्थित रहनेवाले
आदीनां	आदि जीवोंकी	सूर्य आदीनां	सूर्य आदि
गतिः	चाल	ग्रहाणां	ग्रहोंकी
अन्य एव	दूसरे ही	गतिः अन्य एव	गति दूसरे ही
प्रदेश अन्तरेषु	भिन्न स्थानसे	नक्षत्र अन्तरे	नक्षत्रोंमें
उप लभ्यमान	जान	च राशि अन्तरे	तथा भिन्न
त्वात्	पड़ती है		राशियोंमें
एव नक्षत्र	ऐसे ही नक्षत्र तथा	उपलभ्य	उपलब्ध
राशिभिः	राशियों द्वारा	मानत्वात्	होनेके कारण
उपलक्षितेन	पहिचाने जानेवाले		(इसका अनुमान
कालचक्रेण	काल-चक्रके		होता है) ॥२॥

स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तिं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिष्वृतुषु यथोपजोषमृतुगुणान् विदधाति ॥३॥

स एष भगवान् आदिपुरुषः एव साक्षात् नारायणः लोकानां स्वस्त्य
आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धि निमित्तं कविभिः अपि च वेदेन विजिज्ञास्य
मानः द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्त आदिषु ऋतुषु यथा उपजोषं ऋतुगुणान्
विदधाति ॥३॥

स एष वह ये
आदिपुरुषः आदि-पुरुष
साक्षात् साक्षात्
भगवान् भगवान्
नारायणः एव नारायण ही
लोकानां लोकोंके
स्वस्त्य कल्याणके लिए
कर्मविशुद्धि कर्मोंकी सम्पूर्ण
शुद्धिके
निमित्तं निमित्त
त्रयीमयं वेदमय (क्योंकि)
कविभिः अपि विद्वानों द्वारा भी

वेदेन वेदके द्वारा
विजिज्ञास्यमानः उनको जाननेकी
इच्छा की जाती है
आत्मानं अपनेको
द्वादशधा बारह रूपोंमें
विभज्य बाँटकर
षट्सु छहों
वसन्त आदिषु वसन्त आदि
ऋतुषु ऋतुओंमें
यथा उपजोषं उनके योग्य
ऋतुगुणान् ऋतुओंके गुणोंका
विदधाति विधान करते हैं ॥३॥

तमेतमिह पुरुषास्त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा
उच्चावचैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजन्तोऽञ्जसा
श्रेयः समधिगच्छन्ति ॥४॥

तं एतं इह पुरुषाः त्रय्या विद्यया वर्ण आश्रम आचार अनुपथाः
उच्च अवचैः कर्मभिः आम्नातैः योगवितानैः च श्रद्धया यजन्तः अञ्जसा
श्रेयः सम अधिगच्छन्ति ॥४॥

इह इस (भारतवर्ष) में
वर्ण आश्रम वर्ण आश्रमके
आचार आचार
अनुपथाः मार्गसे चलनेवाले
पुरुषाः मनुष्य

तं एतं उन इन (सूर्य
भगवान्) की
त्रय्या विद्यया वेदत्रयी द्वारा
प्रतिपादित
उच्च अवचैः बड़े-छोटे

कर्मभिः	कर्मोंसे,	अञ्जसा	सरलतासे
✓आम्नातेः	✓वेद विहित	श्रेयः	परम कल्याण
योगवितानैः च	योगके साधनोंसे भी	सम	भली
श्रद्धया यजन्तः	श्रद्धापूर्वक पूजन करते हुए	अधिगच्छन्ति	प्रकार पा लेते हैं ॥४॥

अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादश मासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान् संवत्सरावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमुपदिशन्ति यावता षष्ठमंशं भुञ्जीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥५॥

अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावा पृथिव्योः अन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्र गतः द्वादश मासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान् संवत्सर अवयवान् मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं च इति सपाद् अर्क्ष द्वयं उपदिशन्ति यावता षष्ठं अंशं भुञ्जीत स वै ऋतुः इति उपदिश्यते संवत्सर अवयवः ॥५॥

अथ स एष	अतः वे यही (सूर्य भगवान्)	भुङ्क्ते	भोगते हैं,
लोकानां आत्मा	सम्पूर्ण लोकोंके आत्मा हैं ।	मासः पक्षद्वयं	(इनमें-से प्रत्येक) महीना दो पक्षका होता है ।
द्यावा पृथिव्योः	द्युलोक ओर पृथ्वीके	दिवा च नक्तं	(पितृ मानसे) दिन और रात
अन्तरेण	मध्यमें	इति	इस प्रकार,
नभोवलयस्य	आकाश-मण्डलके	सपाद् अर्क्ष द्वयं	(सौरमानसे) सवा दो नक्षत्रका
कालचक्र गतः	कालचक्रमें स्थित होकर	उपदिशन्ति	बतलाया जाता है,
संवत्सर	संवत्सरके	यावता	जब तक
अवयवान्	अंगरूप	संवत्सर	संवत्सरके
राशिसंज्ञान्	राशि कहे जानेवाले	अवयवः	अंगका
द्वादश मासान्	बारह महीनोंको	षष्ठं अंशं	छठवां भाग

भुञ्जीत	(सूर्य) भोगते हैं,	उपदिश्यते	कहा जाता
स वै	वही		है ॥५॥
ऋतुः इति	ऋतु इस प्रकार		

अथ च यावतार्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमयन-
माचक्षते ॥६॥

अथ च यावत् अर्धेन नभः वीथ्यां प्रचरति तं कालं अयनं
आ चक्षते ॥६॥

अथ च	ऐसे ही	प्रचरति	चलते हैं,
यावत्	जब तक	तं कालं	उतने समयको
नभः वीथ्यां	आकाश-मार्गका	अयनं	अयन
अर्धेन	आधा भाग	आचक्षते	कहते हैं ॥६॥

अथ च यावन्नभोमण्डलं सह द्यावापृथिव्योर्मण्डलाभ्यां
कात्स्न्येन स ह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सर-
मनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर्मन्दिशैघ्रचसमगतिभिः समा-
मनन्ति ॥७॥

अथ च यावत् नभोमण्डलं सह द्यावा पृथिव्योः मण्डलाभ्यां कात्स्न्येन
स ह भुञ्जीत तं कालं संवत्सरं परिवत्सरं इडावत्सरं वत्सरं वत्सरं इति भानो
मान्द्य शैघ्रच सम गतिभिः समामनन्ति ॥७॥

अथ च	इस प्रकार ही	मण्डलाभ्यां	मण्डलोंके
भानोः	सूर्य देव (अपनी)	सह	सहित
मान्द्य शैघ्रच	मन्द, तीव्र,	कात्स्न्येन	सम्पूर्ण
सम	सम	नभोमण्डलं	आकाश-मण्डलका
गतिभिः	गतिसे	स ह	वे (सूर्य) तो
यावत्	जब तक	भुञ्जीत	भोग करते (चक्कर
द्यावा पृथिव्योः	दु लोक, पृथ्वी		लगा जाते) हैं

तं कालं	उतने समयको	इडावत्सरं	इडावत्सर,
संवत्सरं	(भावान्तर भेदसे)	अनुवत्सरं	अनुवत्सर,
	संवत्सर,	वत्सरं इति	वत्सर इस प्रकार
परिवत्सरं	परिवत्सर,	समामनन्ति	कहा जाता है ॥७॥

एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्ठात्लक्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्ति पक्षाभ्यां मासभुक्ति सपादक्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुङ्क्ते ॥८॥

एवं चन्द्रमा अर्क गभस्तिभ्यः उपरिष्ठात् लक्षयोजनतः उपलभ्यमानः अर्कस्य संवत्सरभुक्ति पक्षाभ्यां मासभुक्ति सपाद् अक्षाभ्यां दिनेन एव पक्षभुक्ति अग्रचारी द्रुततरगमनः भुङ्क्ते ॥८॥

एवं	इसीप्रकार	पक्षाभ्यां	दोनों पक्षों (एक
अर्क गभस्तिभ्यः	सूर्यकी किरणोंसे		महीने) में,
लक्षयोजनतः	एक लाख योजन	मासभुक्ति	एक महीनेके
उपरिष्ठात्	ऊपर		मार्गको
उपलभ्यमानः	मिलनेवाला	सपाद्	सवा दो
चन्द्रमा	चन्द्रमा	अक्षाभ्यां	दिनमें,
द्रुततरगमनः	बहुत तीव्र गतिसे	पक्षभुक्ति	एक पक्षके मार्गको
	चलनेवाला	दिनेन एव	एक दिनमें ही
अग्रचारी	सब (ग्रह-नक्षत्रों)से	भुङ्क्ते	भोग लेता (पार
	आगे रहनेवाला		कर लेता) है ॥८॥
अर्कस्य	सूर्यके		
संवत्सरभुक्ति	एक वर्षके भोग		
	(मार्ग) को		

अथ चापूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च कलाभिः पितृणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्चैकमेकं नक्षात्रं त्रिशता मुहूर्तैर्भुङ्क्ते ॥९॥

अथ च आपूर्य माणाभिः च कलाभिः अमराणां क्षीयमाणाभिः च कलाभिः पितृणां अहः रात्राणि पूर्व पक्ष अपर पक्षाभ्यां वितन्वानः सर्व-जीवनिवह प्राणः जीवः च एकं एकं नक्षत्रं त्रिशता भुहूर्तैः मुङ्क्ते ॥६॥

अथ च	यह तो	अमराणां	देवताओंका
पूर्व पक्ष	पहिले कृष्णपक्षमें	अहः रात्राणि	दिन-रात
क्षीयमाणाभिः	घटती हुई	वितन्वानः	विभाग करता है ।
कलाभिः च	कलाओंके द्वारा ही	सर्वजीवनिवहः	सम्पूर्ण प्राणि
पितृणां	पितरोंके		समूहका
च अपर	और दूसरे	प्राणः जीवः च	प्राण और जीवन है।
पक्षाभ्यां	(शुक्लपक्षमें)	एकं एकं नक्षत्रं	एक-एक नक्षत्रको
आपूर्य माणाभिः	बढ़ती हुई	त्रिशता भुहूर्तैः	तीस मुहूर्तमें
कलाभिः	कलाओंसे	मुङ्क्ते	पार करता है ॥६॥

य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान्मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाप्यायनशीलत्वात्सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥१०॥

य एष षोडशकलः पुरुषः भगवान् मनोमयः अन्नमयः अमृतमयः देव पितृ मनुष्य भूत पशु पक्षि सरीसृप वीरुधां प्राण आप्यायन शीलत्वात् सर्व-मय इति वर्णयन्ति ॥१०॥

य एष	यह जो	भूत पशु पक्षि	भूत, पशु, पक्षी,
षोडशकलः	सोलह कलाओंवाले	सरीसृप वीरुधां	सरीसृप तथा पौधोंके
मनोमयः	मनोमय,	प्राण आप्यायन	प्राणोंको परितृप्त
अन्नमयः	अन्नमय,		करनेवाले
अमृतमयः	अमृतमय	शीलत्वात्	स्वभावके होनेसे
पुरुषः भगवान्	पुरुष भगवान्		(इन्हें)
	(चन्द्र) हैं	सर्वमय इति	सर्वमय-इस प्रकार
देव पितृ	देवता, पितर,	वर्णयन्ति	वर्णन करते हैं ॥१०॥
मनुष्य,	मनुष्य,		

तत उपरिष्ठात्त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव
कालायन ईश्वरयोजितानि सह अभिजिताष्टाविंशतिः ॥११॥

ततः उपरिष्ठात् त्रिलक्षयोजनतः नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेन एव काल
अयन ईश्वर योजितानि सह अभिजित् अष्ट आविंशतिः ॥११॥

ततः	उन (चन्द्र) से	योजितानि	लगाये
त्रिलक्षयोजनतः	तीन लाख योजन	✓ काल अयन	✓ कालचक्रमें
उपरिष्ठात्	ऊपर	मेरुं	सुमेरुको
सह अभिजित्	अभिजित्के साथ	दक्षिणेन एव	दाहिनी ओर
अष्ट आविंशतिः	अट्ठाइस		रखकर ही (घूमते हैं) ॥११॥
नक्षत्राणि	नक्षत्र		
ईश्वर	परमेश्वरके		

तत उपरिष्ठादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः
पश्चात्सहैव वार्कस्य शैघ्रचमान्द्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति
लोकानां नित्यदानुकूल एव प्रायेण वर्षयंश्चारेणानुमीयते स
वृष्टिवृष्टम्भग्रहोपशमनः ॥१२॥

ततः उपरिष्ठात् उशना द्विलक्ष योजनतः उपलभ्यते पुरतः पश्चात्
सह एव वार्कस्य शैघ्रच मान्द्य साम्याभिः गतिभिः अर्कवत् चरति लोकानां
नित्यदा अनुकूल एव प्रायेण वर्षयत् चारेण अनुमीयते स वृष्टि वृष्टम्भ ग्रह
उपशमनः ॥१२॥

ततः द्विलक्ष	उससे दो लाख	अर्कस्य	सूर्यकी
योजनतः	योजन	शैघ्रच मान्द्य	शोघ्र, मन्द,
उपरिष्ठात्	ऊपर	साम्याभिः	समान
उशना	शुक्र पाया	गतिभिः	गतिसे
उपलभ्यते	जाता है,	अर्कवत्	सूर्यके समान

सह एव	(उनके)	नित्यदा	सदा ही
	साथ ही	अनुकूल	अनुकूल ही
पुरतः पश्चात्	आगे, पीछे,	अनुमीयते	अनुमान किया
व एव	या साथ ही		जाता है ।
चरति	चलता है ।	वृष्टि विष्टम्भ	वर्षा रोकनेवाले
प्रायेण वर्षयत्	प्रायः वर्षा करते	ग्रह उपशमनः	ग्रहोंको शान्त
चारेण	चलनेके कारण		करनेवाला
लोकानां	लोगोंके	स	वह है ॥१२॥

उशनसा बुधो व्याख्यातस्तत उपरिष्ठाद् द्विलक्षयोजनतो
बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृच्छदाकांद् व्यतिरिच्येत
तदातिवाताभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ॥१३॥

उशनसा बुधः व्याख्यातः ततः उपरिष्ठात् द्विलक्ष योजनतः बुधः
सोमसुतः उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृत् यदा अर्कात् व्यतिरिच्येत तदा
अतिवात अभ्रप्राय अनावृष्टि आदि भयं आशंसते ॥१३॥

उशनसा	शुक्र (की गति)	उपलभ्यमानः	मिलते हैं,
	द्वारा	प्रायेण शुभकृत्	प्रायः शुभ करने-
बुधः	बुध (की गति) की		वाले हैं ।
व्याख्यातः	व्याख्या हो गयी ।	यदा अर्कात्	जब सूर्यसे
ततः	उस	व्यतिरिच्येत	पृथक पड़ते हैं
द्विलक्ष योजनतः	(शुक्र) से दो लाख	तदा अतिवात	तब आंधी,
	योजन	अभ्रप्राय	मेघहीनताप्राय
उपरिष्ठात्	ऊपर	अनावृष्टि	अनावृष्टि
सोमसुतः	चन्द्रमाके पुत्र	आदि भयं	आदि भय
बुधः	बुध	आशंसते	सूचित करते हैं ॥१॥

अत ऊर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्य-
मानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन्द्वादशानुभुङ्क्ते यदि न
वक्राणाभिवर्तन्ते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥१४॥

अत ऊर्ध्वं अङ्गारकः अपि योजन लक्ष द्वितय उपलभ्यमानः त्रिभिः
त्रिभिः पक्षैः एक एकशः राशीन् द्वादश अनुभुङ्क्ते यदि न वक्रेण अभि-
वर्तते प्रायेण अशुभ ग्रहः अधशंसः ॥१४॥

अत इस (बुध) से
लक्ष द्वितय दो लाख
योजन योजन
ऊर्ध्व ऊपर
'अङ्गारकः अपि मंगल भी
उपलभ्यमानः मिलता है,
त्रिभिः त्रिभिः तीन तीन
पक्षैः पक्षोंमें
एक एकशः एक-एक करके

द्वादश राशीन् बारहो राशियोंको
अनुभुङ्क्ते पार करता है।
यदि वक्रेण यदि वक्री होकर
न अभिवर्तते नहीं चलता तो
प्रायेण प्रायः
अशुभ ग्रहः अशुभ ग्रह है,
अधशंसः अमङ्गल सूचक
है ॥१४॥

तत उपरिष्ठाद् द्विलक्षयोजनान्तरगतो भगवान्
बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं परिवत्सरं चरति यदि न
वक्रः स्यात्प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥१५॥

ततः उपरिष्ठात् द्विलक्ष योजन अन्तरगतः भगवान् बृहस्पतिः एक
एकस्मिन् राशौ परिवत्सरं परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात् प्रायेण
अनुकूलः ब्राह्मणकुलस्य ॥१५॥

ततः द्विलक्ष उस (मंगल) से दो
लाख
योजन योजन
अन्तरगतः दूरीपर
उपरिष्ठात् ऊपर
भगवान् भगवान्

बृहस्पतिः बृहस्पति
एक एकस्मिन् एक-एक
राशौ राशिमें
यदि न वक्रः यदि वक्री न
स्यात् हों
परिवत्सरं एक-एक

परिवत्सरं	वर्ष*	ब्राह्मणकुलस्य	ब्राह्मण-कुलके
चरति	चलते हैं ।	अनुकूलः	अनुकूल रहते
प्रायेण	प्रायः		हैं ॥१५॥

तत उपरिष्ठाद्योजनलक्षद्वयात्प्रतीयमानः शनैश्चर
एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान् विलम्बमानः सर्वानुपयैति
तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः ॥१६॥

ततः उपरिष्ठात् योजन लक्षद्वयात् प्रतीयमानः शनैश्चर एक एक-
स्मिन् राशौ त्रिंशत् मासान् विलम्बमानः सर्वान् एव अनुपयैति तावत्भिः
अनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषां अशान्तिकरः ॥१६॥

ततः उपरिष्ठात्	उस (बृहस्पति) से	विलम्बमानः	रुक्ता हुआ
	ऊपर	तावत्भिः	उतने ही (तीस)
लक्षद्वयात्	दो लाख	अनुवत्सरैः	वर्षोंमें
योजन	योजनपर	सर्वान् एव	सभी (राशियों) पर
प्रतीयमानः	प्रतीत होता	अनुपयैति	घूम आता है,
शनैश्चर	शनैश्चर	प्रायेण हि	प्रायः ही (यह)
एक एकस्मिन्	एक-एक	सर्वेषां	सबके लिए
राशौ	राशिपर	अशान्तिकरः	अशान्ति कारक
त्रिंशत् मासान्	तीस-तीस महीने		है ॥१६॥

तत उत्तरस्मादृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलभ्यन्ते
य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत्परमं पदं
प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥१७॥

ततः उत्तरस्मात् ऋषयः एकादश लक्ष योजन अन्तर उपलभ्यन्ते य
एव लोकानां शं अनुभावयन्तः भगवतः विष्णोः यत् परमं पदं प्रदक्षिणं
प्रक्रमन्ति ॥१७॥

* बृहस्पतिके एक वर्षको परिवत्सर कहते हैं ।

ततः उत्तरस्मात् उस (शनिश्चर) के ऊपर	अनुभावयन्तः	कामना करते हुए
एकादश लक्ष	यत् भगवतः	जो भगवान्
ग्यारह लाख	विष्णोः	विष्णुका
योजन अन्तर	परमं पदं	परम-पद (ध्रुव-लोक) है
योजनकी दूरीपर	प्रदक्षिणं	(उसकी)
ऋषयः सप्तर्षि	प्रक्रमन्ति	प्रदक्षिणा करते
मिलते हैं,		रहते हैं ॥१७॥
उपलभ्यन्ते		
य एव लोकानां जो सभी लोकोंकी		
शं शान्ति		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
ज्योतिश्चक्रवर्णने द्वाविंशोऽध्यायः ॥७१॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो यत्तद्विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादि-रग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥१॥

अथ तस्मात् परतः त्रयोदशलक्ष योजन अन्तरतः यत् तत् विष्णोः परमं पदं अभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतः ध्रुवः औत्तानपादिः अग्निना इन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीं अपि कल्पजीविनां आजीव्य उपास्ते तस्य इह अनुभावः उपवर्णितः ॥१॥

अथ तस्मात् फिर उन (सप्त-
षियों) से
त्रयोदशलक्ष तेरह लाख
योजन अन्तरतः योजनकी दूरीपर
यत् विष्णोः जो भगवान्
 विष्णुका
परमं पदं परम-पद
अभिवदन्ति कहा जाता है
यत्र ह वहाँ तो
महाभागवतः परम-भगवद्-भक्त
औत्तानपादिः उत्तानपादके पुत्र
ध्रुवः ध्रुव (रहते हैं)

तत् उनकी
अग्निना इन्द्रेण अग्नि, इन्द्र,
प्रजापतिना प्रजापति
कश्यपेन कश्यप
च धर्मेण तथा धर्म द्वारा
समकालयुग्भिः एक ही समय एक
 साथ
सबहुमानं बहुत आदर सहित
दक्षिणतः प्रदक्षिणा की
क्रियमाण जाती है।
इदानीं अपि अब भी

कल्पजीविनां	कल्प पर्यन्त जीवन वालोंके	तस्य इह अनुभावः	उनके इस लोकका प्रभाव
आजीव्य	आधार रूपसे	उपवर्णितः	(चतुर्थ स्कन्धमें)
उपास्ते	उपासित होते हैं ।		वर्णन कर चुके हैं । ११

स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणा-
व्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ-
ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ॥२॥

स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्र आदीनां अनिमिषेण अव्यक्तरं-
हसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुः इव अवष्टम्भः ईश्वरेण विहितः
शश्वत् अवभासते ॥२॥

अनिमिषेण	सदा जागनेवाले	ईश्वरेण विहितः	परमात्माके
अव्यक्तरंहसा	अव्यक्त गति		विधानसे बना
भगवता	भगवान्	स्थाणु इव	ठूठके समान
कालेन	कालके द्वारा	अवष्टम्भः	रोकनेवाला
भ्राम्यमाणानां	घुमाये जाते हुए		आधार है,
सर्वेषां	सभी	शश्वत्	(अतः) सदा (एक
ग्रहनक्षत्र	ग्रह, नक्षत्र		स्थानपर रहकर)
आदीनां	आदि	अवभासते	प्रकाशित होता
ज्योतिर्गणानां	ज्योतिर्गणोंका		है ॥२॥
हि स	क्योंकि वही (ध्रुवलोक)		

यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः
सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्त्येवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्न-
न्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायु-
नोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति नभसि यथा मेघाः
श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः

प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति ॥३॥

यथा मेढी स्तम्भ आक्रमण पशवः संयोजिताः त्रिभिः त्रिभिः सवनैः यथा स्थानं मण्डलानि चरन्ति एवं भगणा ग्रहादयः एतस्मिन् अन्तः बहिः योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवं एव अवलम्ब्य वायुना उदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति, नभसि यथा मेघाः श्येन आदयः वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृति पुरुष संयोग अनुगृहीताः कर्मनिर्मित गतयः भुवि न पतन्ति ॥३॥

यथा मेढी जैसे दाँवके बीचके
स्तम्भ खम्भेके
आक्रमण पशवः चारों ओर घूमने-
वाले पशु
त्रिभिः त्रिभिः तीन-तीन
सवनैः रस्सियोंसे
संयोजिताः बँधे हुए
यथा स्थानं अपने स्थानके
अनुसार
मण्डलानि घेरेमें
चरन्ति चलते हैं
एवं भगणा इसी प्रकार नक्षत्र
और
ग्रहादयः ग्रह आदि
अन्तः बहिः भीतर बाहरके
योगेन क्रमसे
कालचक्र कालचक्रमें
आयोजिताः नियुक्त होकर
ध्रुवं एव ध्रुव-लोकका ही
अवलम्ब्य सहारा लेकर
वायुना वायुसे

उदीर्यमाणाः प्रेरित होकर
आकल्पान्तं कल्पान्त पर्यन्त
परिचङ्क्रमन्ति परिक्रमा
करते रहते हैं ।
यथा मेघाः जैसे मेघ (और)
श्येन आदयः बाज आदि (पक्षी)
वायुवशाः वायुके वशमें रहते,
कर्मसारथयः अपने कर्मके द्वारा
संचालित
परिवर्तन्ते घूमते रहते हैं,
एवं इसी प्रकार
प्रकृति पुरुष प्रकृति-पुरुषके
संयोग संयोगसे
अनुगृहीताः उत्पन्न
ज्योतिर्गणाः ज्योतिर्गण
कर्मनिर्मित कर्मसे बनायी
गतयः गतिवाले
भुवि न पतन्ति पृथ्वीपर नहीं
गिरते ॥३॥

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासु-
देवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति ॥४॥

केचन एतत् ज्योतिः अनीकं शिशुमार संस्थानेन भगवतः वासुदेवस्य
योगधारणायां अनुवर्णयन्ति ॥४॥

केचन	कोई लोग	भगवतः	भगवान्
एतत्	इस	वासुदेवस्य	वासुदेवकी
ज्योतिः अनीकं	ज्योतिः-चक्रका	योगधारणायां	योग धारणाके
शिशुमार	✓ घड़ियालके		अनुसार [■]
संस्थानेन	रूपमें	अनुवर्णयन्ति	वर्णन करते हैं ॥४॥

यस्य पुच्छाग्रेऽवाकशिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उप-
कल्पितस्तस्य लाङ्गूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति पुच्छमूले
धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयः । तस्य दक्षिणावर्तकुण्डलीभूत-
शरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति
दक्षिणायनानि तु सव्ये । यथा शिशुमारस्य कुण्डलाभोगसन्नि-
वेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसंख्या भवन्ति । पृष्ठे
त्वजवीथी आकाशगङ्गा चोदरतः ॥५॥

यस्य पुच्छ अग्रे अवाक शिरसः कुण्डलीभूत देहस्य ध्रुव उपकल्पितः
तस्य लाङ्गूल प्रजापतिः अग्निः इन्द्रः धर्म इति पुच्छमूले धाता
विधाता च कट्यां सप्तर्षयः तस्य दक्षिणावर्त कुण्डलीभूत शरीरस्य
यानि उदगयनानि दक्षिण पार्श्वे तु नक्षत्राणि उपकल्पयन्ति दक्षिणायनानि
तु सव्ये यथा शिशुमारस्य कुण्डल आभोग सन्निवेशस्य पार्श्वयोः उभयोः
अपि अवयवाः समसंख्या भवन्ति पृष्ठे तु अजवीथी आकाशगङ्गा च
उदरतः ॥५॥

■ शिशुमार रूपमें यह ज्योतिः-चक्र आकाशमें न स्थित है और न
रहता है; क्योंकि ग्रह एक स्थानपर नहीं रहते । कभी-कभी दो या अधिक
आठ ग्रह तक एकत्र हो जाते हैं । यह वर्णन धारणा (भावना) द्वारा योग
(ध्यान) के सहायक रूपमें करनेके लिए है ।

अवाक शिरसः नीचे सिर किये
 यस्य जिसके
 कुण्डलीभूत कुण्डली मारे
 देहस्य शरीरके
 पुच्छ अग्रे पूंछकी नोकपर
 ध्रुव ध्रुवकी
 उपकल्पितः कल्पना की गयी है ।
 तस्य लाङ्गूले उसकी पूंछपर
 प्रजापतिः प्रजापति,
 अग्निः अग्नि,
 इन्द्रः धर्म इति इन्द्र और धर्म इसी
 क्रमसे है ।
 पुच्छमूले पूंछकी जड़के पास
 धाता विधाता धाता, विधाता
 च कट्यां तथा कमरपर
 सप्तर्षयः सप्तर्षि हैं ।
 तस्य दक्षिणावर्त उसके दाहिनी ओर
 कुण्डलीभूत कुण्डली बने
 शरीरस्य शरीरपर
 यानि जो (अभिजितसे
 पुनर्वसु तकके)
 उदगयनानि उत्तरायणके
 (चौदह)

नक्षत्राणि नक्षत्रोंको
 दक्षिण पार्श्वे तु दाहिने बगलमें ही
 दक्षिणायनानि दक्षिणायनके
 तु (पुण्यसे उत्तरा-
 षाढ़ाके चौदह
 नक्षत्रोंको) तो
 सव्ये वायें (पार्श्वमें)
 उपकल्पयन्ति कल्पित करते हैं ।
 यथा जैसे
 कुण्डल आभोग कुण्डली मारे
 सन्निवेशस्य पड़े हुए
 शिशुमारस्य घड़ियालके
 उभयोः दोनों
 पार्श्वयोः बगलोंमें
 समसंख्या बराबर संख्याके
 अवयवाः अंग
 भवन्ति होते हैं ।
 पृष्ठे तु पीठपर तो
 अजवीथी अजवीथी
 च उदरतः और पेटपर
 आकाशगङ्गा आकाशगङ्गा है ॥५॥

पुनर्वसुपुण्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योराद्राश्लेषे च दक्षिण-
 वामयोः पश्चिमयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्ना-
 सिकयोर्यथासंख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोवनयोर्धनिष्ठा
 मूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोर्मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणाय-
 नानि वामपार्श्ववङ्क्रिषु युञ्जीत तथैव मृगशीर्षादीन्युदगय-

नानि दक्षिणपार्श्ववङ्क्लिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत शतभिषाज्येष्ठे
स्कन्धयोर्दक्षिणवामयोन्यसेत् ॥६॥

पुनर्वसु पुष्यौ दक्षिण वामयोः श्रोण्योः आर्द्रा अश्लेषे च दक्षिण
वामयोः पश्चिमयोः पादयोः अभिजित् उत्तराषाढे दक्षिण वामयोः नासि-
कयोः यथा संख्यं श्रवण पूर्वाषाढे दक्षिण वामयोः लोचनयोः धनिष्ठा मूलं
च दक्षिण वामयोः कर्णयोः मघा आदीनि अष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि
वाम पार्श्ववङ्क्लिषु युञ्जीत तथा एव मृगशीर्ष आदीनि उदगयनानि दक्षिण
पार्श्ववङ्क्लिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत शतभिषा ज्येष्ठे स्कन्धयोः दक्षिण
वामयोः न्यसेत् ॥६॥

यथा संख्यं क्रमशः
पुनर्वसु पुष्यौ पुनर्वसु, पुष्य
दक्षिण वामयोः दाहिने, बायें
श्रोण्योः नितम्ब भागपर
आर्द्रा अश्लेषे आर्द्रा, अश्लेषा
दक्षिण वामयोः दाहिने, बायें
पश्चिमयोः पिछले
पादयोः पैरोंपर,
अभिजित् अभिजित्
उत्तराषाढे उत्तराषाढा
दक्षिण वामयोः दाहिनी, बायीं
नासिकयोः नासिका (छिद्र)
पर,
श्रवण पूर्वाषाढे श्रवण पूर्वाषाढा
दक्षिण वामयोः दाहिने, बायें
लोचनयोः नेत्रोंपर,
धनिष्ठा मूलं च धनिष्ठा और मूल
दक्षिण वामयोः दाहिने, बायें
कर्णयोः कानोंपर,

मघा आदीनि मघा आदि
दक्षिणायनानि दक्षिणायनके
अष्ट नक्षत्राणि आठ नक्षत्रोंको
वाम बायीं
पार्श्ववङ्क्लिषु ओरकी पसलियोंपर
युञ्जीत उपयोग करे,
तथा एव इसी प्रकार
मृगशीर्ष मृगशीर्ष
आदीनि आदि
उदगयनानि उत्तरायणके
(आठ नक्षत्रोंको)
प्रातिलोम्येन विपरीत क्रमसे
दक्षिण दाहिनी
पार्श्ववङ्क्लिषु ओरकी पसलियोंपर
प्रयुञ्जीत प्रयुक्त करे,
शतभिषा ज्येष्ठे शतभिषा, ज्येष्ठा
दक्षिण वामयोः दाहिने, बायें
स्कन्धयोः कन्धोंपर
न्यसेत् रखे ॥६॥

उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमो मुखेषु चाङ्गारकः
 शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो
 मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो
 राहुर्गले केतवः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥७॥

उत्तराहनाः अगस्तिः अधराहनौ यमः मुखेषु च अङ्गारकः
 शनैश्चरः उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षसि आदित्यः हृदये नारायणः मनसि
 चन्द्रः नाभ्यां उशना स्तनयोः अश्विनौ बुधः प्राण अपानयोः राहुः गले
 केतवः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥७॥

✓ उत्तराहनाः	ऊपरकी शूथनीमें	मनसि	मनमें
अगस्तिः	अगस्त्य,	चन्द्रः	चन्द्रमा,
अधराहनौ	नीचेकी ठोड़ीमें (नक्षत्र रूप) यम,	नाभ्यां	नाभिमें
मुखेषु च	मुखपर तो	उशना	शुक्र,
अङ्गारकः	मंगल,	स्तनयोः	स्तनोंपर
उपस्थे	मूत्रेन्द्रियपर	अश्विनौ	दानों अश्विनी
शनैश्चरः	शनैश्चर,	प्राण अपानयोः	प्राण अपानमें
ककुदि	ककुदपर	बुधः	बुध,
बृहस्पतिः	बृहस्पति,	गले राहुः	गलेमें राहु,
वक्षसि	वक्षस्थलपर	सर्वाङ्गेषु	सब अंगोंमें
आदित्यः	सूर्य	केतवः	केतु समूह,
हृदये	हृदयमें	रोमसु	रोमोंमें
नारायणः	नारायण,	सर्वे तारागणाः	सब तारागण हैं ॥७

एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः
 सन्ध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत नमो
 ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधी-
 महीति ॥८॥

एतत् उ ह एव भगवतः विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपं अहरहः सन्ध्यायां प्रयतः वाक्यतः निरीक्षमाणः उपतिष्ठेत नमः ज्योतिः लोकाय काल अयनाय अनिमिषां पतये महापुरुषाय अभिधीमहि इति ॥८॥

उ ह एव	निश्चय ही यह	उपतिष्ठेत	उपासना
भगवतः विष्णोः	भगवान् विष्णुका		करें
सर्वदेवतामयं	सर्वदेवमय	ज्योतिः लोकाय	ज्योतिर्गणोंके
रूपं	रूप है ।		प्रकाशक,
एतत्	इसको	काल अयनाय	कालचक्र स्वरूप,
अहरहः	प्रतिदिन	अनिमिषां पतये	सर्वदेवाधिपति,
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय	महापुरुषाय	परम पुरुषको
प्रयतः	एकाग्रता पूर्वक	नमः	नमस्कार पूर्वक
वाक्यतः	मौन होकर	अभिधीमहि	(हम) ध्यान करते
निरीक्षमाणः	देखते हुए		हैं ॥८॥
इति	इस प्रकार		

ग्रहक्षितारामयमाधिदैविकं

पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ।

नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं

नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥९॥

ग्रह अर्क्ष तारामयं आधिदैविकं पाप अपहं मन्त्रकृतां त्रिकालं नमस्यतः स्मरतः वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजं आशु पापम् ॥९॥

ग्रह अर्क्ष	ग्रह, नक्षत्र	नमस्यतः	नमस्कार करनेवाले
तारामयं	तारामय	वा	अथवा
आधिदैविकं	आधिदैविक	त्रिकालं	तीनों समय
पाप अपहं	पाप-नाशक (यह रूप)	स्मरतः	स्मरण करनेवालेका
		तत् कालजं	उस समय किया
त्रिकालं	तीनों समय (प्रातः, दोपहर, शाम) को	पापं	पाप
		आशु	तुरन्त
मन्त्रकृतां	मन्त्र जप करते	नश्येत	नष्ट हो जाता है ॥९॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अधस्तात्सवितुर्योजनायुते स्वभानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके
योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चालभत भगवदनुकम्पया स्वयमसुरापसदः
सैहिकेयो ह्यतदर्हस्तस्य तात जन्म कर्माणि चोपरिष्ठाद्वक्ष्यामः॥१॥

अधस्तात् सवितुः योजन अयुते स्वभानुः नक्षत्रवत् चरति इति एके
यः असौ अमरत्वं ग्रहत्वं च अलभत भगवत् अनुकम्पया स्वयं असुर अपसदः
सैहिकेयः हि अतदर्हः तस्य तात जन्म कर्माणि च उपरिष्ठात् वक्ष्यामः ॥१॥

सवितुः	सूर्यसे	अलभत	प्राप्त किया है ।
योजन अयुते	दस हजार योजन	हि स्वयं	क्योंकि स्वयं (तो)
अधस्तात्	नीचे	सैहिकेयः	(यह) सिंहिका
स्वभानुः	राहु		का पुत्र
नक्षत्रवत्	नक्षत्रोंके समान	असुर अपसदः	असुरार्धम
चरति	घूमता है	अतदर्हः	इसके योग्य नहीं
इति एके	इस प्रकार कोई		था ।
	(कहते हैं)	तात	तात (परोक्षित) !
यः असौ	जिस इस (राहु) ने	तस्य जन्म	उसको जन्म
भगवत्	भगवान्के	च कर्माणि	और कर्मोंका
अनुकम्पया	अनुग्रहसे	उपरिष्ठात्	आगे
अमरत्वं	अमरता	वक्ष्यामः	वर्णन करेंगे ॥१॥
च ग्रहत्वं	और ग्रहत्व		

यददस्तरणोर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाच-
क्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्-
व्यवधानकृद्देरानुबन्धः सूर्याचन्द्रमसावभिधावति ॥२॥

यत् अदः तरणेः मण्डलं प्रतपतः तत् विस्तरतः योजनं अयुतं आचक्षते
द्वादश सहस्रं सोमस्य त्रयोदश सहस्रं राहोः यः पर्वणि तत् व्यवधानकृत्
वैर अनुबन्धः सूर्याचन्द्रमसाः अभिधावति ॥२॥

यत् अदः	यह जो	तत्	वह (राहु)
प्रतपतः	तपता हुआ	व्यवधानकृत्	(अपने अमृतपानमें)
तरणेः मण्डलं	सूर्य-मण्डल है,		बाधा डालने वालेसे
तत् विस्तरतः	वह विस्तारमें	वैर अनुबन्धः	बद्ध वैर होनेसे
योजनं अयुतं	दस हजार योजन	पर्वणि	पर्व (अमावस्या-
आचक्षते	कहा जाता है,		पूर्णिमा) पर
सोमस्य	चन्द्रमाका (मण्डल)	सूर्याचन्द्रमसा	सूर्य या चन्द्रमाकी
द्वादश सहस्रं	बारह हजार		ओर
	(योजन)*	अभिधावति	(उन्हें ग्रसने) दौड़ता
राहोः	राहुका (मण्डल)		है ॥२॥
त्रयोदश सहस्रं	तेरह हजार		
	(योजन) है ।		

तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं
नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमान-
मभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते
तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः ॥३॥

तत् निशम्य उभयत्र अपि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम
भागवतं दयितं अस्त्रं तत् तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानं अभ्यवस्थितः
मुहूर्तं उद्विजमानः चकित हृदयः आरात् एव निवर्तते तत् उपरागं इति
वदन्ति लोकाः ॥३॥

* पिछले अध्यायका और यहाँका भी यह खगोल-वर्णन वर्तमान
विज्ञान तथा भारतीय-ज्योतिषसे भी भिन्न है। यहाँ चन्द्रमाको सूर्यसे दो
हजार योजन स्वतन्त्र ग्रह बतलाया है, जब कि ज्योतिष भी चन्द्रको छोटा
तथा पृथ्वीका उपग्रह मानता है। अतः इस पौराणिक खगोलका रहस्य
समझमें नहीं आता।

तत् निश्चय	यह देखकर	तेजसा	तेजसे
उभयत्र अपि	(सूर्य-चन्द्र) दोनोंकी	उद्विजमानः	उद्विग्न होकर
	ही	चकित हृदयः	चकित-चित्त
रक्षणाय	रक्षाके लिए	मुहूर्तं	एक मुहूर्त
भगवता प्रयुक्तं	भगवान्‌के द्वारा	अभ्यवस्थितः	उनके सामने
	नियुक्त		टिककर
भागवतं	भगवान्‌का	आरात् एव	समीपसे ही
दयितं अस्त्रं	प्रिय अस्त्र	निवर्तते	लौट आता है,
सुदर्शनं नाम	सुदर्शन नामका	तत् लोकाः	इसीको लोग
	(चक्र)	उपरागं इति	ग्रहण लगा, इस
मुहुः परिवर्तमानं	बराबर घूमता		प्रकार
	रहता है।	वदन्ति	कहते हैं ॥३॥
तत् दुर्विषहं	उसके असह्य		

ततोऽधस्तात्सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र

एव ॥४॥

ततः अधस्तात् सिद्ध चारण विद्याधराणां सदनानि तावत् मात्र
एव ॥४॥

ततः	उस (राहु) से	सिद्ध चारण	सिद्ध, चारण,
तावत् मात्र एव	उतने ही (दस	विद्याधराणां	विद्याधरोंके
	हजार योजन)	सदनानि	निवास हैं ॥४॥
अधस्तात्	नीचे		

ततोऽधस्ताद्यक्षरक्षः पिशाचप्रेतभूतगणानां विहारा-
जिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते ॥५॥

ततः अधस्तात् यक्ष रक्षः पिशाच प्रेत भूतगणानां विहार अजिरं
अन्तरिक्षं यावत् वायुः प्रवाति यावत् मेघाः उपलभ्यन्ते ॥५॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे	यक्ष रक्षः	यक्ष, राक्षस,
यावत् वायुः	जहाँ तक वायु	पिशाच प्रेत	पिशाच, प्रेत
प्रवाति	चलता है,	भूतगणानां	भूतगणोंका
यावत् मेघाः	जहाँ तक मेघ	विहार अजिरं	क्रीड़ाङ्गण
उपलभ्यन्ते	पाये जाते हैं	अन्तरिक्षं	अन्तरिक्ष है ॥५॥

ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येन-
सुपर्णादयः पतन्निप्रवरा उत्पतन्तीति ॥६॥

ततः अधस्तात् शतयोजन अन्तर इयं पृथिवी यावत् हंस भास श्येन
सुपर्ण आदयः पतन्नि प्रवराः उत्पतन्ति इति ॥६॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे	यावत् हंस	जहाँ तक हंस,
शतयोजन	सौ योजनकी	भास श्येन	गिद्ध, बाज,
अन्तरं	दूरीपर	सुपर्ण आदयः	गरुड़ आदि
इयं पृथिवी	यह पृथ्वी है ।	पतन्नि प्रवराः	श्रेष्ठ पक्षी
इति	इस प्रकार	उत्पतन्ति	उड़ सकते हैं ॥६॥

उपवर्णितं भूमेर्यथासंनिवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात्
सप्त भूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्लृ-
प्ता अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पाताल-
मिति ॥७॥

उपवर्णितं भूमेः यथा संनिवेश अवस्थानं अवनेः अपि अधस्तात्
सप्त भूविवराः एक एकशः योजन अयुत अन्तरेण आयाम विस्तारेण
उपक्लृप्ताः अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पातालं इति ॥७॥

संनिवेश	विस्तार और	अपि	भी
अवस्थानं यथा	स्थितिके अनुसार	सप्त भूविवराः	सात भू-विवर
भूमेः उपवर्णितं	पृथ्वीका वर्णन		(भू-गर्भ स्थित
	हो चुका		लोक) हैं
अवनेः अधस्तात्	भूमिके नीचे		

अतर्ल वितलं	अतल, वितल,	योजन अयुत	दस हजार योजनकी
सुतलं तलातलं	सुतल, तलातल,	अन्तरेण	(परस्पर) दूरीपर
महातलं रसातलं	महातल, रसातल,	आयाम	(इतने ही)
पातालं इति	पाताल इस प्रकार	विस्तारेण	लम्बाई-चौड़ाईके
एक एकशः	प्रत्येक	उपत्कृप्ताः	स्थित हैं ॥७॥

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्यधिककामभोगैश्वर्यानन्दभूति-
विभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया
नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वराद-
प्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति ॥८॥

एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गात् अपि अधिक कामभोग ऐश्वर्य आनन्द
भूति विभूतिभिः सुसमृद्ध भवन उद्यान आक्रीड विहारेषु दैत्य दानव काद्रवेया
नित्य प्रमुदित अनुरक्त कलत्र अपत्य बन्धु सुहृत् अनुचराः गृहपतयः ईश्वरात्
अपि प्रतिहत कामाः माया विनोदाः निवसन्ति ॥८॥

हि एतेषु	क्योंकि इन	काद्रवेया	कद्रूकी सन्तान
बिलस्वर्गेषु	बिल स्वर्गोंमें		(नाग)
स्वर्गात् अपि	स्वर्गसे भी	नित्य प्रमुदितः	सदा प्रसन्न रहते
अधिक	अधिक		हैं ।
कामभोग	विषय-भोग,	गृहपतयः	(वे) गृहस्वामी
ऐश्वर्य आनन्द	ऐश्वर्य, आनन्द,		(गृहस्थ) हैं,
भूति विभूतिभिः	सन्तान-सुख,	कलत्र अपत्य	स्त्री, पुत्र,
	धन-सम्पत्तिसे	बन्धु सुहृत्	सम्बन्धी, मित्र
सुसमृद्ध	पूर्ण सम्पन्न,	अनुचराः	सेवक-वर्ग
भवन	भवन हैं,	अनुरक्त	(उनसे) प्रेम करते
उद्यान आक्रीड	बगीचों, क्रीड़ा-		हैं ।
	स्थलों,	ईश्वरात् अपि	ईश्वर द्वारा भी
विहारेषु	घूमनेके मैदानोंमें	कामाः	उनके भोगोंमें
दैत्य दानव	दैत्य, दानव		

प्रतिहत	बाधा नहीं दी जाती ।	निवसन्ति	(वहाँ) निवास करते हैं ॥८॥
माया विनोदाः	मायामयी क्रीड़ा करते हुए		

येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नाना-
मणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्यचत्वर-
यतनादिभिनगिसुरमिथुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभि-
विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलङ्कृताश्चकासति ॥६॥

येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरः नाना मणि प्रवर
प्रवेक विरचित विचित्र भवन प्राकार गोपुर सभा चैत्य चत्वर आयतन
आदिभिः नाग असुर मिथुन पारावत शुकसारिका कीर्ण कृत्रिम भूमिभिः
विवर ईश्वर गृह उत्तमैः समलङ्कृताः चकासति ॥६॥

महाराज	महाराज !	चत्वर आयतन	चबूतरे, आँगन
येषु	जिन (लोकों)में	आदिभिः	आदिसे
मायाविना	मायावी	विरचित	बनी हैं (उनमें)
मयेन	मयके द्वारा	नाग असुर	नाग और असुरोंके
विनिर्मिताः	बनायी	मिथुन	जोड़े
पुरः चकासति	पुरियां जगमगा रही हैं ।	पारावत, शुक	कबूतर, तोते,
नाना	अनेक प्रकारके	सारिका कीर्ण	मैनासे भरे हैं ।
मणि प्रवर	श्रेष्ठ मणियोंसे	कृत्रिम भूमिभिः	(ये)बनायी गयी भूमि
प्रवेक	जड़ित	विवर	विवर (गुफामें)
विचित्र भवन	विचित्र भवन	ईश्वर गृह	वहाँके स्वामियोंके
प्राकार गोपुर	परकोटे, नगर-द्वार,	उत्तमैः	उत्तम भवनोंसे
सभा चैत्य	सभाभवन, मन्दिर	समलङ्कृताः	भली प्रकार अलङ्कृत हैं ॥८॥

उद्यानानि चातितरां मनइन्द्रियानन्दिभिःकुसुमफलस्तबक-
सुभगकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लताङ्गालिङ्गितानां

श्रीभिः समिथुनविविधविहङ्गमजलाशयानाममलजलपूर्णानां श्लक्ष्ण-
कुलोल्लङ्घनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकल्लारनीलोत्पललोहि-
तशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वना-
दिभिरिन्द्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि ॥१०॥

उद्यानानि च अतितरां मन इन्द्रिय आनन्दिभिः कुसुम फल स्तबक
सुभग किसलय अवनत रुचिर विटपविटपिनां लता अङ्ग आलिङ्गितानां
श्रीभिः समिथुन विविधविहङ्गम जलाशयानां अमल जल पूर्णानां श्लक्ष्णकुल
उल्लङ्घन क्षुभित नीर नीरज कुमुद कुवलय कल्लार नील उत्पल लोहित
शतपत्र आदि वनेषु कृत निकेतनानां एक विहार आकुल मधुर विविध
स्वन आदिभिः इन्द्रिय उत्सवैः अमरलोकश्रियं अतिशयितानि ॥१०॥

उद्यानानि च	(वहाँके) बगीचे भी	जल पूर्णानां	जलसे भरे
मन इन्द्रिय	मन, इन्द्रियोंको	जलाशयानां	जलाशयोंमें
अतितरां	✓ अत्यधिक	श्लक्ष्णकुल	मछलियोंके
आनन्दिभिः	आनन्द देते हुए	उल्लङ्घन	उछलनेसे
अमरलोकश्रियं	स्वर्गकी शोभासे	क्षुभित नीर	पानीमें क्षोभ होता है (तथा उसमें लगे)
अतिशयितानि	बहुत बढ़ गये हैं।	नीरज कुमुद	✓ कमल, कुमुदिनी,
कुसुम फल	पुष्प और फलोंके	कुवलय कल्लार	✓ श्वेत-कमल, रक्त-कमल,
स्तबक	गुच्छोंसे,	नील उपल	नील-कमल,
सुभाग किसलय	सुन्दर नव-पल्लवोंसे	लोहित	लाल-कमल,
अवनत	झुकी हुई	शतपत्र आदि	शतपत्र आदि (भी हिलते हैं)
लता अंग	लताओंके शरीरसे	वनेषु	(उस) वनमें
आलिङ्गितानां	आलिङ्गित	कृत निकेतनानां	घोंसले बनाकर रहनेवाले
रुचिर	मनोहर	एक विहार	अविराम क्रीड़ा करते
विटपविटपिनां	वृक्षोंकी शाखाओंसे	आकुल	चञ्चल होकर (अपने)
श्रीभिः	✓ सुशोभित हैं।		
विविधविहङ्गम	अनेक प्रकारके पक्षी		
समिथुन	अपने जोड़ेके साथ (रहते) हैं		
अमल	निर्मल		

विविध मधुर	अनेक प्रकारके मधुर	इन्द्रिय उत्सवः	इन्द्रियोंको
स्वन आदिभिः	बोली आदिसे		आनन्दित करते
			हैं ॥१०॥

यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुप-
लक्ष्यते ॥११॥

यत्र ह वाव न भयं अहः रात्रादिभिः काल विभागैः उपलक्ष्यते ॥११

यत्र ह वाव	जहां तो निश्चित ही	काल विभागैः	समय विभागका
अहः रात्र	दिन और रात रूपी	भयं न	खटका नहीं
अदिभिः	आदिसे	उपलक्ष्यते	दिखाई देता ॥११॥

यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥१२

यत्र हि महा अहिप्रवर शिरः मणयः सर्वं तमः प्रबाधन्ते ॥१२॥

हि यत्र	क्योंकि जहां	सर्वं तमः	सम्पूर्ण अन्धकार
महा अहिप्रवर	महान् नाग श्रेष्ठोंके	प्रबाधन्ते	दूर करती रहती
शिरः मणयः	मस्तकोंकी मणियां		हैं ॥१२॥

न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरायनान्नपानस्नाना-
दिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गन्ध्य-
स्वेदक्लमग्लानिरिति वयोऽवस्थाश्च भवन्ति ॥१३॥

न वा एतेषु वसतां दिव्य औषधि रस रसायन अन्न पान स्नान
आदिभिः आधयः व्याधयः वली पलित जरा आदयः च देह वैवर्ण्य दौर्गन्ध्य
स्वेद क्लम ग्लानिः इति वयः अवस्थाः च भवन्ति ॥१३॥

एतेषु वसतां	इन (लोकों) में	रस	रस
	रहनेवालोंके	रसायन	तथा रसायनोंके
दिव्य औषधि	दिव्य औषधियोंके	अन्न पान	खाने, पीने (एवं उनसे)

स्नान आदिभिः स्नान आदि करनेसे	स्वेद	पसीना,	
आधयः व्याधयः चिन्ता, रोग	क्लम	थकावट,	
बली	झुरियां पड़ना,	श्लानिः	शिथिलता आना
पलित	केश पकना,	इति वयः	इस प्रकार आयु
जरा आदयः	बुढ़ापा आदि तथा		(बढ़नेसे) होनेवाली
देह वैवर्ण्य	शरीरका कान्ति-	अवस्थाः च	अवस्थाएँ भी
	हीन होना,	न वा भवन्ति	नहीं ही होती
दौर्गन्ध्य	(देहसे) दुर्गन्धि		हैं ॥१३॥
	आना,		

न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युविना
भगवत्तेजसश्चक्रापदेशात् ॥१४॥

न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्चन मृत्युः विना भगवत् तेजसः
चक्र अपदेशात् ॥१४॥

हि	क्योंकि	तेजसः विना	तेजके बिना
तेषां कल्याणानां	उन पुण्य-पुरुषोंपर	कुतश्चन	किसी प्रकार
मृत्युः	मृत्यु	न प्रभवति	नहीं प्रभाव डाल
भगवत्	भगवान्‌के		सकती ॥१४॥
चक्र अपदेशात्	चक्र स्वरूप		

यस्मिन् प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव
स्रवन्ति पतन्ति च ॥१५॥

यस्मिन् प्रविष्टे असुर वधूनां प्रायः पुंसवनानि भयात् एव स्रवन्ति
पतन्ति च ॥१५॥

यस्मिन्	जिस (चक्र) के	भयात् एव	भयसे ही
प्रविष्टे	प्रवेश करनेपर	प्रायः स्रवन्ति	स्रवित होते
असुर वधूनां	असुर-पत्नियोंके	च पतन्ति	तथा गिर जाते
पुंसवनानि	गर्भ		हैं ॥१५॥

अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्य इति या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंलापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमित्ययुतमहागजबलमात्मानमभिमन्यमानः कथ्यते मदान्ध इव ॥१६॥

अथ अतले मयपुत्रः असुरः बलः निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षट् नवतिः माया काश्चन अद्य अपि मायाविनः धारयन्ति यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतः त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्यः इति या वै बिल अयनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटक आख्येन साधयित्वा स्वविलास अवलोकन अनुराग स्मित संलाप उपगूहन आदिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन् उपयुक्ते पुरुषः ईश्वरः अहं सिद्धः अहं इति अयुत महागज बलं आत्मानं अभिमन्यमानः कथ्यते मद अन्ध इव ॥१६॥

अथ अतले	उस अतलमें	धारयन्ति	धारण करते हैं ।
मयपुत्रः	मयका पुत्र	यस्य च	जिसके कि
असुर बलः	असुर बल	जृम्भमाणस्य	जम्हाई लेनेपर
निवसति	रहता है ।	मुखतः	मुखसे
येन ह वा	जिसकी निश्चय ही	त्रयः स्त्रीगणा	तीन स्त्रीगण
सृष्टाः	बनायी हुई	उदपद्यन्त	उत्पन्न हुआ
षट् नवतिः	छियानबे प्रकारकी	स्वैरिण्यः	स्वेच्छा चारिणी
माया	मायामें से		(उनकी जिससे
काश्चन	कोई-कोई		इच्छा हो उससे
इह मायाविनः	इस संसारमें मायावी		व्यभिचार
	लोग		करानेवाली)
अद्य अपि	अब भी		

कामिन्यः	कामिनियां (जब कामावेश हो तब किसीसे भी व्यभिचार कराने-वाली)	संलाप	बातचीत
पुंश्चल्यः	पुंश्चली (किसी भी पुरुषके संकेतपर व्यभिचारको प्रस्तुत)	उपगूहन	आलिंगन
इति	इस प्रकारके (स्त्री गण)	आदिभिः	आदि द्वारा
या वै	जो निश्चय ही	किल स्वरं	अरे, स्वेच्छा पूर्वक
बिल अयनं	इस बिल-निवासमें	रमयन्ति	रमण कराती हैं ।
प्रविष्टं	प्रविष्ट	यस्मिन्	जिस (हाटक-रसका)
पुरुषं	पुरुषको	उपयुक्ते	उपयोग करके
रसेन साधयित्वा	(हाटक) रस पिलाकर भोग सक्षम बनाकर	पुरुषः	पुरुष
स्वविलास	अपने हाव, भाव,	मद अन्ध इव	मदसे अन्धा-सा होकर
अवलोकन	कटाक्ष पूर्वक देखने,	कथ्यते	बकवाद करने
अनुराग स्मित	प्रेमभरी मुस्कान,	अहं ईश्वरः	‘मैं ईश्वर हूँ’
		अहं सिद्धः	‘मैं सिद्ध हूँ’
		इति	इस प्रकार
		आत्मानं	अपनेको
		अयुत महागज	दस हजार बड़े हाथियोंके
		बलं अभि	बलका मानने
		मन्यमानः	लगता है ॥१६॥

ततोऽधस्ताद्वितले हरो भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षद-
भूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनी-
भूत आस्ते यतः प्रवृत्ता सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण
यत्र चित्रभानुमार्तारिश्वना समिधमान ओजसा पिबति तन्निष्ठ-
चूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह
पुरुषीभिर्धारयन्ति ॥१७॥

ततः अधस्तात् वितले हरः भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षद भूतगण
आवतः प्रजापति सर्ग उपबृंहणाय भवः भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते

यतः प्रवृत्ता सरित् प्रवरा हाटकी नाम भवयोः वीर्येण यत्र चित्रभानुः
मातरिश्वना समिधमान ओजसा पिबति तत् निष्ठचूतं हाटक आख्यं सुवर्णं
भूषणेन असुरेन्द्र अवरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिः धारयन्ति ॥१७॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे	सरित् प्रवरा	श्रेष्ठ-नदी
भगवान्	भगवान्	यतः प्रवृत्ता	जहांसे निकलती है,
हाटकेश्वरः	हाटकेश्वर	यत्र चित्रभानुः	जहाँ चित्रभानु
स्वपार्षद	अपने पार्षद		नामक अग्नि
भूतगण	भूतगणोंसे	मातरिश्वना	वायुके द्वारा
आवृतः	घिरे रहते हैं ।	समिधमानः	प्रज्वलित किया
प्रजापति सर्ग	प्रजापतिकी सृष्टिका	ओजसा पिबति	उत्साहसे (उसे)
उपबृंहणाय	विस्तार करनेके		पीता है ।
	लिए	तत् निष्ठचूतं	उसका थूका हुआ
भवः	(वे) भगवान् शिव	हाटक आख्यं	हाटक नामके
भवान्या सह	भगवतीके साथ	सुवर्णं	स्वर्णका
मिथुनीभूतं	विहार करते	भूषणेन	आभूषणके रूपमें
आस्ते	रहते हैं ।	असुरेन्द्र	दैत्यराजके
भवयोः वीर्येण	भगवान् शिवके	अवरोधेषु	अन्तःपुरमें
	वीर्यसे	पुरुषाः	पुरुष
हाटकी नाम	हाटकी नामक	पुरुषीभिः सह	स्त्रियोंके साथ
		धारयन्ति	पहिनते हैं ॥१७॥

ततोऽधस्तात्सुतले उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचना-
त्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो
भूत्वा वटुवामनरूपेण पराक्षिप्तलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः
प्रवेशित इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाभिजुष्टः स्व-
धर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमाराधनीयमपगतसाधवस आस्तेऽधु-
नापि ॥१८॥

ततः अधस्तात् सुतले उदारश्रवाः पुण्यश्लोकः विरोचन आत्मजः
बलिः भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेन अदितेः लब्धकायः भूत्वा

वदु वामन रूपेण पराक्षिप्त लोकत्रयः भगवत् अनुकम्पया एव पुनः प्रवेशित
इन्द्र आदिषु अविद्यमानया सुसमृद्धया श्रियाभिजुष्टः स्वधर्मेण आराधयत्
तं एव भगवन्तं आराधनीयं अपगत साधवस आस्ते अधुना अपि ॥१८॥

ततः अधस्तात् उस (वितल) के
नीचे
सुतले सुतलमें
उदारश्रवाः महान् यशस्वी
पुण्यश्लोकः पवित्र कीर्ति
विरोचन आत्मजः विरोचनके पुत्र
बलिः बलि रहते हैं।
महेन्द्रस्य इन्द्रका
प्रियं प्रिय
चिकीर्षमाणेन करनेकी इच्छासे
आदितेः अदितिके (गर्भसे)
लब्धकायः अवतार
लेकर
वदु वामन वामन ब्रह्मचारी
रूपेण रूप
भूत्वा बनकर
लोकत्रयः (बलिसे) तीनों लोक
पराक्षिप्त छीन लिया,
भगवत् भगवान्की

अनुकम्पया एव कृपासे ही
पुनः फिर
इन्द्र आदिषु इन्द्र आदिके पास
भी (जैसी)
सुसमृद्धया उत्तम सम्पत्ति
अविद्यमानया नहीं है (वैसी)
श्रियाभिजुष्टः लक्ष्मीसे सम्पन्न
(लोकमें)
प्रवेशित प्रविष्ट करानेपर
तं एव उन्हीं
आराधनीयं आराधना योग्य
भगवन्तं भगवान्की
स्वधर्मेण अपने धर्माचरण
द्वारा
आराधयत् आराधना करते हुए
अपगत साधवस निर्भयता पूर्वक
अधुना अपि इस समय भी
आस्ते रहते हैं ॥१८॥

नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत्तद्भगवत्यशेष-
जीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे
पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहित मनसा सम्प्रति-
पादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्विलनिलयैश्वर्यम् ॥१९॥

नो एव एतत् साक्षात्कारः भूमिदानस्य यत् तत् भगवति अशेष
जीव निकायानां जीव भूत आत्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे पात्र

उपपन्ने परया श्रद्धया परम आदर समाहित मनसा सम्प्रति पादितस्य साक्षात् अपवर्ग द्वारस्य यत् बिलनिलय ऐश्वर्यम् ॥१६॥

यत् भगवति	जो भगवान्	सम्प्रति	सम्पन्न
अशेष जीव	सम्पूर्ण	पादितस्य	किए गये
निकायानां	जीवोंके	भूमिदानस्य	भूमिदानका
जीव भूत	जीवन रूप	यत्	जो
आत्मभूते	आत्मस्वरूप	बिलनिलय	बिलस्वर्ग (सुतल)
परमात्मनि	परमात्मा		का
वासुदेवे	वासुदेवके	ऐश्वर्य	ऐश्वर्य मिलना
तीर्थतमे	पवित्रतम	एतत्	यह (इतना ही)
पात्र उपपन्ने	पात्रके आनेपर	साक्षात्कारः	साक्षात् फल
तत्	उस	नो एव	नहीं ही है,
परया श्रद्धया	परम श्रद्धासे	साक्षात्	(वह) साक्षात्
परम आदर	परम आदर पूर्वक	अपवर्ग द्वारस्य	मोक्षका साधन
समाहित मनसा	एकाग्र चित्तसे		है ॥१६॥

यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्ना-
माभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रति-
बाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥२०॥

यस्य ह वाव क्षुत पतन प्रस्खलन आदिषु विवशः सकृत् नाम
अभिगृणन् पुरुषः कर्म बन्धनं अञ्जसा विधुनोति यस्य ह एव प्रतिबाधनं
मुमुक्षवः अन्यथा एव उपलभन्ते ॥२०॥

क्षुत पतन	छींकने,	पुरुषः	पुरुष
प्रस्खलन	फिसलने,	अञ्जसा	सरलतासे
आदिषु	आदिमें	कर्म बन्धनं	कर्मके बन्धनको
विवशः	विवश होकर	विधुनोति	नष्ट कर देता है,
यस्य ह वाव	जिनके निश्चित ही	मुमुक्षवः	मुमुक्षु लोग
सकृत्	एक बार मात्र	यस्य	जिस (कर्म-बन्धन)
नाम अभिगृणन्	नाम लेकरके		का

ह एव	निश्चित ही	अन्यथा एव	दूसरी ही तरह
प्रतिबाधनं	प्रतिकार		(बड़े कष्टसे)
		उपलभन्ते	कर पाते हैं ॥२०॥

तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥२१॥

तत् भक्तानां आत्मवतां सर्वेषां आत्मनि आत्मतया एव ॥२१॥

तत् आत्मवतां	अतः संयमी	आत्मतया एव	आत्मरूपसे ही
भक्तानां	भक्तोंके लिए		(स्थित) भगवान्को
सर्वेषां	सबके		भूमिदानका इतना
आत्मनि	अन्तःकरणमें		ही फल नहीं हो
			सकता ॥२१॥

न वै भगवान्नूनममुष्यानुजग्राह यदुत पुनरात्मानुस्मृति-
मोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥२२॥

न वै भगवान् नूनं अमुष्य अनुजग्राह यत् उत पुनः आत्मानुस्मृति
मोषणं मायामय भोग ऐश्वर्य एव आतनुते इति ॥२२॥

नूनं	निश्चय	भोग ऐश्वर्य	भोग ऐश्वर्य
अमुष्य	इस (बलि) को	एव इति	ही इस प्रकार
यत् उत पुनः	यदि वह फिरसे	आतनुते	प्रदान किया तो
आत्मानुस्मृति	अपनी स्मृति	वै	निश्चय
मोषणं	चुरा लेनेवाला	अनुजग्राहन्	कृपा नहीं की ॥२२॥
मायामय	मायिक		

यत्तद्भगवतानधिगतान्योपायेन याच्ञाच्छलेनापहृतस्व-
शरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च सम्प्रतिमुक्तो गिरिदर्या
चापविद्ध इति होवाच ॥२३॥

यत् तत् भगवता न अधिगत अन्य उपायेन याच्ना छलेन अपहृत
स्वशरीर अवशेषित लोकत्रयः वरुण पाशैः च सम्प्रतिमुक्तः गिरिदर्या च
अपविद्ध इति ह उवाच ॥२३॥

तत् भगवता	उन भगवान्को	अपहृत	छीन लिया
अन्य उपायेन	दूसरे उपायसे	वरुण पाशैः	वरुणके पाशसे
यत्	क्योंकि जो	च सम्प्रतिमुक्तः	बाँधे जाकर
अधिगत न	प्राप्त नहीं हुआ	गिरिदर्या	पर्वतकी गुफामें
याच्ना छलेन	याचनाके बहाने	अपविद्धः च	डाल दिये जानेपर
स्वशरीर	उसके अपने शरीरको		भी
अवशेषित	बचाकर	इति ह	इस प्रकार ही
लोकत्रयः	तीनों लोक	उवाच	बोला ॥२३॥

बलिऋवाव[■]

नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य
सचिवो मन्त्राय वृत एकान्ततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रे-
णात्मानमयाचतात्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमतिगम्भीरवयसः
कालस्य मन्वन्तर परिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥२४॥

नूनं बत अयं भगवान् अर्थेषु न निष्णातः यः असौ इन्द्रः यस्य
सचिवः मन्त्राय वृतः एकान्ततः बृहस्पतिः तं अतिहाय स्वयं उपेन्द्रेण
आत्मानं अयाचत आत्मनः च आशिषः नो एव तत् दास्यं अति गम्भीर
वयसः कालस्य मन्वन्तर परिवृत्तं कियत् लोकत्रयं इदम् ॥२४॥

नूनं बत	निश्चय खेदकी बात	यः भगवान्	जो ऐश्वर्य शाली है,
	है कि	अर्थेषु	(सच्चे) प्रयोजनमें
यः असौ इन्द्रः	जो यह इन्द्र है,	निष्णातः न	निपुण नहीं है,

■ यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यस्य सचिवः	जिसके मन्त्री	च तत् दस्यं	औरउनका दास्य
मन्त्राय	मन्त्रणा करनेके लिए	नो एव	नहीं ही (मांगा)
एकान्ततः	अनन्य भावसे	अति	अत्यन्त
	स्वीकृत	गम्भीर वयसः	गम्भीर (अनन्त)
बृहस्पतिः	बृहस्पति हैं		आयु वाले
तं अतिहाय	उनको छोड़कर	कालस्य	कालमें
स्वयं उपेन्द्रेण	स्वयं भगवान्	मन्वन्तर	एक मन्वन्तर तक
	वामन द्वारा	परिवृत्तं	सीमित
आत्मानः च	अपने लिए	इदं लोकत्रयं	इन तीन लोकोंका
आत्मानं	मुझसे		राज्यका
आशिषः	कामना	कियत्	क्या (मूल्य)
ययाचत	पूर्ति मांगी		है ॥२४॥

यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं
यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतो परते
खलु स्वपितरि ॥२५॥

यस्य अनुदास्यं एव अस्मत् पितामहः किल वव्रे न तु स्वपित्र्यं यत्
अकुतः भयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवत उपरते खलु
स्वपितरि ॥२५॥

अस्मत्	हमारे	भगवतः	भगवान्के
पितामहः	पितामह (प्रह्लाद)ने	दीयमानं	देनेपर भी
स्वपितरि	अपने पिता (हिरण्यकशिपु)के	न तु	नहीं ही लिया
उपरते	मर जानेपर	किल	अहो
यत् स्वपित्र्यं	जो अपने पिताका	यस्य	जिनका
अकुतः भयं	सब ओरसे निर्भय	अनुदास्यं	बराबर दासत्व
पदं	स्थान	एव वव्रे	ही मांगा ॥२५॥

तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वास्मद्विधः
परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥२६॥

तस्य महानुभावस्य अनुपथं अमृजित कषायः कः वा अस्मत् विधः
परिहीण भगवत अनुग्रह उपजिगमिषति इति ॥२६॥

तस्य	उन	कषायः	करने वाला
महानुभावस्य	महाप्रभावशालीके	कः वा	भला कौन
अनुपथं	पीछे चलनेके	भगवत अनुग्रह	भगवान्की कृपासे
	मार्गपर	परिहीण	वञ्चित
अस्मत् विधः	मेरे समान	इति	इस प्रकार
अमृजित	वासना-मलको	उपजिगमिषति	पहुँच सकता
	परिमार्जित न		है ॥२६॥

श्रीशुक उवाच—*

तस्यानुचरितमुपरिष्ठाद्विस्तरिष्यते यस्य भगवान् स्वय-
मखिलजगद्गुरुनारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानु-
कम्पितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायुतं
दिग्विजय उच्चाटितः ॥२७॥

तस्य अनुचरितं उपरिष्ठात् विस्तरिष्यते यस्य भगवान् स्वयं अखिल
जगद्गुरुः नारायणः द्वारि गदापाणिः अवतिष्ठते निजजन अनुकम्पित
हृदयः येन अङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरः योजन अयुत अयुतं दिग्विजय
उच्चाटितः ॥२७॥

तस्य	उन (वलि)का	जगद्गुरुः	जगतके गुरु
अनुचरितं	चरित	स्वयं नारायणः	स्वयं नारायण
उपरिष्ठात्	आगे	निजजन	अपने भक्तपर
विस्तरिष्यते	विस्तार किया	अनुकम्पित	अनुग्रहपूर्ण
	जायगा	हृदयः	हृदयसे
यस्य द्वारि	जिनके द्वारपर	गदापाणिः	हाथमें गदा लेकर
भगवान्	भगवान्	अवतिष्ठते	खड़े रहते हैं।
अखिल	अखिल	येन पदा	जिन्होंने पैरके

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है।

अंगुष्ठेन	अंगूठेसे	अयुत अयुतं	लाखों
दिग्विजय	दिग्विजय करने	योजन	योजन (दूर)
	आनेपर)	उच्चाटितः	फेंक दिया
दशकन्धरः	रावण		गया ॥२७॥

ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपति-
भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशं चिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्त-
त्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो
विगतसुदर्शनभयो महीयते ॥२८॥

ततः अधस्तात् तलातले मयः नाम दानवेन्द्रः त्रिपुर अधिपतिः
भगवता पुरारिणा त्रिलोक ईशं चिकीर्षुणा निर्दग्ध स्वपुरत्रयः तत् प्रसादात्
लब्धपदः मायाविनां आचार्यः महादेवेन परिरक्षितः विगत सुदर्शनभयः
महीयते ॥२८॥

ततः अधस्तात्	उस (सुतल-लोक) के नीचे	पुरारिणा	भगवान् त्रिपुरारि द्वारा
तलातले	तलातल-लोकमें	स्वपुरत्रयः	अपने तीनों पुरोंके
मायाविनां	मायावियोंका	निर्दग्ध	जला दिये जानेपर
आचार्यः	आचार्य	महादेवेन	भगवान् शिवकी
मयः नाम	मय नामका	प्रसादात्	कृपासे
दानवेन्द्रः	दानवराज (रहता) है,	लब्धपदः	(तलातलमें) स्थान पाकर
त्रिपुर	(वह) त्रिपुरका	परिरक्षितः	(शिवजीसे) सुरक्षित
अधिपतिः	स्वामी	सुदर्शन	सुदर्शन-चक्रके
त्रिलोक ईशं	त्रिलोकीका स्वामी	भयः विगत	भयसे रहित होकर
चिकीर्षुणा	बननेकी इच्छा करनेपर	महीयते	(वहांके निवासियों द्वारा) सम्मानित होता है ॥२८॥

ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां
क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियमुषेणादिप्रधाना महा-
भोगवन्तः पतत्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः
स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसङ्गेन क्वचित्प्रमत्ता विहरन्ति ॥२६॥

ततः अधस्तात् महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां न एक शिरसां क्रोधवशः
नाम गणः कुहकः तक्षकः कालियः सुषुणः आदि प्रधाना महाभोगवन्तः
पतस्त्रिराज अधिपतेः पुरुष वाहात् अनवरतं उद्विजमानाः स्व कलत्र
अपत्य सुहृत् कुटुम्बसङ्गेन क्वचित् प्रमत्ता विहरन्ति ॥२६॥

ततः अधस्तात्	उस (तलातल) के नीचे	पतत्रिराज	पक्षियोंके नायकोंके भी
महातले	महातलमें	अधिपतेः	स्वामी
काद्रवेयाणां	कद्रू से उत्पन्न	पुरुष वाहात्	परम पुरुषके वाहन (गरुड़) से
न एक शिरसां	अनेक सिरवाले	अनवरतं	निरन्तर
सर्पाणां	सर्पोंका	उद्विजमानाः	उद्विग्न रहते भी
क्रोधवशः नाम	क्रोधवश नामक	स्व कलत्र	अपने स्त्री,
गणः	समूह है,	अपत्य सुहृत्	पुत्र, मित्र,
कुहकः सक्षकः	(उनमें) कुहक, तक्षक	कुटुम्बसङ्गेन	कुटुम्बकी आसक्तिसे
कालियः सुषुणः	कालिय, सुषेण	क्वचित् प्रमत्ता	कभी प्रमत्त होकर
आदि प्रधाना	आदि प्रधान	विहरन्ति	विहार करने लगते हैं ॥२६॥
महाभोगवन्तः	बड़े शरीरवाले हैं,		

ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातक-
वजाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या
महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव
तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमयेन्द्र-
दूत्या वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद्विभ्यति ॥३०॥

ततः अधस्तात् रसातले दैतेयाः दानवाः पणयः नाम निवात कवचाः
कालेयाः हिरण्य पुरवासिनः इति विबुध प्रत्यनीका उत्पत्त्या महा ओजसः
महासाहसिनः भगवतः सकल लोक अनुभावस्य हरेः एव तेजसा प्रतिहत
बल अवलेपा बिलेशया इव वसन्ति ये वै सरमया इन्द्र दूत्या वाक्भिः मन्त्र
वर्णाभिः इन्द्रात् बिभ्यति ॥३०॥

ततः अधस्तात् उसके नीचे
रसातले रसातलमें
पणयः नाम पणि नामक
दैतेयाः दानवाः दैत्य, दानव (रहते हैं)
निवात कवचाः निवात कवच,
कालेयाः कालेय,
हिरण्य हिरण्य
पुरवासिनः पुरवासी
इति इस प्रकार (इनका भेद है ।)
विबुध देवताओंके (ये)
प्रत्यनीका विरोधी
उत्पत्त्या जन्मसे
महा ओजसः बड़े ओजस्वी,
महासाहसिनः महान् साहसी हैं (किन्तु)

सकल लोक सब लोकोंमें
अनुभावस्य प्रभावशाली,
हरेः एव श्रीहरिके ही
तेजसा तेजसे
प्रतिहत बल बलाभिमान नष्ट
अवलेपा हो जानेसे
बिलेशया इव बिलमें रहने वालोंके
समान (छिपकर)
वसन्ति रहते हैं ।
ये वै जो निश्चित ही
इन्द्र दूत्या इन्द्रकी दूती
सरमया सरमाके
मन्त्र वर्णाभिः मन्त्राक्षरवाली
वाक्भिः वाणीके कारण
इन्द्रात् इन्द्रसे
बिभ्यति डरते हैं ॥३०॥

ततोऽधस्तात्पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः

शङ्खकुलिकमहाशङ्खश्चेतधनञ्जयधृतराष्ट्रशङ्खचूडकम्बलाश्वतर-
देवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसन्ति येषामु ह वै पञ्च-
सप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो
रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥३१॥

ततः अधस्तात् पाताले नागलोक पतयः वासुकि प्रमुखाः शङ्ख
कुलिक महाशङ्ख श्वेत धनञ्जय धृतराष्ट्र शङ्खचूड कम्बल अश्वतर देवदत्त
आदयः महाभोगिनः महामर्षा निवसन्ति येषां उ ह वं पञ्च सप्त दश शत
सहस्र शीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयः रोचिष्णवः पाताल विवर
तिमिर निकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥३१॥

ततः अधस्तात्	उसके नीचे	निवसन्ति	रहते हैं ।
पाताले	पातालमें	उ ह वं	निश्चित रूपसे
नागलोक	नाग-लोकके	येषां पाञ्च	जिनके पांच,
पतयः	अधिपति	सप्त	सात,
वासुकि प्रमुखाः	जिनमें वासुको प्रमुख हैं वे	दश शत	दस, सौ,
शङ्ख कुलिक	शङ्ख, कुलिक,	सहस्र शीर्षाणां	सहस्र मस्तक वालोंके
महाशङ्ख श्वेत	महाशङ्ख, श्वेत,	फणासु	फणोंमें
धनञ्जय	धनञ्जय,	विरचिता	निर्मित
धृतराष्ट्र	धृतराष्ट्र,	रोचिष्णवः	कान्तिमान
शङ्खचूड कम्बल	शङ्खचूड, कम्बल,	महामणयः	महामणियां
अश्वतर देवदत्त	अश्वतर, देवदत्त,	पाताल विवर	पाताल रूपी बिलके
आदयः	आदि	तिमिर निकरं	प्रगाढ़ अन्धकारको
महाभोगिनः	महाभोग (सर्प देहवाले)	स्वरोचिषा	अपने प्रकाशसे
महामर्षा	बड़े क्रोधी	विधमन्ति	नष्ट कर देती हैं ॥३१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
शह्वादिस्थितिविलस्वर्गमर्यादानिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते या वै कला
भगवतस्तामसी समाख्यातानन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः
सङ्कर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं सङ्कर्षणमित्याचक्षते ॥१॥

तस्य मूलदेशे त्रिंशत् योजन सहस्र अन्तर आस्ते या वै कला भगवतः
तामसी समाख्याता अनन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः सङ्कर्षणं अहं इति
अभिमान लक्षणं यं सङ्कर्षणं इति आचक्षते ॥१॥

तस्य	उस (पाताल) के	द्रष्टृदृश्ययोः	द्रष्टा और दृश्यको
मूलदेशे	मूल प्रदेशमें	सङ्कर्षणं	खींचकर एक कर
त्रिंशत् सहस्र	तीस हजार		देनेवाले
योजन	योजन	अहं इति	अहंकार रूपा
अन्तर	दूरीपर	अभिमान लक्षणं	अभिमान रूपिणी
या वै	जो निश्चित	यं	जिस (कला) को
भगवतः	भगवान्की	सात्वतीया	पाञ्चरात्रके अनुयायी
तामसी कला	तामसी कला	सङ्कर्षणं	संकर्षण
अनन्त इति	अनन्त इस नामसे	इति आचक्षते	इस नामसे कहते
समाख्याता	प्रसिद्ध है		हैं ॥१॥
आस्ते	(वे) हैं ।		

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस
एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥

यस्य इदं क्षितिमण्डलं भगवतः अनन्तमूर्तेः सहस्र शिरसि एकस्मिन्
एव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥

यस्य सहस्र	जिन एक सहस्र	इदं	यह
शिरसि	सिर वाले	क्षितिमण्डलं	भूमण्डल
अनन्तमूर्तेः	अनन्त मूर्ति	सिद्धार्थ इव	सरसोंके दानेकी
भगवतः	भगवान्के		भांति
एकस्मिन् एव	एक ही	लक्ष्यते	दिखाई देता है ॥२॥
शीर्षणिध्रियमाणं सिरपर रखा हुआ			

यस्य ह वा इदं कालेनोपसञ्जिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिर-
भ्रमद्भ्रुवोरन्तरेण साङ्कर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्ष-
त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत् ॥३॥

यस्य ह वा इदं कालेन उपसञ्जिहीर्षतः अमर्ष विरचित रुचिर भ्रमत्
भ्रुवोः अन्तरेण साङ्कर्षणः नाम रुद्र एकादश व्यूहः त्र्यक्षः त्रिशिखं शूलं
उत्तम्भयन् उदतिष्ठत् ॥३॥

कालेन	प्रलय काल आनेपर	साङ्कर्षणः नाम	सांकर्षण नामक
यस्य ह वा इदं	जिनके इस विश्वका	एकादश व्यूहः	ग्यारह व्यूह वाले
	निश्चित	त्र्यक्षः रुद्र	त्रिनयन रुद्र
उपसञ्जिहीर्षतः	उपसंहार करनेकी	त्रिशिखं शूलं	त्रिशूल
	इच्छा करनेपर	उत्तम्भयन्	उठाये
अमर्ष भ्रमत्	क्रोधसे घूमती	उदतिष्ठत्	उत्पन्न हो जाते
रुचिर विरचित	मनोहर हो गयी		हैं ॥३॥
भ्रुवोः अन्तरेण	भृकुटियोंके मध्य		
	भागसे		

यस्य।ङ्घ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिषण्डमण्डलेष्वहि-
पतयः सह सात्वतर्षभैरेकान्तभक्तियोगेनावनमन्तः स्ववदनानि
परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डितगण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदित-
मनसः खलु विलोकयन्ति ॥४॥

यस्य अङ्घ्रि कमल युगल अरुण विशद नख मणिषण्ड मण्डलेषु अहि-
पतयः सह सात्वत ऋषभैः एकान्त भक्तियोगेन अवनमन्तः स्ववदनानि
परिस्फुरत् कुण्डल प्रभामण्डित गण्डस्थलानि अति मनोहराणि प्रमुदित
मनसः खलु विलोकयन्ति ॥४॥

अरुण मणिषण्ड लाल-मणियोंके
समान
विशद स्वच्छ
नख मण्डलेषु नख मण्डलवाले
यस्य अङ्घ्रि जिनके दोनों
कमल युगल चरण-कमलों
एकान्त अनन्य
भक्तियोगेन भक्ति-भावसे
सात्वत ऋषभैः प्रधान भक्तोंके
सह साथ
अवनमन्तः प्रणाम करते समय
अहिपतयः नागराज गण

परिस्फुरत् चमकते हुए
कुण्डल कुण्डलोंकी
प्रभामण्डित कान्तिसे शोभित
गण्डस्थलानि कपोलोंवाले
अति अत्यन्त
मनोहराणि सुन्दर
स्ववदनानि अपने मुखोंको
विलोकयन्ति देखते हैं तो
खलु अहो (उनका)
प्रमुदित मनसः चित्त प्रसन्न हो
जाता है ॥४॥

यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चावङ्ग-
वलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तम्भेष्वगुरु-
चन्दनकुङ्कुमपङ्क्तानुलेपेनावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदय-
मकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविघूर्णि-
तारुणकरुणावलोकनयनवदनारविन्दं सत्रीडं किल विलोक-
यन्ति ॥५॥

यस्य एव हि नागराज कुमार्यः आशिष आशासानाः चारु अङ्ग वलय
विलसित विशद विपुल धवल सुभग रुचिर भुज रजत स्तम्भेषु अगुरु
चन्दन कुङ्कुम पङ्क्तानुलेपेन अवलिम्पमानाः तत् अभिमर्शन उन्मथित
हृदय मकरध्वज आवेश रुचिर ललित स्मिताः तद् अनुराग मद मुदित मद
विघूर्णित अरुण करुण अवलोक नयन वद अरविन्दं सत्रीडं किल विलोक
यन्ति ॥५॥

नागराज	नागराजोंकी	तत् अभिमर्शन	उन (भुजाओं) के
कुमार्यः	कुमारियां		स्पर्शसे
हि यस्य एव	क्योंकि जिनसे ही	उन्मथित हृदय	मथित होते हृदयमें
आशिष	(अपनी) कामनाओं	मकरध्वज	काम
	(की पूर्ति) को	आवेश	आवेशसे
✓आशासानाः ✓	चाहती हैं,	रुचिर	मनोहर
चारु अङ्ग	मनोहर शरीरकी	ललित स्मित	सुन्दर मुस्कान
वलय विलसित	कङ्कण भूषित		सहित
विशद विपुल	स्वच्छ विशाल,	तत्	उनके
धवल सुभग	श्वेत, सुडौल,	अनुराग मद	प्रेम मदसे
रुचिर	सुन्दर	मुदित	प्रफुलत
रजत	चांदीके	मद विघूर्णित	मद-विह्वल
स्तम्भेषु	खम्भोंके समान	करुण अवलोक	कृपावलोकन युक्त
भुज	भुजाओंपर	अरुण नयन	लाल नेत्रों वाले
अगुरु चन्दन	अरगजा, चन्दन,	वदनारविन्दं	मुख-कमलको
कुङ्कुम पङ्क	केशरके पङ्क	किल सत्रीडं	सलज्ज ही
अनुलेपन	अङ्गराग	विलोकयन्ति	देखती हैं ॥५॥
अवलिम्पमानाः	लगाते समय		

स एव भगवाननन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेव उप-
संहृतमर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥६॥

स एव भगवान् अनन्तः अनन्त गुण अर्णव आदिदेव उपसंहृत अमर्ष
रोषवेगः लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥६॥

स एव	वही	स्वस्तय	कल्याणके
अनन्त गुण	अनन्त गुणोंके		लिए
अर्णव	समुद्र	अमर्ष	(अपनी) असहन
आदिदेव	आदिदेव		शीलता और
भगवान् अनन्तः	भगवान् अनन्त	रोषवेगः	क्रोधके वेगको
लोकानां	लोकोंके (समस्त)	उपसंहृत	रोके हुए
		आस्ते	विराजमान हैं ॥६॥

ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरन-
वरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकामृतेनाप्याय-
मानः स्वपार्षदविबुधयूथपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोद
मध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां
वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुजो
भगवान्माहेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षामुदारलीलो
बिभर्ति ॥७॥

ध्यायमानः सुर असुर उरग सिद्ध गन्धर्व विद्याधर मुनिगणैः अनवरत
मदमुदित विकृत विह्वल लोचनः सुललित मुखरिक अमृतेन आप्यायमानः
स्वपार्षद विबुध यूथपतीन् अपरिम्लानराग नवतुलसिका आमोद मधु
आसवेन माद्यन् मधुकर व्रात मधुर गीत श्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां
नीलवासा एक कुण्डलः हल ककुदि कृत सुभग सुन्दर भुजः भगवान् माहेन्द्रः
वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षां उदार लीलः बिभर्ति ॥७॥

सुर असुर	देवता, असुर,	विबुध यूथपतीन् देव-यूथपोंको
उरग सिद्ध	नाग, सिद्ध,	सुललित अत्यन्त सुन्दर
गन्धर्व	गन्धर्व,	✓ मुखरिक अमृतेन वचनामृतसे
विद्याधर	विद्याधर	✓ आप्यायमानः सन्तुष्ट करते
मुनिगणैः	मुनिगणों द्वारा	रहते हैं ।
ध्यायमानः	(उनका) ध्यान	अपरिम्लानराग जिसकी शोभा कभी
	किया जाता है ।	कुम्हलाती नहीं उस
अनवरत	(वे) निरन्तर	नवतुलसिका नवीन तुलसीकी
मदमुदित	(प्रेम) मदसे मुदित,	आमोद सुगन्धि और
विकृत विह्वल	चञ्चल और विह्वल	मधु आसवेन मधुर-मकरन्द
लोचनः	नेत्र वाले हैं ।	माद्यन् पीकर मतवाले हुए
स्वपार्षद	अपने पार्षद	मधुकर व्रात भीरोंके झुण्डकी

मधुर गीत श्रियं मधुर गुंजारकी	नीलवासा	नीलाम्बर,
शोभावाली	एककुण्डलः	एक ही कुण्डल
स्वां वैजयन्तीं अपनी वैजयन्ती	कृत हल ककुदि	पीठके ककुदपर
वनमालां वनमालाको		रखा हल
माहेन्द्रः वारणेन्द्र इन्द्रके गजराज	सुभग सुन्दर	सुडौल सुन्दर
(ऐरावत)	भुजः	भुजा (हाथ) में
काञ्चनीं कक्षां गलेमें पड़ी स्वर्ण	उदार लीलः	(वे) उदार
शृङ्खला		लीलामय
इव की भाँति (तथा)	बिभर्ति	धारण करते हैं ॥७॥

य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्म
वासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रन्थि सत्त्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयं
गत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान् भगवान् स्वायम्भुवो नारदः
सह तुम्बुरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास ॥८॥

य एष एवं अनुश्रुतः ध्यायमानः मुमुक्षूणां अनादि काल कर्म वासना
ग्रथितं अविद्यामयं हृदयग्रन्थि सत्त्व रजः तमोमयं अन्तः हृदयं गतः आशु
निर्भिनत्ति तस्य अनुभावान् भगवान् स्वायम्भुवः नारदः सह तुम्बुरुणा
सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास ॥८॥

य एष	जो ये (भगवान् अनन्त)	अनादि काल	अनादि कालसे
एवं अनुश्रुतः	इस प्रकार (माहात्म्य) बार- बार सुननेसे तथा	कर्म वासना	कर्म-वासनासे
		ग्रथितं	उलझी
		सत्त्व रजः	सत्त्व, रज,
		तमोमयं	तम गुणमयी
ध्यायमानः	ध्यान करनेसे	अविद्यामयं	अविद्यारूपी
अन्तः हृदयं गतः	हृदयके भीतर प्रकट होकर	हृदयग्रन्थि	हृदय-ग्रन्थिको
मुमुक्षूणां	मोक्षकी इच्छा वालोंकी	आशु निर्भिनत्ति	शीघ्र काट देते हैं,
		तस्य अनुभावान्	उनके प्रभावोंका
		ब्रह्मणः सभायां	ब्रह्माकी सभामें

स्वायम्भुवः ब्रह्माजीके पुत्र
भगवान् नारदः भगवान् नारदने

तुम्बुरुणा सह तुम्बुरु (गन्धर्व) के
साथ
संश्लोकयामास गान किया ॥८॥

उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः

सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् ।

यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्

नानाधात्कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥९॥

उत्पत्ति स्थिति लय हेतवः अस्य कल्पाः सत्त्व आद्याः प्रकृति गुणाः
यत् ईक्षया आसन् यत् रूपं ध्रुवं अकृतं यत् एकं आत्मन् नानाधात् कथं उ
ह वेद तस्य वर्त्म ॥९॥

उत्पत्ति स्थिति	उत्पत्ति, स्थिति,	ध्रुवं अकृतं	ध्रुव (अनन्त)
लय	प्रलयके		अकृत (अनादि) है,
हेतवः	कारण	यत् एक आत्मन्	जो अकेले होते हुए
अस्य कल्पाः	इन्होंने ही कल्पित किये हैं,	नानाधात्	(इस) नानात्मक (प्रपञ्च) को धारण
सत्त्व आद्याः	सत्त्व आदि		किए हैं,
प्रकृति गुणाः	प्रकृतिके गुण	तस्य वर्त्म	उनके मार्ग (स्वरूप)
यत् ईक्षया	जिनकी दृष्टि पड़नेसे		को
आसन्	उत्पन्न हुए,	उ ह	निश्चित रूपसे
यत् रूपं	जिनका स्वरूप	कथं वेद	(कोई) कैसे जान सकता है ॥९॥

मूर्ति नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं

संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ।

यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्या-

मादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः ॥१०॥

मूर्ति नः पुरु कृपया बभार सत्त्वं संशुद्धं सद् असद् इदं विभाति यत्र
यत् लीलां मृगपतिः आददे अनवद्यां आदातुं स्वजन मनांसि उदार वीर्यः ॥१०॥

यत्र इदं	जिनमें यह	आदातुं	ग्रहण (आकर्षित)
सद् असद्	कारण कार्य रूप (जगत)	नः पुरु कृपया	करनेके लिए हमपर बहुत कृपा करके
विभाति	भास रहा है,	संशुद्धम् सत्त्वं	शुद्ध सत्त्व-गुणमयी
यत् अनवद्यां	जिनकी निष्कलंक	मूर्ति	श्रीविग्रह
लीलां	लीलाको (आदर्श मानकर)	उदार वीर्यः	(उन) उदार
मृगवतिः आददे	सिंहने अपनाया है,		पराक्रमने
स्वजन मनांसि	अपने जनोंके मनको	बभार	धारण किया है ॥१०॥

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मा-

दार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा ।

हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं

कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥११॥

यत् नाम श्रुतं अनुकीर्तयेत् अकस्मात् आर्तः वा यदि पतितः प्रल-
म्भनात् वा हन्ति अंहः सपदि नृणां अशेषं अन्यं कं शेषात् भगवतः आश्रयेन्
मुमुक्षुः ॥११॥

यत् श्रुतं नाम	जिनका सुना हुआ नाम	हन्ति	(वह नाम) नष्ट कर देता है ।
अकस्मात्	अचानक	मुमुक्षुः	मुमुक्षु (पुरुष)
यदि आर्तः	यदि दुःखी	भगवतः शेषात्	(ऐसे) भगवान् शेषसे
वा पतितः	या पतित (पुरुष)	अन्यं	भिन्न
वा प्रलम्भनात्	अथवा हँसीमें	कं आश्रयेन्	किसका आश्रय ले सकता है ॥११॥
अनुकीर्तयेत्	ले लेता है तो		
सपदि नृणां	तुरन्त उस मनुष्यके		
अशेषं अंहः	सम्पूर्ण पापोंको		

मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्धनो

भूगोलं

सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ।

आनन्त्यादनिमित्तविक्रमस्य भूम्नः

को

वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥१२॥

मूर्धनि अर्पितं अणुवत् सहस्र मूर्धनः भूगोलं सगिरि सरित् समुद्र सत्त्वं आनन्त्यात् अनिमित्त विक्रमस्य भूम्नः कः वीर्याणि अधिगणयेत् सहस्र जिह्वः ॥१२॥

सगिरि सरित् पर्वतों, नदियों,
समुद्र सत्त्वं समुद्रों तथा प्राणियों
सहित
भूगोलं पृथ्वी-मण्डल
सहस्र मूर्धनः (उन) सहस्रशीर्षके
मूर्धनि एक मस्तकपर
अणुवत् अर्पितं एक अणुके समान
रखा है,

आनन्त्यात् अनन्त होनेके कारण
अनिमित्त अपरिमित
विक्रमस्य भूम्नः पराक्रम विभुके
वीर्याणि पराक्रमोंको
सहस्र जिह्वः सहस्र जीभवाला भी
कः अधिगणयेत् गणना कौन कर
सकता है ॥१२॥

एवम्प्रभावो

भगवाननन्तो

दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ।

मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो

यो लीलया क्षमां स्थितये बिभर्ति ॥१३॥

एवं प्रभावः भगवान् अनन्तः दुरन्त वीर्यः उरु गुण अनुभावः मूले रसायः स्थितः आत्मतन्त्रः यः लीलया क्षमां स्थितये बिभर्ति ॥१३॥

एवं प्रभावः ऐसे प्रभावशाली
दुरन्त वीर्यः अनन्त पराक्रम
उरुगुण बहुत (असंख्य) गुण
अनुभावः प्रभाव वाले
आत्मतन्त्रः स्वतन्त्र (होनेपर भी)
यः भगवान् जो भगवान्
अनन्तः अनन्त

रसायः मूले रसातलके मूलमें
स्थितः स्थित होकर
स्थितये (संसारको) स्थितिके
लिए
लीलया लीला पूर्वक
क्षयां बिभर्ति पृथ्वीको धारण
करते हैं ॥१३॥

एता ह्येवेह नृभिरुपगन्तव्या गतयो यथाकर्मविनिर्मिता
यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान् कामयमानैः ॥१४॥

एता हि एव इह नृभिः उपगन्तव्या गतयः यथा कर्म विनिर्मिता यथा
उपदेशं अनुवर्णिताः कामान् कामयमानैः ॥१४॥

कामान्	भोगोंको	एता हि एव	इतनी ही मात्र
कामयमानैः	चाहनेवाले	गतयः	गतियां हैं,
नृभिः	मनुष्योंकी	यथा उपदेशं	जैसा गुरुमुखसे
यथा कर्म	कर्मनुसार		सुना था
विनिर्मिता	बनी हुई	अनुवर्णिताः	वर्णन कर
उपगन्तव्या	पहुँचनेकी		दिया ॥१४॥
इह	इस (संसार) में		

एतावतीहि राजन् पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय
उच्च अवचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत्कथयाम
इति ॥१५॥

एतावतीः हि राजन् पुंसः प्रवृत्ति लक्षणस्य धर्मस्य विपाक गतयः
उच्च अवचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किं अन्यत् कथयाम इति ॥१५॥

राजन्	राजन् !	गतयः	गतियां
पुंसः	मनुष्यको	एतावतीः हि	इतनी ही हैं
प्रवृत्ति लक्षणस्य	प्रवृत्ति रूप	यथाप्रश्नं	(तुम्हारे) प्रश्नके
धर्मस्य	धर्मके		अनुसार
विपाक	परिणाममें (प्राप्त होने वाली)	व्याचख्ये	बतला दीं ।
उच्च अवचा	ऊँची, नीची,	इति	इस प्रकार
विसदृशा	परस्पर विलक्षण	अन्यत् किं	और क्या
		कथयाम	बतलाऊँ ? ॥१५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
भूविवरविध्युपवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

राजोवाच

महर्ष एतद्वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥१॥

महर्ष एतत् वैचित्र्यं लोकस्य कथं इति ॥१॥

महर्ष	महर्षि !	इति	इस प्रकार
लोकस्य	लोगोंकी (इतनी	एतत्	यह
	विभिन्न)	कथं	क्यों है ॥१॥
वैचित्र्यं	विचित्रता		

श्रीशूक उवाच—*

त्रिगुणतवात्कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वाएव
सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥२॥

त्रिगुणत्वात् कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथक् विधाः सर्वा एव सर्वस्य
तारतम्येन भवन्ति ॥२॥

कर्तुः	कर्ताके	पृथक् विधाः	भिन्न-भिन्न प्रकार-
श्रद्धया	(और) श्रद्धाके भी		की
त्रिगुणत्वात्	त्रिगुणात्मक	सर्वा एव	सभी (गतियां)
	(सात्विक, राजस,	तारतम्येन	कम-अधिक
	तामस) होनेसे	सर्वस्य	सबकी
कर्मगतयः	कर्मकी गतियां	भवन्ति	होती हैं ॥२॥

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्याधर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धया
वैसादृश्यात्कर्मफलं विसदृशं भवति या ह्यनाद्यविद्यया कृत-
कामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां
प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥३॥

अथ इदानीं प्रतिषिद्ध लक्षणस्य अधर्मस्य तथा एव कर्तुः श्रद्धया
वैसादृश्यात् कर्मफलं विसदृशं भवति या हि अनादि अविद्यया कृत कामानां
तत् परिणाम लक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्ताः तासां प्राचुर्येण अनुवर्ण-
यिष्यामः ॥३॥

प्रतिषिद्ध	निषिद्ध	कृत कामानां	कामना पूर्वक किए
लक्षणस्य	कर्मरूप अधर्मके		गये कर्म
कर्तुः श्रद्धया	कर्ताकी श्रद्धाके	तत् परिणाम	उनके परिणाम
वैसादृश्यात्	विषम होनेसे	लक्षणाः सृतयः	स्वरूप गतियां
तथा एव	वैसे ही	सहस्रशः	हजारों
कर्मफलं	(उनके) कर्मका फल	प्रवृत्ताः	चल रही हैं
विसदृशं भवति	असमान होता है ।	अथ इदानीं	अब इस समय
या हि	जो कि	तासां प्राचुर्येण	उनका विस्तारसे
अनादि	अनादि	अनुवर्णयिष्यामः	वर्णन करूँगा ॥३॥
अविद्यया	अविद्याके वशमें		

राजोवाच-

नरका नाम भगवन् किं देशविशेषा, अथवा बहिःत्रिलोक्या
आहोस्विदन्तराल इति ॥४॥

नरका नाम भगवन् किं देश विशेषा अथवा बहिः त्रिलोक्या आहो-
स्वित् अन्तराल इति ॥४॥

भगवन्	भगवन् !	किं देश विशेषा क्या (पृथ्वीके ही)
नरका नाम	नरक नामक	देश विशेष हैं ,

अथवा	अथवा	आहोस्वित्	अथवा
बहिः त्रिलोक्या	तीनों लोकोंसे	अन्तराज इति	इसी प्रकार
	बाहर हैं,		(भूविलोकी भांति
			पृथ्वीके) भीतर
			(कहीं) हैं ॥४॥

श्रीशुक उवाच-*

अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद्भू-
मेरुपरिष्ठाच्च जलाद्यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां
गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना
निवसन्ति ॥५॥

अन्तराल एव त्रिजगति अस्तु दिशि दक्षिणस्यां अधस्तात् भूमेः
उपरिष्ठात् च जलात् यस्यां अग्निष्वात्त आदयः पितृगणा दिशि स्वानां
गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एव आशिष आशासाना निवसन्तिः ॥५॥

त्रिजगति	त्रिलोकीके	आदयः	आदि
अन्तराल एव	भीतर ही हैं ।	पितृगणा	पितृगण
अस्तु	अस्तु	स्वानां गोत्राणां	अपने वंशजोंके लिए
दिक्षि दक्षिणस्यां दक्षिण दिशामें		परमेण	अत्यन्त
भूमेः अधस्तात् पृथ्वीसे नीचे		समाधिना	एकाग्रता पूर्वक
च जलात् और जलके		सत्या एव	सत्य होनेवाली
उपरिष्ठात् ऊपर हैं ।		आशिष	मंगल
यस्यां दिशि जिस दिशामें		आशासाना	कामना करते
अग्निष्वात्त अग्निष्वात्त		निवसन्ति	बसते हैं ॥५॥

यत्र ह वाव भगवान् पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं
प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु सम्परेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्ल-
ङ्घितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥६॥

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिस्वाच' है ।

यत्र ह वाव भगवान् पितृराजः वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैः
जन्तुषु सम्परेतेषु यथा कर्म अवद्यं दोषं एव अनुल्लङ्घित भगवत् शासनः
सगणः दमं धारयति ॥६॥

यत्र ह वाव	जहां निश्चित ही	स्वविषयं	अपने सम्मुख
पितृराजः	पितृराज	प्रापितेषु	लानेपर
वैवस्वतः	सूर्य-पुत्र (यम)	यथा कर्म अवद्यं	(उनके) दुष्कर्मोंके
भगवत् शासनः	भगवान्की आज्ञाका		अनुसार
अनुल्लङ्घित	उल्लंघन न करके	दोषं एव	पापके ही फलस्वरूप
स्वपुरुषैः	अपने दूतों द्वारा	सगणः	अपने गणोंके साथ
सम्परेतेषु जन्तुषु मृत प्राणियोंको		दमं धारयति	दण्ड देते हैं ॥६॥

तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राज-
न्नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामस्तामिस्त्रोऽन्धतामिस्त्रो रौरवो
महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः
कृमिभोजनः सन्दंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मली वैतरणी पूयोदः
प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयः पान-
मिति । किञ्च क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूको-
ऽवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिर्नरका विविध-
यातनाभूमयः ॥७॥

तत्र ह एके नरकान् एकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन् नाम
रूप लक्षणतः अनुक्रमिष्यामः तामिस्त्रः अन्धतामिस्त्रः रौरवः महारौरवः
कुम्भीपाकः कालसूत्रं असिपत्रवनं सूकर मुखं अन्धकूपः कृमिभोजनः सन्दंशः
तप्तसूर्मिः वज्र कण्टक शाल्मली वैतरणी पूयोदः प्राणरोधः विशसनं लाला
भक्षः सारमेयादनं अवीचिः अयः पानं इति किञ्च क्षारकर्दमः रक्षोगण
भोजनः शूलप्रोतः दन्दशूकः अवट निरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखं इति
अष्टाविंशतिः नरका विविध यातना भूमयः ॥७॥

तत्र ह एके	कोई-कोई वहां तो	वंतरणी पूयोदः	वंतरणी, पूयोद
नरकान्	नरकोंकी	प्राणरोधः	प्राणरोध,
गणयन्ति	गणना	विशसनं	विशसन,
एकविंशति	इक्कीस करते हैं।	लालाभक्षः	लालाभक्ष,
राजन्	राजन् !	सारमेयादनं	सारमेयादन
अथ तांस्ते	अब उनको तुम्हें	अवीचिः	अवीचि,
नाम रूप	नाम, रूप,	अयः पानं	अयः पान
लक्षणतः	लक्षण सहित	इति	इस प्रकार
अनुक्रमिष्यामः	क्रमशः बतलाता हूँ,	किञ्च	इनके अतिरिक्त
तामिस्रः	तामिस्र,	क्षारकर्दमः	क्षारकर्दम,
अन्धतामिस्रः	अन्धतामिस्र	रक्षोगण	रक्षोगण
रौरवः	रौरव,	भोजनः	भोजन,
महारौरवः	महारौरव,	शूलप्रोतः	शूलप्रोत,
कुम्भीपाकः	कुम्भीपाक,	दन्दशूकः	दन्दशूक,
कालसूत्रं	कालसूत्र,	अवट निरोधनः	अवट निरोधन,
असिपत्रवनं	असिपत्रवन,	पर्यावर्तनः	पर्यावर्तन,
सूकरमुखः	सूकरमुख,	सूचीमुखं	सूचीमुखं
अन्धकूपः	अन्धकूप,	इति	इस प्रकार
कृमिभोजनः	कृमिभोजन,	अष्टाविंशतिः	अष्टाविस
सन्दंशः	सन्दंश,	नरकाः	नरक
तप्तसूर्मिः	तप्तसूर्मि,	विविध यातना	अनेक प्रकारकी
वज्रकण्टक	वज्रकण्टक		यातनाके
शाल्मली	शाल्मली,	भूमयः	स्थान हैं ॥७॥

तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि काल-
पाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते
अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जनादिभिर्यातिनाभिर्यात्यमानो जन्तु-
र्यत्र कश्मलमासादित एकदेव मूर्च्छामुपयाति तामिस्रप्राये ॥८॥

तत्र यः तु परवित्त अपत्य कलत्राणि अपहरति स हि कालपाश बद्धः
यमपुरुषैः अतिभयानकैः तामिस्रे नरके बलात् निपात्यते अनशन अनुदपान

दण्ड ताडन संतर्जन आदिभिः यातनाभिः यात्यमानः जन्तुः यत्र कश्मलं आसादितः एकदैव मूर्छां उपयाति तामिस्रप्राये ॥८॥

तत्र यः तु	वहां जो भी	तामिस्रप्राये	उस अन्धकार-
परवित्त	दूसरेके धन,		पूर्ण (नरक) में
अपत्य कलत्राणि	पुत्र, स्त्री आदिका	अनशन-	अन्न-जल
अपहरति	हरण करता है	अनुदपान	न देते,
स हि	वह निश्चय	दंड ताडन	डंडेसे मारने,
अतिभयानकः	अत्यन्त भयानक	संतर्जन	डांटने
यमपुरुषः	यमदूतों द्वारा	आदिभिः	आदि
कालपाश बद्धः	कालपाशमें बाँधकर	यातनाभिः	पीड़ाओं द्वारा
तामिस्रे नरके	तामिस्र नरकमें	यात्यमानः	पीड़ित किए जानेपर
बलात्	बलपूर्वक	एकदैव	एकाएक
निपात्यते	गिरा दिया	मूर्छां उपयाति	मूर्छित हो जाता
	जाता है ।		है ॥८॥

एवमेवान्धतामिस्रे यस्तु बञ्चयित्वा पुरुषं दारादीनुप-
युङ्क्ते यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्ट-
मतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्ध-
तामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥९॥

एवं एव अन्ध तामिस्रे यः तु बञ्चयित्वा पुरुषं दारादीन् उपयुङ्क्ते
यत्र शरीरी निपात्यमानः यातनास्थः वेदनया नष्टमतिः नष्ट दृष्टिः च
भवति यथा वनस्पतिः वृश्च्यमान मूलः तस्मात् अन्धतामिस्रं तं उपदि-
शन्ति ॥९॥

एवं एव	इसी प्रकार	उपयुङ्क्ते	उपभोग करता है
यः तु पुरुषं	जो कि पुरुषको		(वह)
बञ्चयित्वा	धोखा देकर	यत्र अन्ध-	जिस अन्ध-
दारादीन्	(उसकी) पत्नी	तामिस्रे	तामिस्र (नरक) में
	आदिका	निपात्यमानः	गिराये जानेपर

शरीरो	प्राणी	यथा वनस्पतिः	जैसे वृक्ष
यातनास्थः	यातना पाते हुए	वृश्च्यमान मूलः	जड़ काटे जानेपर,
वेदनया	पीड़ासे (उसकी)	तस्मात् तं	इसलिए उसे
नष्टमतिः	बुद्धि नष्ट हो	अन्धतामिच्छं	अन्धतामिच्छ
	जाती है,	उपदिशन्ति	कहते हैं ॥६॥
च नष्ट दृष्टिः	और दृष्टि नष्ट हो		
	जाती है,		

यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं
स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन
रौरवे निपतति ॥१०॥

यः तु इह वा एतत् अहं इति मम इदं इति भूतद्रोहेण केवलं स्व-
कुटुम्बं एव अनुदिनं प्रपुष्णाति स तत् इह विहाय स्वयं एव तत् अशुभेन
रौरवे निपतति ॥१०॥

यः तु इह वा	जो भी इस (संसार)	स्वकुटुम्बं एव	अपने कुटुम्बका ही
	में	अनुदिनं	प्रतिदिन
एतत् अहं	‘यह शरीर मैं हूँ’	प्रपुष्णाति	पोषण करता है
इति	इस प्रकार	स तत्	वह उस (शरीर
मम इदं	‘ये मेरे हैं’		और परिवार) को
इति	इस प्रकार (अहंता	इह विहाय	यहीं छोड़कर
	ममता करके)	स्वयं एव	स्वयं ही
भूतद्रोहेण	प्राणियोंसे द्रोह	तत् अशुभेन	उस पापसे
	करके	रौरवे निपतति	रौरव नरकमें
केवलं	केवल		गिरता है ॥१०॥

ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयात-
नामुपगतं त एव हरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्मा-
द्रौरवमित्याह हरुरिति सर्पादितिकूरसत्त्वस्यापदेशः ॥११॥

ये तु इह यथा एव अमुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनां उप-
गतं त एव रुखः भूत्वा तथा तं एव विहिंसन्ति तस्मात् रौरवं इति आह
रुः इति सर्पात् अतिक्रूर सत्त्वस्य अपदेशः ॥११॥

इह	इस लोकमें	रुखः भूत्वा	रु होकर
ये तु जन्तवः	जो भी प्राणी	तथा तं एव	उसी प्रकार उसे ही
यथा एव	जैसे	विहिंसन्ति	मारते हैं,
अमुना	इसके द्वारा	तस्मात्	इसलिए
विहिंसिता	मारे गये हैं,	रौरवं इति आह	(उस नरकको)
परत्र	परलोकमें		रौरव कहते हैं ।
यमयातनां	यम-यातना	रु इति	रु यह
उपगतं	पाने पहुँचनेपर	सर्पात् अतिक्रूर	सर्पसे भी अत्यन्तक्रूर
त एव	वही (उसके द्वारा	सत्त्वस्य अपदेशः	प्राणीका नाम
	मारे गये प्राणी)		है ॥११॥

एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम
रुखस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहम्भरः ॥१२॥

एवं एव महारौरवः यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुखः तं क्रव्येण
घातयन्ति यः केवलं देहम्भरः ॥१२॥

एवं एव	इसी प्रकार	यत्र निपतितं	(उसके) जहां
महारौरवः	महारौरव नरक है		गिरनेपर
यः केवलं	जो केवल (दूसरेकी	क्रव्यादा नाम	क्रव्याद नामके
	चिन्ता छोड़कर)	रुखः	(कच्चा मांस खाने-
देहम्भरः	अपने शरीरका ही		वाले) रु
	पोषक रहा है	तं क्रव्येण	उसे मांसके लोभसे
		घातयन्ति	मारते हैं ॥१२॥

यस्त्विह वा उग्रः पशून् पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति
तमपकुरुषं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके
तप्ततैले उपरन्धयन्ति ॥१३॥

यः तु इह वा उग्रः पशून् पक्षिणः वा प्राणत उपरन्धयति तं अपकर्णं
पुरुषादैः अपि विर्गाहितं अमुत्र यम अनुचराः कुम्भीपाके तप्ततेले उपरन्ध-
यन्ति ॥१३॥

यः तु	जो भी कोई	पुरुषादैः अपि	राक्षसोंसे भी
उग्रः	क्रूर		(अधिक)
इह	इस लोकमें	विर्गाहितं	निन्दितको
पशून् वा पक्षिणः	पशुओं या पक्षियोंको	अमुत्र	यमलोकमें
प्राणत	जीवित	यम अनुचराः	यमराजके सेवक
उपरन्धयति	पकाता है	कुम्भीपाके	कुम्भीपाक (नरक) में
तं अपकर्णं	उस हृदयहीन	तप्ततेले	खौलते तेलमें
		उपरन्धयन्ति	रांधते हैं ॥१३॥

यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक् स कालसूत्रसंज्ञके नरके
अयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्या-
मतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिः
शरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशु-
रोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥१४॥

यः तु इह पितृ विप्र ब्रह्म ध्रुक् स कालसूत्र संज्ञके नरके अयुत
योजन परिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपरि अधस्तात् अग्नि अर्काभ्यां
अतितप्यमाने अभिनिवेशितः क्षुत् पिपासाभ्यां च दह्यमानः अन्तः बहिः
शरीर आस्ते शेते चेष्टते अवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि
तावत् वर्ष सहस्राणि ॥१४॥

यः तु इह	जो भी इस लोकमें	संज्ञके	नामक
पितृ विप्र	पिता-माता, ब्राह्मण	नरके	नरकमें
	तथा	अभिनिवेशितः	डाला जाता है ।
ब्रह्म ध्रुक्	वेदसे द्रोह करता है,	ताम्रमये	(वह) ताँवेका
स कालसूत्र	वह काल सूत्र		बना है ।

अयुत योजन	दस हजार योजन	पशुरोमाणि	उस नर पशुमें
परिमण्डले	घेरेका	यावन्ति च	जितने भी
उपरि अधस्तात्	ऊपर और नीचे	रोमाणि	रोम हैं,
अग्नि अर्काभ्यां	अग्नि और सूर्य द्वारा	तावत् वर्ष	उतने वर्ष-
तप्तखले	तपता मैदान है,	सहस्राणि	सहस्र तक
अतितप्यमाने	अत्यन्त तपाया	आस्ते शेते	कभी बैठता है,
	जाता है ।		लेटता है,
क्षुत् पिपासाभ्यां	(इसमें) भूख प्याससे	चेष्टते	छटपटाता है,
अन्तः बहिः	बाहर-भीतरसे	अवतिष्ठति	खड़ा रहता है,
शरीर च	शरीर भी	परिधावति	(कभी) दौड़ता
दह्यमानः	जलता हुआ		है ॥१४॥

यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगत-
स्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र हासावितस्ततो
धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गो हा
हतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा
पाखण्डानुगतं फलं भुङ्क्ते ॥१५॥

यः तु इह वै निजवेद पथात् अनापदि अपगतः पाखण्डं च उपगतः
तं असिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र ह असौ इतस्ततः धावमानः
उभयतः धारैः तालवन असिपत्रैः छिद्यमान सर्वाङ्गः हा हृतोऽस्मि इति
परमया वेदनया मूर्च्छितः पदे पदे निपतति स्वधर्महा पाखण्ड अनुगतं फलं
भुङ्क्ते ॥१५॥

यः तु इह	जो भी यहां	उपगतः	अपनाता है,
अनापदि	आपत्तिकाल न	तं	उसे
	होनेपर भी	असिपत्रवनं	असिपत्रवनमें
निजवेद पथात्	अपने वैदिक मार्गको	प्रवेश्य	ले जाकर
अपगतः	छोड़कर	कशया प्रहरन्ति	कोड़ोंसे मारते हैं,
च पाखण्डं	अन्य पाखण्ड (धर्म)	तत्र ह असौ	वहां तो यह

इतस्ततः इधर-उधर
 धावमानः दौड़ता हुआ
 तालवन तालवनके
 असिपत्रः तलवारके समान
 पत्तोंसे
 सर्वाङ्गः सब
 छिद्यमानः अंगोंके कटनेसे
 'हा हतोऽस्मि' 'हाय मारा गया'
 इति इस प्रकार
 (चिल्लाता)

परमया वेदनया घोर पीड़ासे
 मूर्च्छितः मूर्च्छित होता
 पदे पदे पद-पदपर
 निपतति गिरता है,
 स्वधर्महा (इस प्रकार) अपने
 धर्मको छोड़नेवाला
 पाखण्ड अनुगतं पाखण्डके पीछे
 जानेका
 फलं भुङ्क्ते फल भोगता है ॥१५॥

यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति
 ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान्नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति
 तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाण अवयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्तस्वरेण
 स्वनयन् क्वचिन्मूर्च्छितः कश्मलमुपगतो यथैवेहादृष्टदोषा
 उपरुद्धाः ॥१६॥

यः तु इह वै राजा राजपुरुषः वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे
 वा शरीरदण्डं स पापीयान् नरके अमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्र अतिबलैः
 विनिष्पिष्यमाण अवयवः यथा इव इह इक्षु खण्ड आर्तस्वरेण स्वनयन्
 क्वचित् मूर्च्छितः कश्मलं उपगतः यथैव इह अदृष्ट दोषा उपरुद्धाः ॥१६॥

यः तु इह वै	जो भी इस लोकमें	स पापीयान्	वह पापिष्ठ
	तो	अमुत्र	उस लोकमें
राजा वा	राजा या	सूकरमुखे	सूकर मुख
राजपुरुषः	राजकर्मचारी	नरके निपतति	नरकमें गिरता है ।
अदण्ड्ये	निरपराधको	यथा इव इह	जैसे इस लोकमें
दण्डं वा	दण्ड देते अथवा	इक्षु खण्डः	गन्नोंको (पेरते हैं)
ब्राह्मणे	ब्राह्मणको	तत्र अतिबलैः	वहाँ बहुत बलवान
शरीरदण्डं	शारीरिक दण्ड		(यमदूत द्वारा)
प्रणयति	देते हैं,	विनिष्पिष्यमाण	पीसे (कुचले) जाते

अवयवः	अंगोसे	आर्तस्वरेण	आर्त स्वरसे
यथा इव इह	जैसे इस लोकमें	स्वनयन्	चिल्लाता हुआ,
अदृष्ट दोषा	निर्धराध लोग	क्वचित् मूर्च्छितः	कभी मूर्छित हो
उपरुद्धाः	सैताये जानेपर		जाता है ॥१६॥
कश्मलं उषसः	कष्ट पाते थे		

यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपर-
व्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्त परव्यथो व्यथामा-
चरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः
पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये के चाभि-
द्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहयनिद्रानिर्वृतिरलब्धा-
स्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥१७॥

यः तु इह वै भूतानां ईश्वर उपकल्पित वृत्तीनां अविविक्त परव्यथानां
स्वयं पुरुष उपकल्पित वृत्तिः विविक्त परव्यथः व्यथां आचरति स परत्र
अन्धकूपे तत् अभिद्रोहेण निपतति तत्र ह असौ तैः जन्तुभिः पशु मृग पक्षि
सरीसृपैः मशक यूका मत्कुण मक्षिकादिभिः ये के च अभिद्रुग्धाः तैः सर्वतः
अभिद्रुह्यमाणः तमसि विहत निद्रा निर्वृतिः अलब्ध अवस्थानः परि-
क्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥१७॥

यः तु इह वै	जो कोई भी इस	ईश्वर	ईश्वर
	लोकमें	उपकल्पित	प्रदत्त
स्वयं परव्यथः	स्वयं दूसरोंकी पीड़ा	वृत्तीनां	आजीविकावाले
विविक्त	समझनेवाला	भूतानां	प्राणियोंको
	(होकर)	व्यथां आचरति	पीड़ा देता है,
पुरुष उपकल्पित	परमात्मा द्वारा दी	स परत्र	वह परलोकमें
	गयी	तत् अभिद्रोहेण	उस द्रोहके कारण
वृत्तिः	(विधि-निषेधयुक्त)	अन्धकूपे	अन्धकूप नरकमें
	आजीविकावाला	निपतति	गिरता है,
परव्यथानां	दूसरेकी पीड़ा	तत्र ह असौ	बहां तो यह
अविविक्त	न जाननेवाले	जन्तुः	प्राणी

पशु मृगपक्षि पशु, मृग, पक्षी,
 सरोसृपैः मशक सर्पादि सरकनेवाले,
 मच्छर
 यूका मत्कुण जोंक, खटमल
 मक्षिकादिभिः मक्खियों द्वारा
 ये के च जिस किसीसे भी
 अभिद्रुग्धाः द्राह किया था
 तैः उनके द्वारा
 सर्वतः चारों ओरसे

अभिद्रुह्यमाणः द्रोह किये (सताये)
 जानेसे
 विहृत निद्रा निद्रा और शान्ति
 निर्वृतिः नष्ट हो जाती है,
 अलब्ध स्थान न
 अवस्थानः मिलनेसे
 यथा कुशरीरे जैसे रोगी
 जीवः शरीरमें जीव
 परिक्रामति छटपटाता-धूमता
 रहता है ॥१७॥

यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किञ्च नोपनत-
 मनिर्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे
 निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमि-
 भिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तदत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमा-
 त्मानं यातयते ॥१८॥

यः तु इह वा असंविभज्य अश्नाति यत् किञ्चित् न उपनतं अनिर्मित
 पञ्चयज्ञः वायस संस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरक अधमे निपतति तत्र
 शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिः एव भक्ष्यमाणः कृमि
 भोजनः यावत् तत् अत्त अप्रहुत आदो अनिर्वेशं आत्मानं यातयते ॥१८॥

यः तु इह वा जो भी इस लोकमें
 ही
 यत् किञ्चित् जो कुछ भी
 उपनतं मिला है उसे
 असंविभज्य बिना बांटे ही
 पञ्चयज्ञः पञ्च-महायज्ञ
 अनिर्मित किये बिना
 अश्नाति खा लेता है,

वायस संस्तुतः (उसे) कौएके समान
 कहा गया है
 स परत्र वह परलोकमें
 कृमिभोजने कृमिभोजन नामक
 नरक अधमे अधम नरकमें
 निपतति गिरता है ।
 तत्र वहाँ
 शतसहस्रयोजने एक लाख योजनके

कृमिकुण्डे	कीड़ोंके कुण्डमें	न अत्त	न बांटने
कृमिभूतः	कीड़ा होकर	अप्रहुत	पञ्च-महायज्ञ न करने
कृमिभिः एव	कीड़ोंके द्वारा ही	आदो आत्मानं	आदि अपने (पापों-का)
भक्ष्यमाणः	खाया जाता हुआ		
स्वयं	स्वयं	अनिर्वेशं	प्रायश्चित्त नहीं हो
कृमि भोजनः	कीड़े ही खाता है ।		जाता
यावत् तत्	जब तक उस	यातयते	कष्ट भोगता रहता है ॥१८॥

यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद्वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य
वापहरत्यन्यस्य वानापदि पुरुषस्तममुत्र राजन् यमपुरुषा अय-
स्मयैरग्निपिण्डैः सन्दंशैस्त्वचि निष्कुषन्ति ॥१९॥

यः तु इह वै स्तेयेन बलात् वा हिरण्य रत्न आदीनि ब्राह्मणस्य वा
अपहरति अन्यस्य वा अनापदि पुरुषः तं अमुत्र राजन् यमपुरुषाः अयस्मयैः
अग्निपिण्डैः सन्दंशैः त्वचि निष्कुषन्ति ॥१९॥

राजन्	राजन् !	अपहरति	अपहरण करता है
यः तु इह वै	जो भी इस लोकमें	अमुत्र	परलोकमें
	तो	तं पुरुषः	उस प्राणीको
स्तेयेन	चोरीसे	यमपुरुषाः	यमराजके सेवक
वा बलात्	अथवा बलपूर्वक	सन्दंशैः	सन्दंश नरकमें
ब्राह्मणस्य	ब्राह्मणका	अयस्मयैः	लोहेसे बने
वा अनापदि	अथवा आपत्ति न	अग्निपिण्डैः	तप्त गोलेसे
	होनेपर भी	निष्कुषन्ति	चमड़ेको दागते हैं
अन्यस्य	दूसरे किसीका	सन्दंशै	संडासीसे
हिरण्य वा	सोना अथवा	त्वचि	बाल खींचते
रत्न आदीनि	रत्न आदि		हैं ॥१९॥

यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभि-
गच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या
पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या ॥२०॥

यः तु इह वा अगम्यां स्त्रियं अगम्यं वा पुरुषं योषित् अभिगच्छति
ताः अमुत्र कशया ताडयन्तः तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषं आलिङ्गयन्ति
स्त्रियं च पुरुष रूपया सूर्म्या ॥२०॥

यः तु इह वा	जो भी कोई इस	कशया ताडयन्तः	कोड़ोंसे मारते हुए
	लोकमें	लोहमय्या	लोहेसे बनी
अगम्यां स्त्रियं	अगम्या स्त्रीसे	तिग्मया सूर्म्या	तप्त स्त्री मूर्तिसे
वा अगम्यं पुरुषं	अथवा अगम्य पुरुषसे	च स्त्रियं	और स्त्रीको
योषित्	स्त्री	पुरुष रूपया	पुरुषाकृति
अभिगच्छति	सहवास करती है	सूर्म्या	तप्त मूर्तिसे
ताः अमुत्र	उन दोनोंको	आलिङ्गयन्ति	आलिङ्गन कराते
	परलोकमें		हैं ॥२०॥

यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्र-
कण्टकशात्मलीमारोप्य निष्कर्षन्ति ॥२१॥

यः तु इह वै सर्वं अभिगमः तं अमुत्र निरये वर्तमानं वज्र कण्टक
शात्मलीं आरोप्य निष्कर्षन्ति ॥२१॥

यः तु इह वै	जो भी तो इस	वज्र कण्टक	वज्रके समान कांटो
	लोकमें		वाले
सर्वं अभिगमः	(पशु आदि) सभीसे	शल्मलीं	सेमर-वृक्षपर
	व्यभिचार करता है	आरोप्य	चढ़ाकर
अमुत्र तं	परलोकमें उसे	निष्कर्षन्ति	नीचे खींचते हैं ॥२१॥
निरये वर्तमानं	नरकमें ले जाकर		

ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून्
भिद्दन्ति ते सम्परेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्नमर्यादास्तस्यां
निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना
न त्रियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्तो
विष्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यन्ते ॥२२॥

ये तु इह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून् भिन्दन्ति ते सम्परेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्न मर्यादाः तस्यां निरय परिखा भूतायां नद्यां यादो गणैः इतः ततः भक्ष्यमाणः आत्मना न विद्युज्यमानाः च असुभिः उह्यमानाः स्व अघेन कर्मपाकं अनुस्मरन्तः विट् मूत्र पूय शोणित केश नख अस्थि मेदः मांस वसा बाहिन्यां उपतप्यन्ते ॥२२॥

ये तु इह	जो भी इस लोकमें	अस्थि	हड्डी,
वै राजन्या	कोई राजा	मेदः मांस	मज्जा, मांस,
वा राजपुरुषा	अथवा राजकर्मचारी	वसा बाहिन्यां	चर्बी बहनेवाली
अपाखण्डा	पाखण्डी न होनेपर भी	नद्यां	नदीमें
धर्मसेतून्	धर्मकी मर्यादाको	यादो गणैः	जलचरों द्वारा
भिन्दन्ति	तोड़ते हैं,	इतः ततः	जहां-तहांसे
सम्परेत्य	मरनेपर	भक्ष्यमाणा	खाये जाते हुए भी
ते भिन्न मर्यादाः	वे मर्यादा तोड़नेवाले	आत्मना	शरीर
वैतरण्यां	वैतरणीमें	विद्युज्यमानाः	छूटता नहीं,
निपतन्ति	गिरते हैं,	असुभिः	प्राण उसे
तस्यां	उस	उह्यमानाः	ढोये जाते हैं,
निरय परिखा	नरककी खाईके	स्व अघेन	अपने पापका
भूतायां	समान	कर्म पाकं	कर्म-फल
विट् मूत्र पूय	विष्ठा, मूत्र, पीव,	अनुस्मरन्तः	बार-बार स्मरण
शोणित केश	रक्त केश,	उपतप्यन्ते	करते हुए
नख	नख,		सन्तप्त होते रहते हैं ॥२२॥

ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्त-लज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविष्मूत्रश्लेष्ममला-पूर्णर्णवे निपतन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥२३॥

ये तु इह वै वृषलीपतयः नष्ट शौच आचार नियमाः त्यक्त लज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते च अपि प्रेत्य पूय विट् मूत्र श्लेष्म मल आपूर्ण अर्णवे निपतन्ति तत् एव अति बीभत्सितं अश्नन्ति ॥२३॥

ये तु इह वै	जो कोई भी तो	ते च अपि प्रेत्य दे भी मरकर
	इस लोकमें	पूय विट् मूत्र पीव, विष्ठा, मूत्र,
शौच	पवित्र	श्लेष्म मल कफ, मलसे
आचार नियमः	आचरणके नियमोंके	आपूर्ण अर्णवे भरे हुए समुद्रमें
नष्ट	नष्ट करके	निपतन्ति गिरते हैं
त्यक्त लज्जाः	निर्लज्ज होकर	तत् एव उसी
वृषलीपतयः	भ्रष्ट शूद्राओंको	अति बीभत्सितं अत्यन्त घृणित
	रखकर	वस्तुओंको
पशुचर्या चरन्ति	पशुओंके समान	अश्नन्ति खाते हैं ॥२३॥
	आचरण करते हैं,	

ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा
अतीर्थे च मृगान्निघ्नन्ति तानपि सम्परेताँल्लक्ष्यभूतान् यमपुरुषा
इषुभिर्विध्यन्ति ॥२४॥

ये तु इह वै श्वगर्दभपतयः ब्राह्मणादयः मृगयाविहाराः अतीर्थे
च मृगान् निघ्नन्ति तान् अपि सम्परेतान् लक्ष्यभूतान् यमपुरुषाः इषुभिः
विध्यन्ति ॥२४॥

ये तु इह	जो कोई इस लोकमें	मृगान् निघ्नन्ति पशुओंको मारते हैं,
ब्राह्मण	ब्राह्मण	तान् अपि उनको भी
आदयः वै	आदि (द्विज) होकर	सम्परेतान् मरनेपर
	भी	यमपुरुषाः यमराजके सेवक
श्वगर्दभपतयः	कुत्ते या गधे	लक्ष्यभूतान् लक्ष्य बनाकर
	पालते हैं,	इषुभिः वाणोंसे
मृगयाविहाराः	आखेट खेलते हैं,	विध्यन्ति मारते हैं ॥२४॥
अतीर्थे अपि	आखेट-शास्त्रके	
	विपरीत भी	

ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति तान-
मुष्मिल्लोके वैशसे नरके पतितान्निरयपतयो यातयित्वा विश-
सन्ति ॥२५॥

ये तु इह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति तान् अमुष्मिन्
लोके वैशसे नरके पतितान् निरय पतयः यातयित्वा विशसन्ति ॥२५॥

वै	चाहे	अमुष्मिन् लोके	परलोकमें
इह	इस लोकमें	वैशसे नरके	वैशस नरकमें
ये तु	जो भी	पतितान्	गिराकर
दाम्भिका	पाखण्डी लोग	निरय पतयः	उस नरकके नायक-
दम्भयज्ञेषु	पाखण्डपूर्ण यज्ञमें		लोग
पशून् विशसन्ति	पशुओंका वध करते	यातयित्वा	पीड़ा दे देकर
	हैं,	विशसन्ति	मारते हैं ॥२५॥
तान्	उनको		

यस्त्विह वै सवर्णा भार्या द्विजो रेतः पाययति काम-
मोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतः कुल्यायां पातयित्वा रेतः सम्पाय-
यन्ति ॥२६॥

यः तु इह वै सवर्णा भार्या द्विजः रेतः पाययति काममोहितः तं पापकृतं
अमुत्र रेतः कुल्यायां पातयित्वा रेतः सम्पाययन्ति ॥२६॥

वै	चाहे	तं पापकृतं	उस पाप करने
यः तु द्विजः	जो कोई द्विजाति		वालेको
इह	इस लोकमें	अमुत्र	परलोकमें
काममोहितः	कामातुर होकर	रेतः कुल्यायां	रेतः कुल्यामें
सवर्णा भार्या	अपने वर्णको	पातयित्वा	गिराकर
	पत्नीको	रेतः	वीर्य
रेतः पाययति	वीर्यपान कराता है	सम्पाययन्ति	पिलाते हैं ॥२६॥

ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान् सार्थान्
वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटा वा तांश्चापि हि परेत्य
यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं
खादन्ति ॥२७॥

ये तु इह वै दस्यवः अग्निदा गरदा ग्रामान् सार्थान् वा विलुम्पन्ति
राजानः राजभटा वा तान् च अपि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः
सप्तशतानि विंशतिः च सरभसं खादन्ति ॥२७॥

ये तु इह	जो भी इस लोकमें	वा सार्थान्	अथवा व्यापारियोंके
वै दस्यवः	चाहे डाकू हों		दलको
वा राजानः	अथवा राजा या	विलुम्पन्ति	लूट लेते हैं,
राजभटा	राज-सैनिक,	तान् च	उनको भी
अग्निदा	कहीं (किसीके	अपि हि	निश्चय ही
	घरमें) आग लगा	यमदूता	यमके दूत
	देते हैं	सप्तशतानि	सात सौ
गरदा	(किसीको) विष दे	वज्रदंष्ट्राः	वज्र जैसे दांत वाले
	देते हैं,	श्वानः	कुत्ते
ग्रामान्	गावोंको	सरभसं खादन्ति	बड़े वेगसे काटते
			हैं ॥२७॥

यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा
कथञ्चित्स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधः शिरा निरवकाशे
योजनशतोच्छ्रायाद् गिरिमूर्ध्नः सम्पात्यते यत्र जलमिव स्थल-
मश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न
न्त्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति ॥२८॥

यः तु इह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथञ्चित्
स वै प्रेत्य नरके अवीचिमति अधः शिरा निरवकाशे योजनशत उच्छ्रायात्
गिरिमूर्ध्नः सम्पात्यते यत्र जलं इव स्थलं अश्मपृष्ठं अवभासते तत्
अवीचिमत् तिलशः विशीर्यमाण शरीरः नन्त्रियमाणः पुनः आरोपितः
निपतति ॥२८॥

यः तु इह वा	जो भी कोई इस	वा दाने	अथवा दानमें
	लोकमें	साक्ष्ये	गवाही देनेमें
द्रव्यविनिमये	धनके लेन-देनमें	कथञ्चित्	किसी भी प्रकार

अनृतं वदति झूठ बोलता है
 स वै प्रेत्य निश्चय वह मरकर
 अवीचिमति अवीचिमान्
 नरके नरकमें
 अधः शिरा नीचे सिर करके
 योजनशत सौ योजन
 उच्छ्रायात् ऊँचाईसे
 निरवकाशे ठोस
 गिरिमूर्ध्नः पहाड़की चोटीपर
 सम्पात्यते गिराया जाता है,
 यत्र जलं इव जहां जलकी भांति
 अश्मपृष्ठं पत्थरका ठोस
 स्थलं स्थल

अवभासते प्रतीत होता है ।
 तत् अवीचिमत् इसीसे उसका नाम
 अवीचिमान है,
 तिलशः (वहां गिराये जाने
 पर) तिलके बराबर
 विशीर्यमाण टुकड़े
 शरीरः शरीरके हों जाते
 हैं; पर
 नम्रमाणः मरता नहीं
 पुनः आरोपितः बार-बार ऊपर ले
 जाकर
 निपतति पटका जाता है ॥२८॥

यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं
 वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादस्तेषां निरयं नीतानामुरसि
 पदाऽऽक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं काष्णायसं निषिञ्चन्ति ॥२९॥

यः तु इह वै विप्रः राजन्यः वैश्यः वा सोमपीथः तत् कलत्रं वा सुरां
 व्रतस्थः अपि वा पिबति प्रमादतः तेषां निरयं नीतानां उरसि पदा आक्रम्य
 आस्ये वह्निना द्रव्यमाणं काष्णं आयसं निषिञ्चन्ति ॥२९॥

यः तू इह वै जो भी इस लोकमें
 कोई
 विप्रः राजन्यः ब्राह्मण, क्षत्रिय
 वा वैश्यः अथवा वैश्य
 व्रतस्थः अपि व्रती होनेपर भी
 वा अथवा
 प्रमादतः प्रमादवश
 सोमपीथः सोमपान करता है
 वा तत् कलत्रं अथवा उसकी पत्नी
 सुरां पिबति मदिरा पीती है

तेषां उनको
 निरयं नीतानां नरक ले जानेपर
 उरसि पदा छातीको पेरसे
 आक्रम्य दबाकर
 आस्ये मुखमें
 वह्निना द्रवमाणं आगसे पिघलाया
 काष्णं आयसं शीशा (काला
 लोहा)
 निषिञ्चन्ति डालते हैं ॥२९॥

अथ च यस्त्विह वा आत्मसम्भावनेन स्वयमधमो जन्म-
तपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक
एव मृत्वा क्षारकर्म निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरन्ता यातना
ह्यश्नुते ॥३०॥

अथ च यः तु इह वा आत्म सम्भावनेन स्वयं अधमः जन्म तपः
विद्या आचार वर्ण आश्रमवतः वरीयसः न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा
क्षारकर्म निरये अवाक्शिरा निपातितः दुरन्ता यातना हि अश्नुते ॥३०॥

अथ च	और भी,	न बहु मन्येत	आदरणीय नहीं
यः तु वा	जो भी कोई		मानता
इह	इस लोकमें	स मृतक एव	वह (जीता हुआ
स्वयं अधमः	स्वयं निम्न श्रेणीका		भी) मरे जैसा ही है,
	होनेपर भी	मृत्वा	मरकर
आत्म	अपनेको	क्षारकर्म	क्षार कर्म
सम्भावनेन	बड़ा मानेके कारण	निरये	नरकमें
जन्म तपः विद्या	कुल, तपस्या, विद्या,	अवाक्शिरा	नीचे सिर किये
आचार	आचार,	निपातितः	गिराया जाता है,
वर्ण आश्रमवतः	वर्ण, आश्रमसे	दुरन्ता	अपार
वरीयसः	अपनेसे श्रेष्ठको*	यातना हि	कष्ट ही
		अश्नुते	भोगता है ॥३०॥

ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो
नृपशून् खादन्ति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तो

* सनातन-धर्मके अनुसार त्यागी सबसे बड़ा है। ब्राह्मणोंमें क्रमशः
त्याग, तप, विद्या आयुसे बड़प्पन होता है।

क्षत्रियोंमें त्याग, तप, विद्या, बल (सैन्यबल एवं शस्त्र-बल, देह-
बल) से बड़प्पन होता है।

वैश्यमें विद्या, धन तथा आयुसे क्रमशः बड़प्पन होता है, शूद्रमें वह
जिसका सेवक है उसके बड़प्पनसे और आयुसे बड़प्पन होता है।

रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनावदायामृक् पिबन्ति नृत्यन्ति
च गायन्ति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषादाः ॥३१॥

ये तु इह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याः च स्त्रियः नृपशून्
खादन्ति तात् च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तः रक्षोगणाः
सौनिका इव स्वधितिना अवदाय अमृक् पिबन्ति नृत्यन्ति च गायन्ति च
हृष्यमाणा यथा इह पुरुषादाः ॥३१॥

ये तु वै	जो भी कोई	यातयन्तः	पीड़ा देते हुए
पुरुषाः इह	पुरुष इस लोकमें	सौनिका इव	कसाईके समान
पुरुषमेधेन	नरमेध द्वारा	यथा इह	जैसे इस लोकमें
यजन्ते	यज्ञ करते हैं,	पुरुषादाः	नरभक्षी-पुरुष
च याः स्त्रियः	और जो स्त्रियां		(करते थे)
नृपशून्	पशुओंकी भांति	स्वधितिना	अपनी कुल्हाड़ीसे
	पुरुषोंको	अवदाय	काटकर
खादन्ति	खा जाती हैं,	अमृक् पिबन्ति	(उनका) रक्त पीते
तात् च ते	उनको वे ही		हैं,
पशव इव	पशुके समान	च नृत्यन्ति	और नाचते
निहताः	मारे गये लोग	च गायन्ति	तथा गाते
यमसदने	यमलोकमें	हृष्यमाणा	हर्षित होते हैं ॥३१॥
रक्षोगणाः	राक्षस होकर		

ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भकैरुपसृता-
नुपविश्रम्भय्य जिजीविषून् शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया
यातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः
क्षुत्तृड्भ्यां चाभिहताः कङ्कवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुण्डैराहन्य-
माना आत्मशमलं स्मरन्ति ॥३२॥

ये तु इह वा अनागसः अरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भकैः उपसृतान् उप-
विश्रम्भय्य जिजीविषून् शूल सूत्र आदिषु उपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयन्ति
ते अपि च प्रेत्य यमयातनासु शूल आदिषु प्रोत आत्मानः क्षुत् तृड्भ्यां च

अभिहताः कङ्क वट आदिभिः च इतः ततः तिग्मतुण्डैः आहन्यमाना आत्म
शमलं स्मरन्ति ॥३२॥

ये तु वा	जो कोई भी	प्रेत्य	मरनेपर
इह	इस लोकमें	यमयातनासु	यम-यातनाके समय
अनागसः	निरपराध	शूल आदिषु	शूलप्रोत आदि
जिजीविषून्	जोनेकी इच्छा		नरकोंमें
	रखनेवाले	प्रोत आत्मानः	(शूलसे) उनको
ग्रामे वा अरण्ये	गाँव या वनमें		वेधा जानेपर
वैश्वम्भकैः	विश्वास दिलानेके	क्षुत् तृद्भ्यां	भूख-प्याससे
	उपायोंसे	च अभिहताः	भी सताये जानेपर,
उपविश्वम्भय्य	विश्वास दिलाकर	कङ्क वट	कङ्क, वटेर
उपसृतान्	समीप आयोंको	आदिभिः	आदि द्वारा
शूल सूत्र आदिषु	काटें या सूत आदिमें	च इतः ततः	भी जहाँ-तहाँ
उपप्रोतान्	बींधकर या बाँधकर	तिग्मतुण्डैः	तीखी चोचोंसे
क्रीडनकतया	खिलवाड़ करते हुए	आहन्यमाना	मारे जानेपर
यातयन्ति	पीड़ा देते हैं,	आत्म शमलं	अपने पापोंको
ते अपि च	उनको भी	स्मरन्ति	स्मरण करते हैं ॥३२

ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बणस्वभावा यथा
दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दन्दशूकाख्ये निपतन्ति यत्र नृप
दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिले-
शयान् ॥३३॥

ये तु इह वै भूतानि उद्वेजयन्ति नराः उल्बण स्वभावा यथा दन्द-
शूकाः ते अपि प्रेत्य नरके दन्दशूक आख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः
पञ्चमुखाः सप्तमुखाः उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥३३॥

ये तु वै	जो कोई भी	उल्बण स्वभावा	उग्र स्वभाव
इह	इस लोकमें	नराः	पुरुष
नृप	राजन् !		

यथा दन्दशूकाः	जैसे सर्पके समान	सप्तमुखाः	सात मुख
भूतानि	प्राणियोंको	दन्दशूकाः	वाले सर्प
उद्वेजयन्ति	उद्विग्न करते हैं	यथा बिलेशयान्	चूहोंके समान
ते अपि प्रेत्य	वे भी मरकर		(उन्हें)
दन्दशूक आख्ये	दन्दशूक नामक	उपसृत्य	पास आकर
नरके निपतन्ति	नरकमें गिरते हैं	प्रसन्ति	निगल लेते हैं ॥३३॥

यत्र पञ्चमुखाः जहां पांच मुखवाले,

ये त्विह वा अन्धावटकुसूलगुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति
तथामुत्र तेष्येवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥३४॥

ये तु इह वा अन्ध अवट कुसूल गुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथा
अमुत्र तेषु एव उपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥३४॥

ये तु इह	जो कोई इस लोकमें	तथा तेषु एव	वैसे ही उन्ही
अन्ध अवट	अँधेरी खत्तियों,		स्थानोंमें
कुसूल	कोठों	उपवेश्य	प्रवेश कराके
वा गुहादिषु	अथवा गुफादिमें	सगरेण	विषैले
भूतानि	प्राणियोंको	वह्निना धूमेन	अग्नि-धूममें
निरुन्धन्ति	बन्द कर देते हैं	निरुन्धन्ति	घुटने डालते हैं ॥३४॥
अमुत्र	परलोकमें		

यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान् वा गृहपतिरसकृदुपगत-
मन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य चापि निरये
पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्ककाकवटादयः प्रसह्यो-
रुबलादुत्पाटयन्ति ॥३५॥

यः तु इह वा अतिथीन् अभ्यागतान् वा गृहपतिः असकृत् उपगत-
मन्युः दिधक्षुः इव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य च अपि निरये पापदृष्टेः
अक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्क काक वट आदयः प्रसह्य उरु बलात् उत्पाट-
यन्ति ॥३५॥

यः तु वा	जो कोई भी	पापदृष्टेः	पाप-दृष्टि वालेके
इह	इस लोकमें	अक्षिणी निरये	नेत्र नरकमें
गृहपतिः	गृहस्थ	वज्रतुण्डा	वज्रके समान
अतिथीन्	अतिथिको		चोंचवाले
वा अभ्यागतान्	अथवा अभ्यागतको*	गृधाः कङ्कः	गोध, कंक,
असकृत्	बार-बार	काक वट	कौए, बटेर
उपगतमन्युः	क्रोधमें भरकर	आदयः	आदि
दिधक्षुः इव	मानो जला देगा	प्रसह्य बलात्	अत्यन्त बलात्कार
	इस प्रकार		से
पापेन चक्षुषा	पाप दृष्टिसे	उत्पाटयन्ति	उखाड़ (निकाल)
निरीक्षते	देखता है,		लेते हैं ॥३५॥
तस्य च अपि	उसके भी		

यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहङ्कृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशङ्की अर्थव्ययनाशचिन्तया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृतिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणसंरक्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥३६॥

यः तु इह वा आढ्याभिमतिः अहङ्कृतिः तिर्यक् प्रेक्षणः सर्वतः अभिविशङ्की अर्थव्ययनाश चिन्तया परिशुष्यमाण हृदयवदनः निर्वृतिमनवगतः ग्रह इव अर्थमभिरक्षति स च अपि प्रेत्य तत् उत्पादन उत्कर्षण संरक्षण शमल ग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापपुरुषं धर्मराजपुरुषा वायका इव सर्वतः अङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥३६॥

* बिना सूचना अचानक आये अपरिचितको अतिथि कहते हैं और परिचित, सम्बन्धी सूचना देकर या बिना सूचना आवें तो अभ्यागत कहे जाते हैं; किन्तु भिक्षुक अतिथि या अभ्यागत नहीं माना जाता ।

यः तु वा	जो कोई भी	अभिरक्षति	रक्षा किया करता
इह आढ्या-	इस लोकमें अपनेको		है,
भिमतिः	धनी माननेवाला	स च अपि प्रेत्य	वह भी मरकर
अहङ्कृतिः	अहंकारी	तत् उत्पादन	उस (धन) के
तिर्यक् प्रेक्षणः	टेढी आंखसे देखने- वाला	उत्कर्षण	उपार्जन,
सर्वतः	सब	संरक्षण	बढ़ाने और
अभिविशङ्की	ओरसे सबपर सन्देह	शमलग्रह	रक्षणमें
अर्थव्ययनाश	करनेवाला,	सुचीमुखे नरके	हुए पापोंसे
	धनके खर्च या	निपतति	सूची मुख नरकमें
	नाशको	यत्र ह वित्तग्रहं	गिरता है,
चिन्तया	चिन्तासे		जहां कि (उस)
परिशुष्यमाण	सूखते	पापपुरुषं	अर्थ-पिशाच
हृदयवदनः	चित्त और मुखसे	सर्वतः अङ्गेषु	पापी-पुरुषके
निर्वृति	चैन न	वायका इव	सभी अंगोंको
अनवगतः	पाकर	धर्मराजपुरुषा	दर्जीकी भांति
ग्रह इव अर्थ	यक्षकी भांति धनको	सुत्रैः परिवयन्ति धागेसे	यमराजके सेवक
			सुत्रैः परिवयन्ति धागेसे सीते हैं ॥३६॥

एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चाव-
निपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे
त उभयशेषाभ्यां निविशन्ति ॥३७॥

एवं विधा नरकः यम आलये सन्ति शतशः सहस्रशः तेषु सर्वेषु च
सर्व एव अधर्म वर्तिनः ये केचित् इह उदिता अनुदिताः च अवनिपते पर्यायेण
विशन्ति तथा एव धर्म अनुवर्तिनः इतरत्र इह तु पुनः भवे त उभय
शेषाभ्यां निविशन्ति ॥३७॥

अवनिपते	राजन् !	यम आलये	यमलोकमें
एवं विधा	इस प्रकारके	शतशः	सैकड़ों,
नरकाः	नरक	सहस्रशः सन्ति	हजारों हैं,

तेषु सर्वेषु च उन सबमें ही
 ये केचित् इह जो कोई यहां
 उदिता बतलाते गये,
 च अनुदिता: और नहीं बतलाये
 गये
 सर्व एव अधर्म सभी अधर्म
 वर्तिनः करनेवाले
 पर्यायेण बारी-बारीसे
 विशन्ति जाते हैं
 तथा एव इसी प्रकार

धर्म अनुवर्तिनः धर्म करनेवाले
 इतरत्र दूसरी ओर
 (स्वर्गादिमें जाते हैं)
 पुनः इह तु भवे फिर इस लोकमें
 जन्म लेनेवाले
 त उभय उन दोनों
 शेषाभ्यां (पाप-पुण्य) के बचे
 भागसे
 निविशन्ति आते हैं ॥३७॥

निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः ॥ एतावानेवाण्ड-
 कोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत्तद्भगवतो
 नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयम-
 नुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः
 परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥३८॥

निवृत्ति लक्षण मार्गः आदाः एव व्याख्यातः एतावान् एव अण्डकोशः
 यः चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत् तद् भगवतः नारायणस्य
 साक्षात् महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपं आत्ममाया गुणमयं अनुवर्णितं आदृतः
 पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनः अग्राह्यं अपि श्रद्धा
 भक्ति विशुद्ध बुद्धिः वेद ॥३८॥

निवृत्ति लक्षण निवृत्तिरूप
 मार्गः आदाः एव मार्ग पहिले ही
 व्याख्यातः बतलाया गया है ।
 एतावान् एव इतना ही
 अण्डकोशः ब्रह्माण्ड है
 यः पुराणेषु जो पुराणोंमें
 चतुर्दशधा चौदह

विकल्पित लोकोंके रूपमें
 उपगीयते वर्णन किया जाता है,
 यत् तद् जो कि
 साक्षात् साक्षात्
 महापुरुषस्य परमपुरुष
 भगवतः भगवान्
 नारायणस्य नारायणके

आत्ममाया	अपनी मायाके	स उपगेयं	वह शास्त्र वर्णित
गुणमयं	गुणोंसे बना	परमात्मनः	परमात्माके
स्थविष्ठं रूपं	स्थूल रूपके	अग्राह्यं अपि	अग्राह्य स्वरूपको
अनुवर्णितं	वर्णनको		भी
आदृतः पठति	आदर पूर्वक	श्रद्धा भक्ति	श्रद्धा भक्तिसे
	पढ़ता है,	विशुद्ध बुद्धिः	शुद्ध हुई बुद्धिसे
शृणोति	सुनता है,	वेद	जान सकता है ॥३८॥
श्रावयति	सुनाता है,		

श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः ।

स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मं धिया नयेदिति ॥३९॥

श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्म रूपं भगवतः यतिः स्थूले निर्जितं आत्मानं
शनैः सूक्ष्मं धिया नयेत् इति ॥३९॥

यतिः	यत्नशील	स्थूले	स्थूल रूपमें
भगवतः	भगवान्के	निर्जितं आत्मानं	चित्त लग जानेपर
स्थूलं तथा	स्थूल तथा	धिया शनैः	बुद्धिके द्वारा
सूक्ष्म	सूक्ष्म		धीरे-धीरे
रूपं श्रुत्वा	रूपका (वर्णन)	इति सूक्ष्मं	इस प्रकार सूक्ष्ममें
	श्रवण करके	नयेत्	ले जाय ॥३९॥

भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभःसमुद्र-

पातालदिङ् नरकभागणलोकसंस्था ।

गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य

स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥४०॥

भूद्वीप वर्ष सरित् अद्रि नभः समुद्र पाताल दिक् नरक भागण लोक
संस्था गीता मया तव नृप अद्भुतं ईश्वरस्य स्थूलं वपुः सकल जीव निकाय
धाम ॥४०॥

नृप	राजन् !	सकल जीव	सब जीव
भूद्वीप	पृथ्वीके द्वीप,	निकाय	समूहोंका
वर्ष सरित्	वर्ष, नदियां और	धाम	निवास-स्थान
अद्रि	पर्वत,	ईश्वरस्य	भगवान्के
नभः समुद्र	आकाश, समुद्र,	स्थूलं	विराट्
पाताल दिक्	पाताल, दिशाएँ,	अद्भुतं वपुः	अद्भुत रूपका
नरक भागण	नरक, ज्योति-	मया	मैंने
	मण्डल,	तव गीता	तुमसे वर्णन कर
लोक संस्था	लोकोंकी स्थितिरूपी		दिया ॥४०॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्रत्रयां पारमहंस्यां
संहितायां पञ्चमस्कन्धे नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

॥ इति पञ्चमः स्कन्धः समाप्तः ॥

॥ हरिः ॐ तत्सत् ॥

॥ षष्ठ स्कन्ध ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजोवाच-

निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा ।

क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः ॥१॥

निवृत्तिमार्गः कथितः आदौ भगवता यथा क्रमयोग उपलब्धेन
ब्रह्मणा यत् असंसृतिः ॥१॥

भगवता	भगवन् आपने	ब्रह्मणा	ब्रह्माजी(के लोक)को
आदौ	पहिले	उपलब्धेन	प्राप्त करके
निवृत्तिमार्गः	निवृत्ति-मार्गका	यत्	जिनके द्वारा
कथितः	वर्णन किया	असंसृतिः	मोक्ष प्राप्त
यथा	जैसे		करता है ॥१॥
क्रमयोग	क्रमशः		

प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने ।

योऽसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गः पुनः पुनः ॥२॥

प्रवृत्ति लक्षणः च एव त्रैगुण्य विषयः मुने यः असाः अवलीन प्रकृतेः
गुणसर्गः पुनः पुनः ॥२॥

मुने	मुनिवर !	अलीन प्रकृतेः	प्रकृतिका लय न
प्रवृत्ति लक्षणः	प्रवृत्ति स्वरूप		होनेसे
त्रैगुण्य विषयः	त्रिगुणोंके विषय (स्वर्गादि)	पुनः पुनः	बार-बार
एव च	का भी(वर्णन किया)	गुणसर्गः	त्रिगुणमय संसारमें
यः असाः	(जिनमें) यह जीव		जन्मता है ॥२॥

अधर्मलक्षणा नाना नरकाश्चानुवर्णिताः ।

मन्वन्तरश्चव्याख्यात आद्यः स्वायम्भुवो यतः॥३॥

अधर्मलक्षणा नाना नरकाः च अनुवर्णिताः मन्वन्तरः च व्याख्यातः
आद्यः स्वायम्भुवः यतः ॥३॥

अधर्मलक्षणा	अधर्मके (फलसे) मिलनेवाले	यतः आद्यः	जिसमें पहिले
नाना	अनेक प्रकारके	स्वायम्भुवः	स्वायम्भू मनु हुए
नरकाः च	नरकोंका भी	मन्वन्तरः च	उस मन्वन्तरका भी
अनुवर्णिताः	(आपने) वर्णन किया,	व्याख्यातः	वर्णन किया ॥३॥

प्रियव्रतोत्तानपदोर्वशस्तच्चरितानि च ।

द्वीपवर्षसमुद्राद्रिनद्युद्यानवनस्पतीन् ॥४॥

प्रियव्रत उत्तानपदः वंशः तत् चरितानि च द्वीप वर्ष समुद्र अद्रि नदी
उद्यान वनस्पतीन् ॥४॥

प्रियव्रत	प्रियव्रत तथा	द्वीप वर्ष	द्वीपों, वर्षों
उत्तानपदः	उत्तानपादके	समुद्र अद्रि	समुद्रों, पर्वतों,
वंशः	वंशका एवं	नदी उद्यान	नदियों, बगीचों
तत्	उनके	वनस्पतीन्	वृक्षोंका (वर्णन किया) ॥४॥
चरितानि च	चरित्रोंका भी (वर्णन किया)		

धरामण्डलसंस्थानं भागलक्षणमानतः ।

ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः ॥५॥

धरामण्डल संस्थानं भाग लक्षण मानतः ज्योतिषां विवराणां च
यथा इदं असृजत् विभुः ॥५॥

विभुः	सर्वव्यापक ईश्वरने	संस्थानं	स्थितिका
यथा इदं	जैसे इस संसारकी	भाग लक्षण	विभाग, लक्षण,
असृजत्	सृष्टि की (उस)	मानतः	परिमाणके साथ
धरामण्डल	भू-मण्डलकी		(वर्णन किया) ॥५॥
ज्योतिषां	ग्रह-नक्षत्रोंका		
च विवराणां	तथा पातालादि		
	भू-विवरोंका		

अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ।

नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥६॥

अधुना इह महाभाग यथा इव नरकात् नरः नाना उग्र यातनात्
नेयात् तत् मे व्याख्यातुं अर्हसि ॥६॥

महाभाग	महाभाग !	यातनात्	यातनावाले
अधुना	इस समय	नरकात्	नरकोंसे
इह	इसी संसारमें	नेयात्	निकल (बच) संके
यथा इव	जैसे भी	तत् मे	वह मुझे (आपको)
नरः	मनुष्य	व्याख्यातुं	बतलाना
नाना उग्र	अनेक प्रकारकी	अर्हसि	चाहिए ॥६॥
	दारुण		

श्रीशुक उवाच—

न चेदिहैवापचितिं यथांहसः

कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः ।

ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति

ये कीर्तिता मे भवतस्तिग्मयातनाः ॥७॥

न चेत् इह एव अपचितिं यथा अंहसः कृतस्य कुर्यात् मन उक्ति
पाणिभिः ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकान् उपैति ये कीर्तिता मे भवतः तिग्म
यातनाः ॥७॥

मन उक्ति	मन, वचन,	ये मे	जो मैंने
पाणिभिः	हाथसे,	भवतः	तुमसे
कृतस्य	किये गये	तिग्म यातनाः	तीक्ष्ण यातनादायी
यथा अंहसः	पापोंके अनुसार	नरकान्	नरक
इह एव	इस जीवनमें ही	कीर्तिता	बतलाये हैं (उनमें)
चेत् अपर्चितं	यदि प्रायश्चित्त	ध्रुवं उपैति	निश्चित रूपसे
न कुर्यात्	नहीं कर लेता तो		जाता है ॥७॥
वै स प्रेत्य	निश्चय वह मरकर		

तस्मात्पुरेवाश्विह पापनिष्कृतौ

यतेत मृत्योरविपद्यताऽऽत्मना ।

दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा

भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥८॥

तस्मात् पुरा एव आशु इह पाप निष्कृतौ यतेत मृत्योः अविपद्यता
आत्मना दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक् चिकित्सेत रुजां
निदानवित् ॥८॥

तस्मात्	इसलिए	दृष्ट्वा	देखकर (उसके अनुसार)
मृत्योः	मृत्युसे और	पाप निष्कृतौ	पापके प्रायश्चित्तका
आत्मना	शरीरके	यतेत	प्रयत्न करे,
अविपद्यता	रोगी होनेसे	यथा रुजां	जैसे रोगोंका
पुरा एव	पहिले ही	निदानवित्	निदान जाननेवाला
आशु	शीघ्र	भिषक्	वैद्य
इह	इसी जीवनमें	चिकित्सेत	चिकित्सा करता
दोषस्य	दोषका		है ॥८॥
गुरुलाघवं	भारी हल्कापन		

राजोवाच-

दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्यात्मनोऽहितम् ।

करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥९॥

दृष्ट श्रुताभ्यां यत् पापं जानन् अपि आत्मनः अहितं करोति भूयः
विवशः प्रायश्चित्तं अथो कथम् ॥६॥

दृष्ट	(राजदण्ड, निन्दादि)	भूयः	पुनः
श्रुताभ्यां	देखकर,	विवशः	विवश होकर
यत् पापं	(शास्त्रोंमें) सुनकर	करोति	(उसे) करता है
आत्मनः	क्योंकि पापको	अथो	अतः उसका
अहितं	अपना	प्रायश्चित्तं	प्रायश्चित्त
जानन् अपि	शत्रु	कथम्	कैसे हो सकता
	जानता है, फिर भी		है ॥६॥

क्वचिन्निवर्ततेऽभद्रात्क्वचिच्चरति तत्पुनः ।

प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥१०॥

क्वचित् निवर्तते अभद्रात् क्वचित् चरति तत् पुनः प्रायश्चित्तं अतः
अपार्थं मन्ये कुञ्जर शौचवत् ॥१०॥

क्वचित्	कभी	कुञ्जर	हाथीके
अभद्रात्	पापोंसे	शौचवत्	स्नानके समान
निवर्तते	निवृत्त हो जाता है,	प्रायश्चित्तं	प्रायश्चित्तको
क्वचित्	कभी	अपार्थं मन्ये	व्यर्थ मानता
पुनः चरति	फिर करने लगता है,		हूँ ॥१०॥
अतः	अतः		

श्रीशुक उवाच-

कर्मणा कर्मनिर्हारी न ह्यात्यन्तिक इष्यते ।

अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥११॥

कर्मणा कर्मनिर्हारः न हि आत्यन्तिक इष्यते अविद्वत् अधिका-
रित्वात् प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥११॥

कर्मणा	कर्मके द्वारा	अधिकारित्वात्	अधिकारी होनेसे
हि	क्योंकि		(कर्मरूप प्रायश्चित्त
आत्यन्तिक	सम्पूर्ण रूपसे		विधान है ।)
कर्मनिर्हारः	कर्मका निराकरण	प्रायश्चित्तं	(ठीक) प्रायश्चित्त
न इष्यते	नहीं हो सकता		तो)
अविद्वत्	अज्ञानी	विमर्शनं	तत्त्व-विचार ही
			है ॥११॥

नाश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि ।

एवं नियमकृद्वाजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥१२॥

न अश्नतः पथ्यं एव अन्नं व्याधयः अभिभवन्ति हि एवं नियमकृद्
राजन् शनैः क्षेमाय कल्पते ॥१२॥

राजन्	राजन् !	एवं	इसी प्रकार
हि	क्योंकि	नियमकृत्	नियमोंका पालन
पथ्यं एव	पथ्य ही		करनेवाला
अन्नं	भोजन	शनैः	धीरे-धीरे
न अश्नतः	न करनेपर	क्षेमाय	कल्याण
व्याधयः	रोग	कल्पते	प्राप्त कर लेता
अभिभवन्ति	दबा लेते हैं		है ॥१२॥

तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च ।

त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च ॥१३॥

तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च त्यागेन सत्य शौचाभ्यां यमेन
नियमेन च ॥१३॥

तपसा	तपस्या,	त्यागेन	त्यागसे,
ब्रह्मचर्येण	ब्रह्मचर्य पालन,	सत्य शौचाभ्यां	सत्य तथा पवित्रतासे,
च शमेन	तथा मनकी	यमेन	यमों (अहिंसादि) के
	स्थिरता,	च नियमेन	तथा नियमोंके
च दमेन	और इन्द्रिय-दमन,		पालनसे ॥१३॥

देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धयान्विताः ।

क्षिपन्त्यघं महदपि वेणुगुल्ममिवानलः ॥१४॥

देह वाक् बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धया अन्विताः क्षिपन्ति अघं
महत् अपि वेणुगुल्मं इव अनलः ॥१४॥

धर्मज्ञाः	धर्मको जाननेवाले,	महत् अघं अपि भारी पापको भी
श्रद्धया अन्विताः	श्रद्धालु,	वेणुगुल्मं बाँसके झुरमुटको
धीरा	धीर-पुरुष	अनलः इव अग्निके समान
देह वाक्	शरीर, वाणी तथा	क्षिपन्ति नष्ट कर देते हैं ॥१४
बुद्धिजं	बुद्धिसे उत्पन्न	

केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः ।

अघं धुन्वन्ति कात्स्न्येन नीहारमिव भास्करः ॥१५॥

केचित् केवलया भक्त्या वासुदेव परायणाः अघं धुन्वन्ति कात्स्न्येन
नीहारं इव भास्करः ॥१५॥

केचित्	कोई	नीहारं इव	जैसे कुहरेको
वासुदेव	भगवान् वासुदेव	कात्स्न्येन	पूर्णतः
परायणाः	परायण भक्त	अघं धुन्वन्ति	पापको नष्ट कर
केवलया भक्त्या	केवल भक्ति द्वारा		देते हैं ॥१५॥
भास्करः	सूर्य		

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तपआदिभिः ।

यथा कृष्णापितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥१६॥

न तथा हि अघवान् राजन् पूयेत तप आदिभिः यथा कृष्ण अपित
प्राणः तत् पूरुष निषेवया ॥१६॥

राजन्	राजन् !	अघवान्	पापी
हि	क्योंकि	तथा न पूयेत	वैसा पवित्र नहीं
तप आदिभिः	तपस्या आदिसे		होता,

यथा	जैसा	तत् पूरुष	उनके भक्तोंकी
कृष्ण अर्पित	श्रीकृष्णको अर्पित	निवेवया	सेवासे (होता
प्राणः	जीवन (व्यक्ति)		है) ॥१६॥

सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः ।

सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ॥१७॥

सध्रीचीनः हि अयं लोके पन्थाः क्षेमः अकुतः भयः सुशीलाः साधवः
यत्र नारायण परायणाः ॥१७॥

लोके हि	संसारमें क्योंकि	नारायण	नारायण
अयं क्षेमः	यह कल्याणका	परायणाः	परायण
अकुतः भयः	सर्वथा भय-रहित	सुशीलाः	सुशील
सध्रीचीनः	✓ सर्वश्रेष्ठ	साधवः	साधु-पुरुष चलते
पन्थाः	मार्ग है,		हैं ॥१७॥
यत्र	जिसमें		

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ।

न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ॥१८॥

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायण पराङ्मुखं न निष्पुनन्ति राजेन्द्र
सुरा कुम्भं इव आपगाः ॥१८॥

राजेन्द्र	राजेन्द्र !	नारायण	भगवान् नारायणसे
सुरा कुम्भं	शराबके घड़ेको	पराङ्मुखं	विमुखको
आपगाः इव	नदियोंके समान	निष्पुनन्ति न	पवित्र नहीं कर
चीर्णानि	किये गये		पाते ॥१८॥
प्रायश्चित्तानि	प्रायश्चित्त		

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-

निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ।

न ते यमं पाशभृतश्च तद्भूटान्

स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥१६॥

सकृत् मनः कृष्ण पदारविन्दयोः निवेशितं तद् गुणरागि यैः इह न ते यमं पाशभृतः च तत् भूटान् स्वप्ने अपि पश्यन्ति हि चीर्ण निष्कृताः ॥१६॥

यैः	✓ जिन लोगोंने	निवेशितं	प्रविष्ट कर दिया
इह	इस जीवनमें	हि	क्योंकि (उन्होंने)
तत् गुणरागि	उनके गुणोंके	चीर्ण निष्कृताः	समस्त प्रायश्चित्त
	अनुरागी		कर लिए,
मनः	मनको	स्वप्ने अपि ते	स्वप्नमें भी वे
सकृत्	एक बार भी	पाशभृतः यमं	पाशधारी यमराजको
कृष्ण	श्रीकृष्णके	च तद् भूटान्	तथा उनके दूतोंको
पदारविन्दयोः	चरणारविन्दमें	न पश्यन्ति	नहीं देखते ॥१६॥

अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।

दूतानां विष्णुयमयोः संवादस्तं निबोध मे ॥२०॥

अत्र च उदाहरन्ति इमं इतिहासं पुरातनं दूतानां विष्णु यमयोः संवादः तं निबोध मे ॥२०॥

अत्र च	इस विषयमें तो	इतिहासं	इतिहासका
विष्णु यमयोः	विष्णु और यमराज	इमं उदाहरन्ति	यह उदाहरण दिया
	के		जाता है,
दूतानां संवादः	दूतोंकी बातचीतके	तं मे	उसे मुझसे
पुरातनं	प्राचीन	निबोध	सुनो ॥२०॥

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिदासीपतिरजामिलः ।

नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः ॥२१॥

कान्यकुब्जे द्विजः कश्चित् दासीपतिः अजामिलः नाम्ना नष्ट सदा-चारः दास्याः संसर्ग दूषितः ॥२१॥

कान्यकुब्जे	कान्यकुब्ज (कन्नौज) में	दासीपतिः	दासीपति
कश्चित्	कोई	दास्याः संसर्ग	दासीके संसर्गसे
अजामिलः	अजामिल	दूषितः	दूषित
नाम्ना	नामका	नष्ट सदाचारः	सदाचार-भ्रष्ट
		द्विजः	ब्राह्मण था ॥२१॥

बन्धकैतवैश्रोयैर्गहितां

वृत्तिमास्थितः ।

बिभ्रत्कुटुम्बमशुचिर्यातयामास

देहिनः ॥२२॥

बन्दि अक्ष कैतवैः चोर्यैः गहितां वृत्ति आस्थितः बिभ्रत् कुटुम्बं
अशुचिः यातयामास देहिनः ॥२२॥

अशुचिः	वह अपवित्र	गहितां	निन्दित
देहिनः	प्राणियोंको	वृत्ति आस्थितः	आजीविका करता
बन्दि	बन्दी बनाकर	कुटुम्बं	अपने कुटुम्बका
यातयामास	पीड़ा देता था,	बिभ्रत्	पालन करता
अक्ष कैतवैः	जुएसे, धोखा-धड़ीसे,		था ॥२२॥
चोर्यैः	चोरीसे,		

एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान् ।

कालोऽत्यगान्महान् राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥२३॥

एवं निवसतः तस्य लालयानस्य तत् सुतान् कालः अत्यगात् महान्
राजन् अष्ट अशीति आयुषः समाः ॥२३॥

राजन्	राजन् !	आयुषः	आयुके
तस्य एवं	उसके इस प्रकार	अष्ट	अट्ठासी
निवसतः	निवास करते हुए,	आशीति समाः	वर्षका
तत्	उस (दासी) के	महान् कालः	महान् काल
सुतान्	पुत्रोंका	अत्यगात्	बीत गया ॥२३॥
लालयानस्य	लालन करते		

तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु योऽवमः ।

बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥२४॥

तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु यः अवमः बालः नारायणः नाम्ना
पित्रोः च दयितः भृशम् ॥२४॥

तस्य दश	उसके दस	बालः	बालक था,
पुत्रा	पुत्र	नाम्ना	(उसका) नाम
✓प्रवयसः	✓ बड़ी आयुके (हो गये) थे	नारायणः	नारायण था,
तेषां तु	उनमें तो	पित्रोः च	पिताका भी
यः अवमः	जो (सबसे) छोटा	भृशं दयितः	अत्यन्त प्यारा था ॥२४॥

स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि ।

निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥२५॥

स बद्धहृदयः तस्मिन् अर्भके कलभाषिणि निरीक्षमाणः तत् लीलां
मुमुदे जरठः भृशम् ॥२५॥

तस्मिन्	उस	तत् लीलां	उसके खेल
कलभाषिणि	मधुरभाषी	निरीक्षमाणः	देख देखकर
अर्भके	बालकमें	भृशं मुमुदे	बहुत आनन्दित होता था ॥२५॥
बद्धहृदयः	हृदय लगाये		
स जरठः	वह बूढ़ा (अजामिल)		

भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् बालकस्नेहयन्त्रितः ।

भोजयन् पाययन्मूढो न वेदागतमन्तकम् ॥२६॥

भुञ्जानः प्रपिबन् खादन् बालक स्नेह यन्त्रितः भोजयन् पाययन्
मूढः न वेद आगतं अन्तकम् ॥२६॥

बालक स्नेह	बालकके स्नेहसे	पाययन्	पिलानेमें लगा
यन्त्रितः	बँधा हुआ (वह)	मूढः	मूर्ख बना
भुञ्जानः	भोजन करते,	अन्तर्क	कालको
प्रपिबन्	पीते,	आगतं	आया
खादन्	कुछ चबाते (समय)	न वेद	नहीं जान सका ॥२६
भोजयन्	(बालकको) खिलाने		

स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते ।

मर्तिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥२७॥

स एवं वर्तमानः अज्ञः मृत्युकाल उपस्थिते मर्तिं चकार तनये बाले
नारायण आह्वये ॥२७॥

स अज्ञः	उस अज्ञानीने	आह्वये	नामक
एवं वर्तमानः	इसी प्रकार रहता हुआ,	बाले तनये	बालक पुत्रमें
मृत्युकाल	मरनेका समय	मर्तिं चकार	बुद्धि लगायी (उसीके सम्बन्धमें सोचने लगा) ॥२७॥
उपस्थिते	आनेपर		
नारायण	नारायण		

स पाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वा पुरुषान् भृशदारुणान् ।

वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ॥२८॥

स पाशहस्तान् त्रीन् दृष्ट्वा पुरुषान् भृशदारुणान् वक्रतुण्डान्
ऊर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुं आगतान् ॥२८॥

स	उसने	वक्रतुण्डान्	टेढ़े मुँह वाले
आत्मानं	अपनेको	ऊर्ध्वरोम्ण	खड़े रोमवाले
नेतुं आगतान्	लेनेको आये,	त्रीन् पुरुषान्	तीन पुरुषोंको
पाशहस्तान्	हाथोंमें फन्दा लिए	दृष्ट्वा	देखकर ॥२८॥
भृशदारुणान्	बहुत ही भयानक		

दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् ।

प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥२६॥

दूरे क्रीडनक आसक्तं पुत्रं नारायण आह्वयं प्लावितेन स्वरेण उच्चैः
आजुहाव आकुल इन्द्रियः ॥२६॥

दूरे	(वहांसे) दूर	पुत्रं	अपने पुत्रको
क्रीडनक	खिलौनेमें	आकुल इन्द्रियः	व्याकुल इन्द्रिय
आसक्तं	आसक्त (लगे)	प्लावितेन स्वरेण दीर्घं	स्वरसे
नारायण	नारायण	उच्चैः	जोरसे
आह्वयं	नामवाले	आजुहाव	पुकारा ॥२६॥

निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् ।

भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसाऽपतन् ॥३०॥

निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतः हरिकीर्तनं भर्तुः नाम महाराज पार्षदाः
सहसा अपतन् ॥३०॥

महाराज	महाराज !	ब्रुवतः	पुकारना
म्रियमाणस्य	मरते हुए का	निशम्य	सुनकर
हरिकीर्तनं	भगवन्नान-कीर्तन	पार्षदाः	भगवान्‌के प्रार्षद
भर्तुः नाम	(विशेषतः) अपने	सहसा	अचानक
	स्वामीका नाम	अपतन्	झपट पड़े ॥३०॥

विकर्षतोऽन्तर्हृदयादासीपतिमजामिलम् ।

यमप्रेष्यान् विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥३१॥

विकर्षतः अन्तः हृदयात् दासीपतिम् अजामिलं यमप्रेष्यान् विष्णुदूता
वारयामासुः ओजसा ॥३१॥

दासीपतिम्	दासीके पति	यमप्रेष्यान्	यमराजके दूतोंको
अजामिलं	अजामिल (के सूक्ष्म- शरीर) को	विष्णुदूता	भगवान्‌ विष्णुके दूतोंने
अन्तः हृदयात्	हृदयके भीतरसे	ओजसा	बलपूर्वक
विकर्षतः	खींचते हुए	वारयामासुः	रोक दिया ॥३१॥

उचुनिषेधितास्तांस्ते

वैवस्वतपुरःसराः ।

उचुः निषेधिताः तान् ते वैवस्वतपुरः सराः

ते वे
वैवस्वतपुरः सराः यमराजके आगे
चलनेवाले (दूत)

निषेधिताः रोके जानेपर
तान् उचुः उन विष्णु-दूतोंसे
बोले

यमदूता ऊचु*

के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥३२॥

के यूयं प्रतिषेद्धारः धर्मराजस्य शासनम् ॥३२॥

धर्मराजस्य धर्मराजके
शासनं शासन (आदेश) को
प्रतिषेद्धारः रोकनेवाले

यूयं के आप लोग कौन
हैं ? ॥३२॥

कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ ।

किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥३३॥

कस्य वा कुत आयाताः कस्मात् अस्य निषेधथ किं देवाः उपदेवा
वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥३३॥

कस्य किसके (सेवक) हैं ?
वा कुत अथवा कहाँसे
आयाताः आये हैं ?
अस्य इसे (ले जानेसे)
कस्मात् किस लिए
निषेधथ रोकते हैं ?

किं यूयं देवाः क्या आप लोग
देवता हैं ?
वा उपदेवा अथवा उपदेवता
हैं ?
किं सिद्धसत्तमाः क्या सिद्धोत्तम
हैं ? ॥३३॥

सर्वे पद्मपलाशाक्षाः पीतकौशेयवाससः ।

किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥३४॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

सर्वे पद्म पलाश अक्षाः पीतकौशेयवाससः किरीटिनः कुण्डलिनः
लसत् पुष्कर मालिनः ॥३४॥

सर्वे	(आप) सब	किरीटिनः	मुकुटधारी,
पद्मपलाश-	कमल-दल	कुण्डलिनः	कुण्डल पहिने
अक्षाः	लोचन,	पुष्कर मालिनः	कमल-मालासे
पीतकौशेय-	पीला रेशमी	लसत्	सुशोभित हैं ॥३४॥
वाससः	वस्त्र पहिने,		

सर्वे च नूतनवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ।

धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुजश्रियः ॥३५॥

सर्वे च नूतनवयसः सर्वे चारु चतुर्भुजाः धनुः निषङ्ग असि गदा
शङ्ख चक्र अम्बुज श्रियः ॥३५॥

सर्वे च	सभी	असि गदा	तलवार, गदा,
नूतनवयसः	नयी अवस्थावाले,	शङ्ख चक्र	शङ्ख, चक्र,
सर्वे चारु	सब सुन्दर चार	अम्बुज श्रियः	कमलसे शोभित
चतुर्भुजाः	भुजाओंके		हैं ॥३५॥
धनुः निषङ्ग	धनुष, तरकस,		

दिशो वित्तिमिरालोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा ।

किमर्थं धर्मपालस्य किङ्करान्नो निषेधथ ॥३६॥

दिशः वित्तिमिर आलोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा किं अर्थं धर्म-
पालस्य किङ्करान् नः निषेधथ ॥३६॥

स्वेन रोचिषा	अपनी कान्तिसे	धर्मपालस्य	धर्मराजके
दिशः	दिशाओंको	नः किङ्करान्	हम सेवकोंको
वित्तिमिर	अन्धकारहीन	किं अर्थं	किस प्रयोजनसे
आलोकाः	प्रकाशपूर्ण	निषेधथ	रोक रहे हैं ॥३६॥
कुर्वन्तः	कर रहे हैं,		

श्रीशुक उवाच—

इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः ।

तान् प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्हृदिया गिरा ॥३७॥

इति उक्ते यमदूतैः तैः वासुदेव उक्तकारिणः तान् प्रति ऊचुः प्रहस्य
इदं मेघ निर्हृदिया गिरा ॥३७॥

तैः यमदूतैः	उन यमदूतों द्वारा	तान् प्रति	उनसे
इति उक्ते	ऐसा कहनेपर	मेघ निर्हृदिया	मेघ गर्जनके समान
वासुदेव	भगवान् वासुदेवके	गिरा	वाणीसे
उक्तकारिणः	आज्ञाकारी	इदं ऊचुः	यह बोले ॥३७॥
प्रहस्य	हंसकर		

यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः ।

ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥३८॥

यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देश कारिणः ब्रूत धर्मस्य नः तत्त्वं यत् च
धर्मस्य लक्षणम् ॥३८॥

यदि यूयं	यदि तुम लोग	धर्मस्य तत्त्वं	धर्मका तत्त्व
वै	सचमुच	च यत्	और जो
धर्मराजस्य	धर्मराजके	धर्मस्य लक्षणं	धर्मका लक्षण है,
✓ निर्देश कारिणः	✓ आज्ञापालक हो तो	ब्रूत	बतलाओ ॥३८॥
नः	हमको		

कथंस्विद् ध्रियते दण्डः किं वास्य स्थानमीप्सितम् ।

दण्ड्याः किं कारिणः सर्वे आहोस्वित्कतिचिन्तृणाम् ॥३९॥

कथं स्विद् ध्रियते दण्डः किं वा अस्य स्थानं ईप्सितं दण्ड्याः किं
कारिणः सर्वे आहोस्वित् कतिचित् नृणाम् ॥३९॥

दण्डः कथं स्विच्	दण्ड किस प्रकार	कारिणः	कर्म करनेवाले
ध्रियते	दिया जाता है ?	दण्ड्याः	दण्डनीय हैं,
वा किं	अथवा कौन	आहोस्विच्	अथवा
अस्य ईप्सितं	इसका अभीष्ट	नृणां कतिचित्	मनुष्योंमें कुछ
स्थानं	स्थान (पात्र) है ?		(दंडनीय हैं) ॥३६॥
किं सर्वे	क्या सब		

यमदूता ऊचुः—

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ।

वेदो नारायणः साक्षात्स्वयम्भूरिति शुश्रुम ॥४०॥

वेदप्रणिहितः धर्मः हि अधर्मः तत् विपर्ययः वेदः नारायणः साक्षात्
स्वयम्भूः इति शुश्रुम ॥४०॥

वेदप्रणिहितः	वेदोंमें जिनका विधान है वे	हि वेदः	क्योंकि वेद
धर्मः	(कर्म) धर्म हैं,	साक्षात्	साक्षात्
तत् विपर्ययः	उनसे उलटे (वेदोंमें जिनका निषेध है)	नारायणः	नारायण
अधर्मः	(वे) अधर्म हैं ।	स्वयम्भू	स्वयं प्रकट हैं ।
		इति	ऐसा
		शुश्रुम	हम सुनते हैं ॥४०॥

येन स्वधाम्न्यमी भावा रजः सत्त्वतमोमयाः ।

गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यन्ते यथातथम् ॥४१॥

येन स्वधाम्नि अमी भावाः रजः सत्त्व तमः मयाः गुण नाम क्रिया
रूपैः विभाव्यन्ते यथातथम् ॥४१॥

येन स्वधाम्नि	जिन स्वयं प्रकाश (वेदों) द्वारा	गुणनाम	गुण, नाम
अमी	ये (संसारके)	क्रिया रूपैः	क्रियाके रूपमें
रजः सत्त्व	राजसिक सात्त्विक	यथातथं	ठीक-ठीक
तमः मयाः	तामसिक	विभाव्यन्ते	निश्चित किए जाते
भावाः	भाव		हैं ॥४१॥

सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः सन्ध्याहनी दिशः ।

कं कुः कालो धर्म इति ह्यते दैह्यस्य साक्षिणः ॥४२॥

सूर्यः अग्निः खं मरुत् गावः सोमः सन्ध्या अहनी दिशः कं कुः कालः
धर्म इति हि एते दैह्यस्य साक्षिणः ॥४२॥

सूर्यः अग्निः	सूर्य, अग्नि,	कुः कालः	पृथ्वी, काल और
खं मरुत्	आकाश, वायु	धर्म इति	धर्म, इस प्रकार
गावः सोमः	इन्द्रियां, चन्द्रमा,	हि एते	क्योंकि इतने
सन्ध्या अहनी	सन्ध्या, रात, दिन,	दैह्यस्य	देहधारीके (कर्मोंके)
दिशः कं	दिशाएँ, जल,	साक्षिणः	साक्षी हैं ॥४२॥

एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते ।

सर्वे कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्ति कारिणः ॥४३॥

एतैः अधर्मः विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते सर्वे कर्म अनुरोधेन दण्डं
अर्हन्ति कारिणः ॥४३॥

एतैः	इनके द्वारा (जब)	कर्म अनुरोधेन	कर्माग्रहके कारण
अधर्मः विज्ञातः	अधर्म जाना जाता है,	सर्वे कारिणः	सब कर्मशील (कर्मानुसार)
दण्डस्य	(तब) दण्डके	दण्डं अर्हन्ति	दण्डनीय होते हैं ॥४३॥
स्थानं	पात्रका		
युज्यते	निर्णय होता है,		

सम्भवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः ।

कारिणां गुणसङ्गोऽस्ति देहवान् न ह्यकर्मकृत् ॥४४॥

सम्भवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि च अनघाः कारिणां गुण सङ्गः
अस्ति देहवान् न हि अकर्मकृत् ॥४४॥

अनघाः निष्पापो,
हि भद्राणि क्योकि पुण्य
च विपरीतानि और विपरीत
(पाप) भी
सम्भवन्ति होते ही हैं।
हि कारिणां क्योकि कर्म करने-
वालेका

गुणसंगः अस्ति गुणोंसे सम्बन्ध
रहता ही है (और)
देहवान् शरीरधारी
अकर्मकृत् न कर्म किये बिना नहीं
रह सकता ॥४४॥

येन यावान् यथाधर्मो धर्मो वेह समीहितः ।

स एव तत्फलं भुङ्क्ते तथा तावदमुत्र वै ॥४५॥

येन यावान् यथा अधर्मः धर्मः वा इह समीहितः स एव तत् फलं
भुङ्क्ते तथा तावत् अमुत्र वै ॥४५॥

येन यावान् जिसने, जितना,
यथा जैसे
अधर्मः अधर्म
वा धर्मः अथवा धर्म
इह समीहितः इस लोकमें किया है,

अमुत्र परलोकमें
स एव वही
तत् फलं वै उसका फल ही
तथा तावत् वैसे उतना
भुङ्क्ते भोगता है ॥४५॥

यथेह

देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते ।

भूतेषु

गुणवैचित्र्यात्तथान्यत्रानुमीयते ॥४६॥

यथा इह देव प्रवराः त्रैविध्यं उपलभ्यते भूतेषु गुणवैचित्र्यात् तथा
अन्यत्र अनुमीयते ॥४६॥

देव प्रवराः देव श्रेष्ठो !
यथा इह जैसे इस लोकमें
भूतेषु प्राणियोंमें
गुणवैचित्र्यात् गुणोंकी विचित्रताके
कारण
त्रैविध्यं त्रिविधता (सात्त्विक,
राजस, तामस
स्वभाव प्राणी)

उपलभ्यते मिलते हैं,
तथा अन्यत्र वैसे ही दूसरे लोकोंमें
भी
अनुमीयते अनुमान कर लिया
जाता है ॥४६॥

वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा ।
एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥४७॥

वर्तमानः अन्ययोः कालः गुण अभिज्ञापकः यथा एवं जन्मानि
अयोः एतत् धर्म अधर्म निदर्शनम् ॥४७॥

वर्तमानः कालः	वर्तमान काल	एवं एतत्	इसी प्रकार इस
यथा अन्ययोः	जैसे दूसरे (भूत भविष्य) के	धर्म अधर्म	(प्राणी) का
गुण	गुणोंका	अयोः जन्मानि	पाप-पुण्य
अभिज्ञापकः	सूचक है,	अगले-पिछले	जन्मोंका
		निदर्शनं	सूचक है ॥४७॥

मनसैव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति ।
अनुमीमांसतेऽपूर्वं मनसा भगवानजः ॥४८॥

मनसा एव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति अनुमीमांसते अपूर्वं मनसा
भगवान् अजः ॥४८॥

भगवान्	ऐश्वर्यशाली	विपश्यति	देख लेते हैं और
अजः	अजन्मा	मनसा	मनसे ही
पुरे देवः	सबके हृदयमें	अपूर्वं	(उसके अगले)
	विराजमान् (हमारे		प्रारब्धका
	स्वामी)	अनुमीमांसते	विचार कर लेते
मनसा एव	मनसे ही		हैं ॥४८॥
पूर्वरूपं	(प्राणीका) पहिला		
	रूप		

यथाज्ञस्तमसा युक्त उपास्ते व्यक्तमेव हि ।
न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ॥४९॥

यथा अज्ञः तमसा युक्तः उपास्ते व्यक्तं एव हि न वेद पूर्वं अपरं नष्ट
जन्मस्मृतिः तथा ॥४९॥

यथा अज्ञः	जैसे अज्ञानी पुरुष	पूर्व अपरं	(सोनेसे) पहिले और
तमसा युक्तः	निद्रायुक्त (स्वप्न देखते समय)	न वेद	(जागनेके) बादको
व्यक्तं एव हि	(उस समयके) व्यक्त देहको ही	तथा	ऐसे ही
उपास्ते	अपना स्वीकार करता है,	जन्मस्मृतिः	(दूसरे) जन्मोंकी स्मृति
		नष्ट	नष्ट हो जाती है ॥४६॥

पञ्चभिः कुरुते स्वार्थान् पञ्च वेदाथ पञ्चभिः ।

एकस्तु षोडशेन त्रीन् स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥५०॥

पञ्चभिः कुरुते स्व अर्थान् पञ्च वेद अथ पञ्चभिः एकः तु षोडशेन त्रीन् स्वयं सप्तदशः अश्नुते ॥५०॥

पञ्चभिः	पांच (कर्मेन्द्रियों) से (पुरुष)	षोडशेन	सोलहवें (मन) के द्वारा
स्व अर्थान् कुरुते	अपने प्रयोजन (पूर्ण) करता है,	स्वयं एकः तु	स्वयं एक (जीव) तो
अथ पञ्चभिः	और पांच (ज्ञानेन्द्रियों) से	सप्तदशः	सत्रहवां है जो
पञ्च वेद	पांच (रूप रसादि विषयों) को जानता है,	त्रीन्	तीनों (गुणों) को
		अश्नुते	भोगता है ॥५०॥

तदेतत् षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत् ।

धत्तेऽनु संसृतिं पुंसि हर्षशोकभयातिदाम् ॥५१॥

तत् एतत् षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत् धत्ते अनु संसृतिं पुंसि हर्ष शोक भय आतिदाम् ॥५१॥

तत् एतत्	वह यह	हर्ष शोक	हर्ष, शोक,
षोडशकलं	सोलह कलावाला	भय आतिदां	भय, पीड़ा देनेवाले
शक्तित्रयं	(सत्त्व आदि) तीन शक्तियों वाला	अनु संसृति	बार-बार जन्म-मरण चक्रको
लिङ्गं महत्	लिङ्ग शरीर	धत्ते	धारण करता है ॥५१॥
पुंसि	अनादि है, (यही) पुरुषके लिए		

देह्यज्ञोऽजितषड्वर्गो नेच्छन् कर्माणि कार्यते ।

कोशकार इवात्मानं कर्मणाऽऽच्छाद्य मुह्यति ॥५२॥

देहि अज्ञः अजित षड्वर्गः न इच्छन् कर्माणि कार्यते कोशकार इव आत्मानं कर्मणा आच्छाद्य मुह्यति ॥५२॥

अज्ञः देही	अज्ञानी जीव	कार्यते	करना पड़ता है,
षड्वर्गः	षड्वर्ग (काम-क्रोध, लोभ मोह, मद, मत्सर) को	कोशकार इव	रेशमके कीड़ेकी भांति
अजित	न जीतकर	आत्मानं	अपनेको
न इच्छन्	न चाहनेपर भी	कर्मणा आच्छाद्य	कर्मोंसे ढककर
कर्माणि	कर्मोंको	मुह्यति	मोहित हो जाता है ॥५२॥

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत ।

कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ॥५३॥

न हि कश्चित् क्षणं अपि जातु तिष्ठति अकर्मकृत कार्यते हि अवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैः बलात् ॥५३॥

हि	क्योंकि	हि स्वाभाविकैः	क्योंकि नैसर्गिक
कश्चित् जातु	कोई जन्म लेनेवाला	गुणैः बलात्	गुणोंसे बलपूर्वक
क्षणं अपि	एक क्षण भी	अवशः	विवश करके
अकर्मकृत	बिना कर्म किये	कर्म कार्यते	कर्म कराया जाता है ॥५३॥
न तिष्ठति	नहीं रहता,		

लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत ।

यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥५४॥

लब्ध्वा निमित्तं अव्यक्तं व्यक्तं अव्यक्तम् भवति उत यथा योनि
यथा बीजं स्वभावेन बलीयसा ॥५४॥

अव्यक्तं	अव्यक्त (पूर्व जन्मके संस्कारों) के	स्वभावेन	बलवान् स्वभावके अनुसार
निमित्तं लब्ध्वा	निमित्तको पाकर	अव्यक्तं	अव्यक्त (लिंग शरीर)
यथा योनि	माताके अनुरूप	व्यक्तं भवति	व्यक्त (स्थूल देह) हो जाता है ॥५४॥
उत यथा बीजं	अथवा पिताके अनुरूप		
बलीयसा	(अथवा) अपने		

एष प्रकृतिसङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः ।

आसीत् स एव नचिरादीशसङ्गाद्विलीयते ॥५५॥

एष प्रकृति सङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः आसीत् स एव न चिरात् ईश
सङ्गात् विलीयते ॥५५॥

एष पुरुषस्य	यह पुरुषकी	ईश सङ्गात्	ईश्वरमें आसक्ति होनेसे
विपर्ययः	उलटी दशा	न चिरात्	अविलम्ब
प्रकृति सङ्गेन	प्रकृतिमें आसक्तिसे	विलीयते	लीन (नष्ट) हो जाती है ॥५५॥
आसीत्	है ।		
स एव	वही		

अयं हि श्रुतसम्पन्नः शीलवृत्तगुणालयः ।

धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मन्त्रविच्छुचिः ॥५६॥

अयं हि श्रुतसम्पन्नः शील वृत्त गुण आलयः धृतव्रतः मृदुः दान्तः
सत्यवान् मन्त्रवित् शुचिः ॥५६॥

अयं हि	यह (आजामिल) तो	धृतव्रतः	व्रतधारी,
श्रुतसम्पन्नः	शास्त्रज्ञान सम्पन्न,	मृदुः दान्तः	विनयी, जितेन्द्रिय
शील वृत्त	शील, सदाचार,	सत्यवान्	सत्यवादी,
गुण आलयः	गुणोंका निवास ही	मन्त्रवित्	मन्त्रवेत्ता,
	था,	शुचिः	पवित्र था ॥५६॥

गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां

शुश्रूषुनिरहङ्कृतः ।

सर्वभूतसुहृत्साधुमितवागनसूयकः

॥५७॥

गुरु अग्नि अतिथि वृद्धानां शुश्रूषुः निरहङ्कृतः सर्वभूत सुहृत् साधुः
मितवाक् अनसूयकः ॥५७॥

गुरु अग्नि	गुरु, अग्नि,	साधुः	सज्जन,
अतिथि वृद्धानां	अतिथि एवं वृद्धोंकी	मितवाक्	अल्पभाषी तथा
शुश्रूषुः	सेवा करनेवाला,	अनसूयकः	किसीके गुणमें दोष
निरहङ्कृतः	अहंकारहीन,		न देखने वाला
सर्वभूत सुहृत्	सब प्राणियोंका		था ॥५७॥
	मित,		

एकदासौ वनं यातः पितृसन्देशकृद् द्विजः ।

आदाय तत आवृत्तः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥५८॥

एकदा असौ वनं यातः पितृसन्देशकृद् द्विजः आदाय तत् आवृत्तः
फल पुष्प समित् कुशान् ॥५८॥

पितृसन्देशकृद्	पिताका आज्ञा- पालक	तत् फल पुष्प	वहांसे फल, फूल,
असौ द्विजः	यह ब्राह्मण	समित् कुशान्	समिधाएँ और कुश
एकदा	एक बार	आदाय	लेकर
वनं यातः	वनमें गया,	आवृत्तः	लौट रहा था ॥५८॥

ददर्श कामिनं कञ्चिच्छूद्रं सह भुजिष्यया ।

पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णितनेत्रया ॥५९॥

ददर्श कामिनं कञ्चित् शूद्रं सह भुजिष्यया पीत्वा च मधु मैरेयं
मदाघूर्णित नेत्रया ॥५६॥

कञ्चित्	किसी	मदाघूर्णित	नशेसे घूमते
कामिनं शूद्रं	कामी शूद्रको	नेत्रया	नेत्रोंवाली
मैरेयं मधु	महुएकी शराब	भुजिष्यया	वेश्याके
पीत्वा च	पीकरके	सह ददर्श	साथ देखा ॥५६॥

मत्तया विश्लथन्नीव्या व्यपेतं निरपत्रपम् ।
क्रीडन्तमनु गायन्तं हसन्तमनयान्तिके ॥६०॥

मत्तया विश्लथत् नोव्या व्यपेतं निरपत्रपं क्रीडन्तं अनु गायन्तं हसन्तं
अनया अन्तिके ॥६०॥

मत्तया	मतवाली	अनया अन्तिके	इसके पास ही
विश्लथत्	फिसलते हुए	क्रीडन्तं	खेलते हुए
नोव्या	कटि बन्धनसे	अनु गायन्तं	बीच-बीचमें गाता
व्यपेतं	(वस्त्र) रहित		हुआ,
	(स्त्रीके साथ)	हसन्तं	हंसता था ॥६०॥
निरपत्रपं	निर्लज्ज (शूद्र)		

दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरम्भिताम् ।
जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥६१॥

दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरम्भितां जगाम हृच्छयवशं
सहसा एव विमोहितः ॥६१॥

कामलिप्तेन	कामोद्दीपक (अंगरागादिसे)	तां दृष्ट्वा	उस (वेश्या) को
	लिप्त		देखकर
बाहुना	(शूद्रकी) भुजाओंसे	सहसा एव	अचानक ही
परिरम्भितां	आलिङ्गित	विमोहितः	मोहित होकर
		हृच्छयवशं	कामके वश
		जगाम	हो गया ॥६१॥

स्तम्भयन्नात्मनाऽऽत्मानं यावत्सत्त्वं यथाश्रुतम् ।

न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितम् ॥६२॥

स्तम्भयन् आत्मना आत्मानं यावत् सत्त्वं यथा श्रुतं न शशाक समा-
धातुं मनः मदन वेपितम् ॥६२॥

यावत् सत्त्वं	जितना धैर्य था,	आत्मानं	अपनेको ही
यथा श्रुतं	जितना ज्ञान था (उसके अनुसार)	स्तम्भयन्	स्थिर करनेकी
मदन वेपितं	कामवेगसे चञ्चल	समाधातुं	चेष्टा की,
मनः	मनको,	शशाक न	किन्तु स्थिर करनेमें
आत्मना	अपनी बुद्धिसे		समर्थ नहीं
			हुआ ॥६२॥

तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तो विचेतनः ।

तामेव मनसा ध्यायन् स्वधर्माद्विरराम ह ॥६३॥

तत् निमित्त स्मर व्याज ग्रह ग्रस्तः विचेतनः तां एव मनसा ध्यायन्
स्वधर्मात् विरराम ह ॥६३॥

तत् निमित्त	उस (वेश्या) को	तां एव	उसीका
	निमित्त बनाकर	मदसा ध्यायन्	मनसे चिन्तन करता
व्याज	इसी बहाने		हुआ
स्मर ग्रह	काम पिशाच द्वारा	स्वधर्मात्	अपने धर्मसे
ग्रस्तः	पकड़ा जाकार	विरराम ह	उपरत (विमुख)
विचेतनः	(उसकी) चेतना		हो गया ॥६३॥
	नष्ट हो गयी,		

तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता ।

ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ॥६४॥

तां एव तोषयामास पित्र्येण अर्थेन यावता ग्राम्यैः मनोरमैः कामैः
प्रसीदेत यथा तथा ॥६४॥

यावता	जितना भी	मनोरमैः	सुन्दर
पितृयेण	पितकाकी	ग्राम्यैः कामैः	कामोपभोगकी
अर्थेन	सम्पत्ति थी (उससे)		सम्पत्तियोंसे
यथा	जैसे (वह वेश्या)	तां एव	उसीको
प्रसीदेत	प्रसन्न हो	तोषयामास	सन्तुष्ट किया ॥६४॥
तथा	उस प्रकारके		

विप्रां स्वभार्यामप्रौढां कुले महति लम्बिताम् ।

विससर्जाचिरात्पापः स्वैरिण्यापाङ्गविद्धधीः ॥६५॥

विप्रां स्वभार्या अप्रौढां कुले महति लम्बितां विससर्ज अचिरात् पापः
स्वैरिण्य अपाङ्ग विद्ध धीः ॥६५॥

स्वैरिण्य	(उस) स्वेच्छा	लम्बितां	आयी
	चारिणीके	अप्रौढां	युवती
अपाङ्ग	कटाक्षसे	विप्रां	ब्राह्मणी
विद्ध धीः	बिधा बुद्धि	स्वभार्या	अपनी पत्नीको
पापः	(यह) पापी	अचिरात्	बहुत समयसे
महति कुले	बड़े कुलमें-से	विससर्ज	छोड़ रखा है ॥६५॥

यतस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनम् ।

बभारास्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बं मन्दधोरयम् ॥६६॥

यतः ततः च उपनिन्ये न्यायतः अन्यायतः धनं बभार अस्याः
कुटुम्बिन्याः कुटुम्बं मन्दधीः अयम् ॥६६॥

न्यायतः	न्याय पूर्वक या	अस्याः	इस
अन्यायतः	अन्यायसे	कुटुम्बिन्याः	बड़े कुटुम्ब वालीके
यतः ततः	इधर-उधर	कुटुम्बं	कुटुम्बका
च	चाहे जहांसे	बभार	भरण-पोषण कर
धनं उपनिन्ये	धन उठा लाता था,		रहा था ॥६६॥
अयं मन्दधीः	यह मन्द बुद्धि		
	(इस प्रकार)		

यदसौ शास्त्रमुल्लङ्घ्य स्वैरचार्यार्थगर्हितः ।
 अवर्तत चिरं कालमघायुरशुचिर्मलात् ॥६७॥

यत् असौ शास्त्रं उल्लङ्घ्य स्वैर आचार आर्य गर्हितः अवर्तत चिरं
 कालं अघायुः अशुचिः मलात् ॥६७॥

यत् असौ	क्योंकि इसने	अवर्तत	किया है (अतः)
शास्त्रं	शास्त्राज्ञाका	मलात्	दूषित कर्म (एवं
उल्लङ्घ्य	उलंघन करके		अन्नसे)
आर्य गर्हितः	श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा	अघायुः	इसका जीवन
	निन्दित		पापमय है,
स्वैर आचार	स्वच्छन्दाचरण	अशुचिः	(यह) अपवित्र
चिरं कालं	बहुत समय तक		है ॥६७॥

तत एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् ।
 नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुद्ध्यति ॥६८॥

ततः एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषं नेष्यामः अकृत निर्वेशं यत्र
 दण्डेन शुद्ध्यति ॥६८॥

अकृत निर्वेशं	(अपने) पापोंका	कृतकिल्बिषं	पाप करनेवाले
	प्रायश्चित्तन करने-		(इसे) को
	वाले	नेष्यामः	(हम) ले जाएँगे,
एनं	इनको	यत्र	जहां
ततः	इसलिए	दण्डेन	दण्ड मिलनेसे
दण्डपाणेः	यमराजके	शुद्ध्यति	शुद्ध हो जायगा ॥६८॥
सकाशं	समीप		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां

षष्ठस्कन्धेऽजामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम् ।
उपधार्याथ तान् राजन् प्रत्याह्वनयकोविदाः ॥१॥

एवं ते भगवद्दूता यमदूत अभिभाषितं उपधार्य अथ तान् राजन्
प्रति आहुः नयकोविदाः ॥१॥

राजन्	राजन् !	नयकोविदाः	नीति-निपुण
एवं	इस प्रकार	ते भगवद्दूता	वे भगवान् के दूत
यमदूत	यमदूतोंका	अथ तान् प्रति	फिर उनसे
अभिभाषितं	अभिभाषण	आहुः	बोले ॥१॥
उपधार्य	सुनकर		

विष्णुदूता ऊचुः-

अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम् ।

यत्रादण्डचेष्टवपापेषु दण्डो यैर्ध्रियते वृथा ॥२॥

अहो कष्टं धर्मदृशां अधर्मः स्पृशते सभां यत्र अदण्ड्येषु अपापेषु
दण्डः यैः ध्रियते वृथा ॥२॥

अहो कष्टं	यह आश्चर्य और	अदण्ड्येषु	जो दण्डनीय नहीं
	खेदकी बात है कि		है उसे
धर्मदृशां सभां	धर्मज्ञोंकी सभाको	यैः वृथा	जिनके द्वारा व्यर्थ
अधर्मः स्पृशते	अधर्म छू रहा है ।	दण्डः ध्रियते	दण्ड दिया जाता
यत्र अपापेषु	जहाँ निष्पाप,		है ॥२॥

प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः ।

यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥३॥

प्रजानां पितरः ये च शास्तारः साधवः समाः यदि स्यात् तेषु वैषम्यं
कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥३॥

प्रजानां	प्रजाके	वैषम्यं स्यात्	विषमता हो जाय
ये च पितरः	जो तो माता-पिता,		तो
शास्तारः	शासक,	प्रजाः	प्रजा
साधवः	सत्पुरुष,	कं शरणं	किसकी शरण
समाः	समदर्शी हैं,	यान्ति	जायगी ॥३॥
यदि तेषु	यदि उनमें ही		

यद्यदाचरति

श्रेयानितरस्तत्तदीहते ।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥४॥

यद् यद् आचरति श्रेयान् इतरः तत् तत् ईहते स यत् प्रमाणं कुरुते
लोकः तत् अनुवर्तते ॥४॥

श्रेयान्	सत्पुरुष	स यत् प्रमाणं	वे जिसे (अपने
यद् यद्	जो जो		आचरणसे)
आचरति	आचरण करते हैं,		प्रामाणिक
इतरः	दूसरे भी	कुरुते	बनाते हैं,
तत् तत्	वही वही	लोकः	लोग
ईहते	करते हैं ।	तत् अनुवर्तते	उसीका अनुकरण
			करते हैं ॥४॥

यस्याङ्गे शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः ।

स्वयं धर्ममधर्मं वा न हि वेद यथा पशुः ॥५॥

यस्य अङ्गे शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः स्वयं धर्मं अधर्मं
वा न हि वेद यथा पशुः ॥५॥

लोकः	(साधारण) लोग	यस्य अङ्गु	(वे) जिसकी गोदमें
धर्म अधर्म वा	धर्म या अधर्म	शिर आघाय	सिर रखकर
यथा पशुः	पशुओंके समान	निर्वृतः	निश्चिन्त
स्वयं न हि वेद	स्वयं नहीं ही जानते	स्वपिति	सोते हैं ॥५॥

स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् ।

विश्रम्भणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥६॥

स कथं न्यर्पित आत्मानं कृतमैत्रं अचेतनं विश्रम्भणीयः भूतानां सघृणः द्रोग्धुं अर्हति ॥६॥

स सघृणः	वह दयालु,	न्यर्पित	समर्पण किये
भूतानां	प्राणियोंका	अचेतनं	अज्ञानी लोगोंके साथ
विश्रम्भणीयः	विश्वास-पात्र,	कथं द्रोग्धुं	कैसे द्रोह (विश्वास-
कृतमैत्रं	मित्रता करनेवाले,		घात)
आत्मानं	आत्म	अर्हति	कर सकता है ॥६॥

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यहंसामपि ।

यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥७॥

अयं हि कृतनिर्वेशः जन्म कोटि अहंसां अपि यद् व्याजहार विवशः नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥७॥

अयं हि	इसने तो	यत् विवशः	क्योंकि विवश होकर
कोटि जन्म	करोड़ों जन्मोंके		(सही)
अहंसां अपि	पापोंका भी	हरेः	श्रीहरिका
कृतनिर्वेशः	प्रायश्चित्त कर	स्वस्त्ययनं	कल्याण-धाम
	लिया,	नाम व्याजहार	नामका उच्चारण
			किया ॥७॥

एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ।

यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥८॥

एतेन एव हि अघोना अस्य कृतं स्यात् अघ निष्कृतं यदा नारायणाय
इति जगाद चतुः अक्षरम् ॥८॥

यदा	जब	एतेन एव हि	इतनेसे ही
नारायणाय	नारायण	अघोना अस्य	इस पापीके
इति चतुः अक्षरं	इस प्रकार चार	अघ निष्कृतं	पापोंका प्रायश्चित्त
	अक्षर	कृतं स्यात्	कर लिया गया ॥८॥
जगाद	बोला		

स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग् ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।
स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥९॥

स्तेनः सुरापः मित्र ध्रुक् ब्रह्म हा गुरुतल्पगः स्त्री राज पितृ गोहन्ता
ये च पातकिनः अपरे ॥९॥

स्तेनः	चोर,	स्त्री राज	स्त्री, राजा,
सुरापः	शराबी,	पितृ गोहन्ता	पिता और गायका
मित्र ध्रुक्	मित्र-द्रोही,		हत्यारा
ब्रह्म हा	ब्रह्म-हत्यारा,	च ये अपरे	और जो दूसरे
गुरुतल्पगः	गुरु-पत्नीगामी,	पातकिनः	पापी हैं ॥९॥

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।

नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥१०॥

सर्वेषां अपि अघवतां इदं एव सुनिष्कृतं नाम व्याहरणं विष्णोः यतः
तत् विषया मतिः ॥१०॥

सर्वेषां	सभी	नाम व्याहरणं	नाम लिया जाय,
अघवतां अपि	पापियोंके लिए भी	यतः	जिससे
इदं एव	यही	तत् विषया	उन (श्रीहरि) के
सुनिष्कृतं	श्रेष्ठ प्रायश्चित्त है,		विषयकी
विष्णोः	भगवान् विष्णुका	मतिः	बुद्धि बने ॥१०॥

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-

स्तथा विशुद्धचत्यघवान् व्रतादिभिः ।

यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-

स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम्

॥११॥

न निष्कृतैः उदितैः ब्रह्मवादिभिः तथा विशुद्धचति अघवान् व्रतादिभिः यथा हरेः नाम पदैः उदाहृतैः तत् उत्तम श्लोक गुण उपलम्भकम् ॥११॥

ब्रह्मवादिभिः वेद-वेत्ताओं द्वारा
उदितैः चतलाये गये
व्रतादिभिः व्रत आदि
निष्कृतैः प्रायश्चित्तोंसे
अघवान् पापी
तथा न ब्रैसा नहीं
विशुद्धचति शुद्ध होता

यथा जैसा
हरेः नाम पदैः श्रीहरिके नामके
पदोंके
उदाहृतैः उच्चारणसे,
तत् उत्तम वे पवित्र कीर्ति
श्लोक भगवान्के)
गुण उपलम्भकं गुणोंके सूचक हैं ॥११॥

नैकान्तिकं तद्धि कृतेऽपि निष्कृते

मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ।

तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरे-

गुणानुवादः खलु सत्त्वभावनः ॥१२॥

न एकान्तिकं तत् हि कृते अपि निष्कृते मनः पुनः धावति चेत् असत् पथे तत् कर्म निर्हारं अभीप्सतां हरेः गुण अनुवादः खलु सत्त्व-भावनः ॥१२॥

हि क्योंकि
निष्कृते प्रायश्चित्त
कृते अपि कर लेनेपर भी
चेत् मनः यदि मन
पुनः असत् पथे फिर कुमार्गमें
धावति दौड़ता हो तो

तत् वह (प्रायश्चित्त)
एकान्तिकं न आत्यन्तिक (पूरा)
नहीं है ।
तत् अतः
कर्म निर्हारं कर्मके नाशको
अभीप्सतां चाहनेवालेको

सत्त्वभावनः	चित्तको शुद्ध	हरेः	श्रीहरिका
	करनेवाला	गुण अनुवादः	गुण-गान है ॥१२॥
खलु	निश्चय		

अथैनं मापनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् ।

यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥१३॥

अथ एनं मा अपनयत कृत अशेष अघ निष्कृतं यत् असौ भगवन्नाम
म्रियमाणः समग्रहीत् ॥१३॥

अथ	अतः	यत् असौ	क्योंकि इसने
अशेष अघ	सम्पूर्ण पापोंका	म्रियमाणः	मरते समय
निष्कृतं कृत	प्रयश्चित्त कर चुके	भगवन्नाम	भगवान्का नाम
एनं	इसको	समग्रहीत्	लिया है ॥१३॥
मा अपनयत	मत ले जाओ,		

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।

वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥१४॥

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनं एव वा वैकुण्ठ नाम ग्रहणं
अशेष अघहरं विदुः ॥१४॥

साङ्केत्यं	संकेतके लिए,	ग्रहणं	लेना
पारिहास्यं	हंसीके लिए,	अशेष अघ	सम्पूर्ण पापोंका
वा स्तोभं	अथवा तान लेनेमें,	हरं	नाशक
वा हेलनं एव	या अवहेलनासे ही	विदुः	जाना गया
वैकुण्ठ नाम	भगवान्का नाम		है ॥१४॥

पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः ।

हरिरित्यवशेनाह पुमान्नाहति यातनाम् ॥१५॥

पतितः स्खलितः भग्नः सन्दष्टः तप्तः आहतः हरिः इति अवशेन
आह पुमान् न अहति यातनाम् ॥१५॥

पतितः	गिरते समय,	हरिः इति	हरि इस प्रकार
स्खलितः	फिसलते समय,	आह	उच्चारण कर लेने
भग्नः	अंग-भंग होते		वाला
	समय,	पुमान्	पुरुष
सन्दष्टः	(किसीके) डँसनेपर,	यातनां	यम-यातना
तप्तः	जलनेपर,	न अर्हति	नहीं पाना
आहतः	घायल होनेपर		चाहिए ॥१५॥
अवशेन	विवश होकर		

गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च ।

प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥१६॥

गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च प्रायश्चित्तानि पापानां
ज्ञात्वा उक्तानि महर्षिभिः ॥१६॥

महर्षिभिः	महर्षियों द्वारा	लघूनां च	छोटे ही
गुरूणां च	बड़े-बड़े	प्रायश्चित्तानि	प्रायश्चित्त
पापानां च	पापोंके लिए तो	ज्ञात्वा	(शास्त्रसे) जानकर
गुरूणि च	बड़े-बड़े ही	उक्तानि	बतलाये हैं ॥१६॥
च लघूनां	और छोटे (पापों)		
	के लिए		

तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानजपादिभिः ।

नाधर्मजं तद्धृदयं तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥१७॥

तैः तानि आघानि पूयन्ते तपः दान जप आदिभिः न अधर्मजं तत्
हृदयं तत् अपि ईश अङ्घ्रि सेवया ॥१७॥

तैः	उन	पूयन्ते	पवित्र हो जाते हैं,
तपः दान	तपस्या, दान	तत्	(पर) उसका
जप आदिभिः	जप आदिसे	अधर्मजं	अधर्मको उत्पन्न
तानि अघानि	उन पापोंसे		करनेवाला

हृदयं न	चित्त नहीं (पवित्र)	ईश अङ्घ्रि	भगवान्‌के चरणोंकी
	होता,	सेवया	सेवासे (पवित्र हो
तत् अपि	वह (चित्त) भी		जाता है) ॥१७॥

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ।

सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥१८॥

अज्ञानात् अथवा ज्ञानात् उत्तम श्लोक नाम यत् संकीर्तितं अघं पुंसः
दहेत् एधः यथा अनलः ॥१८॥

अज्ञानात्	अनजानमें	यथा अनलः	जैसे अग्नि
अथवा	अथवा	एधः	ईंधन (सूखी लकड़ी)
ज्ञानात्	जान बूझकर		को
संकीर्तितं	लिया गया	पुंसः अघं	(वैसे ही) पुरुषके
यत् उत्तम	क्योंकि पवित्र कीर्ति		पापको
श्लोक	भगवान्‌का	दहेत्	भस्म कर देता
नाम	नाम है,		है ॥१८॥

यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ।

अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥१९॥

यथा अगदं वीर्यतमं उपयुक्तं यदृच्छया अजानतः अपि आत्मगुणं
कुर्यात् मन्त्रः अपि उदाहृतः ॥१९॥

यथा वीर्यतमं	जैसे बहुत शक्ति-	आत्मगुणं	अपना गुण (प्रभाव)
	शाली	कुर्यात्	करती है,
अगदं	औषधि	मन्त्रः अपि	(ऐसे ही) मन्त्र भी
यदृच्छया	अकस्मात्	उदाहृतः	उच्चारण मात्रसे
अजानतः अपि	अनजानमें भी		(प्रभाव करता
उपयुक्तं	उपयोग कर लेनेपर		है ।) ॥१९॥

श्रीश्लोक उवाच-

त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप ।

तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरममूचन् ॥२०॥

त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप तं याम्यपाशान् निर्मुच्य विप्रं
मृत्योः अममूचन् ॥२०॥

नृप	राजन्	तं विप्रं	उस ब्राह्मण
त	उन (भगवत्पार्षदों)		(अजामिल) को
	ने	याम्यपाशान्	यमराजके फन्दोंको
भागवतं धर्मं	भागवत् धर्मका	निर्मुच्य	खोलकर
सुविनिर्णीय	निर्णय सुनाकर	मृत्योः	मृत्युसे
		अममूचन्	छुड़ा दिया ॥२०॥

इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमान्तिके ।

यमराज्ञे यथा सर्वमाचक्षुररिन्दम ॥२१॥

इति प्रति उदिता याम्या दूता यात्वा यम अन्तिके यमराज्ञे यथा
सर्वं आच चक्षुः अरिन्दम् ॥२१॥

अरिन्दम	शत्रुनाशक परीक्षित !	यात्वा	जाकर
इति	इस प्रकार	यमराज्ञे	यमराजसे
प्रति उदिता	प्रत्युत्तर पाकर	सर्वं आचचक्षुः	सब ज्योंका त्यों
याम्या दूता	यमराजके दूत		सुना दिया ॥२१॥
यम अन्तिके	यमराजके पास		

द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः ।

ववन्दे शिरसा विष्णोः किङ्करान् दर्शनोत्सवः ॥२२॥

द्विजः पाशात् विनिर्मुक्तः गतभीः प्रकृतिं गतः ववन्दे शिरसा विष्णोः
किङ्करान् दर्शन उत्सवः ॥२२॥

द्विजः	(वह) ब्राह्मण (अजामिल)	विष्णोः	भगवान् विष्णुके
पाशात्	यमपाशसे	किङ्करान्	दूतोंको
विनिर्मुक्तः	छूट जानेपर	नर्शन उत्सवः	(उनके) दर्शनसे
गतभीः	निर्भय हो गया,	शिरसा ववन्दे	प्रसन्न होकर
प्रकृति गतः	स्वस्थ होकर		सिर झुकाकर
			प्रणाम किया ॥२२॥

तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिङ्कराः ।
सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥२३॥

तं विवक्षुं अभिप्रेत्य महापुरुष किङ्कराः सहसा पश्यतः तस्य तत्र
अन्तः दधिरे अनघ ॥२३॥

अनघ	निष्पाप परीक्षित् !	किङ्कराः	पार्षद
तं विवक्षुं	उसे बोलनेकी इच्छा करते	तस्य पश्यतः	उसके देखते-देखते
अभिप्रेत्य	जानकर	सहसा तत्र	अचानक वहीं
महापुरुष	पुरुषोत्तम भगवान्के	अन्तः दधिरे	अन्तर्धान हो गये ॥२३॥

अजामिलोऽप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः ।
धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥२४॥

अजामिलः अपि अथाकर्ण्य दूतानां यम कृष्णयोः धर्मं भागवतं शुद्धं
त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥२४॥

अजामिलः अपि	अजामिलने भी	त्रैविद्यं	वेद-प्रतिपादित
कृष्णयोः	भगवान्के (दूतोंसे)	गुणाश्रयं	सगुण (प्रवृत्तिपरक)
शुद्धं	शुद्ध		धर्म
भागवतं धर्मं	भागवत् धर्म और	अथाकर्ण्य	सुनकर ॥२४॥
यम दूतानां	यमदूतोंसे उनका		

भक्तिमान् भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः ।
अनुतापो महानासीत्स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥२५॥

भक्तिमान् भगवति आशु माहात्म्य श्रवणात् हरेः अनुतापः महान्
आसीत् स्मरतः अशुभं आत्मनः ॥२५॥

हरेः माहात्म्य	श्रीहरिकी महिमा	आत्मनः अशुभं	अपने पापोंका
श्रवणात्	सुननेसे	स्मरतः	स्मरण करके
भगवति	भगवान्में	महान् अनुतापः	भारी पश्चाताप
आशु	शीघ्र	आसीत्	हुआ ॥२५॥
भक्तिमान्	भक्तिमान् (हो गया तथा)		

अजग्लिलोवाच—*

अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः ।
येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्यां जायताऽऽत्मना ॥२६॥

अहो मे परमं कष्टं अभूत् अविजित आत्मनः येन विप्लावितं ब्रह्म
वृषल्यां जायता आत्मना ॥२६॥

अहो मे	अरे मेरे लिए	वृषल्यां	शूद्रा (के गर्भ) से
परमं कष्टं	अत्यन्त दुःखकी बात	आत्मना जायता	(पुत्र रूपमें) अपने-
अभूत्	हो गयी कि		को ही उत्पन्न करके
अविजित		ब्रह्म विप्लाविता	ब्राह्मणत्व नष्ट कर
आत्मनः	अजितेन्द्रिय		दिया ॥२६॥
येन	जिस मैंने		

धिङ्मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् ।
हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥२७॥

धिक् मां विगर्हितं सद्भिः दुष्कृतं कुलकज्जलं हित्वा बालां, सतीं यः
अहं सुरापां असतीं अगाम् ॥२७॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है; किन्तु आगे श्लोक ३८ के
पश्चात् 'श्रीशुक उवाच' होनेसे इसकी आवश्यकता स्पष्ट है ।

सद्भिः	सत्पुरुषोंसे	सतीं बालां	सती अबोध (पत्नी)
विर्गहितं	निन्दित,		को
दुष्कृतं	पापी,	हित्वा	त्यागकर
कुलकज्जलं	कुल-कलंक	सुरापां	शराब पीने वाली
मां धिक्	मुझे धिक्कार है,	असतीं	कुलटाका
यः अहं	जिस मैंने	अगाम्	संसर्ग किया ॥२७॥

वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबन्धू तपस्विनौ ।
अहो मयाधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥२८॥

वृद्धाः अनाथौ पितरौ न अन्य बन्धु तपस्विनौ अहो मया अधुना
त्यक्ताः अकृतज्ञेन नीचवत् ॥२८॥

पितरौ	(मेरे) माता-पिता	तपस्विनौ	तपस्वी थे,
वृद्धाः	वृद्ध थे,	अहो नीचवत्	अरे नीचके समान
अनाथौ	असहाय थे,	अधुना	इस समय
न अन्य बन्धु	उनका कोई दूसरा	मया अकृतज्ञेन	मुझ कृतघ्न द्वारा
	सम्बन्धी भी नहीं	त्यक्ताः	त्याग दिये गये ॥२८॥
	था,		

सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे ।

धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ॥२९॥

सो अहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे धर्मघ्नाः कामिनः यत्र
विन्दन्ति यमयातनाः ॥२९॥

यत्र	जहां	भृशदारुणे	अत्यन्त दारुण
धर्मघ्नाः	धर्म-नाशक	नरके	नरकमें
कामिनः	कामी	सो अहं	ऐसा मैं
यमयातनाः	यम-यातना	व्यक्तं	स्पष्ट है कि
विन्दन्ति	पाते हैं	पतिष्यामि	गिरूँगा ॥२९॥

किमिदं स्वप्न आहोस्वित् साक्षात् दृष्टमिहाद्भुतम् ।

क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन् पाशपाणयः ॥३०॥

किं इदं स्वप्न आहोस्वित् साक्षात् दृष्टं इह अद्भुतं क्व याता अद्य
ते ये मां व्यकर्षन् पाशपाणयः ॥३०॥

किं इदं	यह क्या था,	ये पाशपाणयः	जो हाथमें फन्दे लिए
इह अद्भुतं	यहां (जो) अद्भुत	अद्य मां	आज मुझे
दृष्टं	दीखा	व्यकर्षन्	खींच रहे थे
स्वप्न	स्वप्न था	ते क्व याता	वे कहां चले
आहोस्वित्	अथवा		गये ? ॥३०॥
साक्षात्	साक्षात् था ।		

अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ।

व्यमोचयन्नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ॥३१॥

अथ ते क्व गताः सिद्धाः चत्वारः चारु दर्शनाः व्यमोचयन् नीयमानं
बद्ध्वा पाशैः अधः भुवः ॥३१॥

अथ	और (जिन)	भुवः अधः	पृथ्वीके नीचे
चत्वारः	चारों	नीयमानं	ले जाते हुए (मुझे)
चारु दर्शनाः	अत्यन्त सुन्दर	व्यमोचयन्	छुड़ाया
सिद्धाः	सिद्धोंने	ते क्व गताः	वे कहां चले
पाशैः बद्ध्वा	फन्दोंसे बाँधकर		गये ॥३१॥

अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने ।

भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ॥३२॥

अथ अपि मे दुर्भगस्य विबुध उत्तम दर्शने भवितव्यं मङ्गलेन येन
आत्मा मे प्रसीदति ॥३२॥

अथ अपि	फिर भी	भवितव्यं	हेतु होने चाहिए,
मे दुर्भगस्य	मुझ भाग्यहीनको	येन मे आत्मा	जिस (दर्शन) से
मङ्गलेन	(किसी पूर्वके) पुण्यसे		मेरा चित्त
विबुध उत्तम	देवश्रेष्ठोंके	प्रसीदति	प्रसन्न हो रहा
दर्शने	दर्शनके		है ॥३२॥

अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्बृषलीपतेः ।

वैकुण्ठनाम ग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥३३॥

अन्यथा म्रियमाणस्य न अशुचेः वृषलीपतेः वैकुण्ठ नाम ग्रहणं जिह्वा वक्तुं इह अर्हति ॥३३॥

अन्यथा	नहीं तो	वैकुण्ठ नाम	भगवन्नाम
म्रियमाणस्य	मरते हुए	ग्रहणं वक्तुं	लेकर उच्चारण
अशुचेः	अपवित्र		करनेमें
वृषलीपतेः	शूद्राके पतिकी	न अर्हति	नहीं समर्थ हो
जिह्वा	जीभ		सकती ॥३३॥
इह	इस जीवनमें		

क्व चाहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः ।

क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मङ्गलम् ॥३४॥

क्व च अहं कितवः पापः ब्रह्मघ्नः निरपत्रपः क्व च नारायण इति एतत् भगवन्नाम मङ्गलम् ॥३४॥

क्व च अहं	कहां तो मैं	नारायण इति	नारायण इस प्रकार
कितवः पापः	कपटी, पापी,		(बोलना)
ब्रह्मघ्न	ब्रह्मातेजका नाशक	एतत्	यह
निरपत्रपः	निर्लज्ज	मङ्गलं	मंगलमय
क्व च	और कहां	भगवन्नाम	भगवन्नाम ॥३४॥

सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेन्द्रियानिलः ।

यथा न भूय आत्मानमन्ये तमसि मज्जये ॥३५॥

सो अहं तथा यतिष्यामि यत् चित्त इन्द्रिय अनिलः यथा न भूयः
आत्मानं अन्धे तमसि मज्जये ॥३५॥

स अहं	वह मैं	यथा भूयः	जैसे फिर
चित्त इन्द्रिय	चित्त, इन्द्रिय	आत्मानं	अपनेको
अनिलः	प्राण-वायुको	अन्धे तमसि	अन्धकारपूर्ण
यत्	संयमित करके		नरकमें
तथा	वैसा	न मज्जये	न डुबाऊँ ॥३५॥
यतिष्यामि	प्रयत्न करूँगा		

विमुच्य तमिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् ।

सर्वभूतसुहृच्छान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥३६॥

विमुच्य तं इमं बन्धं अविद्या काम कर्मजं सर्वभूत सुहृत् शान्तः मैत्रः
करुण आत्मवान् ॥३६॥

अविद्या	अविद्या, (अज्ञानके कारण)	सर्वभूत सुहृत्	सब प्राणियोंका हितैषी
काम	कामता (होनेसे)	शान्तः	शान्त
तं कर्मजं	हुए उन कर्मोंके फलसे	मैत्रः	सबका मित्र,
इमं बन्धं	इस बन्धनको	करुण	दयावान
विमुच्य	त्यागकर	आत्मवान्	धैर्यशाली (बनूँगा) ॥३६॥

मोचये प्रस्तमात्मानं योषिन्मय्याऽऽत्ममायया ।

विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥३७॥

मोचये प्रस्तं आत्मानं योषिन् मय्या आत्ममायया विक्रीडितः यया
एव अहं क्रीडामृग इव अधमः ॥३७॥

यया एव	जिसके द्वारा	अहं अधमः	मैं अधम
क्रीडामृग इव	खिलौनेके मृगके समान	विक्रीडितः	बहुत खेल खिलाया गया (उस)

योषिन् मय्या स्त्री रूपिणी | ग्रस्तं आत्मानं ग्रस्त अपनेको
आत्ममायया भगवान्की मायासे | मोचये मुक्त करूँगा ॥३७॥

ममाहमिति देहादौ हित्वा मिथ्यार्थधीर्मतिम् ।
धास्ये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥३८॥

मम अहं इति देह आदौ हित्वा मिथ्या अर्थ धीः मति धास्ये मनः
भगवति शुद्धं तत् कीर्तन आदिभिः ॥३८॥

मम अहं इति	मेरा-मैं इस प्रकार	भगवति	भगवान्में
देह आदौ	शरीर आदि	तत् कीर्तन	उनके कीर्तन
मिथ्या	असत् तत्त्वोंमें	आदिभिः	आदिसे
अर्थ धीः	सत् (प्रयोजनीय)	शुद्धं मनः	शुद्ध हुए मनको
	बुद्धि	मति	और बुद्धिको
हित्वा	छोड़कर	धास्ये	लगाऊँगा ॥३८॥

श्रीशुक उवाच-

इति जातसुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु ।
गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥३९॥

इति जात सुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु गङ्गाद्वारं उपेयाय मुक्त
सर्व अनुबन्धनः ॥३९॥

साधुषु	सत्पुरुषोंके	सर्व अनुबन्धनः	सब पिछले बन्धनोंसे
क्षणसङ्गेन	एकक्षणके संगसे	मुक्त	छूटकर
इति	इस प्रकार	गङ्गाद्वारं	हरिद्वार
सुनिर्वेदः	उत्तम वैराग्य	उपेयाय	चला गया ॥३९॥
जात	उत्पन्न होनेसे		

स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः ।

प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥४०॥

स तस्मिन् देवसदन आसीनः योगं आश्रितः प्रत्याहृत इन्द्रियग्रामः
युयोज मन आत्मनि ॥४०॥

तस्मिन् देवसदन वहाँ भगवान्‌के	प्रत्याहृत	प्रत्याहार करके
मन्दिरमें	परमात्मनि	परमात्मामें
स आसीनः वह बैठ गया,	युयोज	(मन) लगा
योगं आश्रितः योगका सहारा लेकर		दिया ॥४०॥
इन्द्रिय ग्रामः इन्द्रिय समूहका		

ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्मसमाधिना ।

युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥४१॥

ततः गुणेभ्यः आत्मानं वियुज्य आत्म समाधिना युयुजे भगवत्
धाम्नि ब्रह्मणि अनुभव आत्मनि ॥४१॥

ततः	फिर	अनुभव	अनुभव
आत्मानं	चित्तको	आत्मनि	स्वरूप
गुणेभ्यः	गुणोंसे	ब्रह्मणि	ब्रह्म
वियुज्य	पृथक् करके	भगवत् धाम्नि	भगवान्‌के स्वरूपमें
आत्म	अपनी	युयुजे	लगा दिया ॥४१॥
समाधिना	एकाग्रता द्वारा		

यद्वर्त्युपारतधीस्तस्मिन्नब्राक्षीत्पुरुषान् पुरः ।

उपलभ्योपलब्धान् प्राग् ववन्दे शिरसा द्विजः ॥४२॥

यह उपारत धीः तस्मिन् अब्राक्षीत् पुरुषान् पुरः उपलभ्य उप-
लब्धान् प्राक् ववन्दे शिरसा द्विजः ॥४२॥

तस्मिन्	उस स्थितिमें	प्राक् उपलब्धान् (तब) पहिले मिले
यह	जब	पुरुषान् पुरुषों (भगवत्पा-
धीः उपारत	बुद्धिसे भी उपरामता	र्षदों) को
	हो गयी	पुरः अब्राक्षीत् सामने ही देखा,

द्विजः	ब्राह्मणने	शिरसा ववन्दे	(उन्हें) शिरसे
उपलभ्य	(उनके) पास जाकर		वन्दना की ॥४२॥

हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु ।

सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥४३॥

हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनात् अनु सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत् पार्श्ववर्तिनाम् ॥४३॥

दर्शनात् अनु	उनके दर्शनके	भगवत्	भगवान्के
	पश्चात्	पार्श्ववर्तिनां	पार्श्वदोंका
गङ्गायां तीर्थे	गंगाजलमें	स्वरूपं जगृहे	स्वरूप धारण कर
कलेवरं हित्वा	शरीर त्यागकर		लिया ॥४३॥
सद्यः	तत्काल		

साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिङ्करैः ।

हैमं विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥४४॥

साकं विहायसा विप्रः महापुरुष किङ्करैः हैमं विमानं आरुह्य ययौ यत्र श्रियः पतिः ॥४४॥

महापुरुष	पुरुषोत्तम भगवान्के	विहायसा	आकाश-मार्गसे
किङ्करैः साकं	सेवकोंके साथ	यत्र श्रियः पतिः	जहां भगवान् लक्ष्मी-
विप्रः	वह ब्राह्मण		पति (रहते हैं)
हैमं विमानं	स्वर्णमय विमानपर	ययौ	चला गया ॥४४॥
आरुह्य	चढ़कर		

एवं स विप्लावितसर्वधर्मा

दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा ।

निपात्यमानो निरये हतव्रतः

सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥४५॥

एवं स विप्लावित सर्व धर्मा दास्याः पतिः पतितः गृह्य कर्मणा
निपात्यमानः निरये हतव्रतः सद्यः विमुक्तः भगवन्नाम गृह्णन् ॥४५॥

एवं स	इस प्रकार वह	हतव्रतः	नियमच्युत होनेसे
सर्व धर्मा	सब धर्मोंको	निरये	नरकमें
विप्लावित	नष्ट करने वाला	निपात्यमानः	गिराये जाते समय
दास्याः पतिः	दासीपति	भगवन्नाम	भगवन्नाम
गृह्य कर्मणा	(अपने) निन्दित	गृह्णन्	लेनेसे
	कर्मोंसे	सद्यः विमुक्तः	तुरन्त छूट गया ॥४५॥
पतितः	पतित		

। नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं

मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ।

न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो

रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥४६॥

न अतः परं कर्म निबन्ध कृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपद अनुकीर्तनात् न यत्
पुनः कर्मसु सज्जते मनः रजः तमः भ्यां कलिलं ततः अन्यथा ॥४६॥

मुमुक्षतां	संसारसे मुक्त होनेकी	तीर्थपद	तीर्थोंको तीर्थ बनाने
	इच्छा वालोंके लिए		वाले
अतःअनुकीर्तनात्	इस (भगवान्) के	यत् पुनः	जिससे फिर
	कीर्तनसे	मनः कर्मसु	मन कर्मोंमें
परं	श्रेष्ठ	सज्जते न	आसक्त नहीं होता ।
कर्म निबन्ध	कर्म बन्धनको	ततः अन्यथा	इससे भिन्न (साधन)
कृन्तनं	काटने वाला		में
	(साधन)	रजः तमः भ्यां	रजोगुण तमोगुणसे
न	नहीं है ।	कलिलं	मलिन हो जाता
			है ॥४६॥

य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् ।

शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्यानुकीर्तयेत् ॥४७॥

यः एवं परमं गुह्यं इतिहासं अघ अपहं शृणुयात् श्रद्धया युक्तः यः
च भक्त्या अनुकीर्तयेत् ॥४७॥

यः एवं जो इस प्रकारके
परमं गुह्यं परम रहस्यमय
अघ अपहं पापहारी
इतिहासं इतिहासको
श्रद्धया युक्तः श्रद्धासहित
शृणुयात् सुनता है

च यः और जो
भक्त्या भक्ति पूर्वक
अनुकीर्तयेत् इसका बार-बार
कीर्तन करता
है ॥४७॥

न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिङ्करैः ।

यद्यप्यमङ्गलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥४८॥

न वै स नरकं याति न ईक्षितः यमकिङ्करैः यद्यपि अमङ्गलः मर्त्यः
विष्णुलोके महीयते ॥४८॥

स वै वह निश्चय
नरकं न याति नरक नहीं जाता,
यमकिङ्करैः यमराजके दूतों द्वारा
न ईक्षितः देखा भी नहीं जाता
यद्यपि मर्त्यः यद्यपि वह मनुष्य

अमङ्गलः पापी भी हो (तो
भी)
विष्णुलोके वैकुण्ठमें
महीयते सम्मानित होता
है ॥४८॥

न्त्रियमाणो हरेर्नाम गृणन् पुत्रोपचारितम् ।

अजामिलोऽप्यगाधाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥४९॥

न्त्रियमाणः हरेः नाम गृणन् पुत्र उपचारितं अजामिलः अपि अगाध
धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥४९॥

स्त्रियमाणः	मरते समय	अजामिलः अपि अजामिल (जैसा
पुत्र	पुत्रके	पापी) भी
उपचारितं	बहानेसे	धाम अगात् भगवद्धाम चला गया
हरेः नाम	श्रीहरिका नाम	पुनः श्रद्धया फिर श्रद्धासे
गुणन्	पुकार कर	गृणन् किं लेनेपर तो कहना ही
		क्या ॥४६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धेऽजामिलोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

राजोवाच-

निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं

प्रत्याह किं तान् प्रति धर्मराजः ।

एवं हताज्ञो विहतान्मुरारे-

नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ॥१॥

निशम्य देवः स्वभट उपवर्णितं प्रति आह किं तान् प्रति धर्मराजः

एवं हत आज्ञः विहतान् मुरारेः नैदेशिकैः यस्य वशे जनः अयम् ॥१॥

यस्य वशे जिनके वशमें
अयं जनः ये सब लोग हैं,
स्वभट अपने सैनिकों द्वारा
उपवर्णितं बतलायी
मुरारेः श्रीहरिके
नैदेशिकैः आज्ञा पालकों द्वारा
विहतान् की गयी

एवं हत आज्ञः अपनी आज्ञाका
 इस प्रकार भंग होना
निशम्य सुनकर
देवः धर्मराजः देव यमराजने
तान् प्रति उनसे
किं आह क्या कहा ॥१॥

यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः

कुतश्चनर्णे श्रुतपूर्वं आसीत् ।

एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं

न हि त्वदन्य इति मे विनिश्चितम् ॥२॥

यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः कुतश्चन ऋषे श्रुत पूर्वं आसीत् एतत्
मुने वृश्चति लोकसंशयं न हि त्वत् अन्य इति मे विनिश्चितम् ॥२॥

ऋषे	महर्षि !	लोकसंशयं	लोगोंके सन्देहका
कुतश्चन्	किसी भी प्रकार	वृश्चति	निवारण करें
यमस्य देवस्य	देव यमराजके	हि	क्योंकि
दण्डभङ्गः	दण्डको रोक देना	त्वत् अन्य	आपके अतिरिक्त
न श्रुत पूर्वं	पहिले (कभी) नहीं	न	दूसरा कोई
आसीत्	सुना गया	इति मे	(समर्थ) नहीं है
मुने	है	विनिश्चितं	ऐसा मेरा
एतत्	मुनिवर !		पूरा निश्चय है ॥२॥
	इस विषयमें		

श्रीशुक उवाच-

भगवत्पुरुषै राजन् याम्याः प्रतिहतोद्यमाः ।
पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमनीपतिम् ॥३॥

भगवत् पुरुषैः राजन् याम्याः प्रतिहत उद्यमाः पतिं विज्ञापयामासुः
यमं संयमनी पतिम् ॥३॥

राजन्	राजन् !	संयमनी पतिं	संयमनी पुरीके
भगवत् पुरुषैः	भगवान्‌के पार्षदों	पतिं यमं	स्वामी
याम्याः	द्वारा		अपने स्वामी
उद्यमाः	यमदूतोंका	विज्ञापयामासुः	यमराजको
प्रतिहत	प्रयत्न		(उन्होंने) सूचित
	व्यर्थ कर दिये		किया ॥३॥
	जानेपर		

यमदूता ऊचुः

कति सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो ।
त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥४॥

कति सन्ति इह शास्तारः जीवलोकस्य वै प्रभो त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म
फल अभिव्यक्ति हेतवः ॥४॥

प्रभो !	प्रभो !	कर्म कुर्वतः	कर्म करनेवाले
फल अभिव्यक्ति	फल प्रकट होनेके	जीवलोकस्य	जीव (मनुष्य) लोकके
हेतवः	कारण	इह	इस संसारमें
त्रैविध्यं	तीनों (सात्त्विक, राजस, तामस) प्रकारके	वै कति	निश्चित कितने
		शास्तारः सन्ति	शासक हैं ? ॥४॥

यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः ।

कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥५॥

यदि स्युः बहवः लोके शास्तारः दण्डधारिणः कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युः च अमृतं एव वा ॥५॥

यदि लोके	यदि संसारमें	च अमृतं एव वा	और जीवन ही फिर
दण्डधारिणः	दण्ड देने वाले	कस्य स्यातां	किसका हो
शास्तारः	शासक	वा कस्य न	अथवा किसका न
बहवः स्युः	बहुत हों तो		हो (यह ठीक निर्णय
मृत्युः	मृत्यु		कैसे होगा ?) ॥५॥

किन्तु शास्तृबहुत्वे स्याद्बहूनामिह कर्मिणाम् ।

शास्तृत्वमुपचारो हि यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥६॥

किं तु शास्तृ बहुत्वे स्यात् बहूनां इह कर्मिणां शास्तृ त्वं उपचारः हि यथा मण्डल वर्तिनाम् ॥६॥

इह	इस लोकमें	उपचारः	औपचारिक (नाम-
बहूनां कर्मिणां	बहुत कर्म करनेवाले होनेसे	यथा	मात्रका) होगा जैसे
किं तु	यदि तो	मण्डल वर्तिनां	(सम्राटके अधीन)
बहुत्वे स्यात्	बहुतसे		एक-एक मण्डलके
शास्तृ	शासक हों तो		स्वामियोंका ॥६॥
हि शास्तृ त्वं	फिर शासकपना		

अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः ।

शास्ता दण्डधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ॥७॥

अतः त्वं एकः भूतानां स ईश्वराणां अधीश्वरः शास्ता दण्डधरः
नृणां शुभ अशुभ विवेचनः ॥७॥

अतः	अत एव	नृणां	मनुष्योंके
स ईश्वराणां	(अपने) स्वामियोंके	शुभ अशुभ	पाप-पुण्यके
	साथ	विवेचनः	निर्णायक
भूतानां	प्राणियोंके	दण्डधरः	दण्डदाता (और)
त्वं एकः	आप अकेले	शास्ता	शासक (हैं) ॥७॥
अधीश्वरः	अधीश्वर हैं ।		

तस्य ते विहतो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना ।

चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलम्बिता ॥८॥

तस्य ते विहतः दण्डः न लोके वर्तते अधुना चतुः भिः अद्भुतैः सिद्धैः
आज्ञा ते विप्रलम्बिता ॥८॥

तस्य ते	ऐसे आपके द्वारा	अद्भुतैः	अद्भुत
विहतः दण्डः	विधान किया दण्ड	चतुः भिः सिद्धैः	चार सिद्धोंने
अधुना	इस समय	ते आज्ञा	आपकी आज्ञाका
लोके न वर्तते	संसारमें नहीं चल	विप्रलम्बिता	उल्लंघन किया
	रहा है ।		है ॥८॥

नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ।

व्यमोचयन् पातकिनं छित्त्वा पाशान् प्रसह्य ते ॥९॥

नीयमानं तव आदेशात् अस्माभिः यातना गृहान् व्यमोचयन्
पातकिनं छित्त्वा पाशान् प्रसह्य ते ॥९॥

तव आदेशात्	आपकी आज्ञासे	यातना गृहान्	यातनागार (नरक)
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा		में

नीयमानं	लाये जाते	ते पाशान्	आपके पाशोंको
पातकिनं	पापीको	छित्त्वा	काटकर
प्रसह्य	बलपूर्वक	व्यमोचयन्	छुड़ा दिया ॥६॥

तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् ।

नारायणेत्यभिहिते मा भैरित्याययुर्द्रुतम् ॥१०॥

तान् ते वेदितुं इच्छामः यदि नः मन्यसे क्षमं नारायण इति अभिहिते
मा भैः इति आययुः द्रुतम् ॥१०॥

यदि नः	यदि हमको	इच्छामः	इच्छा करते हैं
क्षमं मन्यसे	इसके योग्य मानते	नारायणः	नारायण
	हैं तो	इति अभिहिते	इस प्रकार बोलनेपर
ते	आपसे	‘मा भैः’	‘डरो मत’
तान् वेदितुं	उनको (हम)	इति	ऐसा कहते
	जाननेको	द्रुतं आययुः	शीघ्र आ पहुँचे ॥१०

श्रीशुक उवाच—

इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः ।

प्रीतः स्वदूतान् प्रत्याह स्मरन् पादाम्बुजं हरेः ॥११॥

इति देवः स आपृष्टः प्रजा संयमनः यमः प्रीतः स्वदूतान् प्रति आह
स्मरन् पादाम्बुजं हरेः ॥११॥

स देवः	वे देव	हरेः पादाम्बुजं	श्रीहरिके चरण
प्रजा संयमनः	पूजाके शासक		कमलोंका
यमः	यमराज	स्मरन्	स्मरण करते हुए
इति आपृष्टः	इस प्रकार पूछे	स्वदूतान् प्रति	अपने दूतोंसे
	जानेपर	आह	बोले ॥११॥
प्रीतः	प्रसन्न होकर		

यम उवाच—

परो मदन्यो जगतस्तम्युषश्च
ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ।
यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा
नस्योतवद् यस्य वशे च लोकः ॥१२॥

परः मत् अन्यः जगतः तम्युषः च ओतं प्रोतं पटवत् यत्र विश्वं यत्
अंशतः अस्य स्थिति जन्म नाशा नसि ओतवत् यस्य वशे च लोकः ॥१२॥

मत् अन्यः	मुझसे भिन्न	अस्य	इस संसारकी
जगतः तम्युषः च	चराचरके	स्थिति जन्म	स्थिति, सृष्टि, प्रलय
परः	स्वामी (एक हैं)	नाशा	करनेवाले (विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र) हैं,
यत्र विश्वं	जिनमें विश्व	च नसि ओतवत्	और नाककी रस्सीमें
पटवत्	(सूतमें) वस्त्रकी भांति	बँधेकी भांति	
ओतं प्रोतं	ओत-प्रोत है,	यस्य वशे	जिसके वशमें
यत् अंशतः	जिनके अंशसे	लोकः	सब लोक हैं ॥१२॥

यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां

बध्नाति तन्त्यामिव दामभिर्गाः ।

यस्मै बलिं त इमे नामकर्म-

निबन्धबद्धाश्चकिता

वहन्ति ॥१३॥

यः नामभिः वाचि जनान् निजायां बध्नाति तन्त्यां इव दामभिः
गाः यस्मै बलिं त इमे नाम कर्म निबन्ध बद्धाः चकिता वहन्ति ॥१३॥

तन्त्यां दामभिः	छोटी रस्सियोंसे बाँधकर फिर बड़ी रस्सीमें बँधे	जनान्	लोगोंको
गाः इव	पशुओंके समान	निजायां वाचि	अपनी (वेदरूप) वाणीसे
यः नामभिः	जो नामों द्वारा (बाँधकर)	बध्नाति	बाँध देता है,
		त इमे	वे (लोग) इस
		नाम कर्म	नाम और कर्मके

निबन्ध बद्धाः आग्रहसे बँधे (लोग) | यस्मै बलि जिसे उपहार
चकिताः भयभीत होकर | वहन्ति दे रहे हैं ॥१३॥

अहं महेन्द्रो निऋतिः प्रचेताः

सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिञ्चः ।

आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या

मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥१४॥

अहं महेन्द्रः निऋतिः प्रचेताः सोमः अग्निः ईशः पवनः अर्कः
विरिञ्चः आदित्य विश्वे वसवः अथ साध्या मरुद्गणाः रुद्रगणाः
ससिद्धाः ॥१४॥

अहं महेन्द्रः	मैं (यम) इन्द्र,	विश्वे	विश्वे देवा
निऋतिः	निऋति देवता,	वसवः अथ	(आठो) वसु और
प्रचेताः सोमः	वरुण, चन्द्रमा,	साध्या	साध्यगण,
अग्निः ईशः	अग्नि, शिव,	मरुद्गणाः	मरुद्गण,
पवनः अर्कः	वायु, सूर्य	रुद्रगणाः	रुद्रगण
विरिञ्चः	ब्रह्मा,	ससिद्धाः	सिद्धोंके साथ ॥१४॥
आदित्य	आदित्य,		

अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा

भृगवादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ।

यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमाया

सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥१५॥

अन्ये च ये विश्वसृजः अमर ईशाः भृगु आदयः अस्पृष्ट रजः
तमस्काः यस्य ईहितं न विदुः स्पृष्टमायाः सत्त्व प्रधाना अपि किं ततः
अन्ये ॥१५॥

च ये अन्ये	और जो दूसरे	सत्त्व प्रधाना	सत्त्वगुण प्रधान
विश्वसृजः	विश्व-स्रष्टा (प्रजा-पति)	अपि	(होनेपर) भी
अमर ईशाः	देवताओंके स्वामी	स्पृष्टमायाः	माया-ग्रस्त होनेसे
अस्पृष्ट रजः	रजोगुण,	यस्य ईहितं	जिनकी चेष्टाको
तमस्काः	तमोगुणसे अछूते	न विन्दुः	नहीं जानते
भृगु आदयः	भृगु आदि	ततः अन्ये	तब दूसरे
		किं	क्या (जानेंगे) ॥१५॥

यं वै न गोभिर्मनसासुभिर्वा
हृदा गिरा वासुभृतो विचक्षते ।

आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां

चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः

परम् ॥१६॥

यं वै न गोभिः मनसा असुभिः वा हृदा गिरा वा असुभृतः विचक्षते
आत्मनं अन्तः हृदि सन्तं आत्मनां चक्षुः यथा एव आकृतयः ततः परम् ॥१६॥

यथा आकृतयः	जैसे आकृतियां (घट-पटादि)	वा असुभिः	अथवा प्राण (प्राणायाम) से,
ततः परं	उनसे परे (प्रकाशक)	हृदा गिरा वा	हृदय या वाणीसे
चक्षुः	नेत्रोंको (नहीं देख सकते)	आत्मनं अन्तः	अपने ही भीतर
असुभृतः	(वैसे ही कोई प्राणी	हृदि	हृदयमें
यं वै	जिसे निश्चय ही	आत्मनां सन्तं	आत्मा रूपसे
गोभिः मनसा	इन्द्रियोंसे, मनसे,	विचक्षते	विद्यमान नहीं देख सकते ॥१६॥

तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः

परस्य

मायाधिपतेर्महात्मनः ।

प्रायेण दूता इह वै मनोहरा-

श्ररन्ति

तद्रूपगुणस्वभावाः ॥१७॥

तस्य आत्म तन्त्रस्य हरेः अधीशितुः परस्य माया अधिपतेः महात्मनः
प्रायेण दूता इह वै मनोहराः चरन्ति तद् रूप गुण स्वभावाः ॥१७॥

तस्य आत्म	उन परम	तद् रूप गुण	उन्हींके रूप, गुण,
तन्त्रस्य	स्वतन्त्र	स्वभावाः	स्वभाव वाले
अधीशितुः	सर्वेश्वर	मनोहराः	मनोहर
माया अधिपतेः	मायापति	दूता वै	दूत निश्चय ही
परस्य	परमपुरुष,	प्रायेण इह	प्रायः इस संसारमें
महात्मनः	महात्मा	चरन्ति	विचरण करते रहते
हरेः	श्रीहरिके		हैं ॥१७॥

भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि
दुर्दर्शल्लिङ्गानि महाद्भुतानि ।

रक्षन्ति तद्भक्तिमतः परेभ्यो

मत्तश्च मर्त्यान्थ सर्वतश्च ॥१८॥

भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्शं लिङ्गानि महा अद्भुतानि
रक्षन्ति तद् भक्तिमतः परेभ्यः मत्तः च मर्त्यान् अथ सर्वतः च ॥१८॥

सुरपूजितानि	देवताओंसे भी पूजित	मर्त्यान्	मनुष्योंकी
दुर्दर्शं लिङ्गानि	दुर्लभ दर्शन वाले,	परेभ्यः	शत्रुओंसे
महा अद्भुतानि	अत्यन्त अद्भुत	च मत्तः	तथा मुझसे
विष्णोः भूतानि	भगवान् विष्णुके	अथ सर्वतः च	और सब ओरसे ही
	स्वरूप भूत 'पार्षद')	रक्षन्ति	रक्षा करते हैं ॥१८॥
तद् भक्तिमतः	उन (भगवान्) के		
	भक्तिमान		

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं

न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ।

न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः

कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥१९॥

धर्मं तु साक्षात् भगवत् प्रणीतं न वै विदुः ऋषयः न अपि देवाः न
सिद्धमुख्याः असुराः मनुष्याः कुतः च विद्याधर चारण आदयः ॥१६॥

साक्षात् भगवत् साक्षात् भगवान्	असुराः	असुर,
द्वारा	मनुष्याः	मनुष्य
प्रणीतं धर्मं निर्मित (भागवत)	न	नहीं (जानते)
धर्मको	विद्याधर चारण	विद्याधर, चारण
ऋषयः न ऋषि नहीं	च आदयः कुतः	आदि तो कहाँसे
वै विदुः ही जानते,		(जान सकते
देवाः अपि न देवता भी नहीं,		हैं) ॥१६॥
सिद्धमुख्याः सिद्ध-प्रधान,		

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ।

प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥२०॥

स्वयंभूः नारदः शम्भुः कुमारः कपिलः मनुः प्रह्लादः जनकः भीष्मः
बलिः वैयासकिः वयम् ॥२०॥

स्वयम्भूः	ब्रह्माजी,	प्रह्लादः जनकः	प्रह्लाद, जनक,
नारद शम्भुः	नारद, शिव,	भीष्मः बलिः	भीष्म, राजा बलि,
कुमारः	सनकादि (चारों)	वैयासकिः	व्यासनन्दन शुक्-
	कुमार,		देवजी और
कपिलः मनुः	कपिल, मनु,	वयम्	हम (यमराज) ॥२०॥

द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ।

गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥२१॥

द्वादश एते विजानीमः धर्मं भागवतं भटाः गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं
ज्ञात्वा अमृतं अश्नुते ॥२१॥

भटाः	अरे दूतो !	दुर्बोधं	जाननेमें कठिन
एते द्वादश	ये बारह ही	भागवतं धर्मं	भागवत धर्मको
गुह्यं विशुद्धं	गोपनीय, परमशुद्ध,	विजानीमः	जानते हैं,

यं ज्ञात्वा	जिसे जानकर (जाननेवाला)		अमृतं अश्नुते	अमरत्व भोगता है ॥२१॥
-------------	---------------------------	--	---------------	-------------------------

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।

भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥२२॥

एतावान् एव लोके अस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः भक्तियोगः भगवति
तत् नाम ग्रहण आदिभिः ॥२२॥

अस्मिन् लोके	इस (मनुष्य) लोकमें		भगवति	भगवान् में
एतावान् एव	इतना मात्र ही		तत् नाम	उनके नाम
पुंसां परः धर्मः	पुरुषका परम-धर्म		ग्रहण आदिभिः	लेने आदिके द्वारा
स्मृतः	कहा गया है		भक्तियोगः	भक्ति हो ॥२३॥

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।

अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥२३॥

नाम उच्चारण माहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः अजामिलः अपि येन
एव मृत्युपाशात् अमुच्यत ॥२३॥

पुत्रकाः	मेरे नन्हे बच्चो,		अजामिलः अपि	अजामिल (जैसा
हरेः	श्रीहरिके			पापी) भी
नाम उच्चारण	नाम लेनेकी		मृत्युपाशात्	मृत्युके फन्दोंसे
माहात्म्यं पश्यत	महिमा देखो		अमुच्यत	छूट गया ॥२३॥
येन एव	केवल जिससे			

एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां

सङ्कीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ।

विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि

नारायणेति त्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥२४॥

एतावत् अलं अघ निर्हरणाय पुंसां संकीर्तनं भगवतः गुणकर्मनाम्नां विक्रुश्य पुत्रं अघवान् यत् अजामिलः अपि नारायण इति स्त्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥२४॥

भगवतः	भगवान्के	यत् अघवान्	क्योंकि पापी
गुणकर्मनाम्नां	गुण, कर्म, नामोंका	अजामिलः अपि	अजामिल भी
संकीर्तनं	संकीर्तन	स्त्रियमाण	मरते समय
पुंसां	पुरुषके	नारायण इति	‘नारायण’ इस प्रकार
अघ निर्हरणाय	पाप नष्ट करनेके	पुत्रं विक्रुश्य	पुत्रको पुकारकर
	लिए	मुक्ति इयाय	मुक्ति पा गया ॥२४॥
एतावत् अलं	इतना ही पर्याप्त है,		

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं

देव्या विमोहितमतिर्बत माययालम् ।

त्रय्यां जडोक्तमतिर्मधुपुष्पितायां

वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥२५॥

प्रायेण वेद तत् इदं न महाजनः अयं देव्या विमोहित मतिः बत मायया अलं त्रय्यां जडोक्त मतिः मधुः पुष्पितायां वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥२५॥

बत	अहो	वैतानिके	बड़े यज्ञोंके
मायया देव्या	माया देवी द्वारा	महति कर्मणि	महान् (विस्तार- वाले) कर्मोंमें
अलं विमोहित	पूर्ण मोहित	युज्यमानः	लगकर
मतिः	बुद्धि	अयं महाजनः	ये बड़े विद्वान भी
मधु पुष्पितायां	मधुर पुष्पिता (अर्थ- वादमयी)	प्रायेण	प्रायः
त्रय्यां	वेदत्रयी (की वाणी)	तत् इदं	उस इस (भागवत- धर्म) को
जडोक्त मतिः	जड़ बनी बुद्धिके	न वेद	नहीं जानते ॥२५॥
	कारण		

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते

सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ।

ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां

स्यात् पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥२६॥

एवं विमृश्य सुधियः भगवति अनन्ते सर्व आत्मना विदधते खलु भावयोगं ते मे न दण्डं अर्हन्ति अथ यदि अमीषां स्यात् पातकं तत् अपि हन्ति उरुगाय वादः ॥२६॥

एवं विमृश्य ऐसा विचार करके
सुधियः अच्छी बुद्धिवाले
सर्व आत्मना सम्पूर्ण मनसे
भगवति अनन्ते भगवान् अनन्तमें
भावयोगं भक्तिभाव
खलु विदधते ही करते हैं,
ते मे दण्डं वे मेरे दण्डके
अर्हन्ति न भागी नहीं होते,

अथ यदि फिर यदि
अमीषां इन लोगोंका
पातकं स्यात् (कुछ) पाप भी हो
तत् अपि उसे भी
उरुगाय उत्तम श्लोक
 भगवान्का
वादः हन्ति कीर्तन नष्ट कर
 देता है ॥२६॥

ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा

ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ।

तान् नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान्

नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥२७॥

ते देव सिद्ध परिगीत पवित्र गाथा ये साधवः समदृशः भगवत् प्रपन्नाः तान् न उपसीदत हरेः गदया अभिगुप्तान् न एषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥२७॥

ये साधवः जो सत्पुरुष
समदृशः समदर्शी और
भगवत् प्रपन्नाः भगवान्की शरणमें हैं
ते गाथा उनका चरित

देव सिद्ध देवता, सिद्धों द्वारा
परिगीत गाया जाता है,
तान् उन
हरेः गदया श्रीहरिकी गदासे

अभिगुप्तान्	सुरक्षितोंके	न वयं	न हम
उपसीदत न	पास मत जाना,	च न वयः	और न काल
एषां दण्डे	इनको दण्ड देनेमें	प्रभवाम	समर्थ हैं ॥२७॥

तानानयध्वमसतो विमुखात् मुकुन्द-

पादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम् ।

निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञै-

र्जुष्ठाद् गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥२८॥

तान् आनयध्वं असतः विमुखान् मुकुन्द पादारविन्द मकरन्द रसात्
अजस्रं निष्किञ्चनैः परम हंस कुलैः रसज्ञैः जुष्ठात् गृहे निरयवर्त्मनि बद्ध
तृष्णान् ॥२८॥

निष्किञ्चनैः	अकिञ्चन,	विमुखात्	विमुख होकर
रसज्ञैः	रसज्ञ	निरयवर्त्मनि	नरकके मार्गरूप
परम हंस कुलैः	परमहंस-गणों द्वारा	गृहे	गृहस्थाश्रममें
अजस्रं जुष्ठात्	निन्तर सेवित	बद्ध तृष्णान्	तृष्णासे बँधे (जो हैं)
मुकुन्द	मुकुन्दके	तान् असतः	उन दुष्टोंको
पादारविन्द	चरण-कमल	आनयध्वं	ले आओ ॥२८॥
मकरन्द रसात्	मकरन्द-रससे		

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं

चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।

कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि

तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥२९॥

जिह्वा न वक्ति भगवत् गुण नामधेयं चेतः च न स्मरति तत् चरणार-
विन्दं कृष्णाय नः नमति यत् शिर एकदा अपि तान् आनयध्वं असतः अकृत
विष्णु कृत्यान् ॥२९॥

जिह्वा भगवत्	(जिनकी) जीभ	गुण नामधेयं	गुणों और नामोंको
	भगवान्‌के	न वक्ति	नहीं बोलती,

च चेतः	और (जिसका) चित्त	कृष्णाय	श्रीकृष्णके लिए
तत्	उनके	नः नमति	नहीं झुकता
चरणारविन्दं	चरण-कमलोंका	विष्णु कृत्यान्	भगवत्-सेवा
न स्मरति	स्मरण नहीं करता	अकृत	न करनेवाले
यत् शिर	जिसका मस्तक	तान् असतः	उन दुष्टोंको
एकदा अपि	एक बार भी	आनयध्वं	ले आओ ॥२६॥

तत् क्षम्यतां स भगवान् पुरुषः पुराणो

नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ।

स्वानामहो नविदुषां रचिताञ्जलीनां

क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥३०॥

तत् क्षम्यतां स भगवान् पुरुषः पुराणः नारायणः स्वपुरुषैः यत् असत्
कृतं नः स्वानां अहो नविदुषां रचित अञ्जलीनां क्षान्तिः गरीयसि नमः
पुरुषाय भूम्ने ॥३०॥

स्वपुरुषैः	अपने सेवकों द्वारा	अञ्जलीनां	हाथ
यत् नः	जो हमसे ही	रचित	जोड़े
असत् कृतं	(भगवान्का) अप- मान हुआ	स्वानां	अपने जनोंका (अपराध)
स भगवान्	वे भगवान्	क्षान्तिः	क्षमा कर देना (उनकी)
पुराणः पुरुषः	पुराण-पुरुष	गरीयसि	महानता है,
नारायणः	नारायण	भूम्ने पुरुषाय	(उन) भूमा-पुरुषको
तत् क्षम्यतां	उसे क्षमा करें,	नमः	नमस्कार ॥३०॥
अहो	अहो		
नविदुषां	अज्ञानी		

श्रीशुक उवाच*—

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमहंसात् ।
महतामपि कौरव्य विद्वद्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥३१॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तस्मात् सङ्कीर्तनं विष्णोः जगत् मङ्गलं अंहसां महतां अपि कौरव्य
विद्धि ऐकान्तिक निष्कृतिम् ॥३१॥

कौरव्य	परीक्षित !	महतां	महा
तस्मात्	इसलिए	अंहसां अपि	पापोंका भी
जगत् मङ्गलं	विश्व कल्याणकारी	ऐकान्तिक	आत्यन्तिक
विष्णोः	भगवान् विष्णुका	निष्कृतिं विद्धि	प्रायश्चित्त
सङ्कीर्तनं	कीर्तन		जानो ॥३१॥

शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः ।

यथा सुजातया भक्त्या शुद्धचेन्नात्मा व्रतादिभिः ॥३२॥

शृण्वतां गृणतां वीर्याणि उद्दामानि हरेः मुहुः यथा सुजातया भक्त्या
शुद्धचेत् न आत्मा व्रतादिभिः ॥३२॥

उद्दामानि	निर्बन्ध	भक्त्या	भक्तिसे
मुहुः	बार-बार	यथा आत्मा	जैसा चित्त
हरेः वीर्याणि	भगवान् श्रीहरिके पराक्रमोंका	शुद्ध्येत	शुद्ध होता है
शृण्वतां गृणतां	सुनने, वर्णन करनेसे	व्रतादिभिः न	(वैसा) व्रत आदिसे
सुजातया	भली प्रकार उत्पन्न		नहीं होता है ॥३२॥

कृष्णाङ्घ्रिपद्ममधुलिङ्गं न पुनर्विसृष्ट-

मायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ।

अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टु-

मीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥३३॥

कृष्ण अङ्घ्रि पद्म मधुलिङ्गं न पुनः विसृष्ट माया गुणेषु रमते वृजिन
आवहेषु अन्यः तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टुम् ईहेत कर्म यत एव रजः पुनः
स्यात् ॥३३॥

कृष्ण अङ्घ्रि	श्रीकृष्णके चरण	कामहत	कामनाओंके मारे
पद्म मधुलिङ्ग	कमल-मधुका स्वाद	अन्यः तु	दूसरे तो
	लेनेवाला	आत्मरजः	अपने मनोमलको
वृजिन आवहेषु	कण्टदायी	प्रमाण्डुम्	मांजनेके लिए
विसृष्ट माया	त्यागे हुए मायाके	कर्म ईहेत	कर्म करना चाहते हैं
गुणषु	गुणोंमें	यत एव पुनः	जिनसे कि फिर
पुनः न रमते	फिर नहीं रमता,	रजः स्यात्	दोष होते हैं ॥३३॥

इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन्महित्वं

संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिङ्करास्ते ।

नैवाच्युताश्रयजनं प्रति शङ्कमाना

द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन् ॥३४॥

इत्थं स्वभर्तृ गदितं भगवत् महित्वं संस्मृत्य विस्मितधियः यम-
किङ्कराः ते न एव अच्युत आश्रयजनं प्रति शङ्कमाना द्रष्टुं च बिभ्यति ततः
प्रभृति स्म राजन् ॥३४॥

राजन्	राजन् !	ततः प्रभृति स्म	उस समयसे ही
इति	इस प्रकार	अच्युत	भगवान्के
स्वभर्तृ गदितं	अपने स्वामीकी कही	आश्रयजनं	आश्रितजनसे
भगवत् महित्वं	भगवान्की महिमा-	प्रति शङ्कमाना	आशङ्कित रहने लगे,
	का	न एव द्रष्टुं	(उन्हें) नहीं ही
संस्मृत्य	स्मरण करके		देखते
विस्मितधियः	विस्मित बुद्धि	च बिभ्यति	और (उनसे) डरते
ते यमकिङ्कराः	वे यमराजके सेवक		हैं ॥३४॥

इतिहासमिमं गुह्यं भगवान् कुम्भसम्भवः ।

कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥३५॥

इतिहासं इमं गुह्यं भगवान् कुम्भ सम्भवः कथयामास मलय आसीनः
हरिं अर्चयन् ॥३५॥

इमं गुह्यं	इस गोपनीय	मलय आसीनः	मलय पर्वतपर
इतिहासं	इतिहानको		बैठकर
भगवान्	भगवान्	हरिं अर्चयन्	श्रीहरिकी पूजा
कुम्भ सम्भवः	अगस्त्यने		करते हुए
		कथयामास	कहा है ॥३५॥

इति श्रीमद्भगवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे यमपुरुषसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

शाजोवाच-

देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ।
सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥१॥

देव असुर नृणां सर्गः नागानां मृग पक्षिणां सामासिकः त्वया प्रोक्तः
यः तु स्वायम्भुवे अन्तरे ॥१॥

यः तु	जो तो	सर्गः	सृष्टि हुई थी
स्वायम्भुवे	स्वायम्भुव	त्वया	आपने
अन्तरे	मन्वन्तरमें	सामासिकः	(उसका) संक्षिप्त
देव असुर	देव, असुर,		रूपमें
नृणां नागानां	मनुष्य, नाग,	प्रोक्तः	वर्णन किया है ॥१॥
मृग पक्षिणां	पशु, पक्षियोंकी		

तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवन् यथा ।

अनुसर्गं यया शक्त्या ससर्ज भगवान् परः ॥२॥

तस्य एव व्यासं इच्छामि ज्ञातुं ते भगवन् यथा अनुसर्गं यया शक्त्या
ससर्ज भगवान् परः ॥२॥

भगवन्	भगवन् !	अनुसर्गं	पीछकी सृष्टि
ते तस्य एव	आपसे उसीका	ससर्ज	उत्पन्न की
व्यासं	विस्तार	ज्ञातुं इच्छामि	जानना चाहता
भगवान् परः	परम पुरुष भगवान् ने		हूँ ॥२॥
यया शक्त्या	जिन शक्तियोंसे		

सूत उवाच-

इति सम्प्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणिः ।

प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमाः ॥३॥

इति सम्प्रश्नं आकर्ण्य राजर्षेः बादरायणिः प्रतिनन्द्य महायोगी
जगाद मुनिसत्तमाः ॥३॥

मुनिसत्तमाः	(शौनकादि) मुनि- श्रेष्ठो !	बादरायणिः	व्यास-नन्दन शुक- देवजी
राजर्षेः	राजर्षि परीक्षितका	प्रतिनन्द्य	उसका अभिनन्दन
इति सम्प्रश्नं	इस प्रकारका प्रश्न		करके
आकर्ण्य	सुनकर	जगाद	बोले ॥३॥
महायोगी	महायोगी		

श्रीशुक उवाच-

यदा पचेतसः पुत्रा दश प्राचीनबर्हिषः ।

अन्तः समुद्राद् उन्मग्ना ददृशुर्गां द्रुमैर्वृताम् ॥४॥

यदा प्रचेतसः पुत्रा दश प्राचीन बर्हिषः अन्तः समुद्रात् उन्मग्ना
ददृशुः गां द्रुमैः वृताम् ॥४॥

यदा प्राचीन	जब प्राचीन	उन्मग्ना	ऊपर निकले (तो)
बर्हिषः	बर्हिके	गां द्रुमैः वृतां	पृथ्वीको वृक्षोंसे
प्रचेतसः	प्रचेता नामके		घिरी
दश पुत्रा	दसो पुत्र	ददृशुः	देखा ॥४॥
अन्तः समुद्रात्	समुद्रके भीतरसे		

द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानास्ते तपोदीपितमन्यवः ।

मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्दिधक्षया ॥५॥

द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानाः ते तपः दीपित मन्यवः सुखतः वायुं अग्निं च
ससृजुः तत् दिधक्षया ॥५॥

ते द्रुमेभ्यः	वे वृक्षोंपर	तत् दिधक्षया	उन (वृक्षों) को
क्रुध्यमानाः	क्रोधित होकर		भस्म कर देनेकी
तपः दीपित	तपस्यासे प्रदीप्त		इच्छासे
मन्यवः	क्रोधवाले	सुखतः	अपने मुखसे
		वायुं च अग्निं	वायु और अग्नि
		ससृजुः	उत्पन्न की ॥५॥

ताभ्यां निर्वह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरुद्वह ।

राजोवाच महान् सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ॥६॥

ताभ्यां निर्वह्यमानान् तान् उपलभ्य कुरुद्वह राजा उवाच महान्
सोमः मन्युं प्रशमयन् इव ॥६॥

कुरुद्वह	परीक्षित !	महान् राजा	राजाधिराज
ताभ्यां	उस (वायु-अग्नि) से	सोमः	चन्द्रमा
तान्	उन (वृक्षों) को	मन्युं	(उनके) क्रोधको
निर्वह्यमानान्	जलाये जाते	प्रशमयन् इव	शान्त करते हुए-से
उपलभ्य	पाकर (देखकर)	उवाच	बोले ॥६॥

सोम उवाच—*

मा द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोणुर्हन्तृ ।

विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥७॥

मा द्रुमेभ्यः महाभागा दीनेभ्यः द्रोणुं अहन्तृ विवर्धयिषवः यूयं
प्रजानां पतयः स्मृताः ॥७॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

महाभागा	महाभागो !	मा अर्हथ	नहीं करना चाहिए
दीनेभ्यः	विचारे		(क्योंकि)
द्रुमेभ्यः	वृक्षोंसे (आप	विवर्धयिष्वः	(प्रजाको) बढ़ाने-
	सबको)		वाले
द्रोघुं	शत्रुता	प्रजानां पतयः	(आप) प्रजापति
		स्मृताः	कहे गये हैं ॥७॥

अहो प्रजापतिपतिर्भगवान् हरिरव्ययः ।
वनस्पतीनोषधीश्च ससर्जोर्जमिषं विभुः ॥८॥

अहो प्रजापति पतिः भगवान् हरिः अव्ययः वनस्पतीन् ओषधीः च
ससर्जं ऊर्जं आमिषं विभुः ॥८॥

अहो	अरे,	वनस्पतीन्	वृक्षोंको
प्रजापति पतिः	प्रजापतियोंके स्वामी	च ओषधीः	और औषधियों
अव्ययः	अविनाशी		(तृणादि) को
विभुः	सर्वव्यापक	ऊर्जं आमिषं	शक्तिदायी आहार
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरिने	ससर्जं	बनाया है ॥८॥

अन्नं चराणामचरा ह्यपदः पादचारिणास् ।
अहस्ता हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥९॥

अन्नं चराणां अचराः हि अपदः पादचारिणां अहस्ताः हस्तयुक्तानां
द्विपदां च चतुष्पदः ॥९॥

हि	क्योंकि	अपदः	बिना पैर वाले
चराणां	चलने वालों (पक्षी		(तृणादि)
	आदि) के	अहस्ताः	बिना हाथ वाले
अचराः	स्थावर (वृक्ष आदि)		(पशु, फल आदि)
पादचारिणां	पैरोंसे चलनेवालों	हस्तयुक्तानां	हाथ वालों (बन्दर,
	(पशुओं) के		गुरिले आदि)

च चतुष्पदः	और चार पैर वाले (पशु)	अन्नं	आहार (के साधन) हैं ॥६॥
द्विपदां	दो पैर वाले (मनुष्यों) के		

यूयं च पित्रान्वादिष्टा देवदेवेन चानघाः ।

प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान् निर्दग्धुमर्हथ ॥१०॥

यूयं च पित्रा अन्वादिष्टा देवदेवेन च अनघाः प्रजासर्गाय हि कथं
वृक्षान् निर्दग्धुं अर्हथ ॥१०॥

अनघाः	निष्पापो !	अन्वादिष्टा	आदेश प्राप्त हैं
यूयं च	आप लोग भी		(फिर)
पित्रा	अपने पिता	वृक्षान्	वृक्षोंको
च देवदेवेन	तथा देवाधिदेव	निर्दग्धुं	जलानेके
	भगवान् द्वारा	कथं अर्हथ	कैसे योग्य हैं ॥१०॥
प्रजासर्गाय	प्रजाकी सृष्टिके लिए		

आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम् ।

पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥११॥

आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितं पित्रा पितामहेन अपि
जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥११॥

वः	आप लोगोंके	सतां मार्गं	सत्पुरुषोंके मार्गपर
पित्रा पितामहेन	पिता, पितामह,	आतिष्ठत	बने रहिये !
प्रपितामहैः	प्रपितामहसे	दीपितं कोपं	प्रदीप्त क्रोधको
अपि	भी	यच्छत	शान्त कीजिए ॥११॥
जुष्टं	सेवित		

तोकानां पितरौ बन्धू दृशः पक्ष्म स्त्रियाः पतिः ।

पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह्यज्ञानां बुधः सुहृत् ॥१२॥

तोकानां पितरौ बन्धू दृशः पक्ष्म स्त्रियाः पतिः पतिः प्रजानां
भिक्षूणां गृह अज्ञानां बुधः सुहृत् ॥१२॥

तोकानां	शिशुओंके (जैसे)	भिक्षूणां	भिक्षुकोंके
बन्धू	सम्बन्धी (रक्षक)	गृह	गृहस्थ,
पितरौ	माता, पिता,	अज्ञानां	अज्ञानियोंके
दृशः	नेत्रोंके	बुधः	ज्ञानी (रक्षक) हैं
पक्ष्म	पलक,	प्रजानां	प्रजाका (वैसे ही)
स्त्रियाः	स्त्रियोंके	सुहृत्	हितैषी
पतिः	(उनके) पति,	पतिः	राजा है ॥१२॥

अन्तर्देहेषु भूतानामात्माऽऽस्ते हरिरीश्वरः ।

सर्वं तद्विष्ण्वमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥१३॥

अन्तः देहेषु भूतानां आत्मा आस्ते हरिः ईश्वरः सर्वं तत् धिष्ण्यं
ईक्षध्वं एवं वः तोषितः हि असौ ॥१३॥

भूतानां हि	प्राणियोंके क्योंकि ✓	ईक्षध्वं	✓ देखो
अन्तः देहेषु	शरीरके भीतर	एवं असौ	इस प्रकार ये
ईश्वरः हरिः	सर्वं संचालक श्रीहरि		(परमात्मा)
आत्मा आस्ते	आत्मा रूपसे	वः तोषितः	आप लोगों द्वारा
	विराजमान हैं,		सन्तुष्ट कर लिये
सर्वं तत् धिष्ण्यं	(अतः) सबको		जाएँगे ॥१३॥
	उनका मन्दिर		

यः समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम् ।

आत्मजिज्ञासया यच्छेत् स गुणानतिवर्तते ॥१४॥

यः समुत् पतित देह आकाशात् मन्युं उल्बणं आत्मजिज्ञासया
यच्छेत् स गुणान् अतिवर्तते ॥१४॥

यः देह	जो हृदय	समुत् पतितं	उबलते
आकाशात्	आकाशमें	उल्बणं मन्युं	भयंकर क्रोधको

आत्मज्ञिज्ञासया	आत्म विचारसे	स गुणान्	वह (प्रकृतिके)
यच्छेत्	नियन्त्रित कर देता है,	अतिवर्तते	गुणोंसे पार हो जाता है ॥१४॥

अलं दग्धैर्द्रुमैर्दीनैः खिलानां शिवमस्तु वः ।

वाक्षीं ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥१५॥

अलं दग्धैः द्रुमैः दीनैः खिलानां शिवं अस्तु वः वाक्षीं हि एषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥१५॥

दीनैः द्रुमैः	विचारे वृक्षोंको	कन्या	कन्या
दग्धैः अलं	जलाना वन्द कीजिए ।	हि वरा	क्योंकि श्रेष्ठा है
वाक्षीं	वृक्षोंकी	पत्नीत्वे	पत्नीके रूपमें
		प्रतिगृह्यतां	ग्रहण कीजिए ॥१५॥

श्रीशुक उवाच-*

इत्यामन्त्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप ।

सोमो राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥१६॥

इति आमन्त्र्य वरारोहां कन्यां आप्सरसीं नृप सोमः राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेण उपयेमिरे ॥१६॥

नृप	राजन् परीक्षित !	वरारोहां	सुन्दरी
इति आमन्त्र्य	इस प्रकार समझाकर	कन्यां दत्त्वा	कन्या देकर
राजा सोमः	राजा चन्द्र	ययौ	चले गये
आप्सरसीं	अप्सरा (प्रम्लोचा) की	ते धर्मेण	उन्होंने धर्म पूर्वक
		उपयेमिरे	(उससे) विवाह किया ॥१६॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

तेभ्यस्तस्यां समभवद् दक्षः प्राचेतसः किल ।

यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरितास्त्रयः ॥१७॥

तेभ्यः तस्यां समभवत् दक्षः प्राचेतसः किल यस्य प्रजाविसर्गेण
लोकाः आपूरिताः त्रयः ॥१७॥

तेभ्यः	उन (प्रचेताओं) से	यस्य	जिनकी
तस्यां	उससे	प्रजाविसर्गेण	प्रजा-सृष्टिसे
प्राचेतसः दक्षः	प्राचेतस दक्ष	त्रयः लोकाः	तीनों लोक
समभवत्	उत्पन्न हुए	आपूरिताः	भर गये ॥१७॥
किल	अरे		

यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः ।

रेतसा मनसा चैव तन्मभावहितः शृणु ॥१८॥

यथा ससर्ज भूतानि दक्षः दुहितृ वत्सलः रेतसा मनसा च एव तत्
मम अवहितः शृणु ॥१८॥

दुहितृ वत्सलः	पुत्रियोंसे स्नेह करनेवाले	भूतानि ससर्ज	प्राणियोंकी सृष्टि की
दक्षः	दक्षने	तत् मम	वह मेरी बात
यथा मनसा	जैसे मन (संकल्प) से	अवहितः	एकाग्र होकर
च रेतसा एव	और वीर्यसे भी	शृणु	सुनो ॥१८॥

मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः प्रजाः ।

देवासुरमनुष्यादीन्नभःस्थलजलौकसः ॥१९॥

मनसा एव असृजत् पूर्वं प्रजापतिः इमाः प्रजाः देव असुर मनुष्य
आदीन् नभः स्थल जलौकसः ॥१९॥

पूर्वं	पहिले	नभः स्थल	आकाश, पृथ्वी,
प्रजापतिः	प्रजापति (दक्ष) ने	जलौकसः	जलमें रहने वाली
मनसा एव	मनसे ही	इमाः	इस

देव असुर	देवता, असुर,	असृजत्	उत्पन्न
मनुष्य	मनुष्य		किया ॥१८॥
आदीन् प्रजाः	आदि प्रजाको		

तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ।

विन्ध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद् दुष्करं तपः ॥२०॥

तं अबृंहितं आलोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः विन्ध्यपादान् उपव्रज्य सः
अचरत् दुष्करं तपः ॥२०॥

तं प्रजासर्गं	उस प्रजा सृष्टिको	उपव्रज्य	पहुँचकर
अबृंहितं	बढ़ते न	सः दुष्करं	उन्होंने कठिन
आलोक्य	देखकर	तपः	तपस्या
प्रजापतिः	प्रजापति दक्षने	अचरत्	की ॥२०॥
विन्ध्यपादान्	विन्ध्याचलके नीचे		

तत्राघमर्षणं नाम तीर्थं पापहरं परम् ।

उपस्पृश्यानुसवनं तपसातोषयद्धरिम् ॥२१॥

तत्र अघमर्षणं नाम तीर्थं पाप हरं परं उपस्पृश्य अनुसवनं तपसा
तोषयत् हरिम् ॥२१॥

तत्र अघमर्षणं	वहां अघमर्षण	अनुसवनं	त्रिकाल
नाम	नामके	उपस्पृश्य	स्नान करके
परं	सम्पूर्ण	तपसा	तपस्यासे
पाप	महापापोंको भी	हरि	श्रीहरिको
हरं	नष्ट करने वाले	तोषयत्	सन्तुष्ट करने लगे
तीर्थं	तीर्थमें		॥२१॥

अस्तौषीद्वंसगुह्येन

भगवन्तमधोक्षजम् ।

तुभ्यं तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद् यतो हरिः ॥२२॥

अस्तौषीत् हंसगुह्येन भगवन्तं अधोक्षजं तुभ्यं तत् अभिधास्यामि
कस्य अनुष्यत् यतः हरिः ॥२२॥

हंसगुह्येन	हंसगुह्य स्तोत्रसे	अभिधास्यामि	बतलाऊंगा
भगवन्तं	भगवान्	यतः हरिः	जिससे श्रीहरि
अधोक्षजं	अधोक्षज की	कस्य	प्रजापतिपर
अस्तौषीत्	स्तुति करने लगे	अनुष्यत्	सन्तुष्ट हुए ॥२२॥
तत् तुभ्यं	वह तुमको		

प्रजापतिरुवाच -

नमः परायावितथानुभूतये
गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ।
अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभि-
निवृत्तमानाय दधे स्वयम्भुवे ॥२३॥

नमः पराय अवितथ अनुभूतये गुणत्रय आभास निमित्त बन्धवे अदृष्ट
धाम्ने गुण तत्त्व बुद्धिभिः निवृत्त मानाय दधे स्वयम्भुवे ॥२३॥

पराय	(प्रकृति आदिसे)	गुण तत्त्व	इन्द्रिय, पञ्चभूत,
	परस्वरूप,	बुद्धिभिः	बुद्धिके द्वारा तथा
अवितथ	अव्यर्थ	निवृत्त मानाय	(अन्य) प्रमाणों की
अनुभूतये	अनुभव		पहुँचसे परे,
गुणत्रय	तीनों गुणोंकी	स्वयम्भुवे	स्वयं प्रकाश
आभास	प्रतीतिके	दधे नमः	(आपका) ध्यान
निमित्त	निमित्त,		करते हुए प्रणाम
बन्धवे	(सबके) बन्धु,		करते हैं ॥२३॥
अदृष्ट धाम्ने	अदृश्य स्वरूप,		

न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः
सखा वसन् संवसतः पुरेऽस्मिन् ।

गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टे-
स्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥२४॥

न यस्य सख्यं पुरुषः अवैति सख्युः सखा वसन् संवसतः पुरे अस्मिन्
गुणः यथा गुणिनः व्यक्तं दृष्टेः तस्मै महेशाय नमः करोमि ॥२४॥

यथा गुणः	जैसे (रस रूपादि)	यस्य सख्युः	जिस सखाकी
	गुण	सख्यं	सहृदयताको
गुणिनः	गुणवान् (रसना	न अवैति	नहीं जान पाता
	नेत्रादि इन्द्रियों को	तस्मै	उस
	नहीं जानते वैसे ही	व्यक्त	व्यक्त
अस्मिन्	इस (देहरूप)	दृष्टेः	(संसार) के द्रष्टा
पुरे	नगरमें	महेशाय	महेश्वरको
संवसतः	साथ रहते हुए	नमः	नमस्कार
सखा	सखा होनेपर भी	करोमि	करता हूँ ॥२४॥
पुरुषः	पुरुष		

देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा

नात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ।

सर्वं पुमान् वेद गुणांश्च तज्ज्ञो

न वेद सर्वज्ञमनन्तमीडे ॥२५॥

देहः असवः अक्षा मनवः भूत मात्रा न आत्मानं अन्यं च विदुः परं
यत् सर्वं पुमान् वेद गुणान् च तत् ज्ञः न वेद सर्वज्ञं अनन्तं इडे ॥२५॥

देहः असवः	देह, प्राण,	सर्वं गुणान् च	इन सबको और
अक्षा मनवः	इन्द्रियां, मन-बुद्धि,		त्रिगुणोंको भी
भूत मात्रा	पंचभूत, तन्मात्राएँ	वेद	जानता है,
	(जड़ होनेसे)	तत् ज्ञः	वह भी दृश्य होनेसे
आत्मानं	अपने आपको	न वेद	(आपको) नहीं
च अन्यं	और दूसरेको		जानता,
न विदुः	नहीं जानतीं,	सर्वज्ञं	(आप) सर्वज्ञ
यत् परं पुमान्	जो इनसे परे जीव है	अनन्तं	अनन्तकी
		इडे	स्तुति करता हूँ ॥२५॥

यदोपरामो मनसो नामरूप-
 रूपस्य दृष्टस्मृतिसम्प्रमोषात् ।
 य ईयते केवलया स्वसंस्थया
 हंसाय तस्मै शुचिसद्मने नमः ॥२६॥

यदा उपरामः मनसः नाम रूप रूपस्य दृष्ट स्मृति सम्प्रमोषात् य
 ईयते केवलया स्व संस्थया हंसाय तस्मै शुचि सद्मने नमः ॥२६॥

नाम रूप	नाम और रूप	केवलया	तब) केवल
रूपस्य	स्वरूप	स्व संस्थया	स्वरूप स्थिति में
दृष्ट	देखे और	य ईयते	जो प्रकाशित होते हैं
स्मृति	स्मृति संस्कार के	तस्मै	उन
सम्प्रमोषात्	लुप्त होनेपर (समाधि में)	शुचि सद्मने	शुद्ध हृदय भवनमें रहने वाले
यदा	जब	हंसाय	शुद्ध रूप हंसको
मनसः उपरामः	मनसे भी उपरामता हो जाती है	नमः	नमस्कार ॥२६॥

मनीषिणोऽन्तर्हृदि संनिवेशितं
 स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ।
 वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदशं
 मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥२७॥

मनीषिणः अन्तः हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिः नवभिः च त्रिवृद्भिः
 वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदशं मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥२७॥

यथा	जैसे	पाञ्चदशं	(सामके) पन्द्रह
दारुणि गूढं	काष्ठ में छिपे		मंत्रों द्वारा
वह्निं	(सामधेनी नामक) अग्निको	निष्कर्षन्ति	प्रकट करते (खींचते) हैं,

अन्तः हृदि	हृदयके भीतर	नवभिः	नौ (सत्ताइस)
संनिवेशितं	छिपे हुए (आपकी)	स्वशक्तिभिः	अपनी शक्तियोंसे
मनीषिणः	ज्ञानी लोग	मनीषया	बुद्धि द्वारा (ढूँढ़ते हैं)
त्रिवृद्भिः	तिगुनी की गयी		॥२७॥

स वै ममाशेषविशेषमाया-

निषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः ।

स सर्वनामा स च विश्वरूपः

प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥२८॥

स वै मम अशेष विशेष माया निषेध निर्वाणसुख अनुभूतिः स सर्व-
नामा स च विश्वरूपः प्रसीदतां अनिरुक्त आत्मशक्तिः ॥२८॥

अशेष विशेष	समस्त विषयताओं वाली	अनिरुक्त	निरूपण नहीं हो सकता
माया निषेध	मायाका निषेध कर देनेपर	वै स	निश्चय वही आप
निर्वाणसुख	परम सुख	सर्वनामा	सब नाम वाले,
अनुभूतिः	अनुभव स्वरूप आपकी	च स	और वही आप
आत्मशक्तिः	अपनी शक्तिका	विश्वरूपः	विश्वरूप हो
		स मम	वह आप मुझपर
		प्रसीदतां	प्रसन्न हों ॥२८॥

यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं

धियाक्षभिर्वा मनसा वोत यस्य ।

मा भूत् स्वरूपं गुणरूपं हि तत्तत्

स वै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥२९॥

यत् यत् निरुक्तं वचसा निरूपितं धिया आक्षभिः वा मनसा वा
उत यस्य मा भूत् स्वरूपं गुणरूपं हि तत् तत् स वै गुण अपाय विसर्ग
लक्षणः ॥२९॥

यत् यत्	जो-जो	हि	क्योंकि
निरुक्तं	निरूपण होता है,	गुणरूपं	गुणोंके ही स्वरूप-
वचसा	वाणी से		का है,
वा	अथवा	स्वरूपं	स्व (आत्माका रूप
धिया	बुद्धिसे	मा भूत्	नहीं हो सकता
उत अक्षभिः	या इन्द्रियोंसे,	स वै	वह तो निश्चय
वा मनसा	अथवा मनसे	गुण अपाय	गुणोंके नाश और
यस्य निरूपितं	जिसका भी निरूपण	विसर्गं	उत्पत्तिका
	हो	लक्षणः	स्वरूप है ॥३०॥
तत् तत्	वह सब		

यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै

यद् यो यथा कुरुते कार्यते च ।

परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं

तद् ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ॥३०॥

यस्मिन् यतः येन च यस्य यस्मै यत् यः यथा कुरुते कार्य ते च पर
अवरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं तत् ब्रह्म तत् हेतुः अनन्यत् एकम् ॥३०॥

यस्मिन्	जिसमें,	पर अवरेषां	उस कारण-कार्य
यतः	जहाँसे,		(रूप विश्व)से
येन च	जिसके द्वारा	परमं	श्रेष्ठ
यस्य	जिसका,	प्राक् प्रसिद्धं	पहिलेसे विद्यमान
यस्मै	जिसके लिए		(अनादि)
यत्	जहाँ,	तत् अनन्यत् हेतुः	वह एकमात्र कारण,
यः	जो,	एकं	अद्वितीय है,
यथा	जैसे	तत् ब्रह्म	वही ब्रह्म है ॥३०॥
कुरुते	किया जाता है		
च कार्यं ते	तथा कराया		
	जाता है,		

यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै
 विवादसंवादभुवो भवन्ति ।
 कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं
 तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने ॥३१॥

यत् शक्तयः वदतां वादिनां वै विवाद संवाद भुवः भवन्ति कुर्वन्ति च
 एषां मुहुः आत्म मोहं तस्मै नमः अनन्त गुणाय भूम्ने ॥३१॥

यत् शक्तयः	जिसकी शक्तियां	मुहुः	बार-बार
वै वादिनां	निश्चय वादी-	आत्म मोहं	उनको मोहमें
	प्रतिवादीके	कुर्वन्ति	डालती हैं,
विवाद संवाद	विवाद और संवाद	तस्मै	उन
	(ऐक्यनृत्य) का	अनन्त गुणाय	अनन्त गुणशाली
भुवः भवन्ति	आधार होती हैं,	भूम्ने नमः	सर्वव्यापकको
च एषां	और जिनके विषयमें		नमस्कार ॥३१॥

अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयो-
 रेकस्थयोभिन्नविरुद्ध धर्मयोः ।
 अवेक्षितं किञ्चन योगसांख्ययोः
 समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥३२॥

अस्ति इति न अस्ति इति च वस्तुनिष्ठयोः एकस्थयोः भिन्न विरुद्ध
 धर्मयोः अवेक्षितं किञ्च न योग सांख्ययोः समं परं हि अनुकूलं बृहत्
 तत् ॥३२॥

एकस्थयोः	एक ही	इति	इस प्रकार
वस्तुनिष्ठयोः	वस्तुके सम्बन्धमें	विरुद्ध धर्मयोः	परस्पर विरोधी धर्म
आस्ति	(सगुण ईश्वर) है,	किञ्च	क्या
इति	इस प्रकार,	योग सांख्ययोः	योग और सांख्य
च न अस्ति	और नहीं है,	न अवेक्षितं	नहीं देखते ?

हि	क्योंकि	समं	सम
अनुकूलं	(दोनों बातें) उसके	परं	(दोनोंसे) परे (अति- वंचनीया है ॥३२॥
तत् बृंहत्	अनुरूप हैं		
	वह व्यापक		

योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूल-

मनामरूपो भगवाननन्तः ।

नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभि-

र्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥३३॥

यः अनुग्रहार्थं भजतां पादमूलं अनाम अरूपः भगवान् अनन्तः
नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिः भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥३३॥

यः भगवान्	जिन भगवान्	जन्मकर्मभिः	अवतार लेकर
अनन्तः	अनन्तने		लीलाके द्वारा
अनाम अरूपः	बिना नामका निरा-	नामानि	नामोंको
	कार (होने पर भी)	च रूपाणि	और रूपोंको
पादमूलं	(अपने) चरणोंका	भेजे	स्वीकार किया
भजतां	भजन करने वालों	स परमः	वे परम पुरुष
	पर	मह्यं प्रसीदतु	मुझपर प्रसन्न
अनुग्रहार्थं	कृपा करनेके लिए		हों ॥३३॥

यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां

यथाशयं देहगतो विभाति ।

यथानिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं

स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥३४॥

यः प्राकृतैः ज्ञानपथैः जनानां यथा आशयं देहगतः विभाति यथा
अनिलः पार्थिवं आश्रितः गुणं स ईश्वरः मे कुरुतात् मनोरथम् ॥३४॥

यथा अनिलः	जैसे वायु	गुणं आश्रितः	गुणोंको अपना लेता
पार्थिवं	पृथ्वीके तत्त्वों		है (वैसे ही)
	(पुष्पादि)के	यः जानानां	जो भक्तोंके

प्राकृतैः ज्ञानपथैः प्राकृत ज्ञानके मार्ग	विभाति	शोभित होता है,
(नेत्रादि) से	स ईश्वरः	वह सर्वसमर्थ
यथा आशयं अन्तःकरणके भावके	मे मनोरथं	मेरी कामना
अनुसार	कुरुतात्	पूर्ण करें ॥३४॥
देहगतः शरीर धारण करके		
(दर्शन देकर,		

श्रीशुक उवाच—

इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघर्षणे ।

आविरासीत् कुरुश्रेष्ठ भगवान् भक्तवत्सलः ॥३५॥

इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन् अघमर्षणे आविः आसीत् कुरुश्रेष्ठ
भगवान् भक्तवत्सलः ॥३५॥

कुरुश्रेष्ठ	परीक्षित्	संस्तुवतः	स्तुति करनेपर
तस्मिन्	उस	भक्तवत्सलः	भक्तवत्सल
अघमर्षणे	अघमर्षण तीर्थमें	स भगवान्	वे भगवान्
इति स्तुतः	इस स्तोत्रसे	आविः आसीत्	प्रकट हो गये ॥३५॥

कृतपादः सुपणसि प्रलम्बाष्टमहाभुजः ।

चक्रशङ्खासिचर्मेषु धनुः पाशगदाधरः ॥३६॥

कृतपादः सुपण अंसे प्रलम्ब अष्ट महाभुजः चक्रशङ्ख असि चर्म इषु
धनुः पाश गदाधरः ॥३६॥

सुपणं अंसे	गरुड़के कन्धोंपर	असि चर्म	तलवार, ढाल,
कृतपादः	पैर रखे हुए,	इषु धनुः	बाण, धनुष,
प्रलम्ब अष्ट	लम्बी आठ	पाश, गदाधरः	पाश, गदा,
महाभुजः	महान् भुजाओंमें		लिए हुए ॥३६॥
चक्रशङ्खः	चक्र, शङ्ख,		

पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ।

वनमालानिवीताङ्गो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥३७॥

पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदन ईक्षणः वनमाला निवीत अङ्गः
लसत् श्रीवत्स कौस्तुभः ॥३७॥

पीतवासा	पीताम्बर पहिने,	वनमाला निवीत	वनमाला पहिने,
घनश्यामः	मेघके समान	श्रीवत्स	श्रीवत्स चिह्न और
	श्यामवर्ण,	कौस्तुभः	कौस्तुभ मणिसे
प्रसन्नवदन	प्रसन्न मुख	लसत् अङ्गः	सुशोभित शरीर
ईक्षणः	और नेत्र,		॥३७॥

महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ।

काञ्च्यङ्गुलीयवलयनूपुराङ्गदभूषितः ॥३८॥

महाकिरीट कटकः स्फुरन् मकरकुण्डलः काञ्ची अंगुलीय वलय नूपुर
अङ्गद भूषितः ॥३८॥

महाकिरीट	बहुमूल्य मुकुट,	अंगुलीय	अँगूठी
कटकः	कङ्कण,	वलय	कड़े,
स्फुरन्	चमकते	नूपुर अङ्गद	नूपुर, अंगदसे
मकरकुण्डल	मकराकृति कुण्डल,	भूषितः	आभूषित ॥३८॥
काञ्ची	करधनी		

त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत् त्रिभुवनेश्वरः ।

वृतो नारदनन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥३९॥

त्रैलोक्य मोहनं रूपं बिभ्रत् त्रिभुवनेश्वरः वृतः नारद नन्द आद्यैः
पार्षदैः सुरयूथपैः ॥३९॥

त्रिभुवनेश्वरः	त्रिभुवनपति	आद्यैः	आदि
त्रैलोक्य मोहनं	त्रिलोकीको मोहित	सुरयूथपैः	देव-यूथप
	करने वाला	पार्षदैः	पार्षदोंसे
रूपं बिभ्रत्	धारण किये,	वृतः	घिरे हुए ॥३९॥
नारद नन्द	नारद, नन्द		

स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सिद्धगन्धर्वचारणैः ।

रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्यागतसाध्वसः ॥४०॥

स्तूयमानः अनुगायत्भिः सिद्ध गन्धर्व चारणैः रूपं तत् महत्
आश्चर्यं विचक्ष्य आगत साध्वसः ॥४०॥

अनुगायत्भिः	पीछे गाते चलते,	महत् आश्चर्यं	महान् आश्चर्यजनक
सिद्ध गन्धर्व	सिद्ध, गन्धर्व,	रूपं विचक्ष्य	रूपको देखकर
चारणैः	चारणों द्वारा	आगत साध्वसः	(दक्षको) सहमना
स्तूयमानः	स्तुति किये जाते		आ गया ॥४०॥
तत्	उस		

ननाम दण्डवद् भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः ।

न किञ्चनोदीरयितुमशकत् तीव्रया मुदा ।

आपूरितमनोद्वारैर्हृदिन्य इव निर्झरैः ॥४१॥

ननाम दण्डवत् भूमौ प्रहृष्ट आत्मा प्रजापतिः न किञ्चन उदीर-
यितुं अशकत् तीव्रया मुदा आपूरित मनः द्वारैः हृदिन्य इव निर्झरैः ॥४१॥

हृष्ट आत्मा	अत्यन्त हर्षित चित्त	न अशकत्	समर्थ नहीं हुए,
प्रजापतिः	प्रजापति दक्ष	निर्झरैः	झरनों द्वारा
भूमौ	पृथ्वीपर	हृदिन्य इव	नदीकी भाँति
दण्डवत् ननाम	दण्डवत् प्रणाम करते	मनः द्वारैः	मनके ऊपर
	पड़ गये	आपूरित	परिपूर्ण हो गये
तीव्रया मुदा	तीव्र आनन्दके		॥४१॥
	कारण		
किञ्चन	कुछ भी		
उदीरयितुं	बोलनेमें		

तं तथावनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिम् ।

चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ॥४२॥

तं तथा अवनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिं चित्तज्ञः सर्वभूतानां इदं
आह जनार्दनः ॥४२॥

तं तथा	उनको इस प्रकार	सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके
अवनतं	नम्रतासे झुके	चित्तज्ञः	हृदयकी बात
भक्तं	अपने भक्त		जानने वाले
प्रजाकामं	सन्तान चाहनेवाले	जनार्दनः	भगवान् जनार्दनने
प्रजापतिं	प्रजापति (दक्ष)से	इदं आह	यह कहा ॥४२॥

श्रीभगवानुवाच-

प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान् ।

यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ॥४३॥

प्राचेतस महाभाग संसिद्धः तपसा भवान् यत् श्रद्धया मत्परया मयि
भावं परं गतः ॥४३॥

महाभाग	महाभाग	यत्	क्योंकि
प्राचेतस	प्रचेतानन्दन,	मत्परया	मुझमें परम
भवान्	तुम	श्रद्धया	श्रद्धासे
तपसा	तपस्यासे	मयि	मुझमें
संसिद्धः	सिद्ध (सफल) हो	परं भावः	परम प्रेमभावः
	गये	गतः	प्राप्त हो गया ॥४३॥

प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्तेऽस्योद्बृंहणं तपः ।

ममैष कामो भूतानां यद् भूयासुर्विभूतयः ॥४४॥

प्रीतः अहं ते प्रजानाथ यत् ते अस्य उद्बृंहणं तपः मम एष कामः
भूतानां यत् भूय असुः विभूतयः ॥४४॥

प्रजानाथ	प्रजापति	एष मम	यह मेरी
ते अहं	तुमपर मैं	कामः	इच्छा है
प्रीतः	प्रसन्न हूँ,	यत् भूतानां	कि प्राणियोंकी
यत्	क्योंकि	असुः	प्राण (वृद्धि)
ते तपः	तुम्हारी तपस्या	विभूतयः	समृद्धि
अस्य	इस संसारकी	भूय	हो ॥४४॥
उद्बृंहणं	अभिवृद्धिके लिए है ॥		

ब्रह्मा भवो भवन्तश्च मनवो विबुधेश्वराः ।

विभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतवः ॥४५॥

ब्रह्मा भवः भवन्तः च मनवः विबुधेश्वराः विभूतयः मम हि एता
भूतानां भूतिहेतवः ॥४५॥

हि	क्योंकि	मनवः	मनु लोग
भूतानां	प्राणियोंकी	च विबुधेश्वराः	तथा देवनायक
भूतिहेतवः	अभिवृद्धिके कारण	एता	ये सब
ब्रह्मा भवः	ब्रह्मा, शिव,	मम विभूतयः	मेरी विभूतियाँ
भवन्तः	तुम (प्रजापतिगण)		हैं ॥४५॥

तपो मे हृदयं ब्रह्मंस्तनुविद्या क्रियाऽऽकृतिः ।

अङ्गानि क्रतवो जाता धर्म आत्मासवः सुराः ॥४६॥

तपः मे हृदयं ब्रह्मन् तनुः विद्या क्रिया आकृतिः अङ्गानि क्रतवःजाता
धर्म आत्मा असवः सुराः ॥४६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	अङ्गानि जाता	मेरे अङ्ग उत्पन्न
तपः मे	तपस्या मेरा		हुए हैं,
हृदयं	हृदय है,	धर्म आत्मा	धर्म आत्मा है ।
विद्या तनुः	विद्या शरीर है,	सुराः आसवः	देवता प्राण
क्रिया आकृतिः	कर्म आकृति है,		हैं ॥४६॥
क्रतवः	यज्ञोंसे		

अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् किञ्चान्तरं बहिः ।

संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥४७॥

अहं एव आसं एव अग्रे न अन्यत् किञ्च अन्तरं बहिः संज्ञानमात्रं
अव्यक्तं प्रसुप्तं इव विश्वतः ॥४७॥

अहं एव	मैं ही	अन्तरं बहिः	बाहर-भीतर
अग्रे आसं एव	पहिले था ही	किञ्च	कुछ भी

अन्धत् न	दूसरा नहीं था	विश्वतः	चारों ओर
अव्यक्तं	अव्यक्त	प्रसुप्तं इव	सुषुप्तिके समान
संज्ञानमात्रं	ज्ञानमात्र था		था ॥४७॥

मय्यनन्तगुणेऽनन्ते गुणतो गुणविग्रहः ।

यदाऽऽसीत् तत एवाद्यः स्वयम्भूः समभूदजः ॥४८॥

मयि अनन्त गुणे अनन्ते गुणतः गुणविग्रहः यत् आसीत् तत एव
आद्यः स्वयम्भूः समभूत् अजः ॥४८॥

मयि अनन्त	मुझ अनन्त	आसीत्	उत्पन्न हुआ
गुणे	गुणवाले	तत एव	उससे ही
अनन्ते	अनन्तमें	आद्यः	आदि पुरुष
गुणतः	(मायाके) गुणोंसे	स्वयम्भू	स्वयंभू
यत् गुणविग्रहः	जो गुण स्वरूप	अजः	ब्रह्मा
	(विराट्)	समभूत्	उत्पन्न हुए ॥४८॥

ए वै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः ।

मेने खिलमिवात्मानमुद्यतः सर्गकर्मणि ॥४९॥

स वै यदा महादेवः मम वीर्यं उपबृंहितः मेने खिलं इव आत्मानं
उद्यतः सर्गकर्मणि ॥४९॥

यदा वै	जबकि	उद्यतः	उद्यत हुए (तब)
मम वीर्यं	मेरे तेजसे	आत्मानं	अपनेको
उपबृंहितः	अभिवद्ध किये गये	खिलं इव	अपूर्णकी भांति
स महादेवः	वे देवश्रेष्ठ	मेने	मानने लगे ॥४९॥
सर्गकर्मणि	सृष्टि करनेके लिए		

अथ मेऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणम् ।

नव विश्वसृजो युष्मान् येनादावसृजद् विभुः ॥५०॥

अथ मे अभिहितः देवः तपः अतप्यत दारुणं नव विश्व सृजः युष्मान्
येन आदौ असृजत् विभुः ॥

अथ मे	तब मेरे द्वारा	युष्मान्	तुम
अभिहितः	आदेश दिये जाने पर	नव विश्व	नौ विश्व
देवः	उन देवने	सृजः	सृष्टाओंकी
दारुणं तपः	घोर तपस्या	विभुः असृजत्	उन समर्थने सृष्टि
अतप्यत	की		की ॥५०॥
येन	जिसके द्वारा		
आदौ	प्रारम्भमें		

एषा पञ्चजनस्याङ्ग दुहिता वै प्रजापतेः ।

असिन्की नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥५१॥

एषा पञ्चजनस्य अङ्ग दुहिता वै प्रजापतेः असिन्की नाम पत्नीत्वे
प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥५१॥

अङ्ग	प्रिय दक्ष !	दुहिता	पुत्री है,
एषा	यह	प्रजेश	प्रजापति !
पञ्चजनस्य	पञ्चजन	पत्नीत्वे	इसे पत्नी रूपमें
प्रजापतेः वै	प्रजापतिकी ही	प्रतिगृह्यतां	ग्रहण करो ॥५१॥
असिन्की नाम	असिन्की नामकी		

मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः ।

निथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥५२॥

मिथुन व्यवाय धर्मः त्वं प्रजासर्गं इमं पुनः मिथुन व्यवाय धर्मिण्यां
भूरिशः भावयिष्यसि ॥५२॥

मिथुन व्यवाय	जोड़ेसे स्त्री सहवास	इमं	इस
	रूप	मिथुन व्यवाय	जोड़ेसे स्त्री सहवास
धर्मः	धर्मके द्वारा		रूप
त्वं पुनः	तुम फिर	धर्मिण्यां	धर्मवाली

भूरिशः	बहुत अधिक		भावयिष्यसि	करोगे ॥५२॥
प्रजासर्ग	प्रजाकी सृष्टि			

त्वत्तोऽधस्तात् प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया ।

मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम् ॥५३॥

त्वत्तः अधस्तात् प्रजाः सर्वाः मिथुनीभूय मामया मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम् ॥५३॥

त्वत्तः	तुमसे		भविष्यन्ति	होगी
अधस्तात्	पीछे होने वाली		च मे	और मुझे
सर्वाः प्रजाः	सब प्रजा		बलि	उपहार
मदीयया मायया	मेरी मायसे		हरिष्यन्ति	देगी ॥५३॥
मिथुनीभूय	(स्त्री-पुरुष) जोड़ेसे			
	ही उत्पन्न होने वाली			

श्रीशुक उवाच-

इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य भगवान् विश्वभावनः ।

स्वप्नोपलब्धार्थं इव तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥५४॥

इति उक्त्वा मिषतः तस्य भगवान् विश्वभावनः स्वप्न उपलब्ध अर्थं इव अन्तर्दधे हरिः ॥५४॥

इति उक्त्वा	ऐसा कहकर		स्वप्न उपलब्ध	स्वप्नमें मिले
तस्य	उनके		अर्थं इव	पदार्थके समान
मिषतः	देखते-देखते		तत्र एव	वहीं
विश्वभावनः	विश्वपालक		अन्तर्दधे	अन्तर्धान हो
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि			गये ॥५४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां

षष्ठस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः ।

हर्यश्वसंज्ञानयुतं पुत्रानजनयद् विभुः ॥१॥

तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमाया उपबृंहितः हर्मश्व संज्ञान् अयुतं
पुत्रान् अजनयत् विभुः ॥१॥

विष्णुमाया	भगवान् विष्णुकी	हर्मश्व संज्ञान्	हर्मश्व नामक
	माया (शक्ति)से	अयुतं	दस सहस्र
वै	निश्चय	पुत्रान् अजनयत्	पुत्र उत्पन्न
उपबृंहित	अभिवृद्धि शक्ति		किये ॥४७॥
स विभुः	उन (दक्ष) ने		
तस्यां	उस		
पाञ्चजन्यां	पञ्चजनकी पुत्रीसे		

अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्वे दाक्षायणा नृप ।

पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं प्रययुर्दिशम् ॥२॥

अपृथक् धर्मशीलाः ते सर्वे दाक्षायणा नृप पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे
प्रतीचीं प्रययुः दिशम् ॥२॥

नृप	राजन् !	पित्रा	पिताके
ते सर्वे	वे सब	प्रजासर्गे	प्रजा उत्पन्न करनेके
दाक्षायणा	दक्षपुत्र		लिये
अपृथक्	अभिन्न	प्रोक्ताः	कहने पर
धर्मशीलाः	आचरण एवं	प्रतीचीं दिशं	पश्चिम दिशामें
	स्वभावके थे,	प्रययुः	चले गये ॥२॥

तत्र नारायणसरस्तीर्थं सिन्धुसमुद्रयोः ।

सङ्गमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥३॥

तत्र नारायणसरः तीर्थं सिन्धु समुद्रयोः सङ्गमः यत्र सुमहन् मुनि
सिद्ध निषेवितम् ॥३॥

यत्र सिन्धु	जहाँ सिन्धु नदी और	सुमहन्	अत्यन्त महान्
समुद्रयोः	समुद्रका	नारायणसरः	नारायण-सरोवर
सङ्गमः तत्र	मिलन होता है वहाँ	तीर्थं	तीर्थ है ॥३॥
मुनि सिद्ध	मुनियों तथा सिद्धोंसे		
निषेवितं	बराबर सेवन किया		
	जानेवाला		

तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ।

धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥४॥

तत् उपस्पर्शनात् एव विनिर्धूत अमल आशयाः धर्मे पारमहंस्ये च
प्रोत्पन्न मतयः अपि उत ॥४॥

तत्	उस (सरोवर) में	उत	यद्यपि
उपस्पर्शनात् एव स्नान करनेसे ही		पारमहंस्ये	(वे) परमहंसोंके
विनिर्धूत धुलकर		धर्मे	(निवृत्ति) धर्ममें ही
अमल आशयाः निर्मल चित्तवालों-		प्रोत्पन्न मतयः	बुद्धि लग गयी
की			फिर भी ॥४॥

तेपिरे तप एवोग्रं पित्रादेशेन यन्त्रिताः ।

प्रजाविवृद्धये यत्तान् देवर्षिस्तान् ददर्श ह ॥५॥

ते पिरे तप एव उग्रं पितृ आदेशेन यन्त्रिताः प्रजा विवृद्धये यत्तान्
देवर्षिः तान् ददर्श ह ॥५॥

पितृ आदेशेन	पिताकी आज्ञासे	उग्रं तप एव	घोर तपस्या ही
यन्त्रिताः	नियन्त्रित होनेके	ते पिरे	तपने (करने)लगे;
	कारण	प्रजा विवृद्धये	प्रजाकी वृद्धिके लिए

यत्तान् तान्	यत्नवान् उनको	ददर्श	देखा ॥५॥
देवर्षिः ह	देवर्षिने दयापूर्वक		

उवाच चाथ हर्यश्वाः कथं स्तक्ष्यथ वै प्रजाः ।

अदृष्ट्वान्तं भुवो यूयं बालिशा बत पालकाः ॥६॥

उवाच च अथ हर्यश्वाः कथं स्तक्ष्यथ वै प्रजाः अदृष्ट्वा अन्तं भुवः
यूयं बालिशा बत पालकाः ॥६॥

उवाच च	बोलेभी	भुवः अन्तं	पृथ्वीका अन्त
अथ हर्यश्वाः	अरे, हर्यश्वा !	अदृष्ट्वा	देखे बिना
पालकाः बत	प्रजापालक होने	प्रजाः कथं वै	प्रजाकी कैसे तो
	परभी	स्तक्ष्यथ	सृष्टि करोगे ॥६॥
यूयं बालिशा	तुम लोग मूर्खहो,		

तथैकपुरुषं राष्ट्रं बिलं चादृष्टनिर्गमम् ।

बहुरूपां स्त्रियं चापि पुमांसं पुंश्चलीपतिम् ॥७॥

तथा एक पुरुषं राष्ट्रं बिलं च अदृष्ट निर्गमं बहुरूपां स्त्रियं च अपि
पुमांसं पुंश्चली पतिम् ॥७॥

तथा	इसी प्रकार	च बहुरूपां	तथा बहुत रूप
एक पुरुषं	एक ही पुरुषवाले		बनाने वाली
राष्ट्रं	राष्ट्रको	स्त्रियं	स्त्रीको
अदृष्ट निर्गमं	जिससे निकलनेका	च पुंश्चली पतिं	एवं व्यभिचारिणीके
	मार्ग नहीं दीखता		पति
बिलं	उस बिलको	पुमांसं	पुरुषको ॥७॥

नदीमुभयतोवाहां पञ्चपञ्चाद्भुतं गृहम् ।

क्वचिद्धंसं चित्रकथं क्षौरपट्यं स्वयं भ्रमिम् ॥८॥

नदीं उभयतः वाहां पञ्चपञ्च अद्भुतं गृहं क्वचित् हंसं चित्रकथं
क्षौरपट्यं स्वयं भ्रमिम् ॥८॥

उभयतः बाहां	दोनों ओर बहने वाली	चित्रकथं हंसं	विचित्र कथावाले हंसको,
नदीं	नदीको,	स्वयं भ्रमि	अपने आप घूमते रहनेवाले
पञ्चपञ्च	पञ्चीस (तत्त्वों)से बने	क्षौरपव्यं	चक्रको
अद्भुतं गृहं	अद्भुत घरको,	क्वचित्	कभी देखा है ॥८॥

कथं स्वपितुरादेशमविद्वांसो विपश्चितः ।

अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥९॥

कथं स्वपितुः आदेशं अविद्वांसः विपश्चितः अनुरूपं अविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥९॥

अहो	अहो,	अनुरूपं	अनुकूल (तथ्य) को
विपश्चितः	सर्वज्ञ	अविज्ञाय	बिना जाने
स्वपितुः	अपने पिताकी	कथं	कैसे
आदेशं	आज्ञाको	सर्गं करिष्यथ	सृष्टि करोगे ॥९॥
अविद्वांसः	समझे बिना उसके		

श्रीशुक उवाच - *

तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया ।

वाचःकूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुर्धिया ॥१०॥

तत् निशम्य अथ हर्यश्वाः औत्पत्तिक मनीषया वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुः धिया ॥१०॥

* अध्यायके प्रारम्भसे 'श्रीशुक उवाच' ही चल रहा है; किन्तु श्लोक ६ से नारदजी बोलने लगे, अतः वहां 'नारदोवाच' होना चाहिए था, तब यहां 'श्रीशुक उवाच' संगत होता । पर यह उवाच सभी प्रतियोंमें है— श्लोक ६ का प्रारम्भिक शब्द 'उवाच....' शुकदेवजीका होनेसे वहाँ 'नारदोवाच' मैंने बढ़ाया नहीं ।

अथ देवर्षेः	तब देवर्षि नारदजी-	मनीषया	प्रतिभाशाली होनेसे
	की	स्वयं धिया	अपनी बुद्धिसे
तत् कूटं वाचः	उस कूट वाणीको तो	विममृशुः	विचार करने
निशम्य	सुनकर		लगे ॥१०॥
औत्पत्तिक	जन्मजात		

भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादि निजबन्धनम् ।

अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥११॥

भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यत् अनादि निज बन्धनं अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥११॥

भूः क्षेत्रं	भूमि लिङ्ग शरीर है,	बन्धनं	बन्धन है ।
जीवसंज्ञं	जिसे जीव कहा जाता है,	तस्य निर्वाणं	उसका मोक्ष
	जिससे	अदृष्ट्वा	देखे (जाने) बिना
यत्		असत् कर्मभिः	अनुपयोगी कर्मोंसे
निज अनादि	आत्माका अनादि	किं भवेत्	क्या होगा ॥११॥

एक एवेश्वरस्तुर्यो भगवान् स्वाश्रयः परः ।

तमदृष्ट्वाभवं पुंसः किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१२॥

एक एव ईश्वरः तुर्यः भगवान् स्वाश्रयः परः तं अदृष्ट्वा अभवं पुंसः किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१२॥

ईश्वरः एक एव ईश्वर एक ही हैं,	तं अभवं	उन, नित्यमुक्त
तुर्यः (वे) तुरीय-तत्त्व,	पुंसः	परमपुरुषको
स्वाश्रयः अपने ही आश्रयमें	अदृष्ट्वा	देखे बिना
स्थित	असत् कर्मभिः	तथ्यहीन कर्मोंसे
परः सबसे परे	किं भवेत्	क्या लाभ
भगवान् भगवान् हैं,		होगा ॥१२॥

पुमान् नैवेति यद् गत्वा बिलस्वर्गं गतो यथा ।

प्रत्यधामाविद इह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१३॥

पुमान् न एव एति यद् गत्वा बिलस्वर्गं गतः यथा प्रत्यक् धाम
आविदः इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१३॥

यथा बिलस्वर्गं	जैसे बिल स्वर्ग (अतल-पातालादि)में	इह आविदः	इस जीवनमें जाने बिना
गतः	गया हुआ (नहीं लौटता)	असत् कर्मभिः	असत् (संसार)के कर्मोंसे
यद् गत्वा	जहाँ जाकर	किं भवेत्	क्या लाभ होगा ॥१३॥
पुमान् न एव	पुरुष नहीं ही लौट		
एति	आता		
प्रत्यक् धाम	(उस) अन्तःज्योति स्वरूपको		

नानारूपाऽऽत्मनो बुद्धिः स्वैरिणीव गुणान्विता ।

तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१४॥

नाना रूपा आत्मनः बुद्धिः स्वैरिणी इव गुण अन्विता तत् निष्ठां
अमगत् अस्य इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१४॥

आत्मनः	अपनी	तत् निष्ठां	उसके स्वरूपसे
बुद्धिः	बुद्धि	अमगत् अस्य	तादात्म्य करनेवाले
नाना रूपा	अनेक रूप धारिणी		इस (पुरुष)का
स्वैरिणी इव	कुलटाकी भांति	असत् कर्मभिः	असत् कर्मोंसे
गुण अन्विता	(सत्त्व, रज, तम) गुणोंसे युक्त होती है,	किं भवेत्	क्या कल्याण होगा ॥१४॥
इह	इस जीवनमें		

तत्सङ्गश्च शितैश्वर्यं संसरन्तं कुभार्यवत् ।

तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१५॥

तत् संगं च शित ऐश्वर्यं संसरन्तं कुभार्यवत् तत् गतिः अबुधस्य इह
किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१५॥

तत् सङ्ग	उस (बुद्धि) में आसक्ति करके	अबुधस्य	न जाननेवालेका
भ्रंशित ऐश्वर्यं	ऐश्वर्य भ्रष्ट	इह	इस संसारमें
कुभार्यवत्	कुलटा पत्नीके पतिके समान	असत् कर्मभिः	अकल्याणकारी कर्मोंसे
संसरन्तं	आवागमनमें पड़े	किं भवेत्	क्या हित होगा ॥१५॥
तत्गति	उस (बुद्धि)की चालोंको		

सृष्ट्यप्ययकरीं मायां वेलाकूलान्तवेगिताम् ।

मत्तस्य तामविज्ञस्य किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१६॥

सृष्टि अप्यय करीं मायां वेला कूलान्तवे गितां मत्तस्य तां अविज्ञस्य
किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१६॥

सृष्टि अप्यय	सृष्टि और प्रलय	मत्तस्य	प्रमाद ग्रस्तका
करीं मायां	करने वाली माया	असत् कर्मभिः	असत् (सांसारिक) कर्मोंसे
वेला कूलान्त	किनारे और किनारों के अन्त (मध्य) में	किं भवेत्	क्या (उद्धार) होगा ॥१६॥
वेगितां	वेगवाली (नदी) है,		
तां अविज्ञस्य	उसके स्वरूपको न जानकर		

पञ्चविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽद्भुतदर्पणम् ।

अध्यात्ममबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१७॥

पञ्च विंशति तत्त्वानां पुरुषः अद्भुत दर्पणं अध्यात्मं अबुधस्य इह
किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१७॥

पञ्च विंशति	पच्चीस	अद्भुत दर्पणं	अद्भुत दर्पण है ।
तत्त्वानां	तत्त्वोंका (बना मनुष्य देह)		इसीमें आत्म-साक्षा- त्कार होता है ।
पुरुषः	इस पुरीमें रहनेवाले का	अध्यात्मं	इस आध्यात्म- तत्त्वको

अबुधस्य	न जाननेवाले का	असत् कर्मभिः	असत् कर्मोंसे
इह	इस संसारमें	किं भवेत्	क्या होगा ॥१७॥

ऐश्वरं शास्त्रमुत्सृज्य बन्धमोक्षानुदर्शनम् ।

विविक्तपदमज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१८॥

ऐश्वरं शास्त्रं उत्सृज्य बन्धमोक्ष अनुदर्शनं विविक्तपदं अज्ञाय किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१८॥

बन्धमोक्ष	बन्धन और मोक्षको	विविक्तपदं	ऐकान्तिक-पद
अनुदर्शनं	ठीक-ठीक दिख- लानेवाले	अज्ञाय	(मोक्ष)को
ऐश्वरं शास्त्रं	भगवद्वाणी रूप शास्त्रको	असत् कर्मभिः	जाने बिना
उत्सृज्य	(जो हंसके समान है) त्यागकर	किं भवेत्	बहिर्मुख करनेवाले कर्मोंसे
			क्या भला होगा ॥१८॥

कालचक्रं भ्रमिस्तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयज्जगत् ।

स्वतन्त्रमबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१९॥

कालचक्रं भ्रमिः तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयन् जगत् स्वतन्त्रं अबुधस्य इह किं असत् कर्मभिः भवेत् ॥१९॥

कालचक्रं	कालरूपी चक्र	इह	इस लोकमें
तीक्ष्णं भ्रमिः	तीक्ष्णं धारवाला धूमता चक्र है	अबुधस्य	इस (कालचक्र)को
स्वतन्त्र	स्वतन्त्र है,	असत् कर्मभिः	न जानकर
सर्वं जगत्	सम्पूर्ण संसारको	किं भवेत्	लौकिक असत् कर्मोंसे
निष्कर्षयन्	अपनी ओर खींचता रहता है		क्या (रक्षा) सम्भव है ॥१९॥

शास्त्रस्य पितुरादेशं यो न वेद निवर्तकम् ।

कथं तदनुरूपाय गुणविश्रम्भ्युपक्रमेत् ॥२०॥

शास्त्रस्य पितुः आदेशं यः न वेद निवर्तकं कथं तत् अनुरूपाय गुण
विश्रम्भ्य उपक्रमेत् ॥२०॥

शास्त्रस्य पितुः	शास्त्ररूप पिताका	तत् अनुरूपाय	उस(शास्त्र तात्पर्य)
आदेशं	आदेश		के अनुकूल
निवर्तकं	निवृत्त करने वाला है	कथं उपक्रमेत्	कैसे उपराम होगा ॥२०॥
यः न वेद	जो इसे नहीं जानता,		
गुण विश्रम्भ्य	गुण (शब्दादि विषयों)पर विश्वास करके		

इति व्यवसिता राजन् हर्यश्वा एकचेतसः ।

प्रययुस्तं परिक्रम्य पन्थानमनिवर्तनम् ॥२१॥

इति व्यवसिता राजन् हर्यश्वा एकचेतसः प्रययुः तं परिक्रम्य
पन्थानं अनिवर्तनम् ॥२१॥

राजन्	राजन् !	अनिवर्तनं	न लौटने वाले
एकचेतसः	अभिन्न हृदय		(मोक्षके)
हर्यश्वा	हर्यश्व	पन्थानं	मार्गपर
इति व्यवसिता	ऐसा निश्चय करके	प्रययुः	चल पड़े ॥२१॥
तं परिक्रम्य	उन (नारदजी)की परिक्रमा करके		

स्वरब्रह्मणि निर्भातिहृषीकेशपदाम्बुजे ।

अखण्डं चित्तमावेश्य लोकाननुचरन्मुनिः ॥२२॥

स्वरब्रह्मणि निर्भाति हृषीकेश पदाम्बुजे अखण्डं चित्तं आवेश्य
लोकान् अनुचरन् मुनिः ॥२२॥

मुनिः	देवर्षि नारद	निर्भाति	प्रकाशित
स्वरब्रह्मणि	संगीत-लहरीमें	हृषीकेश	हृषीकेशके

पदाम्बुजे	चरण-कमलोंमें	लोकान्	लोकोंमें
चित्तं अखण्डं	अखण्ड रूपसे चित्त- को	अनुचरन्	विचरने लगे ॥२२॥
आवेश्य	प्रविष्ट करके(तन्मय होकर		

नाशं निशम्य पुत्राणां नारदाच्छीलशालिनाम् ।

अन्वतप्यत कः शोचन सुप्रजस्त्वं शुचां पदम् ॥२३॥

नाशं निशम्य पुत्राणां नारदात् शीलशालिनां अनु अतप्यत कः
शोचत् सुप्रजः त्वं शुचां पदम् ॥२३॥

शीलशालिनां	शीलवान्	अनु अतप्यत	बार-बार संतप्त होने लगे
पुत्राणां	पुत्रोंका	सुप्रजः त्वं	उत्तम सन्तान होना भी
नारदात्	नारद द्वारा	शुचां पदं	शोकका स्थान (कारण) है ॥२३॥
नाशं	नाश (के समान कर्तव्यच्युत होना)		
निशम्य	सुनकर		
कः शोचत्	प्रजापति (दक्ष) शोक करके		

स भूयः पाञ्चजन्यायामजेन परिसान्त्वितः ।

पुत्रानजनयद् दक्षः शबलाश्वान् सहस्रशः ॥२४॥

स भूयः पाञ्चजन्यायां अजेन परिसान्त्वितः पुत्रान् अजनयत् दक्षः
शबलाश्वान् सहस्रशः ॥२४॥

अजेन	ब्रह्माजी द्वारा	शबलाश्वान्	शबलाश्व नामक
परिसान्त्वितः	भली प्रकार सम- झानेपर	सहस्रशः	एक सहस्र
स दक्षः भूयः	उन दक्षने फिर	पुत्रान् अजनयत्	पुत्र उत्पन्न किए ॥२४॥
पाञ्चजन्यायां	पाञ्चजनी (पत्नी)से		

तेऽपि पित्रा समादिष्टाः प्रजासर्गे धृतव्रताः ।

नारायणसरो जग्मुर्यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥२५॥

ते अपि पित्रा समादिष्टाः प्रजासर्गे धृतव्रताः नारायणसरः जग्मुः
यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥२५॥

ते अपि	वे भी	यत्र स्वपूर्वजाः	जहां अपने अग्रज
प्रजासर्गे	सन्तान उत्पन्न	सिद्धाः	सिद्ध हुए थे (उसी)
	करनेके लिए	नारायणसरः	नारायण-सरोवर-
पित्रा	पिताका		पर
समादिष्टाः	आदेश पाकर	जग्मुः	गये ॥२५॥
धृतव्रताः	व्रत धारण करके		

तदुपस्पर्शनादेव

विनिर्धूतमलाशयाः ।

जपन्तो ब्रह्म परमं तेषुस्तेऽत्र महत् तपः ॥२६॥

तत् उपस्पर्शनात् एव विनिर्धूतमल आशयाः जपन्तः ब्रह्म परमं तेषुः
ते अत्र महत् तपः ॥२६॥

तत् उपस्पर्शनात्	उसमें स्नान करनेसे	जपन्तः	जप करते हुए
एव	ही	अत्र ते	यहाँ उन्होंने
आशयाः	उनके चित्तका	महत् तपः तेषुः	महान् तपस्या
विनिर्धूतमल	मल भली प्रकार		की ॥२६॥
	धुल गया,		
परमं ब्रह्म	परमब्रह्म (स्वरूप		
	प्रणव) का		

अबभक्षाः कतिचिन्मासान् कतिचिद् वायुभोजनाः ।

आराधयन् मन्त्रमिममभ्यस्यन्त इडस्पतिम् ॥२७॥

अप् भक्षाः कतिचित् मासान् कतिचित् वायुभोजनाः आराधयन्
मन्त्रं इमं अभ्यस्यन्तः इडस्पतिम् ॥२७॥

कतिचित्	कुछ	इमं मन्त्रं	इस मन्त्रका
मासान्	महीने	अभ्यस्यन्त	जप करते हुए
अपूभक्षाः	केवल जल पीकर	इडस्पर्ति	मन्त्राधिप (भग- वान्)की
कतिचित्	कुछ (महीने)	आराधयन्	आराधना करने
वायु भोजनाः	वायु-भोजन (श्वास लेते) रहे,		लगे ॥२७॥

ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने ।

विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥२८॥

ॐ नमः नारायणाय पुरुषाय महात्मने विशुद्धसत्त्व धिष्ण्याय महा-
हंसाय धीमहि ॥२८॥

ॐ	ओंकार स्वरूप	विशुद्धसत्त्व	शुद्ध अन्त करणमें
नारायणाय	नारायणको	धिष्ण्याय	रहने वाले
नमः	नमस्कार	महाहंसाय	महाहंसाका
महात्मने	महान् आत्मा रूप	धीमहि	(हम) ध्यान करते
पुरुषाय	परम-पुरुष जो		हैं ॥२८॥

इति तानपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियो मुनिः ।

उपेत्य नारदः प्राह वाचःकूटानि पूर्ववत् ॥२९॥

इति तान् अपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियः मुनिः उपेत्य नारदः प्राह वाचः
कूटानि पूर्ववत् ॥२९॥

राजेन्द्र	राजेन्द्र परीक्षित !	नारदः मुनिः	नारद मुनि
इति	इस प्रकार (तपमें लगे)	उपेत्य	पास आकर
तान् अपि	उनसे भी	पूर्ववत्	पहिलेके समान
प्रतिसर्गधियः	सृष्टिमें उलटी (निवृत्ति) में लगी बुद्धिवाले	कूटानि वाचः	कूट-वचन
		प्राह	बोले ॥२९॥

दाक्षायणाः संश्रृणुत गदतो निगमं मम ।

अन्विच्छतानुपदवीं भ्रातृणां भ्रातृवत्सलाः ॥३०॥

दाक्षायणाः संश्रृणुत गदतः निगमं मम अन्विच्छत अनुपदवीं भ्रातृणां
भ्रातृवत्सलाः ॥३०॥

दाक्षायणाः	दक्षपुत्रो !	भ्रातृणां अनुपदवीं (अतः) भाइयोंके
मम गदतः	मेरे कहे	मार्गका
निगमं	उपदेशको	अन्विच्छत अनुसंधान
संश्रृणुत	सुनो,	करो ॥३०॥
भ्रातृवत्सलाः	(तुम) भाइयोंसे	
	प्रेम करनेवाले हो	

भ्रातृणां प्रायणं भ्राता योऽनुतिष्ठति धर्मवित् ।

स पुण्यबन्धुः पुरुषो मरुद्भिः सह मोदते ॥३१॥

भ्रातृणां प्रायणं भ्राता यः अनुतिष्ठति धर्मवित् स पुण्यबन्धुः पुरुषः
मरुद्भिः सह मोदते ॥३१॥

यः धर्मवित्	जो धर्मज्ञ	पुरुषः मरुद्भिः पुरुष मरुद्गणोंके
भ्राता भ्रातृणां	भाई भाइयोंके	सह मोदते साथ आनन्द
प्रायणं	श्रेष्ठ मार्गपर	भोगता है ॥३१॥
अनुतिष्ठति	पीछे चलता है	
स पुण्यबन्धुः	वह पुण्यवान्का	
	भाई	

एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः ।

तेऽपि चान्वगमन् मार्गं भ्रातृणामेव मारिष ॥३२॥

एतावत् उक्त्वा प्रययौ नारदः अमोघ दर्शनः ते अपि च अनु अगमन्
मार्गं भ्रातृणां एव मारिष ॥३२॥

अमोघ दर्शनः	जिनका दर्शन व्यर्थ	नारदः	नारदजी
	नहीं जाता वे	एतावत् उक्त्वा	इतना ही कहकर

प्रययौ	चले गये ।	भातृणां एव	भाइयोंके ही
ते मारिष	वे मारिषा	मार्ग	मार्गके
अपि च	(असिन्की)के पुत्र भी	अनु अगमन्	पीछे चल पड़े ॥३२॥

सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः ।

नाद्यापि ते निवर्तन्ते पश्चिमा यामिनीरिव ॥३३॥

सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्य अनुपथं गताः न अद्य अपि ते निवर्तन्ते
पश्चिमा यामिनोः इव ॥३३॥

प्रतीचीनं	अन्तर्मुख होनेवाले	पश्चिमा	बीती हुई
सध्रीचीनं	अत्यन्त सुन्दर	यामिनीः इव	रात्रिकी भांति
परस्य	परमपुरुषकी	अद्य अपि	आज तक भी
अनुपथं	ओर जानेवाले	न निवर्तन्ते	(वे) नहीं लौटे
	मार्गपर		हैं ॥३३॥
गताः	गये		

एतस्मिन् काल उत्पातान् बहून् पश्यन् प्रजापतिः ।

पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाशृणोत् ॥३४॥

एतस्मिन् काल उत्पातान् बहून् पश्यन् प्रजापतिः पूर्ववत् नारदकृतं
पुत्र नाशं उपाशृणोत् ॥३४॥

एतस्मिन् काल	इसी समयमें	नारदकृतं	नारद द्वारा किया
बहुन् उत्पातान्	बहुतसे अपशकुन	पुत्र नाशं	अपने पुत्रोंका चौपट
प्रजापतिः	प्रजापति दक्ष		होना
पश्यन्	देख रहे थे कि	उपाशृणोत्	सुना ॥३४॥
पूर्ववत्	पहिलेके समान		

चुक्रोध नारदायासौ पुत्रशोकविमूर्च्छितः ।

देवर्षिमुपलभ्याह रोषाद्विस्फुरिताधरः ॥३५॥

चुक्रोध नारदाय असौ पुत्रशोक विमूर्च्छितः देवर्षि उपलभ्य आह
रोषात् विस्फुरित अधरः ॥३५॥

असौ	ये दक्ष	देवर्षि उपलभ्य	देवर्षिके मिलनेपर
पुत्रशोक	पुत्रोंके शोकसे	रोषात्	क्रोधसे
विमूर्च्छितः	अत्यन्त व्याकुल	विस्फुरित	फड़कते
	होकर	अधरः	ओष्ठ
नारदाय	नारदजीपर	आह	बोले ॥३५॥
चुक्रोध	क्रुद्ध हो गये		

दृष्ट्वा उवाच—

अहो असाधो साधूनां साधुलिङ्गेन नस्त्वया ।

असाध्वकार्यभक्ताणां भिक्षोर्मार्गः प्रदर्शितः ॥३६॥

अहो असाधोः साधूनां साधुलिङ्गेन नः त्वया असाधु अकार्यः भक्ताणां
भिक्षोः मार्गः प्रदर्शितः ॥३६॥

अहो असाधोः	अरे दुष्ट !	असाधु अकार्यः	अपकार किया है
साधुलिङ्गेन	साधुओंके वेशमें		जो
	रहनेवाले	भक्ताणां	(मेरे) बच्चोंको
त्वया	तुमने	भिक्षोः मार्गः	भिक्षुकोंका मार्ग
नः साधूनां	हम सज्जनोंका	प्रदर्शितः	दिखला दिया ॥३६॥

ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाममीमांसितकर्मणाम् ।

विद्यातः श्रेयसः पाप लोकयोरुभयोः कृतः ॥३७॥

ऋणैः त्रिभिः अमुक्तानां अमीमांसित कर्मणां विद्यातः श्रेयसः पाप
लोकयोः उभयोः कृतः ॥३७॥

ऋणै त्रिभिः	तीनों (पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण, देव- ऋण) ऋणोंसे	कर्मणां	कर्मों (उनके फलकी नश्वरता) का
अमुक्तानां	(वे) सन्तानोत्पादन, वेदाध्ययन और यज्ञ करके) छूटे नहीं थे,	अमीमांसित	(अभी) विचार नहीं किया था,
		पाप	पापी (तूने)

उभयोः लोकयोः दोनों लोकोंके
श्रेयसः विघातः कल्याणका नाश

कृतः कर दिया ॥३७॥

एवं त्वं निरनुक्रोशो बालानां मतिभिद्धरेः ।

पार्षदमध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥३८॥

एवं त्वं निः अनुक्रोशः बालानां मतिभिः हरेः पार्षद मध्ये चरसि
यशोहा निरपत्रपः ॥३८॥

त्वं एवं तू इस प्रकारका
निः अनुक्रोशः निर्दय,
बालानां बालकोंकी
मतिभिः बुद्धि-भ्रमित करने-
वाला

निरपत्रपः निर्लज्ज होकर
हरेः पार्षद श्रीहरिके पार्षदोंके
मध्ये चरसि बीचमें घूमता है,
यशोहा (उनके भी) यश-
का नाशक है ॥३८॥

ननु भागवता नित्यं भूतानुग्रहकातराः ।

ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरङ्करमवैरिणाम् ॥३९॥

ननु भागवता नित्यं भूत अनुग्रह कातराः ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरं
कृत अवैरिणाम् ॥३९॥

ननु निश्चय
भागवता भगवद्भक्त
नित्यं सदा
भूत अनुग्रह प्राणियोंपर कृपा
करनेके लिए
कातराः आतुर रहते हैं,

वै सौहृदघ्नं निश्चय मित्रता
नाशक
अवैरिणं शत्रुता न करने
वालोंसे भी
वैरं कृत शत्रुता करनेवाले
त्वां ऋते तुझे छोड़कर ॥३९॥

नेत्थं पुंसां विरागः स्यात् त्वया केवलिना मृषा ।

मन्यसे यद्युपशमं स्नेहपाशनिकृन्तनम् ॥४०॥

न इत्थं पुंसां विरागः स्यात् त्वया केवलिना मृषा मन्यसे यत् उपशमं
स्नेहपाश निकृन्तनम् ॥४०॥

त्वया मृषा	तुझ झूठे	यत्	जो
केवलिनः	वैराग्य वेशधारीके	उपशमं	वैराग्यको ही
	द्वारा	स्नेहपाश	स्नेह-बन्धनको
पुंसां इत्थं	पुरुषको इस प्रकार	निकृन्तनं	काटनेवाला
विरागः न	वैराग्य नहीं होता,	मन्यसे	मानने हो ॥४०॥

नानुभूय न जानाति पुमान् विषयतीक्ष्णताम् ।

निर्विद्येत स्वयं तस्मान्न तथा भिन्नधीः परैः ॥४१॥

न अनुभूय न जानाति पुमान् विषय तीक्ष्णतां निर्विद्येत स्वयं तस्मात्
न तथा भिन्नधीः परैः ॥४१॥

न अनुभूय	बिना अनुभव किये	निर्विद्येत	विरक्त हो जाता है,
पुमान्	पुरुष	तथा परैः	वैसा (वैराग्य)
विषय तीक्ष्णतां	विषय-भोगोंकी		दूसरों द्वारा
	कटुता	भिन्नधीः	बुद्धिभ्रम (उत्पन्न
न जानाति	नहीं जान पाता		करने) से
तस्मात्	इसलिए	न	नहीं होता ॥४१॥
स्वयं	स्वयं (कटुताके		
	कारण)		

यन्नस्त्वं कर्मसन्धानां साधूनां गृहमेधिनाम् ।

कृतवानसि दुर्मर्षं विप्रियं तव मर्षितम् ॥४२॥

यत् नः त्वं कर्म सन्धानां साधूनां गृहमेधिनां कृतवान् असि दुर्मर्षं
विप्रियं तव मर्षितम् ॥४२॥

कर्म सन्धानां	कर्मयोगमें लगे,	त्वं कृतवान् असि	तुमने (पहिले)
साधूनां	सज्जन		किया था,
गृहमेधिनां	गृहस्थ	तव मर्षितं	(वह) तुम्हारा अप-
नः त्वं	हमारा तुमने		राध हमने सह
यत् दुर्मर्षं	जो दुःसह		लिया था ॥४२॥
विप्रियं	अप्रिय		

तन्तुकृन्तन यन्नस्त्वमभद्रमचरः पुनः ।

तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद्भ्रमतः पदम् ॥४३॥

तन्तु कृन्तन यत् नः त्वं अभद्रं अचरः पुनः तस्मात् लोकेषु ते मूढ न भवेत् भ्रमतः पदम् ॥४३॥

यत् त्वं	क्योंकि तुमने	तस्मात्	इसलिए
नः तन्तु कृन्तन	हमारी वंश पर-	मूढ	मूर्ख !
	म्पराको काटनेका	लोकेषु भ्रमतः	लोकेमें घूमते हुए
पुनः अभद्रं	फिर अमंगलकारी	ते पदं	तुझे ठहरनेका स्थान
अचरः	आचरण किया है	न भवेत्	(कहीं)न हो ॥४३॥

श्रीशुक उवाच—

प्रतिजग्राह तद् बाढं नारदः साधुसम्मतः ।

एतावान् साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम् ॥४४॥

प्रति जग्राह तद् बाढं नारदः साधु सम्मतः एतावान् साधुवादः हि तितिक्षेत् ईश्वरः स्वयम् ॥४४॥

साधु सम्मतः	संत शिरोमणि	साधुवादः	साधुताका नाम
नारदः	नारदजीने		(स्वरूप) है कि
तद् बाढं	उस (शाप) को	स्वयं ईश्वरः	स्वयं (प्रतिभार में)
	‘अच्छा’ कहकर		समर्थ होते हुए भी
प्रति जग्राह	स्वीकार कर लिया ।	तितिक्षेत्	(दूसरेका अपकार)
हि एतावान्	क्योंकि इतना ही		सहन करले ॥४४॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां

षष्ठस्कन्धे नारदशापो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

ततः प्राचेतसोऽसिकन्यामनुनीतः स्वयम्भुवा ।

षण्टि सञ्जनयामास दुहितृः पितृवत्सलाः ॥१॥

ततः प्राचेतसः असिकन्यां अनुनीतः स्वयम्भुवा षण्टि सञ्जनयामास
दुहितृः पितृवत्सलाः ॥१॥

ततः	तब	षण्टि	साठ
स्वयम्भुवा	ब्रह्माजी द्वारा	पितृवत्सलाः	पितासे प्रेम करने- वाली
अनुनीतः	अनुनय-विनय करनेपर	दुहितृः	पुत्रियाँ
प्राचेतसः	प्रचेतानन्दन दक्षने	सञ्जनयामास	उत्पन्न कीं ॥१॥
असिकन्यां	(अपनी पत्नी) असिन्कीमें		

दश धर्माय कायेन्दोद्विषट् त्रिणव दत्तवान् ।

भूताङ्गिरः कृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे ताक्ष्याय चापराः ॥२॥

दश धर्माय काय इन्दोः द्विषट् त्रिणव दत्तवान् भूत अङ्गिरः
कृशाश्वेभ्यः द्वे द्वे ताक्ष्याय च अपराः ॥२॥

दश धर्माय	दस कन्याएँ धर्मको दीं	इन्दो त्रिणव	चन्द्रमाको तीन नव (सत्ताइस)
काय द्विषट्	काय (एक शरीर) और दो छः कश्यपको (बारह-तेरह)	भूत अङ्गिरः कृशाश्वेभ्यः द्वे द्वे	भूत, अंगिरा कृशाश्वको दो-दो

च अपराः	और दूसरी शेष (चार)	ताक्षर्याय	ताक्षर्य (नामधारी) कश्यपको
		दत्तवान्	दीं ॥२॥

नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु ।

यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥३॥

नाम धेयानि अमूषां त्वं स अपत्यानां च मे शृणु यासां प्रसूति प्रसवैः
लोका आपूरिताः त्रयः ॥३॥

त्वं	तुम	यासां	जिनसे
अमूषां	इनके	प्रसूति प्रसवैः	उत्पन्न सन्तानोंके
स अपत्यानां	पुत्रोंके साथ		वंशसे
नाम धेयानि	नाम	त्रयः लोका	तीनों लोक
मे शृणु	मुझसे सुनो,	आपूरिताः	भर गये ॥३॥

भानुर्लम्बा ककुब्जामिविश्वा साध्या मरुत्वती ।

वसुर्मुहूर्ता सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुताञ्शृणु ॥४॥

भानुः लम्बा ककुब्जामि विश्वा साध्या मरुत्वती वसुः मुहूर्ता
सङ्कल्पा धर्मपत्न्यः सुतान् शृणु ॥४॥

भानुः लम्बा	भानु, लम्बा,	मुहूर्ता सङ्कल्पा	मुहूर्ता संकल्पा
ककुब्जामिः	ककुब्ज, जामि	धर्मपत्न्यः	ये धर्मकी पत्नियाँ हैं,
विश्वा साध्या	विश्वा, साध्या,	सुतान् शृणु	इनके पुत्रोंके (नाम)
मरुत्वती वसुः	मरुत्वती, वसु,		सुनो ॥४॥

भानोस्तु देवऋषभ इन्द्रसेनस्ततो नृप ।

विद्योत आसील्लम्बायास्ततश्च स्तनयित्नवः ॥५॥

भानोः तु देवऋषभ इन्द्रसेनः ततः नृप विद्योत आसीत् लम्बायाः
ततः च स्तनयित्नवः ॥५॥

नृप	राजन् !	लम्बायाः	लम्बासे
भानोः तुः	भानुका तो (पुत्र)	विद्योत आसीत्	विद्योत हुआ,
देवऋषभ	देवऋषभ था,	च ततः	और उससे
ततः इन्द्रसेनः	उससे इन्द्रसेन (हुआ)	स्तनयित्त्वः	मेघगण हुए ॥५॥

ककुभः सङ्कटस्तस्य कीकटस्तनयो यतः ।

भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गो नन्दिस्ततोऽभवत् ॥६॥

ककुभः सङ्कटः तस्य कीकटः तनयः यतः भुवः दुर्गाणि जामेयः स्वर्गः
नन्दिः ततः अभवत् ॥६॥

तस्य ककुभः	उस ककुभके	जामेयः स्वर्गः	जामिका पुत्र स्वर्ग
कीकटः	कीकट	यतः नन्दिः	उससे नन्दी
यतः तनयः	जिसके पुत्र	अभवत्	हुआ ॥६॥
भुवः दुर्गाणि	पृथ्वीपर किलोके अभिमानि देवता हुए		

विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान् प्रचक्षते ।

साध्यो गणस्तु साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥७॥

विश्वेदेवाः तु विश्वायाः अप्रजान तान् प्रचक्षते साध्यः गणः तु
साध्याया अर्थ सिद्धिः तु तत् सुतः ॥७॥

विश्वायाः तु	विश्वाके तो	साध्यायां तु	साध्यासे तो
विश्वेदेवाः	विश्वेदेव हुए,	साध्यः गणः	साध्य-गण हुए,
तान् अप्रजान्	उनको निःसन्तान	तत् सुतः तु	उनका पुत्र तो
प्रचक्षते	(शास्त्रोंमें) कहा गया है ।	अर्थ सिद्धिः	अर्थ सिद्ध हुआ ॥७॥

मरुत्वांश्च जयन्तश्च मरुत्वत्यां बभूवतुः ।

जयन्तो वासुदेवांश्च उपेन्द्र इति यं विदुः ॥८॥

मरुत्वान् च जयन्तः च मरुत्वत्यां बभूवतुः जयन्तः वासुदेव अंश
उपेन्द्र इति यं विदुः ॥८॥

मरुत्वत्यां च	मरुत्वतीमें तो	वासुदेव अंश	वासुदेव भगवान्का
मरुत्वान्	मरुत्वान्		अंश है
च जयन्तः	और जयन्त	यं उपेन्द्र	जिसे उपेन्द्र
बभूवतुः	उत्पन्न हुए,	इति विदुः	इस नामसे भी जाना
जयन्तः	(इनमें) जयन्त		जाता है ॥८॥

मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तयाश्च जज्ञिरे ।

ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्वस्वकालजम् ॥६॥

मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तयाः च जज्ञिरे ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्व स्व कालजम् ॥६॥

मुहूर्तयाः	मुहूर्तसे तो	स्व स्व कालजं	अपने-अपने कालमें
मौहूर्तिका	मुहूर्ताभिमानि		होनेवाला
देवगणा	देवगण	फलं	फल
जज्ञिरे	उत्पन्न हुए	भूतानां	प्राणियोंको
ये वै	जो निश्चय	प्रयच्छन्ति	देते हैं ॥६॥

सङ्कल्पायाश्च सङ्कल्पः कामः सङ्कल्पजः स्मृतः ।

वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु ॥१०॥

सङ्कल्पायाः च सङ्कल्पः कामः सङ्कल्पजः स्मृतः वसवः अष्टौ वसोः पुत्राः तेषां नामानि मे शृणु ॥१०॥

सङ्कल्पायाः च	सङ्कल्पासे तो	वसोः पुत्राः	वसुके पुत्र
सङ्कल्पः	संकल्प हुआ,	अष्टौ वसवः	आठों वसु हैं
कामः	काम	तेषां नामानि	उनके नाम
सङ्कल्पजः	सङ्कल्पसे उत्पन्न	मे शृणु	मुझसे सुनो ॥१०॥
स्मृतः	बतलाया गया है,		

द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः ।

द्रोणस्याभिमतेः पत्न्या हर्षशोकभयादयः ॥११॥

द्रोणः प्राणः ध्रुवः अर्कः अग्निः दोषः वसुः विभावसुः द्रोणस्य
अभिमतेः पत्न्या हर्ष शोक भय आदयः ॥११॥

द्रोणः प्राणः	द्रोण, प्राण,	अभिमतेः	असिमतिसे
ध्रुवः अर्कः	ध्रुव, अर्क,	हर्ष शोक	हर्ष, शोक,
अग्निः दोषः	अग्नि, दोष,	भय आदयः	भय आदि (के
वसुः विभावसुः	वसु, विभावसु,		अभिमानी देवता)
द्रोणस्य पत्न्या	(इनमें) द्रोणकी पत्नी		हुए ॥११॥

प्राणस्योर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ।

ध्रुवस्य भार्या धरणिः रसूत विविधाः पुरः ॥१२॥

प्राणस्य उर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ध्रुवस्य भार्या धरणिः
असूत विविधाः पुरः ॥१२॥

प्राणस्य	प्राणकी	भार्या धरणिः	पत्नी धरणिने
भार्या उर्जस्वती	पत्नी उर्जस्वतीने	विविधाः पुरः	नाना प्रकारके
सह आयुः	सह, आयु,		नगरोंके अधिदेव-
पुरोजवः	पुरोजवको,		ताओंको
ध्रुवस्य	(और) ध्रुवकी	असूत	जन्म दिया ॥१२॥

अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्षादयः स्मृताः ।

अग्नेर्भार्या वसोर्धारा पुत्रा द्रविणकादयः ॥१३॥

अर्कस्य वासना भार्या पुत्राः तर्ष आदयः स्मृताः अग्नेः भार्या वसोः
धारा पुत्राः द्रविणक आदयः ॥१३॥

अर्कस्य	अर्ककी	भार्या धारा	पत्नी धाराके
भार्या वासना	पत्नी वासनासे	पुत्राः	पुत्र
तर्ष आदयः	तर्ष (तृष्णा) आदि	द्रविणक आदयः	द्रविणक आदि
पुत्राः स्मृताः	पुत्र बताये जाते हैं ।		हुए ॥१३॥
अग्ने वसोः	अग्नि नामक वसुकी		

स्कन्दश्च कृत्तिकापुत्रो ये विशाखादयस्ततः ।

दोषस्य शर्वरीपुत्रः शिशुमारो हरेः कला ॥१४॥

स्कन्दः च कृत्तिकापुत्रः ये विशाखा आदयः ततः दोषस्य शर्वरीपुत्रः
शिशुमारः हरेः कला ॥१४॥

कृत्तिकापुत्रः	कृत्तिकाके पुत्र	विशख आदयः	विशख आदि थे
स्कन्दः च	स्कन्द (कुमार		(वे हुए)
	कार्तिक) भी	दोषस्य	दोषकी
	(अग्निसे ही उत्पन्न	शर्वरीपुत्रः	पत्नी शर्वरीके पुत्र
	हुए)	हरेः कला	श्री हरिकी कलासे
ततः	उनसे जो	शिशुमारः	शिशुमार (मण्डल)
			हुआ ॥१४॥

वसोराङ्गिरसीपुत्रो विश्वकर्मा कृतीपतिः ।

ततो मनुश्चाक्षुषोऽभूद् विश्वेसाध्या मनोः सुताः ॥१५॥

वसोः आङ्गिरसी पुत्रः विश्वकर्मा कृतीपतिः ततः मनुः चाक्षुषः
अभूत् विश्वेसाध्याः मनोः सुताः ॥१५॥

वसोः	वसुकी (पत्नी)	मनुः अभूत्	मनु हुए,
आङ्गिरसी	आंगिरसीके	विश्वेसाध्या	विश्वेदेव और
पुत्रः कृतीपतिः	पुत्र शिल्पकलाके		साध्यगण
	अधिपति	मनोः सुताः	मनुके पुत्र
विश्वकर्मा	विश्वकर्मा हुए,		हुए ॥१५॥
ततः चाक्षुषः	उनसे चाक्षुष		

विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम् ।

पञ्चयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥१६॥

विभावसोः असूत उषा व्युष्टं रोचिषं आतपं पञ्चयामः अथ भूतानि
येन जाग्रति कर्मसु ॥१६॥

विभावसोः	विभावसुकी (पत्नी)	येन भूतानि	जिसके कारण
उषा व्युष्टं	उषाने व्युष्ट,	प्राणी	
रोचिषं आतपं	रोचिष, आतपको	कर्मसु जाग्रति	(अपने) कर्मोंमें
असूत	जन्म दिया,		जागते (लगे) रहते
अथ पञ्चयामः	फिर (उनमेंसे आतप- के) पञ्चयाम (दिवस) नामक पुत्र हुआ		हैं ॥१६॥

सरूपासूत भूतस्य भार्या रुद्रांश्च कोटिशः ।

रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥१७॥

सरूपा असूत भूतस्य भार्या रुद्रान् च कोटिशः रैवतः अजः भवः भीमः
वाम उग्रः वृषाकपि ॥१७॥

भूतस्य भार्या	भूतकी पत्नी	रैवतः अजः	रैवत, अज,
सरूपा कोटिशः	सरूपाने करोड़ों	भवः भीमः	भव, भीम,
रुद्रान् च	रुद्रोंको	वाम उग्रः	वाम, उग्र,
असूत	उत्पन्न किया (इनमें)	वृषाकपिः	वृषाकपि ॥१७॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति ।

रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये घोरा भूतविनायकाः ॥१८॥

अजैकपादः अहिर्बुध्न्यः बहुरूपः महान् इति रुद्रस्य पार्षदाः च अन्ये
घोरा भूत विनायकाः ॥१८॥

अजैकपादः	अजैकपाद	घोरा भूत	भयंकर भूत
अहिर्बुध्न्यः	अहिर्बुध्न्य	च विनायकाः	और विनायक
बहुरूपः महान्	बहुरूप, महान्	रुद्रस्य पार्षदाः	(ग्यारहवें) प्रधान
इति	इस प्रकार (ग्यारह मुख्य) हैं ।		रुद्र (महान्) के
अन्ये	(भूतकी) दूसरी पत्नी (भूता) से		पार्षद हुए ॥१८॥

प्रजापतेरङ्गिरसः स्वधा पत्नी पितृनथ ।
अथर्वाङ्गिरसं वेदं पुत्रत्वे चाकरोत् सती ॥१६॥

प्रजापतेः अङ्गिरसः स्वधा पत्नी पितृन् अथ अथर्वाङ्गिरसं वेदं पुत्रत्वे
च अकरोत् सती ॥१६॥

प्रजापतेः	प्रजापति	अथ सती	और (दूसरी पत्नी)
अङ्गिरसः	अंगिराकी		सतीने
स्वधा पत्नी	स्वधा नामक पत्नीने	अथर्वाङ्गिरसं	अथर्वाङ्गिरस (नामके)
पितृन्	पितरोंको (जन्म दिया)	वेदं पुत्रत्वे च अकरोत्	वेदको पुत्र रूपमें ही बना (स्वीकार कर) लिया ॥१६॥

कृशाश्वोऽर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशमजीजनत् ।
धिषणायां वेदशिरा देवलं वयुनं मनुम् ॥२०॥

कृशाश्वः अर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशं अजीजनत् धिषणायां वेद शिरः
देवलं वयुनं मनुम् ॥२०॥

कृशाश्वः	कृशाश्वने	धिषणायां	(दूसरी पत्नी)
अर्चिषि	अर्चि नामक		धिषणासे
भार्यायां	पत्नीसे	वेदशिरः देवलं	वेदशिरा देवल,
धूम्रकेशं	धूम्रकेशको	वयुनं मनुं	वयुन और मनु-
अजीजनत्	उत्पन्न किया ।		को ॥२०॥

ताक्ष्यस्य विनता क्रद्रूः पतङ्गी यामिनीति च ।
पतङ्ग्यसूत पतगान् यामिनी शलभानथ ॥२१॥

ताक्ष्यस्य विनता क्रद्रूः पतङ्गी यामिनी इति च पतङ्गी असूत
पतगान् यामिनी शलभान् अथ ॥२१॥

तार्क्ष्यस्य	तार्क्ष्य (नामवाले कश्यपजी) की	पतङ्गी पतगान्	पतंगीने पक्षियोंको
विनता कद्रूः	विनता, कद्रू	अथ यामिनी	और यामिनीने
पतङ्गी च	पतङ्गी और	शलभान् असूत	शलभों (पतंगों)को
यामिनी	यामिनी		उत्पन्न किया
इति	ये (चार पत्नियां)		॥२१॥
	थीं,		

सुपर्णासूत गरुडं साक्षाद् यज्ञेशवाहनम् ।

सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूनांगाननेकशः ॥२२॥

सुपर्णा असूत गरुडं साक्षात् यज्ञेश वाहनं सूर्यसूतं अनूरुं च कद्रूः
नागान् अनेकशः ॥२२॥

साक्षात् यज्ञेश	साक्षात् यज्ञेश भगवान् विष्णुके	सुपर्णा असूत	सुपर्णानि उत्पन्न किया
वाहनं गरुडं	वाहन गरुडको	कद्रूः अनेकशः	कद्रूने अनेकों
च सूर्यसूतं	और सूर्यके सारथी	नागान्	नाग (उत्पन्न किये) ॥२२॥
अनूरुं	अरुणको		

कृत्तिकादीनि नक्षत्राणीन्दोः पत्न्यस्तु भारत ।

दक्षशापात् सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्रहादितः ॥२३॥

कृत्तिका आदीनि नक्षत्राणि इन्दोः पत्न्यः तु भारत दक्षशापात् सः
अनपत्यः तासु यक्ष्मग्रह आदितः ॥२३॥

भारत	परीक्षित् !	यक्ष्मग्रह	यक्ष्मा रोगसे
कृत्तिका आदीनि	कृत्तिकादि	आदितः	पीड़ित होनेके कारण
नक्षत्राणि	(सत्ताइस) नक्षत्र	सः तास	वह (चन्द्र) उन पत्नियोंसे
इन्दोः पत्न्यः तु	चन्द्रमाकी पत्नियां तो हैं;	अनपत्यः	बिना सन्तानका है ॥२३॥
दक्षशापात्	दक्षके शापसे		

पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षयेदिताः ।

शृणु नामानि लोकानां मातृणां शङ्कराणि च ॥२४॥

पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षयेत् इताः शृणु नामानि लोकानां
मातृणां शङ्कराणि च ॥२४॥

तं पुनः	उन (दक्ष) को फिर	कला लेभे	कलाएँ प्राप्त कीं ।
प्रसाद्य	प्रसन्न करके	लोकानां	(अब) सब लोकोंका
सोमः	चन्द्रमाने	शङ्कराणि	मंगल करनेवाले
क्षयेत् इताः	(कृष्ण पक्षमें) क्षीण होनेपर (शुक्ल-पक्ष-में) बढ़ने वाली	मातृणां	लोक माताओंके
		नामानि च	नामोंको भी
		शृणु	सुनो ॥२४॥

अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् ।

अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्ठा सुरसा इला ॥२५॥

अथ कश्यप पत्नीनां यत् प्रसूतं इदं जगत् अदितिः दितिः दनुः काष्ठा
अरिष्ठा सुरसा इला ॥२५॥

इदं जगत्	यह (पूरा) संसार	अदितिः दितिः	अदिति, दिति,
यत् प्रसूतं	जिनसे उत्पन्न हुआ	दनुः काष्ठा	दनु, काष्ठा,
अथ कश्यप	अब कश्यपजीकी	अरिष्ठा सुरसा,	अरिष्ठा, सुरसा,
पत्नीनां	पत्नियोंका	इला	इला ॥२५॥

मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः ।

तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥२६॥

मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः तिमेः यादोगणाः
आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥२६॥

मुनिः क्रोधवशा	मुनि, क्रोधवशा,	सरमा तिमिः	सरमा और तिमि
ताम्रा सुरभिः	ताम्रा, सुरभि,	तिमेः	तिमिसे

यादोगणाः	जलचर जीव	श्वपदाः	(कुत्ते, बाघ आदि)
आसन्	हुए,		हिंसक प्राणी
सरमासुताः	सरमाकी सन्तान		हैं ॥२६॥

सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप ।

ताम्रायाः श्येनगृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ॥२७॥

सुरभेः महिषा गावः ये च अन्ये द्विशफा नृप ताम्रायाः श्येन गृध्र
आद्या मुनेः अप्सरसां गणाः ॥२७॥

नृप	राजन् !	ताम्रायाः	ताम्राकी (सन्तति)
सुरभेः	सुरभिके (सन्तान)	श्येन गृध्र आद्या	बाज, गीध आदि
महिषा गावः	भैंस, गाय		(शिकारी पक्षी)
च ये अन्ये	और जो दूसरे	मुनेः	मुनिकी (सन्तान)
द्विशफा	दो भागमें बँटे खुर वाले पशु हैं,	अप्सरसां गणाः	अप्सरारोंका समूह है ॥२७॥

दन्द शूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः ।

इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः ॥२८॥

दन्द शूक आदयः सर्पा राजन् क्रोधवशा आत्मजाः इलायाः भूरुहाः
सर्वे यातुधानाः च सौरसाः ॥२८॥

राजन्	राजन् !	इलायाः	इलाके
क्रोधवशा	क्रोधवशाके	सर्वे भूरुहाः	सब वृक्षादि
आत्मजाः	पुत्र		वनस्पति
दन्द शूक	डंसने वाले बिच्छू	च सौरसाः	और सुरसाके
सर्पा आदयः	साँप आदि,	यातुधानाः	राक्षस हुए ॥२८॥

अरिष्ठायाश्च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफेतराः ।

सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकाञ् शृणु ॥२९॥

अरिष्ठायाः च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफ इतराः सुता दनोः एक
षष्टिः तेषां प्राधानिकान् शृणु ॥२९॥

अरिष्टायाः	अरिष्टाके	दनोः सुता	दनुके पुत्र
गन्धर्वाः	गन्धर्व लोग,	एक षष्टिः	इकसठ हैं
च काष्ठाया	और काष्ठाके	तेषां	उनमें
द्विशफ इतराः	दो भागमें बँटे खुर वालोंको छोड़कर (घोड़े, गधे आदि) सब चौपाये	प्राधानिकान् शृणु	प्रधान-प्रधान (के नाम) सुनो ॥२६॥

द्विमूर्धा शम्बरोरिष्टो ह्यग्रीवो विभावसुः ।

अयोमुखः शंकुशिराः स्वर्भानुः कपिलोरुणः ॥३०॥

द्विमूर्धा, शम्बरः, अरिष्टः, ह्यग्रीवः, विभावसुः, अयोमुखः
शंकुशिराः स्वर्भानुः, कपिलः, अरुणः ॥३०॥*

पुलोमा वृषपर्वा च एकचक्रोऽनुतापनः ।

धूम्रकेशो विरूपाक्षो विप्रचित्तिश्च दुर्जयः ॥३१॥

पुलोमा, वृषपर्वा, च, एकचक्रः अनुतापनः, धूम्रकेशः विरूपाक्षः,
विप्रचित्तिः, च (और), दुर्जयः ॥३१॥*

स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यामुवाह नमुचिः किल ।

वृषपर्वणस्तु शर्मिष्ठां ययातिर्नाहुषो बली ॥३२॥

स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यां उवाह नमुचिः किल वृषपर्वणः तु शर्मिष्ठां
ययातिः नाहुषः बली ॥३२॥

स्वर्भानोः कन्यां	स्वर्भानुकी कन्या	तु वृषपर्वणः	तथा वृषपर्वाकी
सुप्रभां	सुप्रभासे		(पुत्री)
किल नमुचिः	अरे, नमुचिने	शर्मिष्ठां	शर्मिष्ठासे
उवाह	विवाह किया	बली नाहुषः	बलवान नहुषनंदन
		ययातिः	ययातिने ॥३२॥

* केवल नाम होनेके कारण इनका अन्वय, अर्थ नहीं हो सकता ।

वैश्वानरसुता याश्च चतस्रश्चारुदर्शनाः ।

उपदानवी ह्यशिरा पुलोमा कालका तथा ॥३३॥

वैश्वानर सुता याः च चतस्रः चारुदर्शनाः उपदानवी ह्यशिरा
पुलोमा कालका तथा ॥३३॥

वैश्वानर याः	(दनुके पुत्र) वैश्वा- नरकी जो	उपदानवी	उपदानवी,
चतस्रः	चार	ह्यशिरा	ह्यशिरा,
चार दर्शनाः	सुन्दरी	पुलोमा तथा	पुलोमा तथा
सुता	कन्याएँ	कालका	कालका थीं ॥३३॥

उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुर्ह्यशिरां नृप ।

पुलोमां कालकां च द्वे वैश्वानरसुते तु कः ॥३४॥

उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुः ह्यशिरां नृप पुलोमां कालकां च द्वे
वैश्वानर सुते तु कः ॥३४॥

नृप	राजन् ! (उनमें-से)	तु वैश्वानर	तथा वैश्वानरकी
उपदानवीं	उपदानवीको	द्वे सुते	दो पुत्रियों
हिरण्याक्षः	हिरण्याक्षने,	पुलोमां च	पुलोमा और
ह्यशिरां	ह्यशिराको	कालकां	कालकाको
क्रतुः	क्रतुने (विवाहा)	कः	प्रजापति ॥३४॥

उपयेमेऽथ भगवान् कश्यपो ब्रह्मचोदितः ।

पौलोमाः कालकेयाश्च दानवा युद्धशालिनः ॥३५॥

उपयेमे अथ भगवान् कश्यपः ब्रह्मचोदितः पौलोमाः कालकेयाः च
दानवा युद्धशालिनः ॥३५॥

कश्यपः अथ	कश्यपजीने फिर	युद्धशालिनः	युद्धवीर
भगवान्	समर्थ होनेसे	पौलोमाः	पौलोम
ब्रह्मचोदितः	ब्रह्माजीकी प्रेरणासे	च कालकेयाः	तथा कालकेय
उपयेमे	विवाह लिया (उनसे)	दानवा	दानव हुए ॥३५॥

तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांस्ते पितुः पिता ।

जघान स्वर्गतो राजन्नेक इन्द्रप्रियङ्करः ॥३६॥

तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नान् ते पितुः पिता जघान स्वर्गतः राजन्
एक इन्द्रप्रियङ्करः ॥३६॥

राजन्	राजन् !	ते पितुः पिता	तुम्हारे पितामह
तयोः यज्ञघ्नान्	उनमें यज्ञ नाशक		(अर्जुन) ने
षष्टिसहस्राणि	साठ हजार (निवात-	स्वर्गतः	स्वर्ग जाकर
	कवच नामक	एक जघान	अकेली ही मार
	दानवों) को		दिया ॥३६॥
इन्द्रप्रियङ्करः	इन्द्रको प्रसन्न करने-		
	के लिए		

विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं चैकमजीजनत् ।

राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं य उपागतः ॥३७॥

विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं च एकं अजीजनत् राहुज्येष्ठं केतुशतं
ग्रहत्वं यः उपागतः ॥३७॥

सिंहिकायां	सिंहिका (पत्नी) से	यः ग्रहत्वं	जो ग्रहोंके
विप्रचित्तिः	विप्रचित्तिने	उपागतः	समक्ष हो गया
शतं च एकं	एक सौ एक (पुत्र)	केतुशतं	(शेष) सौ केतु
अजीजनत्	उत्पन्न किये ।		हुए ॥३७॥
राहुज्येष्ठं	उनमें राहु सबसे		
	बड़ा था		

अथातः श्रूयतां वंशो योऽदितेरनुपूर्वशः ।

यत्र नारायणो देवः स्वांशेनावतरद् विभुः ॥३८॥

अथ अतः श्रूयतां वंशः यः अदितेः अनुपूर्वशः यत्र नारायणः देवः स्व
अंशेन आवतरत् विभुः ॥३८॥

अथ	अब	अतः	अतः
यत्र	जिस (वंश) में	यः अदितेः वंशः	जो आदितिका
नारायणः देवः	भगवान् नारायणने		वंश है
विभुः	सर्वव्यापक (होने- पर भी) वे	अनुपूर्वशः	क्रमानुसार (उसको)
स्व अंशेन	अपने अंश से	श्रूयतां	सुनो ॥३८॥
अवतरत्	अवतार लिया		

विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाथ सविता भगः ।

धाता विधाता वरुणो मित्रः शक उरुक्रमः ॥३९॥

विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, अथ सविता, भगः, धाता, विधाता, वरुणः, मित्रः, शक, उरुक्रमः (वामन) (यही बारह आदित्य कहलाये) ॥३९॥*

विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञासूयत वै मनुस् ।

मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा ।

सैव भूत्वाथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥४०॥

विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञा असूयत वै मनुं मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा स एव भूत्वा अथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥४०॥

विवस्वतः	विवस्वानसे (उनकी पत्नी)	यमं देवं तथा यमीं	देव यमराज तथा यमुनाको
महाभागा संज्ञा	महाभागा संज्ञाने	असूयत	उत्पन्न किया
वै श्राद्धदेवं मनुं	अहो श्राद्धदेव (वैव-स्वत) मनु	अथ	फिर
च मिथुनं	तथा एक जोड़े (युग्मज)	स एव भुवि वडवा भूत्वा नासत्यौ	उसने ही पृथ्वीपर घोड़ी बनकर अश्विनी कुमारोंको जन्म दिया ॥४०॥
		सुषुवे	

छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णि च मनुं ततः ।

कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥४१॥

* सब संज्ञा (नाम) हैं ।

छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णि च मनुं ततः कन्यां च तपतीं या वै वव्रे
संवरणं पतिम् ॥४१॥

छाया	(संज्ञाकी ही)	लेभे	पाया (पैदा किया)
	छायाने	या	जिस (कन्या)ने
ततः शनैश्चरं	फिर शनैश्चरको,	संवरणं	संवरणको
सावर्णि मनुं	और सावर्णि मनुको	पतिं वव्रे	पति रूपमें वरण
च तपतीं	तपती (नामकी)		किया ॥४१॥
कन्यां वै	कन्याको भी		

अर्यम्णो मातृका पत्नी तयोश्चर्षणयः सुताः ।

यत्र वै मानुषी जातिर्ब्रह्मणा चोपकल्पिता ॥४२॥

अर्यम्णः मातृका पत्नी तयोः चर्षणयः सुताः यत्र वै मानुषी जातिः
ब्रह्मणा च उपकल्पिता ॥४२॥

अर्यम्णः	अर्यमाकी	वै यत्र	निश्चय जिनके
मातृका पत्नी	पत्नी मातृका थी,		(आधार पर)
तयोः सुताः	उसके पुत्र	ब्रह्मणा च	ब्रह्माजीने भी
चर्षणयः	चर्षणी हुए,	मानुषी जातिः	मनुष्य जातिकी
		उपकल्पिता	कल्पना की ॥४२॥

पूषानपत्यः पिष्टादो भग्नदन्तोऽभवत् पुरा ।

योऽसौ दक्षाय कुपितं जहास विवृतद्विजः ॥४३॥

पूषा अनपत्यः पिष्टादः भग्नदन्तः अभवत् पुरा यः असौ दक्षाय
कुपितं जहास विवृत द्विजः ॥४३॥

पूषा अनपत्यः	पूषा सन्तानहीन हैं	यः असौ	जिन्होंने
पिष्टादः	पिसा भोजन खाने- वाले हैं, क्योंकि	दक्षाय कुपितं	दक्षपर (शिवके) क्रोध करनेपर
पुरा	पहिले ही	विवृत द्विजः	दांत खोलकर
भग्नदन्तः	टूटे दांतवाले	जहास	हंसे थे ॥४३॥
अभवत्	हो गये,		

त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्या रचना नाम कन्यका ।

संनिवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान् ॥४४॥

त्वष्टुः दैत्य अनुजा भार्या रचना नाम कन्यका संनिवेशः तयोः जज्ञे
विश्वरूपः च वीर्यवान् ॥४४॥

दैत्य अनुजा	दैत्योंकी छोटी बहिन	तयोः संनिवेशः	उससे संनिवेश च वीर्यवान् और तेजस्वी
कन्यका रचना	कुमारी रचना	विश्वरूपः	विश्वरूप
नाम	नामकी	जज्ञे	उत्पन्न हुए ॥४४॥
त्वष्टुः भार्या	त्वष्टाकी पत्नी थी		

तं वन्नरे सुरगणा स्वस्त्रीयं द्विषतामपि ।

विमतेन परित्यक्ता गुरुणाऽऽङ्गिरसेन यत् ॥४५॥

तं वन्नरे सुरगणाः स्वस्त्रीयं द्विषतां अपि विमतेन परित्यक्ता गुरुणा
आङ्गिरसेन यत् ॥४५॥

द्विषतां	शत्रुओंके	परित्यक्ता	त्याग दिये जानेपर
स्वस्त्रीयं अपि	भानजे होनेपर भी	सुरगुणाः	देवताओंने
विमतेन	अपमानित होनेसे	तं	उन (विश्वरूप)को
गुरुणा	अपने गुरु	वन्नरे	(पुरोहित रूपमें)
आङ्गिरसेन	आङ्गिरानन्दन (बृहस्पति) द्वारा		वरण किया ॥४५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां

षष्ठस्कन्धे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

शजोवाच-

कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः ।

एतदाचक्ष्वभगवज्छिष्याणामक्रमं गुरौ ॥१॥

कस्य हेतोः परित्यक्ताः आचार्येण आत्मनः सुराः एतत् आचक्ष्व
भगवन् शिष्याणां अक्रमं गुरौ ॥१॥

भगवन्	भगवन् !	शिष्याणां	शिष्योंका
आचार्येण	आचार्य द्वारा	एतत्	यह
कस्य हेतोः	किस कारणसे	गुरौ अक्रमं	गुरुका अतिक्रमण
आत्मनः	अपने (शिष्य)	आचक्ष्व	बतलाइये ॥१॥
सुराः	देवता		
परित्यक्ताः	त्यागे गये,		

श्रीशुक उवाच-

इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लङ्घितसत्पथः ।

मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैः ऋभुभिर्नृप ॥२॥

इन्द्रः त्रिभुवन ऐश्वर्य मद उल्लङ्घित सत्पथः मरुद्भिः वसुभी रुद्रैः
आदित्यैः ऋभुभिः नृप ॥२॥

नृप	राजन् !	मरुद्भिः वसुभी (एक दिन) मरुद्-
त्रिभुवन ऐश्वर्यं	त्रिलोकीका ऐश्वर्यं	गणों, वसुओं
	पानेके	रुद्रैः आदित्यैः रुद्रों, आदित्यों,
मद	घमण्डसे	ऋभुभिः ऋभुगणों ॥२॥
इन्द्रः सत्पथः	इन्द्र सदाचारका	
उल्लङ्घित	उल्लंघन करने	
	लगे थे,	

विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः ।

सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥३॥

विश्वेदेवैः च साध्यैः च नासत्याभ्यां परिश्रितः सिद्ध चारण गन्धर्वैः
मुनिभिः ब्रह्मवादिभिः ॥३॥

विश्वेदेवैः	विश्वेदेवगण,	सिद्ध चारण	सिद्धों, चारणों
च साध्यैः	और साध्यगण	गन्धर्वैः	गन्धर्वों,
च नासत्याभ्यां	तथा अश्विनी-	ब्रह्मवादिभिः	वेदज्ञ
	कुमारोंसे	मुनिभिः	मुनियोंसे ॥३॥
परिश्रितः	चारों ओरसे घिरे,		

विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतंगोरगैः ।

निषेव्यमाणो मघवान् स्तूयमानश्च भारत ॥४॥

विद्याधर अप्सरोभिः च किन्नरैः पतंग उरगैः निषेव्यमाणः मघवान्
स्तूयमानः च भारत ॥४॥

भारत	परीक्षित !	पतंग	पक्षियों,
विद्याधर	विद्याधरों,	उरगैः	सर्पों द्वारा
अप्सरोभिः	अप्सराओं द्वारा	निषेव्यमाणः	सेवित होते
स्तूयमानः	स्तुति किये जाते	मघवान्	इन्द्रका ॥४॥
च किन्नरैः	तथा किन्नरों,		

उपगीयमानो ललितमास्थानाध्यासनाश्रितः ।

पाण्डुरेणातपत्रेण चन्द्रमण्डलचारुणा ॥५॥

उपगीयमानः ललितं आस्थान अधि आसन आश्रितः पाण्डुरेण
आतपत्रेण चन्द्रमण्डल चारुणा ॥५॥

ललितं	ललित स्वरसे	आस्थानं	स्वर्गके
उपगीयमानः	यशोगान हो रहा	अधि आसनं	सिंहासनपर
	था,	आश्रितः	बैठे हुए

चन्द्रमण्डल	चन्द्रमण्डलके समान	पाण्डुरेण	श्वेत
चारुणा	सुन्दर	आतपत्रेण	छत्रसे ॥५॥

युक्तश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः ।

विराजमानः पौलोम्या सहार्धासनया भृशम् ॥६॥

युक्तः च अन्यैः पारमेष्ठ्यैः चामर व्यजन आदिभिः विराजमानः
पौलोम्या सह अर्ध आसनया भृशम् ॥६॥

च अन्यै	तथा दूसरे	अर्ध आसनया	आधे आसनपर
पारमेष्ठ्यैः	महाराजोचित		बैठने वाली
चामर व्यजन	चँवर, पँखे	भृशं पौलोम्या	बराबर शचीके
आदिभिः युक्तः	आदिसे युक्त	सह	साथ
		विराजमानः	सुशोभित ॥६॥

स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह ।

नाभ्यनन्दत संप्राप्तं प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥७॥

स यदा परम आचार्यं देवानां आत्मनः च ह न अभ्यनन्दत संप्राप्तं
प्रत्युत्थान आसन आदिभिः ॥७॥

स	उन (इन्द्र) ने	प्रत्युत्थान	उठकर खड़े होने,
यदा देवानां	जब देवताओंके	आसन	आसन
आत्मनः ह	तथा अपने भी	आदिभिः	आदि देनेके द्वारा
परम आचार्यं	परमाचार्य	अभ्यनन्दत न	स्वागत नहीं
	(बृहस्पति) का		किया ॥७॥
सम्प्रात	वहाँ आनेपर		

वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ।

नोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥८॥

वाचस्पतिं मुनिवरं सुर आसुर नमस्कृतं न उच्चचाल आसनात् इन्द्रः
पश्यन् अपि सभा आगतम् ॥८॥

मुनिवरं	मुनिश्रेष्ठ	पश्यन् अपि	देखकर भी
सुर असुर	देव, असुर सबको	इन्द्रः	इन्द्र
नमस्कृतं	नमस्कृत	आसनात्	अपने सिंहासनसे
वाचस्पतिं	वृहस्पतिजीको	न उच्चचाल	नहीं उठे ॥८॥
सभा आगतं	सभामें आया		

ततो निर्गत्य सहसा कविराङ्गिरसः प्रभुः ।

आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वान् श्रीमदविक्रियाम् ॥९॥

ततः निर्गत्य सहसा कविः आङ्गिरसः प्रभुः आययौ स्वगृहं तूष्णीं
विद्वान् श्रीमद विक्रियाम् ॥९॥

कविः प्रभुः	विद्वान्, समर्थ	तूष्णीं ततः	चुपचाप वहांसे
आङ्गिरसः	अंगिरा-नन्दन	निर्गत्य	निकलकर
श्रीमद् विक्रियां	ऐश्वर्य मदका दोष	स्वगृहं आययौ	अपने घर आ
विद्वान्	जानकर		गये ॥९॥
सहसा	अचानक		

तर्ह्येव प्रतिबुद्ध्येन्द्रो गुरुहेलनमात्मनः ।

गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥१०॥

तर्हि एव प्रतिबुद्ध्य इन्द्रः गुरु हेलनं आत्मनः गर्हयामास सदसि
स्वयं आत्मानं आत्मना ॥१०॥

तर्हि एव	उसी समय	स्वयं आत्मना	स्वयं अपने द्वारा
आत्मनः	अपने द्वारा	आत्मानं	अपनी
गुरु हेलनं	गुरुकी अवहेलनासे	गर्हयामास	निन्दा करने
प्रतिबुद्ध्य	सावधान होकर		लगे ॥१०॥
सदसि	सभामें		

अहो बत ममासाधु कृतं वै दभ्रबुद्धिना ।

यन्मर्यैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ॥११॥

अहो बत मम असाधु कृतं वै दभ्र बुद्धिना यत् मया ऐश्वर्यमत्तेन
गुरुः सदसि कात् कृतः ॥११॥

अहो बत	अहो, बड़े खेदकी बात है	यत् मया	जो मुझ
दभ्रबुद्धिना	हीन बुद्धिवाले (मैंने)	ऐश्वर्यमत्तेन	ऐश्वर्यसे मतवालेने
वै मम	निश्चय अपना ही	सदसि	सभामें
असाधु कृतं	अहित कर लिया,	गुरुः कात् कृतः	गुरुका अपमान किया ॥११॥

को गृध्येत् पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि ।

ययाहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥१२॥

कः गृध्येत् पण्डितः लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेः अपि यया अहं आसुरं भावं नीतः अद्य विबुध ईश्वरः ॥१२॥

कः पण्डितः	कौन विवेकवान्	विबुध ईश्वरः	देवराज भी
त्रिविष्टपपतेः	स्वर्गाधिपकी	आसुरं भावं	असुर भाव
अपि	भी		(रजोगुण) में
लक्ष्मीं गृध्येत्	सम्पत्तिको चाहेगा,	नीतः	पहुँचा दिया
अद्य यया	आज जिसके द्वारा		गया ॥१२॥
अहं	मैं		

ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन् न कञ्चन ।

प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्म ते न परं विदुः ॥१३॥

ये पारमेष्ठ्यं धिषणं अधितिष्ठन् न कञ्चन प्रति उत्तेष्ठेत् इति ब्रूयुः धर्म ते न परं विदुः ॥१३॥

पारमेष्ठ्यं धिषणं सार्वभौम राज	सिंहासनपर	न उत्तेष्ठेत्	देनेके लिए न उठे
अधितिष्ठन्	बैठा हुआ (सम्राट्)	ये इति ब्रूयुः	जो ऐसा कहते हैं,
कञ्चन	किसीके लिए भी	ते परं धर्म	वे श्रेष्ठ धर्म
प्रति	आदर	न विदुः	नहीं जानते ॥१३॥

तेषां कुपथदेष्टृणां पततां तमसि ह्यधः ।

ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जनत्यश्मप्लवा इव ॥१४॥

तेषां कुपथदेष्टृणां पततां तमसि हि अधः ये श्रद्धुः वचः ते वै
मञ्जन्ति अश्मप्लवा इव ॥१४॥

अधः तमसि	नीचे नरकमें	श्रद्धुः	श्रद्धा कर लेते हैं
पततां	गिरते हुए	वै ते	निश्चय वे
हि तेषां	क्योंकि उन	अश्मप्लवा इव	पत्थरकी नौकाके
कुपथदेष्टृणां	कुमार्ग बतलाने		समान
	वालोंकी	मञ्जन्ति	डूब जाते हैं ॥१४॥
वचः ये	बातपर जो		

अथाहममराचार्यमगाधधिषणं द्विजम् ।

प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णां तच्चरणं स्पृशन् ॥१५॥

अथ अहं अमर आचार्य अगाधधिषणं द्विजं प्रसादयिष्ये निशठः
शीर्ष्णां तत् चरणं स्पृशन् ॥१५॥

अथ अहं	अब मैं	द्विजं	विप्रवर (बृहस्पति-
निशठः	बहुत शठता करने-		जी) को
	वाला	शीर्ष्णां	सिरसे
अमर आचार्य	देवगुरु	तत् चरणं	उनके चरणोंको
अगाधधिषणं	अथाह बुद्धि	स्पृशन्	स्पर्श करके
		प्रसादयिष्ये	प्रसन्न करूँगा ॥१५॥

एवं चिन्तयतस्तस्य मघोनो भगवान् गृहात् ।

बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥१६॥

एवं चिन्तयतः तस्य मघोनः भगवान् गृहात् बृहस्पतिः गतः अदृष्टां
गतिं अध्यात्म मायया ॥१६॥

तस्य मघोनः	उन इन्द्रके	अध्यात्म मायया	अपनी योग-शक्तिसे
एवं चिन्तयतः	ऐसा सोचते समय	अदृष्टां	अन्तर्धान
	ही	गतिं गतः	हो गये ॥१६॥
भगवान्	समर्थ		
बृहस्पतिः	बृहस्पतिजी		

गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन् भगवान् स्वराट् ।

ध्यायन् धिया सुरैयुक्तः शर्म नालभतात्मनः ॥१७॥

गुरोः न अधिगतः संज्ञां परीक्षन् भगवान् स्वराट् ध्यायन् धिया सुरैः
युक्तः शर्म न अलभत आत्मनः ॥१७॥

भगवान् स्वराट् समर्थ इन्द्रने	सुरैः युक्तः	देवताओंके साथ
परीक्षन् चारों ओर ढुंढवाने	धिया ध्यायन्	(अपनी) बुद्धिसे
पर भी		सोचते हुए
गुरोः संज्ञां गुरुका पता	आत्मनः शर्म	चित्तमें शान्ति
न अधिगतः न पाकर	न अलभत	नहीं पा सके ॥१७॥

तच्छ्रुत्वैवासुराः सर्व आश्रित्यौशनसं मतम् ।

देवान् प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ॥१८॥

तत् श्रुत्वा एव असुराः सर्व आश्रित्य औशनसं मतं देवान् प्रति
उद्यमं चक्रुः दुर्मदा आततायिनः ॥१८॥

तत् (देवताओंकी) इस	औशनसं मतं	शुक्राचार्यकी
दशाको		सलाहको
श्रुत्वा एव सुनकर ही	आश्रित्य	मानकर
दुर्मदा मदोन्मत	देवान् प्रति	देवताओंके विरुद्ध
आततायिनः आततायी	उद्यमं चक्रुः	उद्योग प्रारम्भ कर
सर्व असुराः सब असुरोंने		दिया ॥१८॥

तैविसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निभिन्नाङ्गोरुबाहवः ।

ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहेन्द्रा नतकन्धराः ॥१९॥

तैः विसृष्टैः इषुभिः तीक्ष्णैः निभिन्न अङ्ग उरु बाहवः ब्रह्माणं
शरणं जग्मुः सह इन्द्रा नतकन्धराः ॥१९॥

तैः विसृष्टैः	उन (असुरों) के द्वारा छोड़े	सह इन्द्रा	इन्द्रके साथ
तीक्ष्णैः इषुभिः	तीक्ष्ण बाणोंसे	नतकन्धराः	कन्धे (सिर) झुकाये
निभिन्न अङ्ग	कटे-फटे शरीर,	ब्रह्माणं	ब्रह्माजीकी शरणमें
उरु बाहवः	जांघें, भुजा वाले (देवता)	जग्मुः	गये ॥१६॥

तांस्तथाभ्यर्दितान् वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः ।

कृपया परया देव उवाच परिसान्त्वयन् ॥२०॥

तान् तथा अभ्यर्दितान् वीक्ष्य भगवान् आत्मभूः अजः कृपया परया
देवः उवाच परिसान्त्वयन् ॥२०॥

तान् तथा	उन (देवताओं) को	भगवान्	भगवान्
	उस प्रकार	आत्मभूः	स्वयम्भू
अभ्यर्दितान्	रींदा हुआ	अजः देवः	अजन्मा देव
वीक्ष्य	देखकर	परिसान्त्वयन्	सान्त्वना देते हुए
परया कृपया	परम कृपासे	उवाच	बोले ॥२०॥

ब्रह्मोवाच-

अहो बत सुरश्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् ।

ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनन्दत ॥२१॥

अहो बत सुरश्रेष्ठा हि अभद्रं वः कृतं महत् ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तं
ऐश्वर्यात् न अभ्यनन्दत ॥२१॥

सुरश्रेष्ठा	देवनायको !	ऐश्वर्यात्	ऐश्वर्यशाली होनेके
अहो बत	अरे बड़े खेदकी		कारण
	बात है	ब्रह्मिष्ठं दान्तं	ब्रह्मज्ञानी, जितेन्द्रिय
हि	क्योंकि	ब्राह्मणं	ब्राह्मणका
वः महत्	तुम लोगोंने बहुत	अभ्यनन्दत न	सत्कार नहीं
अभद्रं	बुरा काम		किया ॥२१॥
कृतं	किया है		

तस्यायमनयस्यासीत् परेभ्यो वः पराभवः ।

प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत् सुराः ॥२२॥

तस्य अयं अनयस्य आसीत् परेभ्यः वः पराभवः प्रक्षीणेभ्यः
स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत् सुराः ॥२२॥

सुराः	देवताओ,	प्रक्षीणेभ्यः	बहुत दुर्बल होनेपर
तस्य अनयस्य	उसी अन्यायका	वः समृद्धानां च	तुम सम्पन्नोंकी
	(फल)	स्ववैरिभ्यः	अपने शत्रुओंसे
आसीत्	है कि	यत् अयं	जो यह
परेभ्यः	शत्रुओंके	पराभवः	पराजय हुई ॥२२॥

मघवन् द्विषतः पश्य प्रक्षीणान् गुर्वतिक्रमात् ।

सम्प्रत्युपचितान् भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः ।

आददीरन् निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥२३॥

मघवन् द्विषतः पश्य प्रक्षीणान् गुरुः अतिक्रमात् सं प्रति उपचितान्
भूयः काव्यं आराध्य भक्तितः आददीरन् निलयनं मम अपि भृगु
देवताः ॥२३॥

मघवन्	इन्द्र,	उपचितान्	सम्पन्न हो गये ।
द्विषतः पश्य	(अपने) शत्रुओंको	भृगु देवताः	शुक्राचार्यको
	देखो,		आराध्य माननेवाले
गुरुः अतिक्रमात्	गुरुका तिरस्कार	काव्यं आराध्य	शुक्राचार्यकी
	करके		आराधना करके
प्रक्षीणान्	दुर्बल हो गये थे,	मम निलयनं	मेरा लोक
भूयः सं प्रति	फिर उन (गुरु) के	अपि	भी
	प्रति	आददीरन्	छीन ले सकते
भक्तितः	भक्ति-भाव होनेसे		हैं ॥२३॥

त्रिविष्टपं किं गणयन्त्यभेद्य-

मन्त्रा

भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ।

न विप्रगोविन्दगवीश्वराणां

भवन्त्यभद्राणि

नरेश्वराणाम् ॥२४॥

त्रिविष्टपं किं गणयन्ति अभेद्य मन्त्रा भृगूणां अनुशिक्षित अर्थाः न
विप्र गोविन्द गौ ईश्वराणां भवन्ति अभद्राणि नरेश्वराणां ॥२४॥

अभेद्य मन्त्राः	इनकी मन्त्रणा फूटती नहीं,	विप्र गोविन्द	ब्राह्मण, गोविन्द और
भृगूणां	भृगुवंशियों द्वारा	गौ ईश्वराणां	गौको आराध्य
अर्थाः	अर्थशास्त्रकी		माननेवाले
अनुशिक्षित	इन्हें शिक्षा दी गयी है,	नरेश्वराणां	राजाओंका
त्रिविष्टपं	स्वर्गको (ये)	अभद्राणि	अमंगल
किं गणयन्ति	क्या गिनते हैं ।	न भवन्ति	नहीं होता ॥२४॥

तद् विश्वरूपं भजताशु विप्रं

तपस्विनं

त्वाष्ट्रमथात्मवन्तम् ।

सभाजितोऽर्थान् स विधास्यते वो

यदि

क्षमिष्यध्वमुतास्य

कर्म ॥२५॥

तत् विश्वरूपं भजत आशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रं अथ आत्मवन्तं
सभाजितः अर्थान् स विधास्यते वः यदि क्षमिष्यध्वं उत अस्य कर्म ॥२५॥

तत् त्वाष्ट्रं	अतः त्वष्टाके पुत्र	कर्म क्षमिष्यध्वं	कर्मको क्षमाकर
तपस्विनं विप्रं	तपस्वी ब्राह्मण		दोगे तो
आत्मवन्तं	संयमी	सभाजितः	सम्मानित होनेपर
विश्वरूपं	विश्वरूपकी	वः अर्थान्	तुम्हारे प्रयोजनोंको
आशु भजत	शीघ्र सेवा करो,	स विधास्यते	वे पूरा करेंगे ॥२५॥
यदि उत अस्य	यदि तो इनके		

श्रीशुक उवाच-

त एवमुदिता राजन् ब्रह्मणा विगतज्वराः ।

ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥२६॥

त एवं उदिता राजन् ब्रह्मणा विगतज्वराः ऋषिं त्वाष्ट्रं उपव्रज्य परिष्वज्य इदं अब्रुवन् ॥२६॥

राजन्	राजन् !	त्वाष्ट्रं ऋषिं	त्वष्टानन्दन ऋषि
एवं ब्रह्मणा	इस प्रकार ब्रह्माजी		(विश्वरूप) के
	के	उपव्रज्य	पास जाकर
उदिता	कहनेपर	परिष्वज्य	(उनका) आलिंगन
त विगतज्वराः	वे चिन्ता रहित		करके
	हो गये ।	इदं अब्रुवन्	यह बोले ॥२६॥

देवा ऊचुः-

वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते ।

कामः सम्पाद्यतां तात पितॄणां समयोचितः ॥२७॥

वयं ते अतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रं अस्तु ते कामः सम्पाद्यतां तात पितॄणां समय उचितः ॥२७॥

तात	तात !	पितॄणां	(हम) पितरोंकी
वयं ते अतिथयः	हम तुम्हारे अतिथि	समय उचितः	समयके अनुसार
ते आश्रमं प्राप्ता	तुम्हारे आश्रमपर		उचित
	आये हैं ।	कामः सम्पाद्यतां	इच्छा पूरी
भद्रं अस्तु	(तुम्हारा) कल्याण		करो ॥२७॥
	हो,		

पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् ।

अपि पुत्रवतां ब्रह्मन् किमुत ब्रह्मचारिणाम् ॥२८॥

पुत्राणां हि परः धर्मः पितृ शुश्रूषणं सतां अपि पुत्रवतां ब्रह्मन् किं
उत ब्रह्मचारिणाम् ॥२८॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	पुत्रवतां अपि	पुत्रवानोंके लिये
हि	क्योंकि		भी है,
पुत्राणां परः	पुत्रोंका परम	ब्रह्मचारिणां	ब्रह्मचारियोंके लिए
धर्मः	धर्म	किं उत	फिर कहना ही
पितृ शुश्रूषणं	माता-पिताकी सेवा		क्या ॥२८॥
सतां	सञ्जन		

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।

भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिमता साक्षात् क्षितेस्तनुः ॥२९॥

आचार्यः ब्रह्मणः मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः भ्राता मरुत्पतेः मूर्तिः
माता साक्षात् क्षितेः तनुः ॥२९॥

आचार्यः	आचार्य	भ्राता मरुत्पतेः	भाई इन्द्रके
ब्रह्मणः मूर्तिः	वेदके स्वरूप,	मूर्तिः	स्वरूप,
पिता प्रजापतेः	पिता प्रजापति	माता साक्षात्	माता साक्षात्
	ब्रह्माके	क्षितेः तनुः	पृथ्वी रूपा ही
मूर्तिः	स्वरूप		हैं ॥२९॥

दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्मातिथिः स्वयम् ।

अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥३०॥

दयाया भगिनी मूर्तिः धर्मस्य आत्मा अतिथिः स्वयं अग्नेः अभ्यागतः
मूर्तिः सर्वभूतानि च आत्मनः ॥३०॥

भगिनी	बहिन	अग्नेः	अग्निकी (मूर्ति)
दयाया मूर्तिः	दयाकी मूर्ति,	च सर्वभूतानि	और सब प्राणी
अतिथिः	अतिथि	स्वयं आत्मनः	स्वयं अपने आत्माके
धर्मस्य आत्मा	धर्मका स्वरूप,	मूर्तिः	स्वरूप हैं ॥३०॥
अभ्यागतः	अभ्यागत		

तस्मात् पितृणामार्तानामार्ति परपराभवम् ।

तपसापनयंस्तात सन्देशं कर्तुमर्हसि ॥३१॥

तस्मात् पितृणां आर्तानां आर्ति परपराभवं तपसा अपनयन् तात सन्देशं कर्तुं अर्हसि ॥३१॥

तस्मात् आर्तानां	इसलिए (हम)	अपनयन्	दूर करके
	दुःखी	तात सन्देशं	तात (तुम्हें हमारी)
पितृणां	पितरोंका		आज्ञा
परपराभवं	शत्रुओंसे पराजय	कर्तुं अर्हसि	पालन करना
	रूप		चाहिए ॥३१॥
आर्ति तपसा	दुःख (अपनी)		
	तपस्यासे		

वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् ।

यथाञ्जसा विजेष्यामः सपत्नान्स्तव तेजसा ॥३२॥

वृणीमहे तु उपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुं यथा अञ्जसा विजेष्यामः सपत्नान् तव तेजसा ॥३२॥

ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं	ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण	यथा तव तेजसा	जैसे तुम्हारे तेजसे
	होनेसे	अञ्जसा	सरलतासे
गुरुं	(तुम) श्रेष्ठ हो	सपत्नान्	शत्रुओंको
उपाध्यायं तु	(तुमको हम)	विजेष्यामः	(हम) जीत
	उपाध्याय (पुरोहित)		लेंगे ॥३२॥
वृणीमहे	वरण करते हैं		

न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाङ्घ्रिचभिवादनम् ।

छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन् वयो ज्येष्ठ्यस्य कारणम् ॥३३॥

न गर्हयन्ति हि अर्थेषु यविष्ठ अङ्घ्रि अभिवादनं छन्दोभ्यः अन्यत्र न ब्रह्मन् वयः ज्येष्ठ्यस्य कारणम् ॥३३॥

हि	क्योंकि	ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !
अर्थेषु	प्रयोजन होनेपर	छन्दोभ्यः	वैदिक-ज्ञानको
यविष्ठ अङ्घ्रि	छोटेके चरणोंमें	अन्यत्र	छोड़कर
अभिवादनं	प्रणाम करना	वयः ज्यैष्ठ्यस्य	अवस्था बड़े होनेका
गर्हयन्ति न	निन्दित नहीं माना	कारणं न	कारण नहीं है ॥३३॥
	जाता और		

श्रीशुक उवाच—*

अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः ।

स विश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥३४॥

अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महामपाः स विश्वरूपः तान् आह
प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा ॥३४॥

सुरगणैः	देवताओं द्वारा	विश्वरूपः	विश्वरूप
पौरोहित्ये	पुरोहित बननेके लिये	प्रसन्नः	प्रसन्न होकर
अभ्यर्थितः	प्रार्थना करनेपर	श्लक्ष्णया गिरा	प्रिय वाणीसे
महामपा	उदार चित्त	तान् आह	उनसे बोले ॥३४॥

विश्वरूप उवाच—

विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्च उपव्ययम् ।

कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम् ।

प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥३५॥

विगर्हितं धर्मशीलैः ब्रह्मवर्च उपव्ययं कथं नु मद्विधः नाथा लोकेशः
अभियाचितं प्रत्याख्यास्यति तत् शिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥३५॥

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'ऋषिरुवाच' है ।

धर्मशीलैः	धर्मशील लोगों द्वारा	अभियाचितं	प्रार्थना किये जानेपर
ब्रह्मवर्च	ब्रह्मतेजको	तत् शिष्यः	उनका सेवक
उपव्ययं	क्षीण करनेवाले	कथं नु	कैसे भला
	(पौरोहित्यकी)	प्रत्याख्यास्यति	मनाकर सकेगा,
विगर्हितं	निन्दा की गयी हैं;	स एव	वही (आपकी
	किन्तु		आज्ञाका पालन)
यत् विधः	मेरे समानके	स्वार्थं उच्यते	(मेरा) स्वार्थ कहा
नाथा	स्वामियों		गया है ॥३५॥
लोकेशैः	लोकपालों द्वारा		

अकिञ्चनानां हि धनं शिलोज्छनं

तेनेह

निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः ।

कथं विगर्ह्य नु करोम्यधीश्वराः

पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥३६॥

अकिञ्चनानां हि धनं शिल उज्छनं तेन एह निर्वर्तित साधु
सत् क्रियः कथं विगर्ह्य नु करोमि अधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन
दुर्मतिः ॥३६॥

अधीश्वराः	लोकपालो !	निर्वर्तित	सम्पन्न हो जाते हैं
अकिञ्चनानां	हम अकिञ्चनोंका		फिर
धनं	धन	विगर्ह्य	निन्दित
शिल उज्छनं	खेत या बाजारमें	पौरोधसं	पौरोहित्य
	गिरे दाने हैं,	नु कथं करोमि	भला कैसे करूँ
तेन एह साधु	उससे ही भली	येन दुर्मतिः	जिससे दुर्बुद्धि
	प्रकार	हृष्यति	बढ़ती है ॥३६॥
सत् क्रियः	आवश्यक कार्य		

तथापि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् ।

भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥३७॥

तथा अपि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैः अर्थैः च साधये ॥३७॥

तथा अपि	ऐसा होनेपर भी	भवतां सर्वं	आप लोगोंकी सब
न प्रतिब्रूयां	अस्वीकार नहीं	प्रार्थितं	मांग
	करूँगा	प्राणैः च अर्थैः	प्राण और धन
गुरुभिः	पूजनीयों द्वारा		(तपः शक्ति) से
प्रार्थितं कियत्	मांगा ही कितना	साधये	सम्पन्न करूँगा ॥३७॥
	गया है,		

श्रीशुक उवाच—

तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः ।

पौरोहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ॥३८॥

तेभ्यः एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपः महातपाः पौरोहित्यं वृतः चक्रे परमेण समाधिना ॥३८॥

तेभ्यः	उन (देवताओं) से	पौरोहित्यं वृतः	पुरोहित-पदपर
एवं प्रतिश्रुत्य	ऐसी प्रतिज्ञा करके		वरण होकर
महातपाः	महातपस्वी	परमेण	अत्यन्त
विश्वरूपः	विश्वरूप	समाधिना	एकाग्रता पूर्वक
		चक्रे	उसे करने लगे ॥३८॥

सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनस्यापि विद्यया ।

आच्छिद्यादान्महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥३९॥

सुरद्विषां श्रियं गुप्तां औशनस्य अपि विद्यया आच्छिद्य अदान् महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥३९॥

औशनस्य	शुक्राचार्यकी	गुप्तां	रक्षित
विद्यया अपि	विद्यासे भी	सुरद्विषां श्रियं	देव द्वेषियोंकी लक्ष्मी

विभुः	समर्थ (विश्वरूप) ने	आच्छिद्य	(शुक्राचार्यकी विद्या)
वैष्णव्या	वैष्णवी		काटकर
विद्यया	विद्यासे	महेन्द्राय	इन्द्रको
		अदान्	दे दी ॥३६॥

यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूविभुः ।

तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ॥४०॥

यया गुप्तः सहस्राक्षः जिग्ये असुर चमूः विभुः तां प्राह स महेन्द्राय
विश्वरूपः उदारधीः ॥४०॥

यया गुप्तः	जिससे रक्षित होकर	उदारधीः	उदार बुद्धि
विभुः सहस्राक्षः	समर्थ देवराजने	विश्वरूपः	विश्वरूपने
असुर चमूः	असुर-सेनाको	तां महेन्द्राय	वह (विद्या) इन्द्रको
जिग्ये	जीत लिया	प्राह	बतलायी ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां

षष्ठस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथ अष्टमोऽध्यायः

राजोवाच—

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ।

क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥१॥

यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् क्रीडन् इव विनिर्जित्य
त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥१॥

सहस्राक्षः	महेन्द्रने	क्रीडन् इव	खेलते हुएसे
यया गुप्तः	जिससे रक्षित होकर	विनिर्जित्य	जीतकर
सवाहान्	वाहनोंके साथ	त्रिलोक्या श्रियं	त्रिभुवनकी लक्ष्मीका
रिपुसैनिकान्	शत्रु सैनिकोंको	बुभुजे	उपभोग किया ॥१॥

भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ।

यथाऽऽततायिनः शत्रून् येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥२॥

भगवन् तत् मम आख्याहि वर्म नारायण आत्मकं यथा आततायिनः
शत्रून् येन गुप्तः अजयत् मृधे ॥२॥

भगवन्	भगवन् !	अजयत्	(इन्द्रने) जीता
येन गुप्तः	जिससे रक्षित होकर		(वह और)
आततायिनः	आततायी	नारायण	नारायण
शत्रून्	शत्रुओंको	आत्मकं	स्वरूप
यथा मृधे	जैसे युद्धमें	तत् वर्म	वह कवच
		मम आख्याहि	मुझे सुनाइये ॥२॥

श्रीशुक उवाच-

वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायानुपृच्छते ।

नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥३॥

वृतः पुरोहितः त्वाष्ट्रः महेन्द्राय अनुपृच्छते नारायण आख्यं वर्म
आह तत् इह एकमनाः शृणु ॥३॥

त्वाष्ट्रः	त्वष्ट्रा-नन्दन (विश्वरूप)	नारायण आख्यं नारायण नामक वर्म आह कवच कहा
पुरोहितः वृतः	पुरोहित रूपमें वरण हो जानेपर	तत् इह वह इस समय
अनुपृच्छते	बार-बार पूछनेवाले	एकमनाः शृणु एकाग्र चित्तसे
महेन्द्राय	इन्द्रसे	सुनो ॥३॥

विश्वरूप उवाच-

धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ।

कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाक्यतः शुचिः ॥४॥

धौत अङ्घ्रिपाणिः आचम्य सपवित्र उदङ्मुखः कृतः स्वाङ्ग
करन्यासः मन्त्राभ्यां वाक्यतः शुचिः ॥४॥

अङ्घ्रिपाणिः	पैर-हाथ	उदङ्मुखः	उत्तर मुख होकर
धौत	धोकर,	वाक्यतः	मीन होकर
आचम्य	आचमन करके	स्वाङ्ग	अपना अंगन्यास,
शुचिः	पवित्र होकर	करन्यासः	करन्यास
सपवित्र	पवित्रा पहिनकर	मन्त्राभ्यां कृतः	मन्त्रोंसे करके ॥४॥*

* 'ॐ नमो नारायणाय' और 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इन मन्त्रोंसे अंगन्यास करना चाहिए ।

नारायणमयं वर्म सन्नह्येद् भय आगते ।

पादयोर्जानुनोरुर्वोरदरे हृद्यथोरसि ॥५॥

नारायणमयं वर्म सन्नह्येत् भय आगते पादयोः जानुनोः उर्वोः
उदरे हृदि अथ उरसि ॥५॥

भय आगते	भय (का अवसर) आनेपर	पादयोः जानुनोः (क्रमशः) पैरोंमें, घुटनोंमें
नारायणमयं	नारायणमय	उर्वोः उदरे जांघोंमें, पेटमें,
वर्म सन्नह्येत्	कवच धारण करे,	अथ हृदि उरसि और हृदय तथा छातीमें ॥५॥

मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोङ्कारादीनि विन्यसेत् ।

ॐ नमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥६॥

मुखे शिरसि आनुपूर्व्यात् ओंकार आदीनि विन्यसेत् ॐ नमो
नारायणाय इति विपर्ययं अथ अपि वा ॥६॥

मुखे शिरसि	मुख और सिर (इन आठ अंगों) में	आदीनि	प्रारम्भ करके (एक-एक अक्षर)
ॐ नमो	ॐ नमः	वा अथ	अथवा फिर
नारायणाय	नारायणाय	विपर्ययं	उलटे क्रमसे (पैरसे प्रारम्भ करके या सिरसे प्रारम्भ करके) ॥६॥
इति	इस (अष्टाक्षर मन्त्र) के		
ओंकार	ओंकारसे		

करन्यासं ततः कुर्याद् द्वादशाक्षरविद्यया ।

प्रणवादियकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु ॥७॥

करन्यासं ततः कुर्यात् द्वादशाक्षर विद्यया प्रणव आदि यकार अन्तं
अङ्गुलि अङ्गुष्ठ पर्वसु ॥७॥

ततः	फिर	यकार अन्तं	‘य’ कार पर्यन्त
द्वादशाक्षर	द्वादशाक्षर	अंगुलि	अंगुलियों तथा
विद्यया	मन्त्रसे	अंगुष्ठ पर्वसु	अंगुठेकी गांठोंमें
प्रणवादि	प्रणव (ॐ) से		(एक-एक अक्षरसे)
	प्रारम्भ करके	करन्यासं कुर्यात्	करन्यास करे ॥७॥

न्यसेद्दृढय ओङ्कारं विकारमनु मूर्धनि ।
 षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखया दिशेत् ॥८॥
 वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसन्धिषु ।
 मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्भवेद् बुधः ॥९॥
 सविसर्गं फडन्तं तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ।
 ॐ विष्णवे नम इति ॥१०॥

न्यसेत् हृदय ओङ्कारं विकारं अनु मूर्धनि षकारं तु भ्रुवोः
 मध्ये णकारं शिखया दिशेत् वेकारं नेत्रयोः युञ्ज्यात् नकारं सर्वसन्धिषु
 मकारं अस्त्रं उद्दिश्य मन्त्रमूर्तिः भवेत् बुधः सविसर्गं फट् अन्तं तत्
 सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॐ विष्णवे नमः इति ॥८,९,१०॥

ॐ विष्णवे नमः ॐ विष्णवे नमः	णकारं दिशेत्	‘ण’ का निर्देश करे,
इति	नेत्रयोः वेकारं	दोनों नेत्रोंमें ‘वे’ का
इस मन्त्रसे (फिर	युञ्ज्यात्	(न्यासके लिए)
इस प्रकार		उपयोग करे,
अंगन्यास करे)	सर्वसन्धिषु	सब सन्धियोंमें
हृदय ओङ्कारं	नकारं	‘न’ का
न्यसेत्	मकारं अस्त्रं	‘म’ अस्त्रके
अनु मूर्धनि	उद्दिश्य	उद्देश्यसे
विकारं	सविसर्गं	विसर्गके साथ
भ्रुवोः मध्ये	अन्तं फट्	अन्तमें फट् लगाकर
षकारं तु		(मः अस्त्राय फट्)
शिखया		

सर्वदिक्षु	सब दिशाओंमें		प्रकार)
विनिदिशेत्	संकेत करे।	मन्त्रमूर्तिः	मन्त्र-स्वरूप
बुधः	बुद्धिमान (इस	भवेत्	हो जाय ॥८,९,१०॥

आत्मानं परमं ध्यायेद् ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् ।

विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥११॥

आत्मानं परमं ध्यायेत् ध्येयं षट्शक्तिभिः युतं विद्या तेजः तपः
मूर्तिम् इमं मन्त्रं उदाहरेत् ॥११॥

षट्शक्तिभिः	छः (ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी ज्ञान, वैराग्य) शक्तियोंसे	आत्मानं परमं	अपनेको भी उन्हीं- का स्वरूप ध्यान करें।
युतं ध्येयं	युक्त आराध्य- देवका	विद्या तेजः तपः	(फिर) विद्या, तेज, तप
ध्यायेत्	ध्यान करे।	मूर्तिम् इमं	स्वरूप इस
		मन्त्रं उदाहरेत्	मन्त्रका उच्चारण करे ॥११॥

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां

न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे ।

दरारिचर्मासिगदेषुचाप-

पाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः ॥१२॥

ॐ हरिः विदध्यात् मम सर्वरक्षां न्यस्त अङ्घ्रि पद्मः पतगेन्द्र
पृष्ठे दर अरि चर्म असि गद इषु चाप पाशान् दधानः अष्ट गुणः अष्ट
बाहुः ॥१२॥

अष्ट गुणः	(अणिमादि) आठो	असि गद इषु	तलवार, गदा, बाण,
	सिद्धिसे युक्त	चाप पाशान्	धनुष, पाश
दर अरि चर्म	शंख, चक्र, ढाल,	दधानः	लिये

अष्ट बाहुः	अष्टभुज,	ॐ हरिः	ओंकार स्वरूप
पतगेन्द्र पृष्ठे	पक्षिराज गरुड़की		श्रीहरि
	पीठपर	मम सर्वरक्षां	मेरी सब प्रकारसे
अङ्घ्रि पद्म	चरण-कमल		रक्षा
न्यस्त	रखे	विदध्यात्	करें ॥१२॥

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्ति-

यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ।

स्थलेषु मायावदुवामनोऽव्यात्

त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥१३॥

जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिः यादोगणेभ्यः वरुणस्य पाशात् स्थलेषु
माया वदु वामनः अव्यात् त्रिविक्रमः खे अवतु विश्वरूपः ॥१३॥

जलेषु	जलमें	माया वदु	मायासे
मत्स्यमूर्तिः	मत्स्य स्वरूप	वामनः	वामन ब्रह्मचारी बने
	भगवान्	अव्यात्	(भगवान्) रक्षा करें
यादोगणेभ्यः	जल जीवोंसे और	खे विश्वरूपः	आकाशमें विश्वरूप
वरुणस्य पाशात्	वरुणके पाशसे	त्रिविक्रमः अवतु	त्रिविक्रम भगवान्
मां रक्षतु	मेरी रक्षा करें ।		रक्षा करें ॥१३॥
स्थलेषु	स्थलपर		

दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः

पायान्तृसिंहोऽसुरयूथपारिः ।

विमुञ्चतो यस्य महाट्टहासं

दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥१४॥

दुर्गेषु अटवि आजिमुख आदिषु प्रभुः पायात् नृसिंहः असुर
यूथप अरिः विमुञ्चतः यस्य महा अट्टहासं दिशः विनेदुः न्यपतन् च
गर्भाः ॥१४॥

यस्य महा	जिनके घोर	असुर यूथप	दैत्य यूथपोंके
अट्टहासं	अट्टहास	अरिः	शत्रु
विमुञ्चतः	करनेपर	प्रभुः नृसिंहः	(वे) भगवान् नृसिंह
दिशः विनेदुः	दिशाएँ गूँज उठी	दुर्गेषु अटवि	किलों, वनों
च गर्भाः	और (दैत्य स्त्रियोंके)	आजिमुख	युद्ध भूमि
	गर्भ	आदिषु	आदिमें
न्यपतन्	गिर गये	पायात्	रक्षा करें ॥१४॥

रक्षत्वसौ माध्वनि यज्ञकल्पः

स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो

वराहः ।

रामोऽद्रिकूटेष्वथ

विप्रवासे

सलक्ष्मणोऽव्याद्

भरताग्रजोऽस्मान् ॥१५॥

रक्षतु असौ मा अध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रया उन्नीतधरः
वराहः रामः अद्रिकूटेषु अथ विप्रवासे सलक्ष्मणः अव्यात् भरत अग्रजः
अस्मान् ॥१५॥

स्वदंष्ट्रया अपनी दाढ़ोंपर
उन्नीतधरः पृथ्वीको उठाये
यज्ञकल्पः यज्ञ स्वरूप
असौ वराहः ये वाराह भगवान्
अध्वनि मार्गमें
मा रक्षतु मेरी रक्षा करें,
अद्रिकूटेषु पर्वतोंके शिखरोंपर

रामः परशुरामजी,
अथ विप्रवासे और प्रवासके समय
सलक्ष्मणः लक्ष्मणजीके साथ
भरत अग्रजः भरतजीके बड़े भाई
(श्रीराम)
अस्मान् अव्यात् हमारी रक्षा
करें ॥१५॥

मामुग्रधर्मादखिलात् प्रमादा-

न्नारायणः पातु नरश्च हासात् ।

दत्तस्त्वयोगादथ

योगनाथः

पायाद् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥१६॥

माम् उग्रधर्मात् अखिलात् प्रमादात् नारायणः पातु नरः च हासात्
दत्तः तु अयोगात् अथ योगनाथः पायात् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥१६॥

उग्रधर्मात्	(मारणादि) भयानक	योगनाथः	योगेश्वर
	अभिचारोसे	दत्तः तु	दत्तात्रेय तो
अखिलात्	तथा सब	अयोगात्	योगके विघ्नोसे,
प्रमादात्	सावधानियोसे	गुणेशः कपिलः	त्रिगुणाधिप कपिल-
नारायणः	भगवान् नारायण		जी
माम् पातु	मुझे बचाते रहें,	कर्मबन्धात्	कर्म-बन्धनसे
च नरः हासात्	तथा नर गर्वसे	पायात्	रक्षा करें ॥१६॥
अथ	तथा		

सनत्कुमारोऽवतु कामदेवा-

ह्यशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ।

देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात्

कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥१७॥

सनत्कुमारः अवतु कामदेवात् ह्यशीर्षा मां पथि देवहेलनात्
देवर्षि वर्यः पुरुष अर्चन अन्तरात् कूर्मः हरिः मां निरयात् अशेषात् ॥१७॥

सनत्कुमारः	सनत्कुमारजी	अर्चन अन्तरात्	सेवापराधोसे
कामदेवात्	कामदेवसे	देवर्षि वर्यः मां	देवर्षि श्रेष्ठ
अवतु	रक्षा करें,		नारदजी मुझे
पथि	मार्गमें		(बचावें)
देवहेलनात्	(प्रणाम आदि न	कूर्मः हरिः	कच्छप भगवान्
	करने रूपी)	अशेषात्	समस्त
	देवताओंकी उपेक्षासे	निरयात्	नरकोंसे
ह्यशीर्षा	ह्यशीर्ष भगवान्	मां	मेरी (रक्षा
	तथा		करें) ॥१७॥
पुरुष	भगवत्		

धन्वन्तरिर्भगवान् पात्वपथ्याद्
 द्वन्द्वाद् भयादृषभो निर्जितात्मा ।
 यज्ञश्च लोकादवतान्नान्ताद्
 बलो गणात् क्रोधवशादहीन्द्रः ॥१८॥

धन्वन्तरिः भगवान् पातु अपथ्यात् द्वन्द्वात् भयात् ऋषभः निर्जित
 आत्मा यज्ञः च लोकात् अवतात् जनान्तात् बलः गणात् क्रोधवशात्
 अहीन्द्रः ॥१८॥

भगवान्	भगवान्	लोकात्	लोकापवादसे,
धन्वन्तरिः	धन्वन्तरि	बलः	बलरामजी
अपथ्यात्	कुपथ्यसे	जनान्तात्	लोगों द्वारा मिलने-
पातु	रक्षा करें,		वाले कष्टोंसे
द्वन्द्वात् भयात्	(सुख-दुःखादि)	अहीन्द्रः	शेष भगवान्
	द्वन्द्वोंके भयसे	क्रोधवशात्	क्रोधवश
निर्जित आत्मा	जितेन्द्रिय	गणात्	नामक सर्पोंसे
ऋषभः	ऋषभदेवजी	अवतात्	रक्षा करें ॥१८॥
च यज्ञः	और यज्ञ भगवान्		

द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद्
 बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात् ।

कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु
 धर्माविनायोरुक्तावतारः ॥१९॥

द्वैपायनः भगवान् अप्रबोधात् बुद्धः तु पाखण्ड गणात् प्रमादात्
 कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु धर्म अवनाय कृतः अवतारः ॥१९॥

भगवान्	भगवान्	बुद्धः तु	बुद्ध भगवान् तो
द्वैपायनः	श्रीकृष्ण द्वैपायन	पाखण्ड गणात्	पाखण्डी लोगोंसे
	व्यास		और
अप्रबोधात्	अज्ञानसे,	प्रमादात्	प्रमादसे,

धर्म अवनाय	धर्मकी रक्षाके लिए	कल्किः	भगवान् कल्कि
कृतः अवतारः	अतवार धारण	कलेः	कालमलात् कलिकालके दोषोंसे
	करनेवाले	प्रपातु	रक्षा करें ॥१६॥

मां केशवो गदया प्रातरव्याद्
गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणुः ।

नारायणः प्राह्ण उदात्तशक्ति-
मध्यन्दिने विष्णुररीन्द्रपाणिः ॥२०॥

मां केशवः गदया प्रातः अव्यात् गोविन्द आसङ्गवं आत्तवेणुः
नारायणः प्राह्ण उद् आत्त शक्तिः मध्यंदिने विष्णुः अरीन्द्र पाणिः ॥२०॥

केशवः गदया	केशव भगवान्	नारायणः	नारायण
	गदासे	प्राह्ण	पहिले प्रहरमें,
प्रातः	सवेरे,	अरीन्द्र पाणिः	चक्रराज हाथमें लिए
आत्तवेणुः	वंशी लिये	विष्णुः मध्यंदिने	विष्णु भगवान्
गोविन्द	गोविन्द		दोपहरमें
आसङ्गवं	दिन निकलनेपर,	मां अव्यात्	मेरी रक्षा करें ॥२०॥
उद् आत्त शक्तिः	शक्ति उठाये		

देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा
सायं त्रिधामावतु माधवो मासु ।

दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे
निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥२१॥

देवः अपराह्णे मधुहा उग्रधन्वा सायं त्रिधामा अवतु माधवः मां
दोषे हृषीकेश उत अर्धरात्रे निशीथ एकः अवतु पद्मनाभः ॥२१॥

अपराह्णे	तीसरे प्रहरमें	सायं त्रिधामा	सायं काल (ब्रह्मादि)
उग्रधन्वा	प्रचण्ड धनुष लिए		त्रिमूर्तिधारी
मधुहा देवः	मधूसूदन भगवान्,	माधवः अवतु	माधव रक्षा करें,

दोषे हृषीकेश	रात्रिके प्रारम्भमें	निशीथ	तथा उसके बाद
	हृषीकेश,		तीसरे प्रहरमें
उत अर्धरात्रे	और आधी रात	एकः पद्मनाभः	अकेले कमलनाभ
	(दूसरे प्रहर) में		भगवान्
		मां अवतु	मेरी रक्षा करें ॥२१॥

श्रीवत्सधामापररात्र ईशः

प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः ।

दामोदरोऽव्यादनुसन्ध्यं प्रभाते

विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः ॥२२॥

श्रीवत्सधामा पररात्र ईशः प्रत्यूष ईशः असिधरः जनार्दनः दामोदरः
अव्यात् अनुसन्ध्यं प्रभाते विश्वेश्वरः भगवान् कालमूर्तिः ॥२२॥

श्रीवत्सधामा	श्रीवत्सलाञ्छन	दामोदरः	दामोदर भगवान्
ईशः	भगवान्	प्रभाते	अरुणोदयके समय
पररात्र	रात्रिके पिछले		तथा
	प्रहरमें,	कालमूर्तिः	कालस्वरूप
असिधरः	तलवार लिए	विश्वेश्वरः	विश्वेश्वर भगवान्
जनार्दनः	जनार्दन	अनुसन्ध्यं	सब सन्ध्याओंमें
ईशः प्रत्यूष	भगवान् ब्रह्ममुहूर्तमें	अव्यात्	रक्षा करें ॥२२॥

चक्रं युगान्तानलतिग्मनेमि

भ्रमत् समन्ताद् भगवत्प्रयुक्तम् ।

दन्दग्धि दन्दग्धिरिसैन्यमाशु

कक्षं यथा वातसखो हुताशः ॥२३॥

चक्रं युगान्त अनल तिग्मनेमि भ्रमत् समन्तात् भगवत् प्रयुक्तं
दन्दग्धि दन्दग्धि अरि सैन्यं आशु कक्षं यथा वातसखः हुताशः ॥२३॥

युगान्त	प्रलयकालीन	आशु	शीघ्र
अनल	अग्नि के समान	अरिसैन्यं	शत्रु सेनाको
तिग्मनेमि	प्रज्वलित तीक्ष्ण	दन्दग्धि	जलादो,
	धार वाले	दन्दग्धि	जलादो,
चक्रं	सुदर्शन चक्र	यथा	जैसे
भगवत्	भगवान्	वातसखः	वायुसे मिलकर
प्रयुक्तं	द्वार छोड़े गये	हुताशः कक्षं	अग्नि फूसके
समन्तात्	चारों ओर		झोपड़ेको ॥२३॥
भ्रमत्	घूमते हुए		

गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिङ्गे

निष्पिण्डि निष्पिण्डचजितप्रियासि ।

कूष्माण्डवैनायकयक्षरक्षो-

भूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥२४॥

गदे अशनि स्पर्शन विस्फुलिङ्गे निष्पिण्डि निष्पिण्डि अजितप्रिया
असि कूष्माण्ड वैनायक यक्ष रक्षः भूत ग्रहान् चूर्णय चूर्णय अरीन् ॥२४॥

अशनि स्पर्शन	वज्र-कठोर	यक्ष रक्षः	यक्ष, राक्षस,
विस्फुलिङ्गे	चिनगारियाँ फेंकती	भूत ग्रहान्	भूत और ग्रहोंको
गदे	गदा !	निष्पिण्डि	कुचल दो,
	तुम	निष्पिण्डि	कुचल दो,
अजित	भगवान् अजितको	अरीन्	(हमारे) शत्रुओंको
प्रिया असि	प्यारी हो,	चूर्णय चूर्णय	चूर-चूर
कूष्माण्ड	कूष्माण्ड,		कर दो ॥२४॥
वैनायक	विनायक,		

त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृ-

पिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ।

दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो

भीमस्वनोऽरेहृदयानि कम्पयन् ॥२५॥

त्वं यातुधान प्रमथ प्रेत मातृ पिशाच विप्रग्रह घोर दृष्टीन् दरेन्द्र
विद्रावय कृष्णपूरितः भीमस्वनः अरेः हृदयानि कम्पयन् ॥२५॥

कृष्णपूरितः	भगवान् कृष्णसे बजाये जाते	यातुधान प्रमथ	यातुधान, प्रमथ,
दरेन्द्र त्व	शंखराज तुम	प्रेत मातृ	प्रेत, मातृका
भीमस्वनः	अपने घोर शब्दसे	पिशाच	पिशाच,
अरेः हृदयानि	(हमारे) शत्रुओंके	विप्रग्रह	ब्रह्मराक्षस आदि
हृदयोंको		घोर दृष्टीन्	क्रूर दृष्टिवालोंको
कम्पयन्	कम्पित करते	विद्रावय	भगा दीजिए ॥२५॥

त्वं तिग्मधारासिवरारिसैन्य-

मोशप्रयुक्तो मम छिन्धि छिन्धि ।

चक्षूंषि चर्मच्छतचन्द्र छादय

द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥२६॥

त्वं तिग्मधार असिवर अरिसैन्यं ईश प्रयुक्तः मम छिन्धि छिन्धी
चक्षूंषि चर्मन् शतचन्द्र छादय द्विषां अघोनां हर पाप चक्षुषाम् ॥२६॥

तिग्मधार	तीक्ष्ण धार वाली	चर्मन्	(भगवान्की) ढाल
असिवर	श्रेष्ठ (भगवान् की) तलवार !	अघोनां द्विषं	पापी शत्रुओंकी
त्वं मम	तुम मेरे	चक्षूंषि	आँखोंको
अरिसैन्यं ईश	शत्रु सेनाको	छादय	ढँक दीजिये
छिन्धि छिन्धि	टुकड़े-टुकड़े	पाप चक्षुषां	(उन) पाप दृष्टिवालोंके
प्रयुक्तः	काट दो	हर	(नेत्र) हरण कर
शतचन्द्र	सैकड़ों मण्डलवाले		लीजिये ॥२६॥

यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च ।

सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यो भूतेभ्योऽहोभ्य एव वा ॥२७॥

यत् नः भयं ग्रहेभ्यः अभूत् केतुभ्यः नृभ्य एव च सरीसृपेभ्यः
दंष्ट्रिभ्यः भूतेभ्यः अहःभ्य एव वा ॥२७॥

नः यत् भयं	हमको जो भय	दंष्ट्रिभ्यः	हिंसक पशुओंसे,
ग्रहेभ्यः केतुभ्यः	ग्रहोंसे, धूमकेतुसे,	भूतेभ्यः	भूत-प्रेतोंसे,
च नृभ्य एव	और मनुष्योंसे,	वा	अथवा
सरीसृपेभ्यः	(सर्पादि) रेंगने	अहःभ्यः एव	पापी-प्राणियोंसे ही
	वालोंसे,	अभूत्	होवे ॥२७॥

सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ।

प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः ॥२८॥

सर्वाणि एतानि भगवत् नाम रूप अस्त्र कीर्तनात् प्रयान्तु संक्षयं
सद्यः ये नः श्रेयः प्रतीपकाः ॥२८॥

ये नः	(और) जो हमारे	अस्त्र	अस्त्रोंका
श्रेयः प्रतीपकाः	मंगलके विरोधी हों	कीर्तनात्	कीर्तन करनेसे
एतानि सर्वाणि	ये सब	सद्यः	तुरन्त
भगवत्	भगवान् के	संक्षयं प्रयान्तु	नष्ट हो जायं ॥२८॥
नाम रूप	नाम, रूप तथा		

गरुडो भगवान् स्तोत्रस्तोभश्छन्दोमयः प्रभुः ।

रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥२९॥

गरुडः भगवान् स्तोत्रः तोभः छन्दः मयः प्रभुः रक्षतु अशेष कृच्छ्रेभ्यः
विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥२९॥

छन्दः मयः	वेदमन्त्रोंकी	स्वनामभिः	अपने नाम (उच्चा-
स्तोत्रः	स्तुतियोंसे		रण)के प्रभावसे
तोभः	स्तुत होनेवाले	अशेष	सब
प्रभुः भगवान्	समर्थ भगवान्	कृच्छ्रेभ्यः	विपत्तियोंसे
गरुडः	गरुड़ और	रक्षतु	(हमारी) रक्षा
विष्वक्सेनः	विष्वक्सेनजी		करें ॥२९॥

सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ।

बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पान्तु पार्षदभूषणाः ॥३०॥

सर्व आपत्भ्यः हरेः नाम रूप यान आयुधानि नः बुद्धि इन्द्रिय मनः प्राणान् पान्तु पार्षद भूषणाः ॥३०॥

हरेः नाम	श्रीहरिके नाम,	नः बुद्धि इन्द्रिय	हमारी बुद्धि, इन्द्रिय
रूप, यान	रूप, वाहन,	मनः	मन
आयुधानि	आयुध	प्राणान् पान्तु	और प्राणोंकी रक्षा
पार्षद भूषणाः	श्रेष्ठ-पार्षद		करें ॥३०॥
सर्व आपत्भ्यः	सब विपत्तियोंसे		

यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ।

सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥३१॥

यथा हि भगवान् एव वस्तुतः सत् असत् च यत् सत्येन अनेन नः सर्वे यान्तु नाशं उपद्रवाः ॥३१॥

यथा हि	जैसे कि	अनेन सत्येन	इस सत्यके प्रभावसे
यत् सत्	जो भी कारण-	नः सर्वे	हमारे सब
असत् च	कार्य रूपमें है	उपद्रवाः	उपद्रव
वस्तुतः	वस्तुतः	नाशं यान्तु	नष्ट हो जायं ॥३१॥
भगवान् एव	भगवान ही हैं,		

यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ।

भूषणायुधलिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥३२॥

यथा एकात्म्य अनुभावानां विकल्प रहितः स्वयं भूषण आयुध लिङ्ग आख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥३२॥

यथा	जैसे	अनुभावानां	अनुभव करनेवालों-
एकात्म्य	(ब्रह्म आत्माकी)		के लिए
	एकताका	विकल्प रहितः	भेदोंसे रहित

स्वयं	स्वयं (भगवान् ही)	लिङ्ग आख्या	चिह्न (रूप) और
स्वमायया	अपनी माया		नाम
शक्तिः	शक्तिसे	धत्ते	धारण करते
भूषण आयुध	आभूषण, आयुध		हैं ॥३२॥

तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः ।

पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥

तेन एव सत्यमानेन सर्वज्ञः भगवान् हरिः पातु सर्वैः स्वरूपैः नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥३३॥

तेन एव	इसी	सर्वैः स्वरूपैः	अपने सब रूपोंसे
सत्यमानेन	सच्ची मान्यतासे	सदा सर्वत्र	सर्वदा, सर्वत्र
सर्वज्ञः सर्वगः	सर्वज्ञ, सर्वव्यापी	नः पातु	हमारी रक्षा
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि		करें ॥३३॥

विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्ता-

दन्तर्बहिर्भगवान् नारसिंहः ।

प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन

स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥३४॥

विदिक्षु दिक्षु ऊर्ध्वं अधः समन्तात् अन्तः बहिः भगवान् नारसिंहः
प्रहापयन् लोक भयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्त समस्त तेजाः ॥३४॥

स्वनेन	अपनी गर्जनासे	विदिक्षु दिक्षु	(ईशानादि)कोणोंमें,
लोक भय	सबके भयको		दिशाओंमें,
प्रहापयन्	दूर करते हुए,	ऊर्ध्वं अधः	ऊपर, नीचे,
स्वतेजसा	अपने तेजसे	अन्तः बहिः	भीतर-बाहर
समस्त तेजाः	सब तेजोंको	समन्तात्	सब ओरसे (हमारी
ग्रस्त	ग्रस लेनेवाले		रक्षा करें) ॥३४॥
भगवान्	भगवान्		
नारसिंहः	नृसिंह		

मधवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ।

विजेष्यस्यञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥३५॥

मधवन् इदं आख्यातं वर्म नारायण आत्मकं विजेष्यसि अञ्जसा येन
दंशितः असुर यूथपान् ॥३५॥

मधवन्	महेन्द्र !	अञ्जसा	सरलतापूर्वक
इदं नारायण	यह नारायण	असुर यूथपान्	असुर सेना नायकोंको-
आत्मकं	स्वरूप	विजेष्यसि	जीत लोगे ॥३५॥
वर्म आख्यातं	कवच बतला दिया		
येन दंशितः	जिस कवचको धारण		
	करके		

एतद् धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ।

पदा वा संस्पृशेत् सद्यः साध्वसात् स विमुच्यते ॥३६॥

एतत् धारयमाणः तु यं यं पश्यति चक्षुषा पदा वा संस्पृशेत् सद्यः
साध्वसात् स विमुच्यते ॥३६॥

एतत्	इसको	स सद्यः	वह तत्काल
धारयमाणः	धारण करनेवाला	साध्वसात्	भयसे
तु	तो	विमुच्यते	मुक्त हो जाता
यं यं	जिस-जिसको		है ॥३६॥
चक्षुषा पश्यति	आँखसे देख लेता है,		
वा पदा	अथवा पैरसे		
संस्पृशेत्	छू देता है,		

न कुतश्चिद् भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ।

राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥३७॥

न कुतश्चित् भयं तस्य विद्यां धारयतः भवेत् राज दस्यु ग्रह
आदिभ्यः व्याघ्र आदिभ्यः च कर्हिचित् ॥३७॥

विद्यां धारयतः	इस विद्याको धारण करनेवाले	च व्याघ्र आदिभ्यः	तथा बाघ आदिसे
तस्य	किसीको भी	कुतश्चित्	कहीं भी,
राज दस्यु	राजा, डाकू	कर्हचित्	कभी भी,
ग्रह आदिभ्यः	ग्रह आदिसे,	भयं न भवेत्	भय नहीं होता ॥३७॥

इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिको धारयन् द्विजः ।

योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥३८॥

इमां विद्यां पुरा कश्चित् कौशिकः धारयन् द्विजः योगधारणया
स्व अङ्गम् जहौ स मरुधन्वनि ॥३८॥

पुरा कश्चित्	पुराने समयमें कोई	स मरुधन्वनि	उसने मरुस्थलमें
कौशिकः द्विजः	कौशिक गोत्रीय	योगधारणया	योगधारणा द्वारा
	ब्राह्मण	स्व अङ्गं	अपना शरीर
इमां विद्यां	इस विद्याको	जहौ	त्याग दिया ॥३८॥
धारयन्	धारण करते हुए		

तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ।

ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥३९॥

तस्य उपरि विमानेन गन्धर्वपतिः एकदा ययौ चित्ररथः स्त्रीभिः वृतः
यत्र द्विजक्षयः ॥३९॥

एकदा	एकबार	यत्र द्विजक्षयः	जहाँ वह ब्राह्मण
गन्धर्वपतिः	गन्धर्वराज		मरा था,
चित्ररथः	चित्ररथ	तस्य उपरि	उस स्थानके ऊपर
स्त्रीभिः वृतः	स्त्रियोंसे घिरे	ययौ	गये ॥३९॥
विमानेन	विमानद्वारा		

गगनान्यपतत् सद्यः सविमानो ह्यवाक्शिराः ।

स वालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ।

प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥४०॥

गगनात् न्यपतत् सद्यः सविमानः हि अवाक् शिराः स वालखिल्य
वचनात् अस्थीनि आदाय विस्मितः प्रास्य प्राची सरस्वत्यां स्नात्वा धाम
स्वं अन्वगात् ॥४०॥

सद्यः गगनात्	तुरन्त आकाशसे	अस्थीनि आदाय	उसकी हड्डियाँ
सविमानः हि	विमानके साथ ही		लेकर
अवाक् शिराः	नीचे सिर किये	प्राची	पूर्ववाहिनी
न्यपतत्	गिर गये	सरस्वत्यां	सरस्वतीमें
विस्मितः	(इससे) विस्मित	प्रास्य	डालकर वहाँ
	हो गये	स्नात्वा	स्नान करके
वालखिल्य	फिर वालखिल्य	स्वं धाम	तब अपने धाम
वचनात्	मुनियोंके कहनेसे	अन्वगात्	चले गये ॥४०॥

श्रीशुक उवाच—

य इदं शृणुयात् काले यो धारयति चादृतः ।

तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥४१॥

य इदं शृणुयात् काले यः धारयति च आदृतः तं नमस्यन्ति भूतानि
मुच्यते सर्वतः भयात् ॥४१॥

य इदं काले	जो इसको समयपर	नमस्यन्ति	शुक जाते हैं
शृणुयात्	सुनता है	सर्वतः भयात्	(वह) सब ओरसे
च यः आदृतः	और जो आदरपूर्वक		भयसे
धारयति	धारण करता है,	मुच्यते	मुक्त हो जाता
तं भूतानि	उसके सामने सब		है ॥४१॥
	प्राणी		

एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ।

त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥४२॥

एतां विद्यां अधिगतः विश्वरूपात् शतक्रतुः त्रैलोक्य लक्ष्मीं बुभुजे
विनिर्जित्य मृधे असुरान् ॥४२॥

विश्वरूपात्	विश्वरूपसे	विनिर्जित्य	जीतकर
एतां विद्यां	इस विद्याको	त्रैलोक्य	त्रिभुवनकी
अधिगतः	प्राप्त करके	लक्ष्मीं	लक्ष्मीका
शतक्रतुः	शक्रने	बुभुजे	उपभोग करने
मृधे असुरान्	युद्धमें असुरोंको		लगे ॥४२॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे नारायणवर्मकथनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

तस्यासन् विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत ।

सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ॥१॥

तस्य आसन् विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत सोमपीथं सुरापीथं
अन्नादं इति शुश्रुम ॥१॥

भारत	परीक्षित !	अन्नादं	अन्न खानेवाला
तस्य	उन	त्रीणि शिरांसि	तीन सिर
विश्वरूपस्य	विश्वरूपके	आसन् इति	थे ऐसा
सोमपीथं	सोमपान करनेवाला,	शुश्रुम	सुना है ॥१॥
सुरापीथं	शराब पीनेवाला		
	और		

स वै बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्चकैः ।

अवदद् यस्य पितरो देवाः सप्रश्रयं नृप ॥२॥

स वै बर्हिषि देवेभ्यः भागं प्रत्यक्षं उच्चकैः अवदत् यस्य पितरः
देवाः सप्रश्रयं नृप ॥२॥

नृप	परीक्षित !	प्रत्यक्षं उच्चकैः	प्रत्यक्ष ऊँचे स्वरसे
वै स	निश्चय वे	देवेभ्यः भागं	देवताओंका भाग
यस्य पितरः	जिनके पिता (त्वष्टा)	सप्रश्रयं	बड़ी नम्रतासे
देवाः	देवता थे ।	अवदत्	बोलकर देते थे ॥२॥
बर्हिषि	यज्ञमें		

स एव हि ददौ भागं परोक्षमसुरान् प्रति ।
यजमानोऽवहद् भागं मातृस्नेहवशानुगः ॥३॥

स एव हि ददौ भागं परोक्षं असुरान् प्रति यजमानः अवहत् भागं
मातृस्नेहवश अनुग ॥३॥

यजमानः	यज्ञ करते समय	परोक्षं	छिपाकर
मातृस्नेहवशः	माताके स्नेहके वश	असुरान् प्रति	असुरोंके लिए
अनुगः	उनके अनुयायी	भागं अवहत्	भाग उठाकर
	होकर	ददौ	दे देते थे ॥३॥
स एव हि	वह (विश्वरूप) ही		

तद् देवहेलनं तस्य धर्मालीकं सुरेश्वरः ।
आलक्ष्य तरसा भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद् रुषा ॥४॥

तत् देवहेलनं तस्य धर्म अलीकं सुरेश्वरः आलक्ष्य तरसा भीतः तत्
शीर्षाणि अच्छिनत् रुषा ॥४॥

तस्य तत्	उनका वह	सुरेश्वरः	इन्द्र
देव-	देवताओंकी	तरसा भीतः	सरसा डर गये,
हेलनं	अवहेलना तथा	रुषा तत्	क्रोधसे उनके
अलीकं धर्म	कपट पूर्ण धर्म	शीर्षाणि	मस्तक
आलक्ष्य	देखकर	अच्छिनत्	काट दिये ॥४॥

सोमपीथं तु यत् तस्य शिर आसीत् कपिञ्जलः ।

कलविद्धुः सुरापीथमन्नादं यत् स तित्तिरिः ॥५॥

सोमपीथं तु यत् तस्य शिर आसीत् कपिञ्जलः कलविद्धुः सुरापीथं
अन्नादं यत् स तित्तिरिः ॥५॥

तस्य	उनका	सोमपीथं	सोमपान करनेवाला
यत् शिर	जो सिर		था वह तो

कपिञ्जलः	पपीहा,	स तित्तिरिः	वह तीतर
सुरापोथं	शराब पीनेवाला	आसीत्	हो गया ॥५॥
कलविङ्कः	गौरैया		
यत् अन्नादं	जो अन्न खानेवाला		
	था		

ब्रह्महत्यामञ्जलिना जग्राह यदपीश्वरः ।
 संवत्सरान्ते तदघं भूतानां स विशुद्धये ।
 भूम्यम्बुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ॥६॥

ब्रह्महत्यां अञ्जलिना जग्राह यदपि ईश्वरः संवत्सर अन्ते तत् अघं
 भूतानां स विशुद्धये भूमि अम्बु द्रुम योषिद्भ्यः चतुर्धा व्यभजत्
 हरिः ॥६॥

यदपि हरिः	यद्यपि इन्द्र	स भूतानां	उन्होंने प्राणियोंकी
ईश्वरः	(वह पाप नष्ट कर देनेमें) समर्थ थे	विशुद्धये	शुद्धताके लिए*
	तो भी	तत् अघं	उस पापको
ब्रह्महत्यां	ब्रह्महत्याको	भूमि अम्बु द्रुम	भूमि, जल, वृक्ष
अञ्जलिना	हाथ जोड़कर	योषिद्भ्यः	स्त्रियोंमें
जग्राह	ग्रहण कर लिया,	चतुर्धा	चार भागोंमें
संवत्सर अन्ते	एक वर्षके अन्तमें	व्यभजत्	बाँट दिया ॥६॥

भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै ।

ईरिणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥७॥

भूमिः तुरीयं जग्राह खातपूर वरेण वै ईरिणं ब्रह्महत्यायाः रूपं
 भूमौ प्रदृश्यते ॥७॥

* इन्द्र वर्षाके देवता हैं। हत्या लगी रहनेपर वर्षा करते तो ब्रह्म-हत्यारेका छुआ जल पीकर सब प्राणी अपवित्र हो जाते ।

वै खातपूर	निश्चय गढ़डा होने- पर (स्वतः कमशः) भर जायगा	जग्राह ब्रह्महत्याया रूपं	ग्रहणकर लिया । ब्रह्महत्याका रूप
वरेण	(इस) वरदानको पाकर	भूमौ ईरिणं	पृथ्वीमें ऊसर (कहीं-कहीं)
भूमिः तुरीयं	भूमि ले (पापका) चौथाई भाग	प्रदृश्यते	दिखलायी पड़ता है ॥७॥

तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः ।

तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥८॥

तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुः द्रुमाः तेषां निर्यास रूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥८॥

छेद विरोहेण	(कोई भाग)काटनेपर फिर उग जायगा	तेषां निर्यास रूपेण	उनमें गोंदके रूपमें
वरेण	इस वरदानके बदले	ब्रह्महत्या	ब्रह्महत्या
तुर्यं द्रुमाः	चौथाई (पाप)	प्रदृश्यते	दीखती है ॥८॥
जगृहुः	वृक्षोंने ग्रहण किया,		

शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः ।

रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥९॥

शश्वत् काम वरेण अंहः तुरीयं जगृहुः स्त्रियः रजःरूपेण ताः सु अंहः मासि मासि प्रदृश्यते ॥९॥

शश्वत् काम	सर्वदा पुरुषसे सह- वासकी शक्ति	मासि मासि रजः	प्रत्येक महीने रजस्वला होनेके
वरेण	इस वरदानके बदले	रूपेण	रूपमें
अंहः तुरीयं	पापका चौथाई भाग	प्रदृश्यते	दिखलायी देता है ॥९॥
स्त्रियः जगृहुः	स्त्रियोंने ग्रहण किया		
ताः सु अंहः	उनमें वह पाप		

द्रव्यभूयोवरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् ।

तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥१०॥

द्रव्य भूयः वरेण आपः तुरीयं जगृहुः मलं तासु बुद्बुद फेनाभ्यां
दृष्टं तत् हरति क्षिपन् ॥१०॥

द्रव्यः भूयः	(किसीमें मिलानेपर वह) द्रव्य बढ़ जायगा	तासु बुद्बुद फेनाभ्यां दृष्टं तत् क्षिपन्	उसमें बुलबुले और फेनके द्वारा वह दीखता है, उस (फेनादिको) हटाकर
वरेण	इस वरदानसे	हरति	(जल) लेते हैं ॥१०॥
आपः तुरीयं	जलने चौथाई		
मलं	पाप		
जगृहुः	ग्रहण किया,		

हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेन्द्राय शत्रवे ।

इन्द्रशत्रो विवर्धस्व माचिरं जहि विद्विषम् ॥११॥

हतपुत्रः ततः त्वष्टा जुहाव इन्द्राय शत्रवे इन्द्रशत्रुः विवर्धस्व
माचिरं जहि विद्विषं ॥११॥

ततः हतपुत्रः	तब पुत्रके मारे जानेपर	विवर्धस्व	तुम्हारी अभिवृद्धि हो,
त्वष्टा	त्वष्टाने	विद्विषं	अपने शत्रुको
इन्द्राय शत्रवे	शत्रु इन्द्रके (विपरीत)	माचिरं जहि	शीघ्र मार डालो,
इन्द्रशत्रुः	हे इन्द्रके शत्रु	जुहाव	(इस मन्त्रसे) हवन करने लगे ॥११॥

अथान्वाहार्यपचनादुत्थितो घोरदर्शनः ।

कृतान्त इव लोकानां युगान्तसमये यथा ॥१२॥

अथ अन्वाहार्यपचनात् उत्थितः घोरदर्शनः कृतान्त इव लोकानां
युगान्त समये यथा ॥१२॥

अथ	तत्र	लोकानां	सब लोकोंके लिए
अन्वाहार्य-	अन्वाहार्य-	कृतान्त इव	(साक्षात्) काल
पचनात्	पचन (नामक		समान
	दक्षिणाग्निसे	घोरदर्शनः	भयानकाकृति
यथा युगान्त	जैसे प्रलयके	उत्थितः	(एक दैत्य) उठ
समये	समय		खड़ा हुआ ॥१२॥

विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिने दिने ।

दग्धशैलप्रतीकाशं सन्ध्याभ्रानीकवर्चसम् ॥१३॥

विष्वक् विवर्धमानं तं इषुमात्रं दिने दिने दग्धशैल प्रतीकाशं सन्ध्या
अभ्र अनीक वर्चसम् ॥१३॥

इषुमात्रं	वाणके बराबर	प्रतीकाशं	समान (काला)
तं दिने दिने	उसे प्रतिदिन	सन्ध्या	सन्ध्या कालीन
विष्वक्	चारों ओर	अभ्र अनीक	मेघ-मण्डलके समान
विवर्धमानं	बढ़ता,	वर्चसम्	कान्तिवाला?
दग्धशैल	जले हुए पर्वतके		(देखकर) ॥१३॥

तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ॥१४॥

तप्तताम्र शिखाश्मश्रुं मध्याह्न अर्क उग्र लोचनं ॥१४॥

तप्तताम्र	तपाये तांबेके समान	मध्याह्न	दोपहरके
शिखाश्मश्रुं	सिरके केश और	अर्क	सूर्यके समान
	दाढ़ीवाले,	उग्र लोचनं	उग्र नेत्रको ॥१४॥

देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी ।

नृत्यन्तमुन्नदन्तं च चालयन्तं पदा महीम् ॥१५॥

देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी नृत्यन्तं उन्नदन्तं च
चालयन्तं पदा महीम् ॥१५॥

देदीप्यमाने	चमकते हुए	उन्नदन्तं	चिल्लाते,
त्रिशिखे शूलं	त्रिशूलको	च पदा महीं	और पैरोंसे (कूद- कूदकर) पृथ्वीको
रोदसी	आकाशमें	चालयन्तं	कपाते हुए ॥१५॥
आरोप्य	उठाकर		
नृत्यन्तं	नाचते,		

दरीगम्भीरवक्त्रेण पिबता च नभस्तलम् ।

लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥१६॥

दरीगम्भीर वक्त्रेण पिबता च नभस्तलं लिहता जिह्वया अर्क्षाणि
ग्रसता भुवनत्रयम् ॥१६॥

दरीगम्भीर	गुफाके समान गहरे	अर्क्षाणि	नक्षत्रोंको
वक्त्रेण	मुखके द्वारा	लिहता	चाटता सा,
नभस्तलं च	आकाशको ही	भुवनत्रयं	तीनों लोकोंको
पिबता च	पी जाता सा,	ग्रसता	निगल
जिह्वया	जिह्वासे		जाता सा ॥१६॥

महता रौद्रदंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुर्मुहुः ।

वित्रस्ता दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश ॥१७॥

महता रौद्र दंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुः मुहुः वित्रस्ता दुद्रुवुः लोका वीक्ष्य
सर्वे दिशः दश ॥१७॥

महता रौद्र	बड़े-बड़े भयानक	सर्वे लोका	सब लोग
दंष्ट्रेण	दाँतोंको दिखाते हुए	दिशः दश	दसो दिशाओंमें
मुहुः मुहुः	बार-बार	दुद्रुवुः	आग गये ॥१७॥
जृम्भमाणं	जम्हाई लेते (उसे)		
वीक्ष्य वित्रस्ता	देखकर अत्यन्त डरे हुए		

येनावृता इमे लोकास्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना ।

स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥१८॥

येन आवृता इमे लोकाः तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना स वै वृत्र इति प्रोक्तः
पापः परमदारुणः ॥१८॥

येन तमसा	जिस तमोगुणी	परमदारुणः	अत्यन्त क्रूर
त्वाष्ट्रमूर्तिना	त्वष्टाके पुत्रसे	पापः	पापी
इमे लोकाः	ये सब लोक	वृत्र इति	वृत्र इस
आवृता	घेर लिये गये,	प्रोक्तः	नामसे कहा
वै स	निश्चय वह		गया ॥१८॥

तं निजघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः ।

स्वैः स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत् तानि कृत्स्नशः ॥१९॥

तं निजघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः स्वैः स्वैः दिव्यास्त्र
शस्त्रौघैः सः अग्रसत् तानि कृत्स्नशः ॥१९॥

सगणा	अपने सेवकोंके साथ	शस्त्रौघैः	तथा शस्त्र समूहोंसे
विबुधर्षभाः	देवनायकोंने	तं निजघ्नुरभिद्रुत्य	उसे मारा
अभिद्रुत्य	दौड़ते हुए पास	सः तानि	उसने उन
	आकर	कृत्स्नशः	सभी (अस्त्र- शस्त्रोंको)
स्वैः स्वैः	अपने-अपने	अग्रसत्	निगल लिया ॥१९॥
दिव्यास्त्र	दिव्यास्त्रों		

ततस्ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः ।

प्रत्यश्चमादि पुरुषमुपतस्थुः समाहिताः ॥२०॥

ततः ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः प्रत्यञ्चं आदि पुरुषं
उपतस्थुः समाहिताः ॥२०॥

ततः ते	तब तो वे	समाहिताः	एकाग्र चित्तसे
सर्वे	सब (देवता)	प्रत्यश्चम्	हृदयमें स्थित
विस्मिताः	आश्चर्यमें पड़ गये ।	आदि पुरुषं	आदि पुरुष
ग्रस्ततेजसः	प्रभाव छीने जानेसे		परमात्माकी
विषण्णा	उदास होकर	उपतस्थुः	शरणमें गये ॥२०॥

देवा ऊचुः—

वाय्वम्बरान्यक्षितयस्त्रिलोका

ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः ।

हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ

बिभेति यस्मादरणं ततो नः ॥२१॥

वायु अम्बर अग्नि अप क्षितयः त्रिलोका ब्रह्मा आदयः ये वयं उद्वि-
जन्तः हराम यस्मै बलिं अन्तकः असौ बिभेति यस्मात् अरणं ततः नः ॥२१॥

वायु अम्बर	वायु, आकाश,	ये वयं	जो हम लोग हैं,
अग्नि अप्	अग्नि, जल	उद्विजन्तः	उद्विग्न होकर
क्षितयः	पृथ्वी आदि (पञ्चभूत)	यस्मै बलिं	जिसे उपहार
त्रिलोका	(इनसे बने) तीनों लोक	हराम	देते हैं,
ब्रह्मा आदयः	(उनके अधिपति) ब्रह्मा आदि	असौ अन्तकः	वह यह काल
		यस्मात् बिभेति	जिससे डरता है
		ततः नः अरणं	वही प्रभु अब हमारे रक्षक हैं ॥२१॥

अविस्मितं तं परिपूर्णकामं

स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ।

विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः

श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥२२॥

अविस्मितं तं परिपूर्ण कामं स्वेन एव लाभेन समं प्रशान्तं विना
उपसर्पति अपरं हि बालिशः श्वलाङ्गुलेन अतितितर्ति सिन्धुम् ॥२२॥

तं	उन	स्वेन एव	अपने स्वरूपो-
अविस्मितं	कभी आश्चर्यमें	लाभेन	पलब्धिसे ही
	न पड़ने वाले	परिपूर्ण कामं	सर्वथा पूर्णकाम,

समं प्रशान्तं	सबके प्रति समान, अत्यन्त शान्त	हि बालिशः	क्योंकि मूर्ख है (वह)
विना अपरं	आपको छोड़कर (कोई)	श्वलाङ्गुलेन	कुत्ते की पूँछके सहारे
उपसर्पति	दूसरेके समीप जाता है।	सिन्धुं	समुद्रके
		अतितितर्ति	पार जाना चाहता है ॥२२॥

यस्योरुशृङ्गे जगतीं स्वनावं
मनुर्यथाऽऽबध्य ततार दुर्गम् ।

स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद् दुरन्तात्
त्राताऽऽश्रितान् वारिचरोऽपि नूनम् ॥२३॥

यस्य उरुशृङ्गे जगतीं स्वनावं मनुः यथा आबध्य ततार दुर्गं स
एव नः त्वाष्ट्र भयात् दुरन्तात् त्राता आश्रितान् वारिचरः अपि
नूनम् ॥२३॥

यस्य उरुशृङ्गे	जिनके बड़े भारी सौंगमें	वारिचरः अपि	जलचर होनेपर भी
जगतीं	पृथ्वी रूपी	नः आश्रितान्	हम शरणागतोंको
स्वनावं	अपनी नौकाको	दुरन्तात्	दुस्तर
आबध्य	बाँधकर	त्वाष्ट्र भयात्	वृत्तासुरके भयसे
यथा मनुः	जैसे मनु	नूनं त्राता	निश्चय
दुर्गं ततार	(प्रलय) सङ्कटको पारकर गये		बचावेंगे ॥२३॥

पुरा स्वयम्भूरपि संयमाम्भ-
स्युदीर्णवातोमिरवैः कराले ।

एकोऽरविन्दात् पतितस्ततार
तस्माद् भयाद् येन स नोऽस्तु पारः ॥२४॥

पुरा स्वयम्भूः अपि संयम अम्भसि उदीर्ण वात उर्मिरवैः कराले एकः
अरविन्दात् पतितः ततार तस्मात् भयात् येन स नः अस्तु पारः ॥२४॥

पुरा स्वयम्भूः	पहिले ब्रह्माजी	पतितः	गिरनेपर भी
अपि	भी	येन	जिसके सहारे
उदीर्ण वात	उठती आंधी तथा	तस्मात् भयात्	उस भयसे
कराले	भयानक	ततार	पार हो गये
उर्मिरवैः	लहरोंके शब्दवाले	स नः	वही (प्रभु) हम
संयम अम्भसि	प्रलय समुद्रमें		लोगोंके लिए
एकः	अकेले (अपने आसन)	पारः अस्तु	(इस विपत्ति समुद्रमें)
अरविन्दात्	कमलसे		किनारे बनें ॥२४॥

य एक ईशो निजमायया नः

ससर्ज येनानुसृजाम विश्वम् ।

वयं न यस्यापि पुरः समीहतः

पश्याम लिङ्गं पृथगीशमानिनः ॥२५॥

य एक ईशः निजमायया नः ससर्ज येन अनुसृजाम विश्वं वयं न
यस्य अपि पुरः समीहतः पश्याम लिङ्गं पृथक् ईश मानिनः ॥२५॥

य एक ईशः	जिन अद्वितीय प्रभने	पृथक्	(उससे) पृथक्
निजमायया	अपनी मायासे	ईश मानिनः	अपनेको समर्थ
नः ससर्ज	हम सबको उत्पन्न		माननेवाले
	किया,	पुरः समीहतः	सम्मुख सचेष्ट रहते
येन	जिनकी कृपासे (हम)		भी
विश्वं	संसारकी	यस्य लिङ्गं	जिसका चिह्न
अनुसृजाम	सृष्टि करते हैं	न पश्याम	नहीं देख पाते ॥२५॥
वयं	हम		

यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्
देवर्षितिर्यङ् नृषु नित्य एव ।

कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया
कृत्वाऽऽत्मसात् पाति युगे युगे च ॥२६॥

यः नः सपत्नैः भृशं अर्द्यमानान् देवः ऋषि तिर्यङ् नृषु नित्य एव
कृता अवतारः तनुभिः स्वमायया कृत्वा आत्मसात् पाति युगे युगे च ॥२६॥

सपत्नैः भृशं	शत्रुओं द्वारा बार-बार	देवः ऋषि	देवता, ऋषि,
अर्द्यमानान्	रौंदे जाते हुए	तिर्यङ्	पशु आदि,
नः	हम लोगोंको	च नृषु	तथा मनुष्यका
यः आत्मसात्	जो अपना समझकर	अवतारः	अवतार
कृत्वा	बनाकर	तनुभिः कृतः	शरीर धारण करके
स्वमायया	अपनी मायासे	युगे युगे पाति	युग युगमें रक्षा करता है ॥२६॥

तमेव देवं वयमात्मदैवतं
परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यम् ।

व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं
स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा ॥२७॥

तं एव देवं वयं आत्म दैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वं अन्यं व्रजाम सर्वे
शरणं शरण्यं स्वानां स नः धास्यति शं महात्मा ॥२७॥

यं एव देवं	जो अकेले सबके आराध्य,	विश्वं	विश्वरूप एवं
आत्म दैवतं	हमारे भी इष्टदेव हैं	अन्यं परं	इनसे भिन्न परम-
प्रधानं पुरुषं	प्रकृति और पुरुष तथा	शरण्यं	पुरुष हैं, शरण लेने योग्य उनकी

वयं सर्वे	हम सब	नः स्वानां	हम निजजनोंका
शरणं व्रजाम	शरणागत हैं	शं धास्यति	कल्याण करेंगे॥२७॥
स महात्मा	वे उदार शिरोमणि		

श्रीशुक उवाच-

इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठताम् ।

प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शङ्खचक्रगदाधरः ॥२८॥

इति तेषां महाराज सुराणां उपतिष्ठतां प्रतीच्यां दिशि अभूत आविः
शङ्ख चक्र गदाधरः ॥२८॥

महाराज	महाराज !	शङ्ख चक्र	शंख, चक्र,
इति	इस प्रकार	गदाधरः	गदाधारी (प्रभु)
तेषां सुराणां	उन देवताओंके	प्रतीच्यां दिशि	पश्चिम दिशामें
उपतिष्ठतां	स्तुति करनेपर	आविः अभूत	प्रकट हुए ॥२८॥

आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ।

पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ॥२९॥

आत्मतुल्यैः षोडशभिः विना श्रीवत्स कौस्तुभौ पर्युपासितं उन्निद्र
शरत् अम्बुरुह ईक्षणम् ॥२९॥

विना श्रीवत्स	श्रीवत्स और	पर्युपासितं	चारों ओरसे
कौस्तुभौ	कौस्तुभमणिको		उपासित
	छोड़कर	उन्निद्र शरत्	खिले हुए, शरत्-
आत्मतुल्यै	अपने ही समान		कालीन
	(रूपके)	अम्बुरुह ईक्षणं	कमल-नेत्र (भगवान)
षोडशभिः	सोलह (पार्षदों)		को ॥२९॥
	द्वारा		

दृष्ट्वा तमवनौ सर्व ईक्षणाह्लादविकलवाः ।

दण्डवत् पतिता राजञ्छनैस्तथाय तुष्टुवुः ॥३०॥

दृष्ट्वा तं अवनौ सर्व इक्षण आह्लाद विक्लवाः दण्डवत् पतिता
राजन् शनैः उत्थाय तुष्टुवुः ॥३०॥

राजन्	राजन् !	अवनौ दण्डवत्	पृथ्वीपर दण्डकेसमान
तं दृष्ट्वा	उन (भगवान्)को	पतिता	गिरकर
	देखकर	शनैः उत्थाय	फिर धीरेसे उठकर
इक्षण आह्लाद	(उनके) दर्शनानन्दसे	तुष्टुवुः	स्तुति करने
विक्लवाः	बिह्वल होकर		लगे ॥३०॥

देवा उचुः -

नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः ।

नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहृतये ॥३१॥

नमः ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः नमः ते ह्यस्त चक्राय नमः
सुपुरुहृतये ॥३१॥

यज्ञवीर्याय	यज्ञशक्ति स्वरूप	ह्यस्त चक्राय	धूमत चक्र लिए
ते नमः	आपको नमस्कार,	ते नमः	आपको नमस्कार,
उत वयसे	तथा सर्व सञ्चालक	सुपुरुहृतये नमः	अनन्त नामाको
ते नमः	आपको नमस्कार,		नमस्कार ॥३१॥

यत् ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम् ।

नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥३२॥

यत् ते गतीनां तिसृणां ईशितुः परमं पदं न अर्वाचीनः विसर्गस्य धातः
वेदितुं अर्हति ॥३२॥

तिसृणां गतीनां	(उत्तम, मध्यम, अधम) तीनों	परमं पदं	परमपद है तथा
	गतियोंके	धातः	विधाता (आपकी
ईशितुः	नियामक		इस)
यत् ते	जो आपका	विसर्गस्य	सृष्टिको
अर्वाचीनः	अलौकिक	न वेदितुं अर्हति	(कोई) जान सकने
			योग्य नहीं है ॥३२॥

ॐ नमस्तेऽस्तु भगवन् नारायण वासुदेवादिपुरुष
महापुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक
केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंसपरि-
व्राजकैः परमेणात्मयोगसमाधिना परिभावितपरिस्फुटपारमहंस्य
धर्मेणोद्घाटिततमः कपाटद्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वय-
मुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥३३॥

ॐ नमः ते अस्तु भगवन् नारायण वासुदेव आदिपुरुष महापुरुष
महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार
लोक एकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंस परिव्राजकैः परमेण आत्मयोग
समाधिना परिभावित परिस्फुट पारमहंस्य धर्मेण उद्घाटित तमः कपाट-
द्वारे चित्ते अपावृत आत्मलोके स्वयं उपलब्ध निज सुख अनुभवः
भवान् ॥३३॥

ॐ भगवन्	ओंकार स्वरूप भगवान्	परमहंस	परमहंस
नारायण	नारायण,	परिव्राजकैः	परिव्राजकलोग
वासुदेव	वासुदेव,	परमेण	परम
आदिपुरुष	आदिपुरुष,	आत्मयोग	आत्मयोगकी
महापुरुष	पुरुषोत्तम,	समाधिना	एकाग्रता द्वारा
महानुभाव	महाप्रभावशाली,	परिभावित	भली प्रकार चिन्तन करनेसे
परममङ्गल	परम मंगलमय,	परिस्फुट	पूर्ण स्पष्ट
परमकल्याण	परम कल्याण रूप,	पारमहंस्य	परमहंसोंके
केवल	अद्वितीय,	धर्मेण	धर्म द्वारा
जगदाधार	जगतके आधार,	तमः कपाट-	अज्ञान रूपी
लोक एकनाथ	लोकके एकमात्र स्वामी,	द्वारे	किवाड़ोंके
सर्वेश्वर	सर्वेश्वर,	उद्घाटित	खुल जानेपर
लक्ष्मीनाथ	रमापति,	अपावृत चित्ते	निरावरण चित्तमें
		आत्मलोके	स्वयं प्रकाश

स्वयं उपलब्ध नित्य प्राप्त
निजसुख आत्मानन्द
अनुभवः अनुभव स्वरूप

भवान् आप हैं, (ऐसे)
ते नमः अस्तु आपको नमस्कार
है ॥३३॥

दुरवबोध इव तवायं विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमन-
वेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि
पासि हरसि ॥३४॥

दुरवबोध इव तव अयं विहार योगः यत् अशरणः अशरीरः इदं
अनवेक्षित अस्मात् समवाय आत्मना एव अविक्रियमाणेन सगुणं अगुणः
सृजसि पासि हरसि ॥३४॥

तव अयं आपका यह
विहार योगः लीला-विहार
दुरवबोध इव दुर्बोध जैसा है
यत् अशरणः क्योंकि किसीकी
सहायताके बिना
अशरीरः निराकार रहकर
अस्मात् समवाय हम (देवता) लोगों-
की सहायताकी
अनवेक्षित अपेक्षा न करके

आत्मना एव अपने द्वारा ही
अविक्रियमाणेन निर्विकार रहते
अगुणः (आप) निर्गुण
इदं सगुणः इस सगुण (जगत-
की)
सृजसि पासि सृष्टि, पालन
हरसि संहार करते हैं
॥३४॥

अथ तत्र भवान् किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः पार-
तन्त्र्येण स्वकृतकुशलाकुशलं फलमुपाददात्याहोस्विदात्माराम
उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न
विदामः ॥३५॥

अथ तत्र भवान् किं देवदत्त वत् इह गुण विसर्ग पतितः पारतन्त्र्येण
स्वकृत कुशल अकुशलं फलं उपाददात्य आहोस्वित् आत्माराम उपशमशीलः
समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः ॥३५॥

अथ तत्र	अतः इस (कर्म) में	आहोस्वित्	अथवा
किं भवान्	क्या आप	आत्माराम	आत्माराम
देवदत्त वत्	देवदत्त (सामान्य	उपशमशीलः	विरक्त
	पुरुष)के समान	समञ्जसदर्शन	सबसे उदासीन
गुण विसर्ग	इस गुणोंके कार्य	उदास्त इति	साक्षी मात्र हैं, इस
इह पतितः	इस संसारमें पड़े हुए		प्रकार
पारतन्त्र्येण	परतन्त्र होकर	ह वाह	निश्चित रूपसे
स्वकृत	अपने किये	न विदामः	(हम) नहीं
कुशल अकुशलं	अच्छे-बुरे (कर्मों)का		जानते ॥३५॥
फलं उपाददात्य	फल भोगते हैं,		

न हि विरोध उभय भगवत्यपरिगणितगुणगणे ईश्वरेऽनवगाह्यमाहात्म्येऽर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तः करणाश्रयदुरवग्रहवादिनां विवादानवसर उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामन्तर्धाय को न्वर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात् ॥३६॥

न हि विरोध उभय भगवति अपरिगणित गुणगणे ईश्वरे अनवगाह्यमाहात्म्ये अर्वाचीन विकल्प वितर्क विचार प्रमाण आभास कुतर्क शास्त्र कलिल अन्तःकरण आश्रय दुरवग्रह वादिनां विवाद अनवसर उपरत समस्त मायामये केवल एव आत्ममायां अन्तर्धाय कः नु अर्थः दुर्घट इव भवति स्वरूप द्वय अभावात् ॥३६॥

भगवति	आप भगवानमें	ईश्वरे	ईश्वरमें
हि उभय	क्योंकि दोनोंमें	✓ अर्वाचीन	आधुनिक
विरोध न	विरोध नहीं है ।	वितर्क विचार	वितर्क, विचार,
अपरिगणित	असंख्य	प्रमाण आभास	झूठे प्रमाणोंसे
गुणगणे	गुणगण वाले	कुतर्क शास्त्र	कुतर्कपूर्ण शास्त्र
अनवगाह	अथाह		पढ़नेसे
माहात्म्ये	महिमाशाली	कलिल	मलावृत

अन्तःकरण	अन्तःकरणमें	अन्तर्धायि	छिपा लेनेपर
आश्रय दुरवग्रह	बसे दुराग्रहपूर्ण	स्वरूप द्वय	दोनों स्वरूप
वादिनां विवाद	तर्क करने वालोंके		(कर्तृत्व भोक्तृत्व
	विवादका		और उदासीनता)
अनवसर	यहां अवसर ही		का
	नहीं है,	अभावात्	अभाव हो जाने से
समस्त	समस्त	कः नु अर्थः	भला कौन-सी बात
मायामये	मायामय (संसार)से		(आपमें)
उपरत	उदासीन	दुर्घट इव भवति	न होने जैसी हो
केवल एव	अद्वितीय		सकती है ॥३६॥
आत्ममायां	अपनी मायाको		

समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्पादिधियाम् ॥३७॥

सम विषम मतीनां मतं अनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्प आदि धियां ॥३७॥

सम विषम	समान और विषम	सर्प आदि	सर्प (माला, लकड़ी)
मतीनां	बुद्धिवालोंके		आदि
मतं अनुसरसि	मतके अनुसार ही	धियां	समझने वालों-
	आप प्रतीत होते हैं,		को ॥३७॥
यथा रज्जुखण्डः	जैसे रस्सीका		
	टुकड़ा		

स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकल-जगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात् सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव पर्यवशेषितः ॥३८॥

स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकल जगत् कारण कारणभूतः सर्वप्रत्यक् आत्मत्वात् सर्वगुण आभास उपलक्षित एक एव परि अवशेषितः ॥३८॥

हि स एव	क्योंकि वही आप	सर्वप्रत्यक्	सबके
सर्ववस्तुनि	सब वस्तुओंमें	आत्मत्वात्	अन्तरात्मा होनेसे
वस्तुस्वरूपः	उस वस्तुके रूपमें हैं,	सर्वगुण	सब गुणोंके
सर्वेश्वरः	सबके स्वामी हैं,	आभास	आभाससे
सकल जगत्	सम्पूर्ण जगतके	उपलक्षित	संकेतित हैं
कारण	कारण (प्रकृति,	एक एव	अकेले ही
	ब्रह्मादि) के	परि अवशेषितः	अन्तमें बच रहते
कारणभूतः	कारण स्वरूप हैं,		हैं ॥३८॥

अथ ह वाव तव महिमा मृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषय-सुखलेशाभासाः परमभागवता एकान्तिनो भगवति सर्वभूतप्रिय-सुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधव-स्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनरयं संसारपर्या-वतः ॥३९॥

अथ ह वाव तव महिमा अमृतरस समुद्र विप्रुषा सकृत् अवलीढया स्वमनसि निष्यन्दमान अनवरत सुखेन विस्मारित दृष्टश्रुत विषयसुखलेश आभासाः परम भागवता एकान्तिनः भगवति सर्वभूत प्रिय सुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृत मनसः कथं उ ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थ कुशला हि आत्मप्रिय सुहृदः साधवः त्वत् चरणाम्बुज अनुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनः अयं संसार पर्यावर्तः ॥३९॥

अथ ह वाव	अहाँ निश्चय ही	अवलीढया	चाटनेसे
तव महिमा	आपके माहात्म्यके	स्वमनसि	अपने हृदयसे
अमृतरस	अमृतरस	अनवरत	अविराम
समुद्र विप्रुषा	सागरके सीकरको	निष्यन्दमान	झरते
सकृत्	केवल एक बार	सुखेन	सुखके द्वारा

दृष्टश्रुत	देखे (लौकिक) सुने (पारलौकिक)	मधुमथन	मधुसूदन !
विषयसुखलेश	विषयोंका लेशमात्र	एते साधवः	ये सत्पुरुष
✓ आभासाः	सुख जो प्रतीतिमात्र हैं,	पुनः स्वार्थ	फिर अपने स्वार्थमें
विस्मारित	विस्मृत कर दिया	कुशला	परम प्रवीण
	गया है,	हि	होकर
एकान्तिनः	वे अनन्य	आत्मप्रिय	अपने प्रिय
परम भागवता	परम भगवत् भक्त,	सुहृदः	सुहृद
सर्वभूत	सब प्राणियोंके	त्वत् चरणाम्बुज	आपके चरण-
प्रिय सुहृदि	प्रिय हितैषी,		कमलोंकी
सर्वात्मनि	सर्वात्मामें	अनुसेवां	सेवा
नितरां निरन्तरां	प्रगाढ़ निरन्तर	विसृजन्ति	छोड़ देंगे,
निर्वृत्त मनसः	मन लगाये रहने-	यत्र पुनः	जहाँ फिर
	वाले	अयं संसार	इस संसार में
कथं उ ह वा	भला कैसे तो	✓ पर्यावर्तः	चक्कर काटना
		न	नहीं होता ॥३६॥

त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव
तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषामनुपक्रमसमयोऽयमिति
स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं
दण्डधर दधर्थ एवमेनमपि भगवञ्जहि त्वाष्ट्रमुत यदि
मन्यसे ॥४०॥

त्रिभुवन आत्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोक मनोहर अनुभाव
तव एव विभूतयः दितिज दनुजः आदय च अपि तेषां अनुपक्रम समयः अयं इति
स्वात्ममायया सुर नर मृग मिश्रित जलचर आकृतिभिः यथा अपराधं दण्डं
दण्डधर दधर्थ एवं एनं अपि भगवन् जहि त्वाष्ट्रं उत यदि मन्यसे ॥४०॥

त्रिभुवन	त्रिलोकीको	त्रिविक्रम	त्रिविक्रम (आप)
आत्मभवन	अपने भीतर रखने-	त्रिनयन	त्रिनेत्र (शिवस्वरूप)
	वाले,	त्रिलोक मनोहर	त्रिभुवन सुन्दर

अनुभाव	प्रभाव वाले हैं ।	मिश्रित जलचर	मिश्रित, जलचर
दितिज दनुज च	दैत्य और दानव	आकृतिभिः	आकृतियोंके द्वारा
आदय अपि	इत्यादि भी	यथा अपराधं	अपराधके अनुसार
तव एव	आपकी ही	दण्डधर दण्डं	आप दण्डधारी दंड
विभूतयः	विभूतियाँ हैं,	दधर्थ	देते रहे हैं
तेषां अनुपक्रम	उनके अवनतिका	एवं यदि	इसी प्रकार यदि
अयं समयः	यह समय है	उतमन्यसे	जँचे तो
इति	इसलिए	एनं त्वाष्ट्रं	इस वृत्रासुरको
स्वात्ममायया	अपनी मायासे	अपि	भी
सुर नर मृग	देवता, मनुष्य, पशु,	जहि	मार दीजिए ॥४०॥

अस्माकं तावकानां तव नतानां तत ततामह तव चरणन-
लिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिङ्गविवरणेनात्मसात्कृ-
तानामनुकम्पानुरञ्जितविशदरुचिरशिशिरस्मितावलोकनेन विगलि-
तमधुरमुखरसामृतकलया चान्तस्तापमनघार्हसि शमयितुम् ॥४१॥

अस्माकं तावकानां तव नतानां तत ततामह तव चरणनलिन युगल
ध्यान अनुबद्ध हृदय निगडानां स्वलिङ्ग विवरणेन आत्मसात् कृतानां अनु-
कम्पा अनुरञ्जित विशद रुचिर शिशिर स्मित अवलोकेन विगलित मधुर
मुखरस अमृत कलया च अन्तः तापं अनघ अर्हसि शमयितुम् ॥४१॥

तव नतानां	आपके सम्मुख प्रणत	स्वलिङ्ग	अपने स्वरूपका
तावकानां	आपके निजजन	विवरणेन	दर्शन देकर
तत ततामह	आप (हमारे) पिता,	आत्मसात्	(आपने) अपना
	पितामह हैं,	कृतानां	लिया है,
अस्माकं	हम लोगोंका	अनुकम्पा	(अब) कृपा से
तव युगल	आपके दोनों	अनुरञ्जित	रंगी हुई
चरण नलिन	चरण-कमलोंके	विशद रुचिर	विशद, सुन्दर,
ध्यान निगडानां	ध्यानरूपी बेड़ीसे	शिशिर स्मित	शीतल मुस्कानयुक्त
अनुबद्ध हृदय	अनुबद्ध हृदय	अवलोकनेन	चितवनसे तथा
	वालोंको	विगलित मधुर	झरते मधुर

मुखरस अमृत	मुख-रसामृतकी	शमयितुं	(आपको) शान्त
कलया	कला (बाणी) से		कर देना
अनघ	निष्पाप प्रभु	अर्हसि	चाहिए ॥४१॥
अन्तः तापं च	(हमारे) हृदयके		
	तापको भी		

अथ भगवंस्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्ताय-
मानदिव्यमायाविनोदस्य सकलजीवनिकायानामन्तर्हृदयेषु
बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथादेशकाल-
देहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलम्भकतयानुभवतः सर्वप्रत्यय-
साक्षिण आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह
वा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद् विस्फुलिङ्गादिभिरिव
हिरण्यरेतसः ॥४२॥

अथ भगवन् तव अस्माभिः अखिल जगत् उत्पत्ति स्थिति लय
निमित्तायमान दिव्य माया विनोदस्य सकल जीव निकायानां अन्तः हृदयेषु
बहिः अपि च ब्रह्म प्रत्यगात्म स्वरूपेण प्रधान रूपेण च यथा देशकाल
देह अवस्थान विशेषं तत् उपादान उपलम्भकतया अनुभवतः सर्वप्रत्यय
साक्षिणः आकाश शरीरस्य साक्षात् परब्रह्मणः परमात्मनः कियान् इह
वा अर्थ विशेषः विज्ञापनीयः स्यात् विस्फुलिङ्ग आदिभिः इव
हिरण्यरेतसः ॥४२॥

विस्फुलिग	चिनगारियों	विज्ञापनीयः	सूचित करने योग्य
आदिभिः	आदि द्वारा	स्यात्	हो सकता है क्योंकि
हिरण्यरेतसः	अग्निकी	अखिल जगत्	सम्पूर्ण जगतकी
इव	भांति	उत्पत्ति स्थिति	उत्पत्ति, स्थिति,
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा	लय	प्रलयकी
भगवन् तव	भगवान् आपको	निमित्तायमान	निमित्त बनने वाली
इह कियान्	इस जगतमें कितना	माया दिव्य	मायासे दिव्य
अर्थ विशेषः	प्रयोजन विशेष	विनोदस्य	विनोद करनेवाले,

सकल जीव	सम्पूर्ण जीव	तत् उपादान	उनके उपादान एवं
निकायानां	समूहोंके	उपलम्भकतया	प्रकाशकके रूपमें
अन्तः हृदयेषु	हृदयके भीतर	अनुभवतः	(अपनेको) अनुभव
ब्रह्म प्रत्यगात्म	ब्रह्म और अन्तर्यामी		करते हुए
स्वरूपेणं	स्व रूप से	सर्वप्रत्यय	समस्त वृत्तियोंके
च बहिः अपि	और बाहर भी	साक्षिणः	साक्षी
प्रधान रूपेण च	प्रकृतिके रूपमें भी	आकाश	आकाश
देशकाल	देश, काल	शरीरस्य	शरीरी
देह अवस्थान	शरीर अवस्थाके	साक्षात्	साक्षात्
यथा	अनुसार	परब्रह्म	परमब्रह्म
विशेषं	(उनके) विशेष	परमात्मनः	परमात्मा आप
	रूपमें,		हैं ॥४२॥

अत एव स्वयं तदुपकल्पयास्माकं भगवतः परमगुरोस्तव
चरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिनसंसारपरिश्रमोपशमनीमुप-
सृतानां वयं यत्कामेनोपसादिताः ॥४३॥

अत एव स्वयं तत् उपकल्पय अस्माकं भगवतः परमगुरोः तव चरण
शतपलाशच्छायां विविध वृजिन संसार परिश्रम उपशमनीं उपसृतानां वयं यत्
कामेन उपसादिताः ॥४३॥

अत एव	अतएव	शतपलाशच्छायां	शतदलकी
विविध वृजिन	नाना कण्टोंसे पूर्ण		छायामें
संसार परिश्रम	संसार रूप परिश्रम-	उपसृतानां	शरण लेनेवाले
	को	वयं यत् कामेन	हम लोग जिस
उपशमनीं	शान्त कर देने		कामनासे
	वाली	उपसादिताः	आये हैं
भगवतः	भगवान्	तत् स्वयं	वह स्वयं
परमगुरोः	परमगुरु	अस्माकं	हमारा (प्रयोजन)
तव चरण	आपके चरणरूपी	उपकल्पय	पूरा कीजिए ॥४३॥

अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयम् ।

ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥४४॥

अथः ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयं ग्रस्तानि येन नः कृष्ण
तेजांसि अस्त्र आयुधानि च ॥४४॥

ईश कृष्ण	सर्वं समर्थं श्रीकृष्ण !	ग्रस्तानि	निगल लिया है,
येन नः	जिसने हमारे	अथः भुवनत्रयं	अब तीनों लोकोंको
तेजांसि	तेजको	ग्रसन्तं	निगलनेको उद्यत
च अस्त्र	तथा अस्त्र-	त्वाष्ट्रं जहि	वृत्तासुरको मार
आयुधानि	शस्त्रोंको		दीजिए ॥४४॥

हंसाय दह्ननिलयाय निरीक्षकाय

कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ।

सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्ता-

वन्ते परीष्टगतये हरये नमस्ते ॥४५॥

हंसाय दह्ननिलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय
सत् संग्रहाय भवपान्थ निजाश्रम आप्ताः अन्ते पर ईष्ट गतये हरये
नमः ते ॥४५॥

हंसाय	शुद्ध स्वरूप,	भवपान्थ	संसारके पथिक
दह्ननिलयाय	हृदय गुहामें	निजाश्रम	अपने परिश्रमसे
	रहनेवाले,	अन्ते	अन्तमें
निरीक्षकाय	साक्षी,	गतये पर ईष्ट	चलते-चलते थक
कृष्णाय	श्रीकृष्ण,		जाते हैं,
मृष्टयशसे	उज्ज्वल यशवाले,	आप्ताः	तब प्राप्त होनेवाले
निरुपक्रमाय	सब उपक्रमोंसे रहित,	हरये	श्रीहरि
सत् संग्रहाय	संत लोगों द्वारा	ते	आपको
	संग्रहणीय,	नमः	नमस्कार ॥४५॥

श्रीशुक उवाच—

अथैवमोडितो राजन् सादरं त्रिदशैर्हरिः ।

स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राह तानभिनन्दितः ॥४६॥

अथ एवं ईडितः राजन् सादरं त्रिदशैः हरिः स्वं उपस्थानं आकर्ण्य
प्राह तान् अभिनन्दितः ॥४६॥

राजन्	राजन्	अभिनन्दितः	(देवताओंसे)
अथ एवं	तब इस प्रकार	स्वं उपस्थानं	सम्मानित होकर
त्रिदशैः सादरं	देवताओं द्वारा	आकर्ण्य	अपना स्तवन
	आदर सहित	तान् प्राह	सुनकर
ईडितः	स्तुति करनेपर		उनसे बोले ॥४६॥
हरिः	श्रीहरि		

श्रीभगवानुवाच—

प्रीतोऽहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया ।

आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ॥४७॥

प्रीतः अहं सुरश्रेष्ठा मत् उपस्थान विद्यया आत्म ऐश्वर्य स्मृतिः
पुंसां भक्तिः च एव यया मयि ॥४७॥

सुरश्रेष्ठा	देवश्रेष्ठो !	भक्तिः एव	भक्ति भी होगी
यया	जिसके द्वारा	मत् उपस्थान	मेरी स्तुति रूप
पुंसां	पुरुषोंको	विद्यया	इस विद्यासे
आत्म ऐश्वर्य	आत्माके ऐश्वर्यका	अहं प्रीतः	मैं प्रसन्न
स्मृतिः	स्मरण		हुआ ॥४७॥
च मयि	और मुझमें		

किं दुरापं मयि प्रीते तथापि विबुधर्षभाः ।

मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मतो वाञ्छति तत्त्ववित् ॥४८॥

किं दुरापं मयि प्रीते तथा अपि विबुधऋषभाः मयि एकान्त मतिः
न अन्यत् मत्तः वाञ्छति तत्त्ववित् ॥४८॥

विबुधऋषभाः	देवनायको,	तत्त्ववित्	तत्त्वज्ञानी
मयि प्रीते	मेरे प्रसन्न होनेपर	एकान्त मतिः	अनन्य बुद्धि भक्त
किं दुरापं	क्या दुःप्राप्य रहता है;	मत्तः अन्यत्	मुझसे और कुछ
		न वाञ्छति	नहीं चाहता ॥४८॥
तथा अपि	फिर भी		

न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् ।

तस्य तानिच्छतो यच्छेद् यदि सोऽपि तथाविधः ॥४९॥

न वेद कृपणः श्रेयः आत्मनः गुण वस्तु दृक् तस्य तान् इच्छतः यच्छेत्
यदि सः अपि तथा विधः ॥४९॥

गुण वस्तु दृक्	गुणमय (संसारको) सत्य देखने वाला	इच्छतः	इच्छा करनेपर
कृपणः	अज्ञानी	यदि सः अपि	यदि वह (देनेवाला) भी
आत्मनः श्रेयः	अपना कल्याण	तथा विधः	उसीके जैसा (अज्ञानी) है
न वेद	नहीं जानता	यच्छेत्	तभी (वह वस्तु) देगा ॥४९॥
तस्य तान्	उसके द्वारा उन्हीं (असत् विषयों) का		

स्वयं निःश्रेयसं विद्वान् न वक्त्यज्ञाय कर्म हि ।

न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः ॥५०॥

स्वयं निः श्रेयसं विद्वान् न वक्ति अज्ञाय कर्म हि न राति रोगिणः
अपथ्यं वाञ्छतः हि भिषक्तमः ॥५०॥

हि	क्योंकि	अज्ञाय	अज्ञानीको
स्वयं निः श्रेयसं	स्वयं परमकल्याण- को	कर्म न वक्ति	कर्म-मार्ग नहीं बतलाता
विद्वान्	जाननेवाला	हि	जैसे

भिषक्तमः	श्रेष्ठ वैद्य	अपथ्यं	कुपथ्य
रोगिणः	रोगीका	न राति	(उसे) नहीं देता
वाञ्छतः	अभीष्ट		॥५०॥

मधवन् यात भद्रं वो दध्यश्चमृषिसत्तमम् ।

विद्याव्रततपःसारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥५१॥

मधवन् यात भद्रं वः दध्यञ्चं ऋषिसत्तमं दिद्या व्रत तपः सारं
गात्रं याचत मा चिरम् ॥५१॥

वः भद्रं	तुम लोगोंका कल्याण हो ।	दध्यञ्चं	दधीचिसे (उनकी)
मधवन्	इन्द्र !	विद्या व्रत तपः	विद्या, व्रत, तपस्या- का
मा चिरं	देर मत करो	सारं गात्रं	सारभूत शरीर
यात	जाओ,	याचत	मांगो ॥५१॥
ऋषिसत्तमं	परमश्रेष्ठ ऋषि		

स वा अधिगतो दध्यङ्दश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलम् ।

यद् वा अश्वशिरो नाम तयोरमरतां व्यधात् ॥५२॥

स वा अधिगतः दध्यङ् अश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलं यद् वा अश्व शिरः
नाम तयोः अमरतां व्यधात् ॥५२॥

स वा	उन्होंने निश्चय	यद् वा	जिससे कि
निष्कलं	कला रहित शुद्ध	अश्व सिरः नाम	उनका नाम अश्व-
ब्रह्म	ब्रह्मज्ञान		सिरा हो गया
अधिगतः	पाया है ।	तयोः	(उस विद्याके प्रभाव- से) वे दोनों
दध्यङ्	उन दधीचिने,		(अश्विनी कुमार)
अश्विभ्यां	घोड़ेके सिरसे (अश्विनी कुमारों- को) उपदेश दिया	अमरतां व्यधात्	देवता हो गये ॥५२॥

दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वमभिद्यं मदात्मकम् ।

विश्वरूपाय यत् प्रादात् त्वष्टा यत् त्वमधास्ततः ॥५३॥

दध्यङ्ङ् आथर्वणः त्वष्ट्रे वमं अभेद्यं मदात्मकं विश्वरूपाय यत् प्रादात् त्वष्टा यत् त्वं अधाः ततः ॥५३॥

आथर्वणः	अथर्ववेदी	यत् विश्वरूपाय जिसे (उन्होंने)
दध्यङ्ङ्	दधीचि ने ही	विश्वरूपको
मदात्मकं	मेरा स्वरूप भूत	प्रादात् दिया,
अभेद्यं वमं	अभेद्य (नारायण)	ततः यत् त्वं फिर जिनसे तुमने
	कवच	अधाः धारण किया ॥५३॥
त्वष्ट्रे	त्वष्ट्राको (दिया था)	

युष्मभ्यं याचितोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोऽङ्गानि दास्यति ।

ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्मविनिमित्तः ।

येन वृत्रशिरो हर्ता मत्तेज उपबृंहितः ॥५४॥

युष्मभ्यं याचितः अश्विभ्यां धर्मज्ञः अङ्गानि दास्यति ततः तैः आयुध श्रेष्ठः विश्वकर्म विनिमित्तः येन वृत्र शिरः हर्ता यत् तेज उपबृंहितः ॥५४॥

युष्मभ्यं	तुम लोगों द्वारा (विशेषतः)	विश्वकर्म	विश्वकर्मा
अश्विभ्यां	अश्विनी कुमारों द्वारा	विनिमित्तः	द्वारा बनाये
याचितः	मांगनेपर	आयुध श्रेष्ठः	श्रेष्ठ आयुध (वज्र) होगा,
धर्मज्ञः	वे धर्मज्ञ	येन	जिसके द्वारा
अङ्गानि	अपना शरीर	यत् तेज	मेरे तेजसे
दास्यति	दे देंगे,	उपबृंहितः	अभिवृद्ध होकर
ततः तैः	तब उससे	वृत्र शिरः हर्ता	वृत्रके सिरको काटने वाले बनोगे ॥५४॥

तस्मिन् विनिहते यूयं तेजोऽस्त्रायुधसम्पदः ।

भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसन्ति च मत्परान् ॥५५॥

तस्मिन् विनिहते यूयं तेजः अस्त्र आयुध सम्पदः भूयः प्राप्स्यथ भद्रं
वः न हिंसन्ति च मत् परान् ॥५५॥

तस्मिन्	उसके	च	क्योंकि
विनिहते	मारे जानेपर	मत् परान्	मेरे परायण
यूयं तेजः	तुम लोग तेज,		(जनोंको)
अस्त्र आयुध	अस्त्र-शस्त्र,	हिंसन्ति न	कोई सता नहीं
सम्पदः भूयः	सम्पत्ति फिर		सकता ॥५५॥
प्राप्स्यथ	प्राप्त कर लोगे,		
वः भद्रं	तुम लोगोंका		
	कल्याण हो		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥५॥

अथ दशमोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

इन्द्रमेवं समादिश्य भगवान् विश्वभावनः ।

पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ १ ॥

इन्द्रं एवं समादिश्य भगवान् विश्वभावनः पश्यतां अनिमेषाणां तत्र
एव अन्तर्दधे हरिः ॥१॥

एवं इन्द्रं	इस प्रकार इन्द्रको	तत्र एव	वहीं
समादिश्य	आदेश देकर	अन्तर्दधे	अन्तर्धान हो
विश्वभावनः	विश्व-रक्षक		गये ॥१॥
भगवान् हरिः	भगवान् श्रीहरि		
अनिमेषाणां	देवताओंके		
पश्यतां	देखते-देखते		

तथाभियाचितो देवैर्ऋषिराथर्वणो महान् ।

मोदमान उवाचेदं प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥

तथा अभियाचितः देवैः ऋषिः आथर्वणः महान् मोदमान उवाच इदं
प्रहसन् इव भारत ॥२॥

भारत	परीक्षित !	मोदमान	प्रसन्न होकर
तथा	उसी प्रकार	प्रहसन् इव	हँसते हुए-से
देवैः	देवताओं द्वारा	इदं उवाच	यह बोले ॥२॥
अभियाचितः	माँगे जानेपर		
महान् आथर्वणः	महान् अथर्ववेदी		
ऋषिः	ऋषि (दधोचि)		

दध्यङ् उवाच-*

अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम् ।

संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुःसहश्चेतनापहः ॥ ३ ॥

अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणां संस्थायां यः तु अभिद्रोहः
दुःसहः चेतनापहः ॥३॥

वृन्दारका अपि	देवता होनेपर भी	संस्थायां	मरते समय
यूयं न जानीथ	तुम लोग नहीं	चेतनापहः	चेतना नष्ट कर
	जानते कि		देनेवाला
शरीरिणां	देहधारीको	दुःसहः	असह्य
यः तु	जो तो	अभिद्रोहः	कष्ट होता है ॥३॥

जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ इहेप्सितः ।

क उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥ ४ ॥

जिजीविषूणां जीवानां आत्मा प्रेष्ठः इह ईप्सितः कः उत्सहेत तं
दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥४॥

जिजीविषूणां	जीवनकी इच्छा	विष्णवे	साक्षात् भगवान्
	रखने वाले		विष्णुके
जीवानां	प्राणियोंको	भिक्षमाणाय	मांगनेपर भी
इह आत्मा	इस संसारमें शरीर	तं दातुं	उसे देनेका
ईप्सितः प्रेष्ठः	अभीष्ट और परम-	कः उत्सहेत	कौन उत्साह करेगा
	प्रिय है,		॥४॥

देवा उचुः -

किं नु तद् दुस्त्यजं ब्रह्मन् पुंसां भूतानुकम्पिनाम् ।

भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥ ५ ॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

किं नु तत् दुस्त्यजं ब्रह्मन् पुंसां भूत अनुकम्पिनां भवत् विधानां महतां
पुण्यश्लोक ईड्य कर्मणाम् ॥५॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	पुण्यश्लोक	पवित्र-कीर्ति
भवत् विधानां	आप जैसे	महतां	महापुरुषोंके लिए
भूत	प्राणियोंपर	किं नु तत्	भला क्या ऐसा है जो
अनुकम्पिनां	कृपा करनेवाले	दुस्त्यजं	त्याग देना (उन्हें)
ईड्य कर्मणां	प्रशंसनीय कर्मा		कठिन हो ॥५॥

ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसंकटम् ।

यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥६॥

ननु स्वार्थपरः लोकः न वेद परसङ्कटं यदि वेद न याचेत न इति न
आह यत् ईश्वरः ॥६॥

ननु	निश्चय	यदि वेद	यदि जानते होते तो
स्वार्थपरः	स्वार्थ परायण	याचेत न	मांगते ही नहीं
लोकः	लोग	यत् ईश्वरः	क्योंकि समर्थ पुरुष
परसंकटं	दूसरेका कष्ट	न इति	नहीं (देंगे) ऐसा
न वेद	नहीं समझते	न आह	नहीं कहते ॥६॥

दध्यङ् उवाच-*

धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रत्युदाहृताः ।

एष वः प्रियमात्मानं त्यजन्तं संत्यजाम्यहम् ॥७॥

धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रति उदाहृताः एष वः प्रियं आत्मानं
त्यजन्तं संत्यजामि अहम् ॥७॥

वः धर्मं	आप लोगोंसे धर्म	प्रति उदाहृताः	प्रत्युत्तर दिया था
श्रोतुकामेन	सुननेकी इच्छासे	त्यजन्तं	(एक दिन स्वयं)
मे यूयं	मैंने आप लोगोंको		छोड़ देनेवाले

* अन्य प्रतियोंमें यहाँ 'ऋषिरुवाच' है ।

एष प्रियं	इस प्रिय	वः	आप लोगोंके लिए
आत्मानं	देहको	अहं	मैं
		संत्यजामि	छोड़ रहा हूँ ॥७॥

योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ।

ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि ॥८॥

यः अध्रुवेण आत्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ईहेत भूतदयया
स शोच्यः स्थावरैः अपि ॥८॥

नाथा	जगत् स्वामियो !	ईहेत	पाना चाहता
यः अध्रुवेण	जो नश्वर	स पुमान्	वह पुरुष
आत्मना	शरीर द्वारा	स्थावरैः	स्थावरों (वृक्षादि)से
भूतदयया	प्राणियोंपर	अपि शोच्यः	भी शोचनीय
	दयाके द्वारा		(गया-बीता) है ॥८॥
न धर्मं न यशः	न धर्म, न यश		

एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ।

यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ॥९॥

एतावान् अव्ययः धर्मः पुण्यश्लोकैः उपासितः यः भूतशोक हर्षाभ्यां
आत्मा शोचति हृष्यति ॥९॥

पुण्यश्लोकैः	पवित्र कर्ति (महा- पुरुषों) द्वारा	भूतशोक	प्राणियोंके शोकमें
उपासितः	अपनाया गया	आत्मा	स्वयं भी
अव्ययः धर्मः	अविनाशी धर्म	शोचति	शोक करता है
एतावान् यः	इतना ही है कि	हर्षाभ्यां	उनके हर्षसे
		हृष्यति	हर्षित होता है ॥९॥

अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभंगुरैः ।

यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यैः स्वज्ञातिविग्रहैः ॥१०॥

अहो दैन्यं अहो कष्टं पारव्यैः क्षण भंगुरैः यत् न उपकुर्यात् अस्वार्थैः
मर्त्यैः स्वज्ञाति विग्रहैः ॥१०॥

अहो दैन्यं	यह कितनी कृपणता है	अस्वार्थैः	किसी स्वार्थमें न आनेवाले इन
अहो कष्टं	यह कितने दुःखकी बात है	स्वज्ञाति	अपनी जाति (धनादि) तथा
यत् पारव्यैः	कि जो पराया है	विग्रहैः	शरीरसे
क्षण भंगुरैः	एक क्षणमें नष्ट हो जानेवाला है	उपकुर्यात्	परोपकार नहीं करता ॥१०॥
मर्त्यैः	मरणधर्मा मनुष्य		

श्रीशुक उवाच-

एवं कृतव्यवसितो दध्यङ्-आथर्वणस्तनुम् ।

परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयञ्जहौ ॥११॥

एवं कृतव्यवसितः दध्यङ् आथर्वणः तनुं परे भगवति ब्रह्मणि आत्मानं सन्नयन् जहौ ॥११॥

आथर्वणः	अथर्ववेदी	परे ब्रह्मणि	परम ब्रह्ममें
दध्यङ्	दधीचिने	आत्मानं	अपनेको
एवं	ऐसा	सन्नयन्	लीन करके
कृतव्यवसितः	निश्चय करके	तनुं	शरीर
भगवति	भगवान्	जहौ	त्याग दिया ॥११॥

यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग् ध्वस्तबन्धनः ।

आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ॥१२॥

यतः अक्षः असु मनः बुद्धिः तत्त्वदृक् ध्वस्त बन्धनः आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ॥१२॥

अक्षः मनः	इन्द्रिय, मन,	परमं	परम दशा
बुद्धिः	बुद्धिको		(समाधि) में
यतः	संयमित करके	योगं	योगकी
तत्त्वदृक्	तत्त्व चिन्तनसे	आस्थितः	स्थित होनेसे
ध्वस्त	नष्ट हो गया,	देहं गतं	शरीर छूटना
बन्धनः	(कर्म) बन्धन	न बुबुधे	ज्ञात नहीं हुआ
			॥१२॥

अथेन्द्रो वज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ।

मुनेः शुक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसान्वितः ॥१३॥

अथ इन्द्रः वज्रं उद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा मुनेः शुक्तिभिः उत्सिक्तः
भगवत् तेजसा अन्वितः ॥१३॥

अथ मुनेः	फिर मुनि	विश्वकर्मणा	विश्वकर्मा
	(दधीचि) की	निर्मितं	निर्मित
शुक्तिभिः	हड्डीसे	वज्रं उद्यम्य	वज्र उठाकर
उत्सिक्तः	बनाया	भगवत् तेजसा	भगवान्‌के तेजसे
		अन्वितः इन्द्रः	सम्पन्न इन्द्र ॥१३॥

वृतो देवगणैः सर्वैर्गजेन्द्रोपर्यशोभत ।

स्तूयमानो मुनिगणैस्त्रैलोक्यं हर्षयन्निव ॥१४॥

वृतः देवगणैः सर्वैः गजेन्द्र उपरि अशोभत स्तूयमानः मुनिगणैः
त्रैलोक्यं हर्षयन् इव ॥१४॥

सर्वैः देवगणैः	सब देवगणोंसे	हर्षयन् इव	हर्षित करते हुएसे
वृतः	घिरे	गजेन्द्र	गजराज ऐरावतके
मुनिगणैः	मुनिगणोंसे	उपरि	ऊपर
स्तूयमानः	स्तुत होते	अशोभत	सुशोभित हुए ॥१४॥
त्रैलोक्यं	त्रिलोकीको		

वृत्रमभ्यद्रवच्छेत्तुमसुरानीकयूथपैः ।

पर्यस्तमोजसा राजन् क्रुद्धो रुद्र इवान्तकम् ॥१५॥

वृत्रं अभ्यद्रवत् छेत्तुं असुर अनीकयूथपैः पर्यस्तं ओजसा राजन्
क्रुद्धः रुद्र इव अन्तकम् ॥१५॥

राजन्	राजन् !	पर्यस्तं वृत्रं	घिरे हुए वृत्रको
क्रुद्धः	क्रोधमें भरे	छेत्तुं	काट डालनेके लिए
रुद्र अन्तकं	रुद्र कालपर (आक्रमण करें)	ओजसा	उत्साहपूर्वक
इव	इस प्रकार	अभ्यद्रवत्	उसकी ओर दौड़
असुर	असुर		पड़े ॥१५॥
अनीकयूथपैः	सेनापतियोंसे		

ततः सुराणामसुरै रणः परमदारुणः ।

त्रेतामुखे नर्मदायामभवत् प्रथमे युगे ॥१६॥

ततः सुराणां असुरैः रणः परमदारुणः त्रेतामुखे नर्मदायां अभवत्
प्रथमे युगे ॥१६॥

ततः प्रथमे	तब पहिले (स्वा- यम्भुव)	सुराणां	देवताओंका
युगे	मन्वन्तरके पहिले	असुरैः	असुरोंसे
त्रेतामुखे	त्रेतायुगके प्रारम्भमें	परमदारुणः	अत्यन्त घोर
नर्मदायां	नर्मदा किनारे	रणः	युद्ध
		अभवत्	हुआ ॥१६॥

रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां पितृवह्निभिः ।

मरुद्भिर्ऋभुभिः साध्यैर्विश्वेदेवैर्मरुत्पतिम् ॥१७॥

रुद्रैः वसुभिः आदित्यैः अश्विभ्यां पितृ वह्निभिः मरुत्भिः ऋभुभिः
साध्यैः विश्वेदेवैः मरुत्पतिम् ॥१७॥

रुद्रैः वसुभिः	रुद्रों, वसुओं,	अश्विभ्यां	दोनों अश्विनी
आदित्यैः	आदित्यों,		कुमारों

पितृ वह्निभिः	पितरों, अग्नियों,	साध्यैः	साध्यगणों
मरुत्भिः	मरुद्गणों,	विश्वेदेवैः	विश्वेदेवोंके साथ
ऋभुभिः	ऋभुओं,	मरुत्पतिम्	देवराज ॥१७॥

दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वया श्रिया ।

नामृष्यन्नसुरा राजन् मृधे वृत्रपुरःसराः ॥१८॥

दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वया श्रिया न अमृष्यन् असुराः
राजन् मृधे वृत्रपुरःसराः ॥१८॥

शक्रं वज्रधरं	इन्द्रको वज्र लिये	मृधे वृत्रपुरः	युद्धमें वृत्र जिनके
स्वया श्रिया	अपने वैभवसे		आगे
रोचमानं	सुशोभित	सराः	चलता था वे
दृष्ट्वा	देखकर	असुराः	असुर
राजन्	राजन् !	अमृष्यन् न	सहन नहीं कर सके
			॥१८॥

नमुचिः शम्बरोऽनर्वा द्विमूर्धा ऋषभोऽम्बरः ।

हयग्रीवः शंकुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥१९॥

नमुचिः, शम्बरः, अनर्वा, द्विमूर्धा, ऋषभः, अम्बरः, हयग्रीवः,
शंकुशिरा, विप्रचित्तिः, अयोमुखः (ये केवल असुरोंके नाम हैं) ॥१९॥

पुलोमा वृषपर्वा च प्रहेतिर्हेतिरुत्कलः ।

दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥२०॥

पुलोमा, वृषपर्वा च प्रहेतिः हेतिः उत्कलः (ये केवल असुरोंके
नाम हैं) दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥२०॥

दैतेया दानवा	दैत्य, दानव,	सहस्रशः	हजारों थे ॥२०॥
यक्षा च रक्षांसि	यक्ष और राक्षस		

सुमालिमालिप्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः ।

प्रतिषिध्येन्द्रसेनाग्रं मृत्योरपि दुरासदम् ॥२१॥

सुमालि मालि प्रमुखाः कार्तस्वर परिच्छदाः प्रतिषिध्य इन्द्र सेना
अग्रं मृत्योः अपि दुरासदम् ॥२१॥

सुमालि मालि	सुमाली और माली	मृत्योः अपि	मृत्युके लिए भी
प्रमुखाः	उनमें प्रमुख थे,	दुरासदं	अजेय
कार्तस्वर	स्वर्णकी साज-	इन्द्र सेना	इन्द्रकी सेनाको
	सज्जासे	अग्रं	आगे आकर
परिच्छदाः	सजे,	प्रतिषिध्य	रोका ॥२१॥

अभ्यर्दयन्नसंभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः ।

गदाभिः परिघैर्बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः ॥२२॥

अभ्यर्दयन् असंभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः गदाभिः परिघैः बाणैः
प्रास मुद्गर तोमरैः ॥२२॥

दुर्मदाः	(वे) घमण्डी	बाणैः प्रास	वाण, प्रास,
सिंहनादेन	गर्जना करते हुए	मुद्गर, तोमरैः	मुद्गर, तोमरोंसे
असंभ्रान्ताः	सावधान होकर	अभ्यर्दयन्	(देवताओंको) रोंदने
गदाभिः परिघैः	गदा, लाठी,		लगे ॥२२॥

शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः ।

सर्वतोऽवाकिरन् शस्त्रैरस्त्रैश्च विबुधर्षभान् ॥२३॥

शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिः भुशुण्डिभिः सर्वतः अवाकिरन्
शस्त्रैः अस्त्रैः च विबुध ऋषभान् ॥२३॥

शूलैः परश्वधैः	भालों, फरसों,	सर्वतः	चारों ओरसे
शतघ्नीभिः	तोपों,	शस्त्रैः च	शस्त्रों और
भुशुण्डिभिः	बन्दूकोंसे	अस्त्रैः	अस्त्रोंकी
विबुध ऋषभान्	देवनायकोंपर	अवाकिरन्	झड़ी लगा दी ॥२३॥

न तेऽदृश्यन्त संछन्नाः शरजालैः समन्ततः ।

पुङ्खानुपुङ्खपतितैर्ज्योतींषीव नभोघनैः ॥२४॥

न ते अदृश्यन्त संछन्नाः शरजालैः समन्ततः पुङ्खानुपुङ्ख पतितैः
ज्योतींषी इव नभः घनैः ॥२४॥

समन्ततः	चारों ओरसे	नभः घनैः	आकाशके मेघोंसे
पुङ्ख	एककी पूँछसे सटे		घिर जानेपर
अनुपुङ्ख	दूसरे	ज्योतींषी इव	तारोंके समान
पतितैः	गिरनेवाले	ते न अदृश्यन्त	वे (देवता)
शरजालैः	बाणोंके जालसे		दिखाई नहीं पड़ते
संछन्नाः	ढक जानेसे		॥२४॥

न ते शस्त्रास्त्रवषौघा ह्यासेदुः सुरसैनिकान् ।

छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥२५॥

न ते शस्त्र अस्त्र वर्षा ओघा हि आसेदुः सुरसैनिकान् छिन्नाः सिद्धपथे
देवैः लघुहस्तैः सहस्रधा ॥२५॥

ते शस्त्र अस्त्र	वह शस्त्र-अस्त्र	देवैः	देवताओंके
वर्षा ओघा हि	वर्षाकी बाढ़ तो	लघुहस्तैः	हाथकी स्फूर्तिसे
सुरसैनिकान्	देव-सैनिकोंके	सिद्धपथे	आकाशमें ही
आसेदुः न	पास तक नहीं पहुँच	सहस्रधा	सहस्रों
	सकी,	छिन्नाः	टुकड़ोंमें काट दी
			गयी ॥२५॥

अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिशृङ्गद्रुमोपलैः ।

अभ्यवर्षन् सुरवलं चिच्छिदुस्तांश्च पूर्ववत् ॥२६॥

अथ क्षीण अस्त्र शस्त्र ओघा गिरिशृङ्ग द्रुम उपलैः अभ्यवर्षन्
सुरवलं चिच्छिदुः तान् च पूर्ववत् ॥२६॥

अथ अस्त्र शस्त्र	फिर अस्त्र-शस्त्र	अभ्यवर्षन्	वर्षा करने लगे
ओघा क्षीण	समूह समाप्त होने	तान्	(देवताओंने)उनक
	पर	च	भी
सुरबलं	देवताओंकी सेनापर	पूर्ववत्	पहिलेके समान
गिरिशृङ्गः	पर्वत-शिखर	चिच्छिदुः	काट दिया ॥२६॥
द्रुम उपलैः	वृक्ष, चट्टानोंकी		
	(असुर)		

तानक्षतान् स्वस्तिमतो निशाम्य

शस्त्रास्त्रपूगैरथ

वृत्रनाथाः ।

द्रुमैर्दृषद्विविधाद्रिशृङ्गैः-

रविक्षतांस्तत्रसुरिन्द्रसैनिकान् ॥२७॥

तान् अक्षतान् स्वस्तिमतः निशाम्य शस्त्र अस्त्र पूगैः अथ वृत्रनाथाः
द्रुमैः दृषत्भिः विविध अद्रिशृङ्गैः अविक्षतान् तत्र सुर इन्द्र सैनिकान् ॥२७॥

अथ	तब जिनका	अक्षतान्	घायल न हुआ
वृत्रनाथाः	स्वामी वृत्र था	स्वस्तिमतः	सकुशल,
	उन असुरोंने	द्रुमैः दृषत्भिः	वृक्षों, चट्टानों,
शस्त्र अस्त्र	अस्त्र-शस्त्र	विविध	अनेक
पूगैः	समूहसे	अद्रिशृङ्गैः	पर्वत शिखरोंसे भी
तान् इन्द्र	उन इन्द्रके	अविक्षतां	घाव रहित
सैनिकान् सुरान् सैनिक देवताओंको		निशाम्य	देखा ॥२७॥

सर्वे प्रयासा अभवन् विमोघाः

कृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः ।

कृष्णानुकूलेषु यथा महत्सु

क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रुक्षवाचः ॥२८॥

सर्वे प्रयासाः अभवन् विमोघाः कृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः कृष्ण
अनुकूलेषु यथा महत्सु क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रुक्षवाचः ॥२८॥

यथा	जैसे	देवगणेषु	देवताओंके (विहृद्ध)
कृष्ण	कृष्णके	दैत्यैः	दैत्यों द्वारा
अनुकूलेषु	अनुकूल रहनेवाले	कृताः कृता	बार-बार किये गये
महत्सु	महापुरुषोंपर	सर्वे प्रयासाः	सब प्रयत्न
क्षुद्रैः	तुच्छ लोगों	विमोघाः	व्यर्थ
प्रयुक्ता	द्वारा कही	अभवन्	हो गये ॥२८॥
रुशती	अमंगलमय		
रुक्षवाचः	रुखी-वाणी		
	(निष्क्रियभाव होती है)		

ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य

हरावभक्ता

हतयुद्धदर्पाः ।

पलायनायाजिमुखे

विसृज्य

पतिं मनस्ते दधुरात्तसाराः ॥२९॥

ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य हराः अभक्ता हतयुद्ध दर्पाः पलायनाय
आजिमुखे विसृज्य पतिं मनः ते दधुः आत्तसाराः ॥२९॥

हराः अभक्ता	भगवद् विमुख	आजिमुखे	युद्ध भूमिमें
ते	वे (असुर)	पतिं	अपने स्वामी (वृत्र)
स्वप्रयासं	अपने प्रयासको		को
वितथं निरीक्ष्य	व्यर्थ गया देखकर	विसृज्य	छोड़कर
हतयुद्ध दर्पाः	युद्ध करनेका गर्व	ते पलायनाय	उन्होंने भागनेका
	नष्ट हो गया	मनः दधे	संकल्प कर लिया
आत्तसाराः	उत्साहहीन हो गये,		॥२९॥

वृत्रोऽसुरांस्ताननुगान् मनस्वी

प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत् ।

पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं

भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः ॥३०॥

वृत्रः असुरान् तान् अनुगान् मनस्वी प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत्
पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः ॥३०॥

मनस्वी वीरः	धीर वीर	भग्नं बलं	तितर-बितर हुई
वृत्रः	वृत्र ने		सेनाको
तान् अनुगान्	उन अपने अनुचरों	पलायितं	भागते
असुरान्	असुरोंको	प्रेक्ष्य	देखकर
प्रधावतः प्रेक्ष्य	भागते हुए देखकर	विहस्य	अट्ठहास करके
च तीव्रेण भयेन	तथा अत्यन्त भयके	एतत् बभाष	यह कहा ॥३०॥
	कारण		

कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विना-

मुवाच वाचं पुरुषप्रवीरः ।

हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन्

मयानर्वञ्छम्बर मे शृणुध्वम् ॥३१॥

काल उपपन्नां रुचिरां मनस्विनां उवाच वाचं पुरुष प्रवीरः हे
विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन् मयान् अर्वन् शम्बर मे शृणुध्वम् ॥३१॥

प्रवीरः पुरुषः	वीर शिरोमणि	हे विप्रचित्ते	हे विप्रचित्ति,
	पुरुष (वृत्र) ने	नमुचे	नमुचि,
काल उपपन्नां	समयोचित	पुलोमन् मयान्	पुलोमा, मय
मनस्विनां	मनस्वियोंको	अर्वन् शम्बर	अर्वा, अम्बर,
रुचिरां	सुन्दर लगने वाली	मे शृणुध्वं	मेरी बात सुनो
वाचं उवाच	सार्थक वाणी बोला-		॥३१॥

जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः

प्रतिक्रिया यस्य न चेह क्लृप्ता ।

लोको यशश्चाथ ततो यदि ह्यमुं

को नाम मृत्युं न वृणीत युक्तम् ॥३२॥

जातस्य मृत्युः ध्रुवः एष सर्वतः प्रतिक्रिया यस्य न च इह क्लृप्ता
लोकः यशः च अथ ततः यदि हि अमुं कः नाम मृत्युं न वृणीत युक्तम् ॥३२॥

इह	क्योंकि	अथ यदि	अब यदि
एष ध्रुवः	यह निश्चित है कि	ततः	उससे
जातस्य	जो उत्पन्न हुआ है	लोकः यशः च	लोकमें यश भी
सर्वतः मृत्युः	उसकी मृत्यु कहीं भी		(मिलता हो)
	होगी,	कः नाम	भला कौन ऐसा है
च इह	और इस लोकमें		जो
यस्य प्रतिक्रिया	जिसका प्रतिकार	अमुं युक्तं मृत्युं	ऐसी उपयुक्त मृत्यु
न क्लृप्ता	(सृष्टिकर्त्तानि)	वृणीत न	वरण नहीं करेगा
	मनायी ही नहीं है ।		॥३२॥

द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापाँ

यद् ब्रह्मसंधारणया जितासुः ।

कलेवरं योगरतो विजह्याद्

यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः

॥३३॥

द्वौ संमताः इह मृत्यु दुरापाँ यद् ब्रह्म संधारणया जित असुः कलेवरं
योगरतः विजह्यात् यत् अग्रणीः वीरशये अनिवृत्तः ॥३३॥

इह	इस लोकमें	कलेवरं	शरीर
द्वौ मृत्यु	दोकी ही मृत्यु	विजह्यात्	छोड़ दे,
संमताः	चाहने योग्य और	यत्	अथवा
दुरापाँ	दुष्प्राप्य है	अग्रणीः	(सेनाके) आगे
यद्	जो		रहकर
ब्रह्म संधारणया	ब्रह्म चिन्तन द्वारा	अनिवृत्तः	बिना पीछे लौटे
जित असुः	प्राणोंको जीतकर	वीरशये	वीर-शैथ्या ले ले
योगरतः	योगमें स्थित होकर		॥३३॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे इन्द्रवृत्तासुरयुद्धवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथ एकादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः ।

नैवागृह्णन् भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥ १ ॥

त एवं शंसतः धर्मं वचः पत्युः अचेतसः न एव अगृह्णन् भयत्रस्ताः
पलायनपरा नृप ॥१॥

नृप	राजन् !	पलायनपरा	भागते हुए
एवं धर्मं	इस प्रकार धर्मकी	पत्युः वचः	अपने स्वामीकी
	बात		बात
शंसतः	कहने पर भी	त न एव	उन्होंने नहीं ही
भयत्रस्ताः	भयभीत	अगृह्णन्	ग्रहण की ॥१॥
अचेतसः	अचेत		

विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभः ।

कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥ २ ॥

विशीर्यमाणां पृतनां आसुरीं असुर ऋषभः काल अनुकूलैः त्रिदशैः
काल्यमानां अनाथवत् ॥२॥

अनाथवत्	बिना नायकके	त्रिदशैः	देवताओं द्वारा
	समान	काल्यमानां	खदेड़ी जाती
आसुरीं पृतनां	असुरोंकी सेनाको	असुर ऋषभः	असुर श्रेष्ठ वृत्त
विशीर्यमाणां	छिन्न-भिन्न होती		॥२॥
काल अनुकूलैः	समयके अनुकूल		
	पड़नेसे		

दृष्ट्वा तप्यत संक्रुद्ध इन्द्रशत्रुरमर्षितः ।
तान् निवार्योजसा राजन् निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा अतप्यत संक्रुद्धः इन्द्रशत्रुः अमर्षितः तान् निवार्य ओजसा
राजन् निर्भर्त्स्य इदं उवाच ह ॥३॥

राजन्	राजन् !	ओजसा	उत्साहसे
इन्द्रशत्रुः	इन्द्रका शत्रु	तान् निवार्य	उन (देवताओं)को
दृष्ट्वा	(यह) देखकर		रोककर
संक्रुद्धः	क्रोधमें भरकर	निर्भर्त्स्य ह	डांटते हुए ही
अमर्षितः	असहिष्णुतासे	इदं उवाच	यह बोला ॥३॥
अतप्यत	तप्त होता—		
	तिलमिलाता		

किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः ।

न हि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥४॥

किं वः उच्चरितैः मातुः धावद्भिः पृष्ठतः हतैः न हि भीतवधः
श्लाघ्यः न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥४॥

मातुः उच्चरितैः	माताके मल-मूत्रके समान	शूरमानिनां	अपनेको शूर मानने वालोंके लिए
धावद्भिः	इन भागने वालोंको	भीतवधः	डरे हुएको मारना
पृष्ठतः हतैः	पीछेसे मारनेमें	न श्लाघ्यः	न प्रशंसनीय है,
वः किं	तुम लोगोंका क्या लाभ है ।	न स्वर्ग्यः	न स्वर्ग देनेवाला है ॥४॥
हि	क्योंकि		

यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि ।

अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥ ५ ॥

यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न
चेत् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥५॥

यदि वः	यदि तुम लोगोंमें	ग्राम्यमुखे	भोग-विलासकी
प्रधने श्रद्धा	युद्ध करनेका उत्साह	स्पृहा न चेत्	इच्छा नहीं रही है तो
	है,	मे अग्रे	मेरे आगे
वा क्षुल्लका	अथवा क्षुद्रो !	तिष्ठत मात्रं	खड़े भर रहो ॥५॥
हृदि सारं	(तुम्हारे) हृदयमें		
	साहस है,		

एवं सुरगणान् क्रुद्धो भीषयन् वपुषा रिपून् ।

व्यनदत् सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः ॥ ६ ॥

एवं सुरगणान् क्रुद्धः भीषयन् वपुषा रिपून् व्यनदत् सुमहा प्राणः येन लोका विचेतसः ॥६॥

एवं क्रुद्धः	इस प्रकार, क्रोधमें	सुमहा प्राणः	बहुत बड़ी प्राण-
	भरकर		शक्तिसे
वपुषा रिपून्	अपने शरीरसे ही	व्यनदत्	गर्जना की
	शत्रु	येन लोका	जिससे सब लोग
सुरगणान्	देवताओंको	विचेतसः	मूर्छित हो गये ॥६॥
भीषयन्	डराता हुआ		

तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै ।

निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥ ७ ॥

तेन देवगणाः सर्वे वृत्रविस्फोटनेन वै निपेतुः मूर्च्छिता भूमौ यथा एव अशनिना हताः ॥७॥

वै तेन	निश्चय उस	मूर्च्छिता	मूर्च्छित होकर
वृत्रविस्फोटनेन	वृत्रासुरकी गर्जना	भूमौ निपेतुः	पृथ्वीपर गिर पड़े
	से ही		॥७॥
सर्वे देवगणाः	सभी देवसमूह		
यथा अशनिना	जैसे वज्रसे		
हताः	मारे गये हों		

ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं
निमीलिताक्षं रणरङ्गदुर्मदः ।

गां कम्पयन्नुद्यतशूल ओजसा
नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः ॥ ८ ॥

ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यं आतुरं निमीलित अक्षं रणरङ्ग दुर्मदः गां
कम्पयन् उद्यतशूल ओजसा नालं वनं यूथपतिः यथा उन्मदः ॥८॥

यथा उन्मदः	जैसे मतवाला	गां कम्पयन्	पृथ्वी कँपता हुआ
यूथपतिः	यूथपति गजराज	आतुरं	व्याकुल (भयसे)
नालं वनं	नरकटके वनको (रौंदे)	निमीलित अक्षं	नेत्र बन्द करके (पड़ी)
ओजसा	उत्साहपूर्वक	सुरसैन्यं	देवताओंकी सेनाको
उद्यतशूल	त्रिशूल उठाये	पद्भ्यां ममर्द	पैरोंसे मसलने लगा
रणरङ्ग	युद्धकी धुनमें		॥८॥
दुर्मदः	मतवाला होकर		

विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः

स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदाम् ।

चिक्षेप तामापततीं सुदुःसहां

जग्राह वामेन करेण लीलया ॥ ९ ॥

विलोक्य तं वज्रधरः अति अमर्षितः स्वशत्रवे अभिद्रवते महागदां
चिक्षेप तां आपततीं सुदुःसहां जग्राह वामेन करेण लीलया ॥९॥

तं स्वशत्रवे	उस अपने शत्रुको	अति अमर्षितः	अत्यन्त असहनशील
अभिद्रवते	अपनी ओर झपटते		होकर
विलोक्य	देखकर	महागदां	अपनी भारी गदा
वज्रधरः	इन्द्रने	चिक्षेप	फेंकी

तां सुदुः सहां	उस असह्य (गदा)	वामेन करेण	बायें हाथसे
आपततीं	आती हुईको	जग्राह	(वृत्र ने) पकड़
लीलया	खेलमें		लिया ॥६॥

स इन्द्रशत्रुः कुपितो भृशं तया
महेन्द्रवाहं गदयोग्रविक्रमः ।

जघान कुम्भस्थल उन्नदन् मृधे
तत्कर्म सर्वे समपूजयन् नृप ॥१०॥

स इन्द्रशत्रुः कुपितः भृशं तया महेन्द्रवाहं गदया उग्रविक्रमः जघान
कुम्भस्थल उन्नदन मृधे तत् कर्म सर्वे समपूजयन् नृप ॥१०॥

नृप	राजन् !	महेन्द्रवाहं	इन्द्रके वाहन
मृधे	युद्धमें		(ऐरावत)के
उग्रविक्रमः	प्रचण्ड पराक्रम	कुम्भस्थल	मस्तकपर
स इन्द्रशत्रुः	उस इन्द्रके शत्रुने	जघान	मारा,
उन्नदन्	गर्जना करते हुए	तत् कर्म	उसके इस कर्मकी
भृशं कुपितः	बहुत क्रुद्ध होकर	सर्वे समपूजयन्	सब लोग प्रशंसा
तया गदया	उसी गदासे		करने लगे ॥१०॥

ऐरावतो वृत्रगदाभिमृष्टो
विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा ।

अपासरद् भिन्नमुखः सहेन्द्रो
मुञ्चन्नसृक् सप्तधनुर्भृशार्तः ॥११॥

ऐरावतः वृत्रगदा अभिमृष्टः निघूर्णितः अद्रिः कुलिश आहतः यथा
अपासरत् भिन्नमुखः सह इन्द्रः मुञ्चन् असृक् सप्त धनुः भृश आर्तः ॥११॥

वृत्रगदा	वृत्रासुर द्वारा	यथा कुलिश	जैसे वज्रसे
	(चलाया) गदासे	आहतः अद्रिः	मारा पर्वत हो
अभिमृष्टः	आहत	विघूर्णितः	घूमकर
ऐरावतः	ऐरावत	भिन्नमुखः	फटे सिर

अमृक् मुञ्चन्	रक्त फेंकता	सप्त धनुः	सात धनुष
भृश आर्त	बहुत दुःखी होकर		(अट्ठाइस हाथ)
सह इन्द्रः	इन्द्रके साथ	अपासरत्	पीछे हट गया ॥११॥

न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे

प्रायुक्त भूयः स गदां महात्मा ।

इन्द्रोऽमृतस्यन्दिकराभिमर्श-

वीतव्यथक्षतवाहोऽवतस्थे

॥१२॥

न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे प्रायुक्त भूयः स गदां महात्मा इन्द्रः
अमृतस्यन्दि कर अभिमर्श वीतव्यथ क्षतवाहः अवतस्थे ॥१२॥

सन्नवाहाय	मूर्छित वाहन (होने से)	क्षतवाहः	घायल वाहनको
विषण्णचेतसे	विषादग्रस्त चित्त (इन्द्रपर)	अमृतस्यन्दि	अमृत-स्पर्शी
स महात्मा	उस महात्मा (वृत्र) ने	कर अभिमर्श	हाथसे सहलाकर
भूयः गदां	फिर गदाका	वीतव्यथः	व्यथाहीन करके
प्रायुक्त न	प्रयोग नहीं किया,	इन्द्रः अवतस्थे	इन्द्र (युद्धमें) आ डटे ॥१२॥

स तं नृपेन्द्राहवकाम्यया रिपुं

वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य ।

स्मरंश्च तत्कर्म नृशंसमंहः

शोकेन मोहेन हसञ्जगाद ॥१३॥

स तं नृपेन्द्र आहव काम्यया रिपुं वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य स्मरन्
च तत् कर्म नृशंसं अहं शोकेन मोहेन हसन् जगाद ॥१३॥

नृपेन्द्र	परीक्षित् !	तं वज्रायुधं	उस वज्रधारी
आहव काम्यया	युद्ध करनेकी इच्छा से आये	भ्रातृहणं रिपुं	अपने भाईके हत्यारे शत्रुको

विलोक्य	देखकर	शोकेन च	शोक और
तत् नृशंसं	उसके क्रूर	मोहेन	मोहसे
अंहः कर्म	पाप कर्मको	हसन्	हँसता हुआ
स्मरन्	स्मरण करके	जगाद	बोला ॥१३॥
स	वह (वृत्त)		

वृत्त उवाच—

दिष्ट्या भवान् मे समवस्थितो रिपु-

यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ।

दिष्ट्या नृणोऽद्याहमसत्तम त्वया

मच्छूलनिभिन्नदृष्टदृदाचिरात् ॥१४॥

दिष्ट्या भवान् मे समवस्थितः रिपुः यः ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च
दिष्ट्या अनृणः अद्य अहं असत्तम त्वया मत् शूल निभिन्न दृष्ट दृदा
अचिरात् ॥१४॥

दिष्ट्या	(मेरे लिए) सौभाग्य	त्वया असत्तम	तुझ अत्यन्त दुष्टका
	की बात है कि	दृष्ट	पाषाण (कठोर)
भवान् रिपुः	तुम्हारे जैसा शत्रु	हृदा	हृदय
समवस्थितः	सामने खड़ा है	मत् शूल	मेरे त्रिशूलसे
यः ब्रह्महा	जो ब्रह्म-हत्यारा,	निभिन्न	फट जानेपर
गुरुहा	गुरु-हत्यारा	अद्य अहं	आज मैं
च भ्रातृहा	और मेरे भाईका	अचिरात्	शीघ्र
	हत्यारा है,	अनृणः	(भाईसे) उक्रुण हो
दिष्ट्या	सौभाग्यकी ही बात		जाऊँ ॥१४॥
	है कि		

यो नोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजाते-

गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ।

विश्रभ्य खङ्गेन शिरांस्यवृश्चत्

पशोरिवाकरुणः स्वर्गकामः ॥१५॥

यः नः अग्रजस्य आत्मविदः द्विजातेः गुरोः अपापस्य च दीक्षितस्य
विश्वभ्य खड्गेन शिरांसि अवृश्चत् पशोः इव अकरुणः स्वर्गकामः ॥१५॥

आत्मविदः	आत्मज्ञानी	विश्वभ्य	विश्वास दिलाकर
द्विजातेः	ब्राह्मण	अकरुणः	निष्ठुर
गुरोः	अपने गुरु	स्वर्गकामः	स्वर्गच्छु द्वारा
अपापस्य	निष्पाप	पशोः इव	बलि पशुकी भाँति
च	और (यज्ञमें)	खड्गेन	तलवारसे
दीक्षितस्य	दीक्षित	शिरांसि	सिरोंको
यः नः	जिसने मेरे	अवृश्चत्	काट दिया ॥१५॥
अग्रजस्य	बड़े भाईका		

ह्रीश्रीदयाकीर्तिभिरुज्झितं त्वां
स्वकर्मणा पुरुषादैश्च गह्यम् ।

कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेह-
मस्पृष्टर्वाह्नि समदन्ति गृध्राः ॥१६॥

ह्री श्री दया कीर्तिभिः उज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैः च गह्यं
कृच्छ्रेण मत् शूल विभिन्न देहं अस्पृष्ट र्वाह्नि समदन्ति गृध्राः ॥१६॥

अस्पृष्ट र्वाह्नि	अग्नि स्पर्श रहित	स्वकर्मणा	अपने कर्मसे
मत् शूल	मेरे त्रिशूलसे	पुरुषादैः च	राक्षसोंसे भी
विभिन्न देहं	छिन्न-भिन्न शरीर	गह्यं	निन्दित
ह्री श्री दया	लज्जा, श्री, दया,	त्वां गृध्राः	तुम्हें गीध
कीर्तिभिः	कीर्तिद्वार	कृच्छ्रेण	बड़े कष्टसे ही
उज्झितं	परित्यक्त	समदन्ति	खायेंगे ॥१६॥

अन्येऽनु ये त्वेह नृशंसमज्ञा
ये ह्युद्यतास्त्राः प्रहरन्ति मह्यम् ।

तैर्भूतनाथान् सगणान् निशात-
त्रिशूलनिभिन्नगलैर्यजामि ॥१७॥

अन्ये अनु ये तु इह नृशंसं अज्ञा ये हि उद्यत अस्त्राः प्रहरन्ति मह्यं तैः
भूतनाथान् सगणान् निशात त्रिशूल निर्भिन्न गलैः यजामि ॥१७॥

ये अन्ये तु	जो दूसरे तो	निर्भिन्न गलैः	कटे गलेवाले उनके
अज्ञा	अज्ञानी (देवता)		द्वारा
इह नृशंसं	यहां (तुझ) निर्दयके	सगणान्	गणोंके साथ
अनु	अनुयायी हैं	भूतनाथान्	(भैरवादि) भूत-
ये हि	जो कि		नाथोंका
उद्यत अस्त्राः	अस्त्र उठाकर	यजामि	यजन करूँगा (बलि
मह्यं प्रहरन्ति	मुझ पर प्रहार कर		दूंगा) ॥१७॥
	रहे हैं		
निशात त्रिशूल	(अपने) तीक्ष्ण		
	त्रिशूलसे		

अथो हरे मे कुलिशेन वीर
हर्ता प्रमथ्यैव शिरो यदीह ।

तत्रानृणो भूतबलिं विधाय
मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥१८॥

अथो हरे मे कुलिशेन वीर हर्ता प्रमथ्य एव शिरः यत् ईह तत्र अनृणः
भूत बलिं विधाय मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥१८॥

अथो	सम्भव है	बलिं विधाय	उपहार देकर
यत् ईह	कि यहां (युद्धमें)	अनृणः	ऋणों से छूटकर
वीर	वीर (इन्द्र)	मनस्विनां	महापुरुषोंकी
प्रसथ्य एव	(मेरी सेनाको)	पादरजः प्रपत्स्ये	चरणरजकी शरण
	तितर-बितर करके		लूंगा (जहाँ महा-
	ही		पुरुष जाते हैं वहाँ
कुलिशेन	वज्र से		जाऊँगा' ॥१८॥
मे शिरः हर्ता	मेरा सिर काट लो		
तत्र भूत	तब तो प्राणियोंको		
	(अपने शरीरका)		

सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं

पुरः स्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ।

मा संशयिष्ठा न गदेव वज्रं

स्यान्निष्फलं कृपणार्थेव याच्ञा ॥१६॥

सुरेश कस्मात् न हिनोषि वज्रं पुरः स्थिते वैरिणि मयि अमोघं मा संशयिष्ठा न गदा इव वज्रं स्यात् निष्फलं कृपण अर्थ इव याच्ञा ॥१६॥

सुरेश	इन्द्र !	कृपण अर्थ	कृपण (पुरुष) से
पुरः स्थिते	सामने खड़े		धनकी
मयि वैरिणि	मुझ शत्रुपर	याच्ञा इव	याचनाके समान
अमोघं वज्रं	(अपना) अमोघ वज्र	गदा इव	(पहिले चलायी)
कस्मात् न	क्यों नहीं		गदाके समान
हिनोषि	चलाते,	वज्रं निष्फलं न वज्र निष्फल नहीं	
मा संशयिष्ठा	सन्देह मत करोकि	स्यात्	होगा ॥१६॥

नन्वेव वज्रस्तव शक्र तेजसा

हरेर्दधीचेस्तपसा च तेजितः ।

तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो

यतो हरिर्विजयः श्रीगुणास्ततः ॥२०॥

ननु एष वज्रः तव शक्र तेजसा हरेः दधीचेः तपसा च तेजितः तेन एव शत्रुं जहि विष्णु यन्त्रितः यतः हरिः विजयः श्रीः गुणाः ततः ॥२०॥

शक्र	इन्द्र !	तेजितः	तेजस्वी हुआ है,
ननु एष	निश्चय यह	विष्णु यन्त्रितः	विष्णु भगवान् से
तव वज्रः	तुम्हारा वज्र		प्रेरित (तुम)
हरेः तेजसा	श्री हरिके	तेन एव	उसी (वज्र) से ही
च दधीचेः तपसा	और दधीचि ऋषि-	शत्रुं जहि	(मुझ) शत्रुको
की तपस्यासे			मार दो,

यतः हरिः जिस पक्षमें श्रीहरि हैं | श्रोः गुणाः लक्ष्मी और सब गुण
ततः विजयः उसी पक्षमें विजय, | रहते हैं ॥२०॥

अहं समाधाय मनो यथाऽऽह
सङ्कूर्षणस्तच्चरणारविन्दे ।

त्वद्वज्ररंहोलुलितग्राम्यपाशो

गतिं मुनेर्ग्राम्यपर्विविद्धलोकः ॥२१॥

अहं समाधाय मनः यथा आह सङ्कूर्षणः तत् चरणारविन्दे त्वत् वज्र
रंहः लुलित ग्राम्यपाशः गतिं मुनेः ग्राम्यपर्विविद्ध लोकः ॥२१॥

सङ्कूर्षणः	सङ्कूर्षण भगवान्ने	त्वत् वज्र रंहः	तुम्हारे वज्रके वेगसे
यथा आह	जैसा आदेश किया है,	ग्राम्यपाशः	विषय-भोगरूपी फन्देके
तत्	उनके	लुलित	कट जानेसे
चरणारविन्दे	चरण-कमलोंमें	मुनेः गतिं	मुनि-जनोचित गति
अहं मनः	मैं मनको	अपर्विविद्ध लोकः	अनश्वर लोक
समाधाय	लगाकर	ग्राम्यपर्विविद्ध लोकः	जाऊंगा ॥२१॥

पुंसां किलैकान्तधियां स्वकानां

याः सम्पदो दिवि भूमौ रसायाम् ।

न राति यद् द्वेष उद्वेग आधि-

मदः कलिव्यसनं संप्रयासः ॥२२॥

पुंसां किल एकान्तधियां स्वकानां याः सम्पदः दिवि भूमौ रसायां
न राति यद् द्वेष उद्वेग आधिः मदः कलिः व्यसनं संप्रयासः ॥२२॥

किल	अहो,	याः दिवि भूमौ	जो स्वर्ग, पृथ्वी,
एकान्तधियां	अनन्य बुद्धि	रसायां	रसातलकी
स्वकानां पुंसां	अपने जनोको	सम्पदः	सम्पत्ति है
	(भगवान्)	न राति	नहीं देते,

यत्	जिस (सम्पत्ति) से	कलि: व्यसनं	झगड़ा, दुःख और
द्वेष उद्वेग	द्वेष, उद्विग्नता,	संप्रभासः	परिश्रम ही मिलता
आधि: मदः	चिन्ता, अभिमान,		है ॥२२॥

त्रैवर्गिकायासविधातमस्मत्-

पतिविधत्ते पुरुषस्य शक्र ।

ततोऽनुमेयो

भगवत्प्रसादो

यो दुर्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः ॥२३॥

त्रैवर्गिक आयास विधातं अस्मत् पतिः विधत्ते पुरुषस्य शक्र ततः
अनुमेयः भगवत् प्रसादः यः दुर्लभः अकिञ्चन गोचरः अन्यैः ॥२३॥

शक्र	इन्द्र !	ततः भगवत्	उससे भगवान्की
अस्मत् पतिः	हमारे स्वामी	प्रसादः अनुमेयः	कृपाका अनुमान
पुरुषस्य	(अपने) निज-जनके		करना चाहिए
त्रैवर्गिक	त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) के लिए	यः अकिञ्चन	जो (कृपा) अकिञ्चन
			(भक्तों) को
आयास	होनेवाले परिश्रमको	गोचरः	(ही) दीखती है
विधातं विधत्ते	नष्ट कर दिया करते हैं,	अन्यैः दुर्लभः	दूसरोंको दुर्लभ है
			॥२३॥

अहं हरे तव पादैकमूल-

दासानुदासो भवितास्मि भूयः ।

मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते

गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥२४॥

अहं हरे तव पाद एक मूल दास अनुदासः भविता अस्मि भूयः मनः
स्मरेत् आसुपतेः गुणान् ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः ॥२४॥

हरे	श्रीहरि !	भूयः	फिर (अगले जन्ममें)
तव पाद मूल	आपके श्रीचरणोंके		भी)
अनुदासः	अनन्य सेवकोंका		

एक दासः	एक सेवक	वाक् गृणीत	वाणी बोले
भविता अस्मि	हो जाऊँ	कायः	(मेरा) शरीर
आमुपतेः	प्राणबल्लभ !	कर्म करोतु	(आपकी सेवा) कार्य
ते गुणान्	आपके गुणोंको ही		करता रहे ॥२४॥
मनः स्मरेत्	(मेरा) मन स्मरण		
	करे,		

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं

न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।

न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा

समञ्जस त्वा विरह्य काङ्क्षे ॥२५॥

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यं न योगसिद्धिः अपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरह्य काङ्क्षे ॥२५॥

समञ्जस	सर्वसौभाग्यनिधे !	रसाधिपत्यं	सम्पूर्ण पृथ्वीका
त्वा विरह्य	आपसे वियुक्त		साम्राज्य,
	होकर (मैं)	योगसिद्धिः	योगकी सिद्धियाँ
नाकपृष्ठं न	स्वर्ग नहीं,	वा अपुनर्भवं	अथवा मोक्ष
पारमेष्ठ्यं च न ब्रह्मलोक भी नहीं		न काङ्क्षे	नहीं चाहता ॥२५॥

अजातपक्षा इव मातरं खगाः

स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।

प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा

मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥२६॥

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः प्रियं प्रिया इव व्युषितं विषण्णा मनः अरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥२६॥

अजातपक्षा	जिनके पंख नहीं	मातरं इव	जैसे माँकी (प्रतीक्षा
	निकले हैं वे		करते हैं) उस प्रकार,
खगाः	पक्षिशावक	क्षुधार्ताः	भूख से व्याकुल

वत्सतराः	नन्हे बछड़े	प्रिया इव	पत्नीकी भाँति
यथा स्तन्यं	जैसे दूध पीनेके लिए	अरविन्दाक्ष	कमलनयन !
	(उत्सुक) रहते हैं,	मनः त्वां	(मेरा) मन आपके
व्युषितं प्रियं	प्रवासमें गये प्रिय-	दिदृक्षते	दर्शनके लिए (समु-
	तमके लिए		त्सुक) रहो ॥२६॥
विषण्णा	खिन्ना		

ममोत्तमश्लोकजनेषु

सख्यं

संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ।

त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहे-

ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥२७॥

मम उत्तम श्लोक जनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः त्वत्
मायया आत्म आत्मज दारगेहेषु आसक्त चित्तस्य न नाथ भूयात् ॥२७॥

उत्तम	पवित्र	आत्म आत्मज	शरीर, पुत्र,
श्लोक नाथ	कीर्तिप्रभो !	दारगेहेषु	स्त्री घरमें
त्वत् मायया	आपकी मायासे	आसक्त चित्तस्य	आसक्त हृदय
स्वकर्मभिः	अपने कर्मोंके अनुसार	जनेषु	लोगों से
संसारचक्रे	संसार-चक्रमें	मम सख्यं	मेरी मित्रता
भ्रमतः	भटकते हुए	न भूयात्	न हो ॥२७॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

श्रीशूक उवाच—*

एवं जिहासुर्नृप देहमाजौ
मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः ।
शूलं प्रगृह्याभ्यपतत् सुरेन्द्रं
यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥ १ ॥

एवं जिहासुः नृप देहं आजौ मृत्युं वरं विजयात् मन्यमानः शूलं प्रगृह्य
अभ्यपतत् सुरेन्द्रं यथा महापुरुषं कैटभः अप्सु ॥१॥

नृप	राजन् !	यथा अप्सु	जैसे (प्रलय समुद्र)
एवं आजौ	इस प्रकार युद्ध		जलमें
	भूमिमें	कैटभः	असुर कैटभ
देहं जिहासुः	शरीर त्यागकी	महापुरुषं	पुरुषोत्तम नारायण
	इच्छा करता,		पर (दौड़ा था)
विजयात्	विजय से	शूलं प्रगृह्य	त्रिशूल लेकर
मृत्युं वरं	मृत्युको श्रेष्ठ	सुरेन्द्रं	इन्द्रपर
मन्यमानः	मानता हुआ	अभ्यपतत्	दूट पड़ा ॥१॥

ततो युगान्ताग्निकठोरजिह्व-

माविध्य शूलं तरसासुरेन्द्रः ।

क्षिप्त्वा महेन्द्राय विनद्य वीरो

हतोऽसि पापेति रुषा जगाद ॥ २ ॥

* अन्य प्रतियोंमें यह 'ऋषिरुवाच' है ।

ततः युग अन्त अग्निकठोर जिह्वं आविध्य शूलं तरसा असुरेन्द्रः
क्षिप्त्वा महेन्द्राय विनद्य वीरः हतः असि पाप इति रुषा जगाद ॥२॥

ततः युग अन्त	तत्र प्रलयकालीन	विनद्य	गर्जना करके
अग्निकठोर	अग्निके समान	रुषा	क्रोध से
जिह्वं	तीक्ष्ण नोकों वाला	इति जगाद	यह बोला—
शूलं	त्रिशूल	पाप हतः असि	‘पापी इन्द्र ! (इस
तरसा आविध्य	वेग से घुमाकर		बार तू) मारा
महेन्द्राय क्षिप्त्वा	इन्द्रपर फेंककर		गया ।’ ॥२॥
वीरः असुरेन्द्रः	वीर अमुरराज वृत्र		

ख आपतत् तद् विचलद् ग्रहोल्कव-

त्रिरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमजातविल्कवः ।

वज्रेण वज्री शतपर्वणाच्छिनद्

भुजं च तस्योरगराजभोगम् ॥ ३ ॥

ख आपतत् तद् विचलत् ग्रह उल्कवत् निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यं अजात-
विल्कवः वज्रेण वज्री शतपर्वणा अच्छिनत् भुजं च तस्य उरगराज
भोगम् ॥३॥

ग्रह उल्कवत्	ग्रह और उल्काके समान	वज्री	इन्द्रने
विचलत्	वेग से चलता	शतपर्वणा	सौ गांठवाले
दुष्प्रेक्ष्यं	(चमकके कारण) दुष्प्रेक्ष्य	वज्रेण	वज्र से
आपतत्	(त्रिशूलको) अपनी ओर आता	तत् तस्य	उस (त्रिशूल)को और उस (वृत्र)की
निरीक्ष्य	देखकर	उरगराज भोगं	सर्पराजके शरीरकी भाँति
अजातविल्कवः	व्याकुलता उत्पन्न हुए बिना	भुजं च	भुजाको भी
		अच्छिनत्	काट दिया ॥३॥

छिन्नैकबाहुः परिधेन वृत्रः

संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रम् ।

हनौ

तताडेन्द्रमथामरेभं

वज्रं च हस्तान्यपतन्मघोनः ॥ ४ ॥

छिन्न एकबाहुः परिधेन वृत्रः संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रं हनौ तताड इन्द्रं अथ अमर इभं वज्रं च हस्तात् न्यपतत् मघोनः ॥४॥

छिन्न एकबाहुः	एक भुजा कट जाने- पर	अमर इभं	देवताओंके हाथी (ऐरावत)
संरब्ध वृत्रः	क्रोधमें भरे वृत्रने	च तताड	को भी मारा
गृहीतवज्रं	वज्र लिये		(जिससे)
इन्द्रं आसाद्य	इन्द्रके पास पहुँचकर	मघोनः हस्तात्	इन्द्रके हाथसे
परिधेन	परिघ (डंडे) से	वज्रं न्यपतत्	वज्र गिर पड़ा ॥४॥
हनौ अथ	ठुड्ढीपर और		

वृत्रस्य कर्मातिमहाद्भुतं तत्

सुरासुराश्चारणसिद्धसङ्घाः ।

अपूजयंस्तत्

पुरुहूतसंकटं

निरीक्ष्य हा हेति विचुक्रुशुभृशम् ॥५॥

वृत्रस्य कर्म अति महाद्भुतं तत् सुर असुराः चारण सिद्ध सङ्घाः अपूजयन् तत् पुरुहूत संकटं निरीक्ष्य हा हा इति विचुक्रुशुः भृशम् ॥५॥

वृत्रस्य तत्	वृत्रके उस	तत् पुरुहूत	उस इन्द्रके
अति महाद्भुतं	अत्यन्त अद्भुत	संकटं निरीक्ष्य	संकटको देखकर
कर्म	कर्मकी	हा हा इति	'हाय ! हाय ! इस
सुर असुराः	देवता, असुर,		प्रकार
चारण सिद्ध	चारण, सिद्ध	भृशं विचुक्रुशुः	बार-बार चिल्लाने
संघाः	समूहने		लगे ॥५॥
अपूजयन्	पूजा (प्रशंसा) की		
	और		

इन्द्रो न वज्रं जगृहे विलज्जित-

श्च्युतं स्वहस्तादरिसन्निधौ पुनः ।

तमाह वृत्रो हर आत्तवज्रो

जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥ ६ ॥

इन्द्रः न वज्रं जगृहे विलज्जितः च्युतं स्वहस्तात् अरि सन्निधौ
पुनः तं आह वृत्रः हर आत्तवज्रः जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥६॥

विलज्जितः अत्यन्त लज्जित
इन्द्रः इन्द्रने
स्वहस्तात् अपने हाथसे
च्युतं पुनः गिरे हुए, फिर
अरि सन्निधौ शत्रुके समीप पड़े
वज्रं न जगृहे वज्रको नहीं उठाया

तं वृत्रः आह उनसे वृत्रने कहा-
हर आत्तवज्रः 'इन्द्र ! वज्र उठाकर
स्वशत्रुं जहि अपने शत्रुको (मुझे)
मार दो
विषादकालः न यह विषाद करनेका
समय नहीं है' ॥६॥

युयुत्सतां कुत्रचिद्वाततायिनां

जयः सदैकत्र न वै परात्मनाम् ।

विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं

सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥ ७ ॥

युयुत्सतां कुत्र चित् आततायिनां जयः सदा एकत्र न वै परात्मनां
विना एकं उत्पत्ति लय स्थिति ईश्वरं सर्वज्ञं आद्यं पुरुषं सनातनम् ॥७॥

उत्पत्ति स्थिति (जगतकी) सृष्टि,
स्थिति
लय एकं ईश्वरं प्रलयमें एकमात्र
समर्थ
सर्वज्ञं सनातनं सर्वज्ञ, सनातन
आद्यं पुरुषं आदिपुरुषको
विना छोड़कर

परात्मनां देहाभिमानि
युयुत्सतां परस्पर युद्ध करते
आततायिनां आततायियोंकी
कुत्र चित् जयः कहीं विजय होती है
वै सदा एकत्र न निश्चय सदा सब
कहीं नहीं होती ॥७॥

लोकाः सपाला यस्येमे श्वसन्ति विवशा वशे ।

द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम् ॥ ८ ॥

लोकाः सपालाः यस्य इमे श्वसन्ति विवशा वशे द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम् ॥८॥

इमे सपालाः	ये लोकपालोंके साथ	विवशा	श्वसन्ति विवश होकर श्वास
लोकाः	सब लोक		लेते (जीते) हैं
शिचा बद्धाः	जालमें बँधे	इह स काल	इस (जय-पराजय)
द्विजा इव	पक्षियोंकी भांति		में वह काल ही
यस्य वशे	जिसके वशमें	कारणं	कारण है ॥८॥

ओजः सहो बलं प्राणममृतं मृत्युमेव च ।

तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडम् ॥ ९ ॥

ओजः सहः बलं प्राणं अमृतं मृत्युं एव च तं अज्ञाय जनः हेतुं आत्मानं मन्यते जडम् ॥९॥

ओजः सहः	मनोबल, इन्द्रियबल,	जनः जडं हेतुं	लोग जड़ (शरीर)
बलं प्राणं	शरीरबल, प्राण,		को कारण
अमृतं च मृत्युं	जीवन और मृत्युके	मन्यते	मानते हैं ॥९॥
एव	भी (रहते)		
तं अज्ञाय	उस (काल) को न		
	जानकर		

✓ यथा दारुमयो नारी यथा यन्त्रमयो मृगः ।

एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः ॥१०॥

यथा दारुमयो नारी यथा यन्त्रमयः मृगः एवं भूतानि मघवन् ईश तन्त्राणि विद्धि भोः ॥१०॥

भोः मघवन्	हे इन्द्र !	एवं भूतानि	ऐसे ही प्राणियोंको
यथा	जैसे	ईश तन्त्राणि	ईश्वरके वशमें
दारुमयी नारी	कठपुतली,	विद्धि	समझो ॥१०॥
यथा यन्त्रमयः	जैसे यन्त्रका बना		
मृगः	हिरन हो		

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेन्द्रियाशयाः ।

शक्नुवन्त्यस्य सर्गादौ न विना यदनुग्रहात् ॥११॥

पुरुषः प्रकृतिः व्यक्तं आत्मा भूत इन्द्रिय आशयाः शक्नुवन्ति अस्य
सर्ग आदौ न विना यत् अनुग्रहात् ॥११॥

यत् अनुग्रहात्	जिसके अनुग्रहके	आशयः	अन्तःकरण
विना	विना	सर्ग आदौ	सृष्टि (स्थितिलय)
पुरुषः प्रकृतिः	पुरुष (जीव), प्रकृति,		आदि
व्यक्त आत्मा	महत्त्व, अहंकार	न शक्नुवन्ति	नहीं कर सकते
भूत इन्द्रिय	पंचभूत, इन्द्रियां,		॥१॥

अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम् ।

भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम् ॥१२॥

अविद्वान् एवं आत्मानं मन्यते अनीशं ईश्वरं भूतैः सृजति भूतानि
ग्रसते तानि तैः स्वयम् ॥१२॥

एवं अविद्वान्	इस (तथ्य) को न	भूतानि सृजति	प्राणियोंकी सृष्टि
	जानने वाला	तानि तैः	उनकेहो द्वारा उनको
अनीशं आत्मानं	परतन्त्र जीवको	स्वयं ग्रसते	स्वयं खा लेता है
ईश्वरं मन्यते	समर्थ मान लेता है,		॥१२॥
भूतैः	(वह परमात्मा)		
	प्राणियोंके द्वारा		

आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशेषः पुरुषस्य याः ।

भवन्त्येव हि तत्काले यथानिच्छोर्विपर्ययाः ॥१३॥

आयुः श्रीः कीर्तिः ऐश्वर्यं आशिषः पुरुषस्य याः भवन्ति एव हि तत्
काले यथा अनिच्छोः विपर्ययाः ॥१३॥

हि क्योँकि
यथा अनिच्छोः जैसे इच्छा न होने-
पर भी
विपर्ययाः उलटी स्थिति आती
है,
काले वैसे ही समय आने-
पर

पुरुषस्य याः पुरुषकी जो
आशिषः कामनाएँ हैं
आयुः श्रीः आयु, लक्ष्मी,
कीर्तिः ऐश्वर्यं यश, ऐश्वर्य
तत् भवन्ति एव वे भी होते ही हैं
॥१३॥

तस्मादकीर्तियशसोर्जयापजययोरपि ।

समः स्यात् सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥१४॥

तस्मात् अकीर्तियशसोः जय अपजयोः अपि समः स्यात् सुख दुःखाभ्यां
मृत्युः जीवितयोः तथा ॥१४॥

तस्मात् इसलिए
अकीर्तियशसः अयश और यशमें,
जयः अपजयोः जय-पराजयमें
अपि भी,

तथा मृत्युः और मरण-
जीवितयोः जीवनमें
सुख दुःखाभ्यां सुख-दुःखके प्रति
समः स्यात् समान रहे ॥१४॥

सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ।

तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते ॥१५॥

सत्त्वं रजः तम इति प्रकृतेः न आत्मनः गुणाः तत्र साक्षिणम् आत्मानं
यः वेद न स बध्यते ॥१५॥

सत्त्वं रजः तम सत्त्व, रज तम,
इति प्रकृतेः ये प्रकृतिके
गुणाः गुण हैं,
न आत्मनः आत्माके नहीं,
तत्र साक्षिण इनमें तटस्थ दृष्टा
आत्मानं आत्माको

यः वेद जो जानता है
न स बध्यते वह कर्म-बन्धनमें
नहीं पड़ता ॥१५॥

पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे ।

घटमानं यथाशक्ति तव प्राणजिहीर्षया ॥१६॥

पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्ण आयुध भुजे मृधे घटमानं यथाशक्ति तव प्राण जिहीर्षया ॥१६॥

शक्र	इन्द्र !	जिहीर्षया	लेनेके लिए
मृधे निर्जितं	युद्धमें विजितप्राय	यथाशक्ति	यथाशक्ति
आयुध वृक्ण	तुम्हारे अस्त्रसे कटी	घटमानं	प्रयत्न करते
भुजं	भुजा (होनेपर भी)	मां पश्य	मुझे देखो ॥१६॥
तव प्राण	तुम्हारा प्राण		

प्राणग्लहोऽयं समर इष्वक्षो वाहनासनः ।

अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः ॥१७॥

प्राणग्लहः अयं समरः इषु अक्षः वाहन आसनः अत्र न ज्ञायते अमुष्य जयः अमुष्यः पराजयः ॥१७॥

अयं समरः	यह युद्ध	अत्र अमुष्य	इसमें अमुककी
प्राणग्लहः	प्राणकी बाजीका	जयः	विजय
	(जुआ) है,	अमुष्य पराजयः	अमुककी पराजय
इषु अक्षः	(इसमें) वाण पासे	न ज्ञायते	नहीं जानी जा
	हैं,		सकती ॥१७॥
वाहन आसनः	वाहन चौसर हैं,		

श्रीशुक उवाच—

इन्द्रो वृत्रवचः श्रुत्वा गतालीकमपूजयत् ।

गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ॥१८॥

इन्द्रः वृत्रवचः श्रुत्वा गत अलीकं अपूजयत् गृहीत वज्रः प्रहसन् तं आह गतविस्मयः ॥१८॥

गत अलीकं	निष्कपट	गृहीत वज्रः	फिर वजू उठाकर
वृत्रवचः श्रुत्वा	वृत्रासुरके बचन	गतविस्मयः	बिना आश्चर्यके
	सुनकर	प्रहसन्	हँसते हुए
इन्द्रः अपूजयत्	इन्द्रने उसका आदर	तं आह	उससे बोले ॥१८॥
	किया,		

इति उवाच—

अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी ।

भक्तः सर्वात्मनाऽऽत्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥१९॥

अहो दानव सिद्धः असि यस्य ते मतिः ईदृशी भक्तः सर्वात्मना आत्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥१९॥

अहो दानव	अहो दानवराज !	आत्मानं सुहृदं	अपने (सच्चे) सुहृद
सिद्धः असि	(तुम तो) सिद्ध हो,	जगदीश्वरं	जगदीश्वरके
यस्य ते	जो तुम्हारी	सर्वात्मना भक्तः	सम्पूर्ण हृदयसे
ईदृशी मतिः	ऐसी बुद्धि है,		भक्त हो ॥१९॥

भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् ।

यद् विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥२०॥

भवान् अतार्षीत् मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीं यत् विहाय आसुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥२०॥

भवान्	आपने	यत् आसुरं	क्योंकि (अपने) असुर
जनमोहिनीं	लोगोंको मोहमें	भावं	स्वभावको
	डालने वाली	विहाय	छोड़कर
वैष्णवीं मायां	भगवान्की मायाको	महापुरुषतां गतः	महापुरुष हो गये
वै अतार्षीत्	निश्चय पारकर लिया,		हो ॥२०॥

खल्विदं महदाश्चर्यं यद् रजःप्रकृतेस्तव ।

वासुदेवे भगवति सत्त्वात्मनि दृढा मतिः ॥२१॥

खलु इदं महत् आश्चर्यं यत् रजः प्रकृतेः तव वासुदेवे भगवति सत्त्वं
आत्मनि दृढा मतिः ॥२१॥

खलु इदं अवश्य यह
महत् आश्चर्यं महान् आश्चर्यकी
बात है
यत् रजः प्रकृतेः जो रजोगुणी
स्वभाव

तव सत्त्वं तुम्हारी सत्त्वं
आत्मनि स्वरूप
भगवति वासुदेवे भगवान् वासुदेवमें
दृढा मतिः दृढ़ बुद्धि लगी है
॥२१॥

यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे ।

विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥२२॥

यस्य भक्तिः भगवति हरौ निःश्रेयसि ईश्वरे विक्रीडतः अमृत
अम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातक उदकैः ॥२२॥

निःश्रेयसि परम कल्याणके
ईश्वरे स्वामी
भगवति हरौ भगवान् श्रीहरिमें
यस्य भक्तिः जिसकी भक्ति है
अमृत अम्भोधौ (उस) अमृत-समुद्रमें

विक्रीडतः खेलते हुएको
क्षुद्रैः खातक तुच्छ गड़कोंके
उदकैः किं जलसे क्या प्रयोजन
॥२२॥

श्रीशुक उवाच

इति ब्रुवाणावन्योन्यं धर्मजिज्ञासया नृप ।

युयुधाते महावीर्याविन्द्रवृत्रौ युधाम्पती ॥२३॥

इति ब्रुवाणाः अन्यः अन्यं धर्मजिज्ञासया नृप युयुधाते महावीर्याः
इन्द्रवृत्रौ युधाम्पती ॥२३॥

नृप राजन् !
धर्मजिज्ञासया धर्मको जाननेकी
इच्छासे
अन्यः अन्यं एक दूसरेसे
इति ब्रुवाणः इस प्रकार कहते
हुए

युधाम्पती योद्धाश्रेष्ठ
महावीर्याः परम-पराक्रमी
इन्द्रवृत्रौ इन्द्र और वृत्र
युयुधाते युद्ध करने लगे
॥२३॥

आविध्य परिघं वृत्रः कार्णायिसमरिन्दमः ।

इन्द्राय प्राहिणोद् घोरं वामहस्तेन मारिष ॥२४॥

आविध्य परिघं वृत्रः कार्ण आयसं अरिन्दमः इन्द्राय प्राहिणोत्
घोरं वाम हस्तेन मारिष ॥२४॥

मारिष	परीक्षित !	घोरं परिघं	भयानक परिघ(दण्ड)
अरिन्दमः	शत्रुदमन	आविध्य	उठाकर
वृत्रः	वृत्रने	वाम हस्तेन	बायें हाथसे
कार्ण आयसं	कसे लोहे (फौलाद)	इन्द्राय	इन्द्रपर
	का बना	प्राहिणोत्	प्रहार किया ॥२४॥

स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभोपमम् ।

चिच्छेद युगपद् देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥२५॥

स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभ उपमं चिच्छेद युगपत् देवः वज्रेण
शतपर्वणा ॥२५॥

स तु देवः	उन देवराजने तो	करं च	(उसके) हाथको भी
शतपर्वणा	सौ गाँठ वाले	युगपत्	एक साथ
वज्रेण	वज्रसे	चिच्छेद	काट दिया ॥२५॥
वृत्रस्य परिघं	वृत्रके परिघको		
करभ उपमं	और हाथीकी सूँड़के समान		

दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तलवोऽसुरः ।

छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खाद् भ्रष्टो वज्रिणा हतः ॥२६॥

दोर्भ्या उत्कृत्त मूलाभ्यां बभौ रक्तलवः असुरः छिन्नपक्षः यथा
गोत्रः खात् भ्रष्टः वज्रिणा हतः ॥२६॥

उत्कृत्त मूलाभ्यां	जड़से कटी हुई	रक्तलवः बभौ	रक्त बहाता ऐसा
दोर्भ्या असुरः	भुजाओंसे वृत्रासुर		लगा

यथा वज्रिणा जैसे इन्द्र द्वारा
हतः मारा गया
छिन्नपक्षः पंख कटा

खात् भ्रष्टः गोत्रः आकाशसे गिरा
पर्वत हो ॥२६॥

कृत्वाधरां हनुं भूमौ दैत्यो दिव्युत्तरां हनुम् ।

नभोगम्भीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया ॥२७॥

कृत्वा अधरां हनुं भूमौ दैत्यः दिवि उत्तरां हनुं नभः गम्भीर वक्त्रेण
लेलिहः उल्बण जिह्वया ॥२७॥

दैत्यः वृत्वासुर
अधरां हनुं नीचेको ठोढ़ी
भूमौ पृथ्वीसे तथा
उत्तरां हनुं ऊपरका ओष्ठ
दिवि कृत्वा स्वर्गसे लगाकर

गम्भीर वक्त्रेण गहरे मुखमें स्थित
उल्बण भयावनी
जिह्वया जीभसे
नभः लेलिहः आकाशको चाटता
हुआ ॥२७॥

दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम् ।

अतिमात्रमहाकाय आक्षिपंस्तरसा गिरीन् ॥२८॥

दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिः ग्रसन्त इव जगत्त्रयं अतिमात्र महाकाय
आक्षिपन् तरसा गिरीन् ॥२८॥

कालकल्पाभि कालके समान
दंष्ट्राभिः दाँतोंसे
जगत्त्रयं त्रिभुवनको
ग्रसन्त इव निगलता हुआ-सा
अतिमात्र बहुत ही
महाकाय बड़े शरीरवाला वह

तरसा गिरीन् अपने वेगसे पर्वतों-
को
आक्षिपन् उलटता हुआ
॥२८॥

गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन् महीम् ।

जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सहवाहनम् ॥२९॥

गिरिराट् पादचारी इव पद्भ्यां निर्जरयन् महीं जग्रास स समासाद्य
वज्रिणं सहवाहनम् ॥२६॥

पादचारी	पैरोसे चलनेवाले	सहवाहनं	वाहन (ऐरावत)के
गिरिराट् इव	पर्वतराजके समान		साथ
पद्भ्यां महीं	पैरोसे पृथ्वीको	वज्रिणं जग्रास	इन्द्रको निगल लिया
निर्जरयन्	रौंदता		॥२६॥
स समासाद्य	उसने समीप पहुँच- कर		

महाप्राणो महावीर्यो महासर्प इव द्विपम् ।
वृत्रग्रस्तं तमालक्ष्य सप्रजापतयः सुराः ।
हा कष्टमिति निर्विण्णाश्चुक्रुशुः समहर्षयः ॥३०॥

महाप्राणः महावीर्यः महासर्प इव द्विपं वृत्रग्रस्तं तं आलक्ष्य
सप्रजापतयः सुराः हा कष्टं इति निर्विण्णाः चुक्रुशुः समहर्षयः ॥३०॥

महाप्राणः	महापराक्रमी	आलक्ष्य	देखकर
महावीर्यः	महाबलवान	सप्रजापतयः	प्रजापतियोंके साथ
महासर्प	अजगरकी	सुराः	देवता
इव	भाँति	हा कष्टं	‘हाय-हाय बड़ा अनर्थ हुआ’
द्विपं	ऐरावत हाथीको	इति	इस प्रकार
तं	उन (इन्द्र) को	समहर्षयः	महर्षियोंके साथ
वृत्रग्रस्त	वृत्र द्वारा निगला गया	चुक्रुशुः	चित्लाने लगे ॥३०॥

निगीर्णोऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः ।
महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेन च ॥३१॥

निगीर्णः अपि असुरेन्द्रेण न ममार उदरं गतः महापुरुष सन्नद्धः
योगमाया बलेन च ॥३१॥

असुरेन्द्रेण	असुरराज (वृत्र) द्वारा	सन्नद्धः	कवच धारण करनेसे
निगोर्णः अपि	निगल लिए जानेपर भी	च योगमाया	तथा योगमायाके
उदरं गतः	(उसके) पेटमें पहुँचकर	बलेन	बलसे
महापुरुष	भगवान नारायण रूपी	न ममार	(इन्द्र) मरे नहीं ॥३१॥

भित्त्वा वज्रेण तत्कुक्षि निष्क्रम्य बलभित् विभुः ।

उच्चकर्त शिरः शत्रोर्गिरिशृङ्गमिवौजसा ॥३२॥

भित्त्वा वज्रेण तत् कुक्षि निष्क्रम्य बलभित् विभुः उच्चकर्त शिरः
शत्रोः गिरिशृङ्गं इव ओजसा ॥३२॥

तत् कुक्षि	उसकी कोख	गिरिशृङ्ग इव	पर्वत शिखरके
वज्रेण भित्त्वा	वज्रसे फाड़कर		समान
बलभित्	बल नामक दैत्यको मारनेवाले	शत्रोः शिरः	शत्रुके सिरको
विभुः	समर्थ इन्द्र	ओजसा	उत्साहसे
निष्क्रम्य	(वहांसे) निकलकर	उच्चकर्त	काट डाला ॥३२॥

वज्रस्तु तत्कन्धरमाशुवेगः

कृन्तन् समन्तात् परिवर्तमानः ।

न्यपातयत् तावदहर्गणेन

यो ज्योतिषामयने वार्त्तहत्ये ॥३३॥

वज्रः तु तत् कन्धरं आशुवेगः कृन्तन् समन्तात् परिवर्तमानः
न्यपातयत् तावत् अहर्गणेन यः ज्योतिषां अयने वार्त्तहत्ये ॥३३॥

आशुवेगः	तीव्र-वेग	यः ज्योतिषां	जो सूर्यादि ग्रहोंका
वज्रः तु	वज्रने तो	अयने	उत्तरायण और
समन्तात्	चारों ओरसे		दक्षिणायन) हैं
तत् कन्धरं	उसके कण्ठको	तावत् अहर्गणेन	उतने दिन (एक
कृन्तन्	काटते हुए		वर्ष)
परिवर्तमानः	घूमते रहकर	वार्त्तहत्ये	वृत्त-वधमें लगे
न्यपातयत्	गिरा दिया		॥३३॥

तदा च खे दुन्दुभयो विनेदु-

गन्धर्वसिद्धाः समर्हषिसङ्गाः ।

वार्त्तघ्नलिङ्गैस्तमभिष्टुवाना

मन्त्रैर्मुदा कुसुमैरभ्यवर्षन् ॥३४॥

तदा च खे दुन्दुभयः विनेदुः गन्धर्वसिद्धाः समर्हषिसङ्गाः वार्त्तघ्न
लिङ्गैः तं अभिष्टुवाना मन्त्रैः मुदा कुसुमैः अभ्यवर्षन् ॥३४॥

तदा च खे	उस समय तो	मन्त्रैः	मन्त्रोंसे
	आकाशमें	तं	उन
दुन्दुभयः	दुन्दुभियां	अभिष्टुवाना	इन्द्रकी स्तुति करते
विनेदु	बजने लगीं		हुए
गन्धर्वसिद्धाः	गन्धर्व और सिद्ध	मुदा कुसुमैः	प्रसन्नतासे फूलोंकी
	लोग	अभ्यवर्षन्	वर्षा करने लगे
समर्हषिसङ्गाः	महर्षि समूहके		॥३४॥
	साथ		
वार्त्तघ्न लिङ्गैः	वृत्त-वधके पराक्रम		
	सूचक		

वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्तमात्मज्योतिररिन्दम ।

पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ॥३५॥

वृत्रस्य देहात् निष्क्रान्तं आत्मज्योतिः अरिन्दम पश्यतां सर्वलोकानां
अलोकं समपद्यत ॥३५॥

अरिन्दय	शत्रु-दमन	पश्यतां	देखते हुए
	परीक्षित !	अलोकं	लोकातीत भगवान्-
वृत्रस्य देहात्	वृत्र के शरीरसे		में
निष्क्रान्तं	निकली	समपद्यत	लीन हो गयी
आत्मज्योति	आत्मज्योति		॥३५॥
सर्वलोकानां	सब लोगोंके		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे वृत्रवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच—

वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद ।
सपाला ह्यभवन् सद्यो विज्वरा निर्वृतेन्द्रियः ॥ १ ॥

वृत्रे हते त्रयः लोका विना शक्रेण भूरिद सपाला हि अभवन् सद्यः
विज्वरा निर्वृत इन्द्रियः ॥१॥

भूरिद	महादानी परीक्षित !	त्रयः लोका	तीनों लोक
वृत्रे हते	वृत्रके मारे जानेपर	सद्यः	तत्काल
विनाशक्रेण	इन्द्रको छोड़कर	विज्वरा	निश्चिन्त
सपाला हि	लोकापालोंके साथ	निर्वृत इन्द्रियः	प्रसन्नेन्द्रिय
	ही	अभवन्	हो गये ॥१॥

देवर्षिपितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयम् ।
प्रतिजग्मुः स्वधिष्यानि ब्रह्मेशेन्द्रादयस्ततः ॥ २ ॥

देव ऋषि पितृ भूतानि दैत्या देव अनुगाः स्वयं प्रतिजग्मुः
स्वधिष्यानि ब्रह्मा ईश इन्द्र आदयः ततः ॥२॥

देव ऋषि पितृ	देवता, ऋषि, पितर,	आदयः ततः	आदि वहाँसे
भूतानि दैत्या	भूतगण, दैत्य,	स्वधिष्यानि	अपने स्थानोंको
देव अनुगाः	देवताओंके अनुचर	स्वयं	(बिना पूछे)अपने आप
	(गन्धर्वादि)	प्रतिजग्मुः	लौट गये ॥२॥
ब्रह्मा ईश इन्द्र	ब्रह्मा, शिव, इन्द्र		

राजोवाच-

इन्द्रस्यानिर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने ।

येनासन् सुखिनो देवा हरेर्दुःखंकुतोऽभवत् ॥ ३ ॥

इन्द्रस्य अनिर्वृतेः हेतुं श्रोतुं इच्छामि भो मुने येन आसन् सुखिनः देवा
हरेः दुःखं कुतः अभवत् ॥३॥

भो मुने हे महामुनि !
इन्द्रस्य इन्द्रकी
अनिर्वृतेः अप्रसन्नताका
हेतुं श्रोतुं कारण सुनना
इच्छामि चाहता हूँ,

येन देवा जिस(घटना)से देवता
सुखिनः आसन् सुखी हुए
हरेः दुःखं (उसीसे)इन्द्रको दुःख
कुतः अभवत् कैसे हो गया ?
॥३॥

श्रीशुक उवाच-

वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ।

तद्वधायार्थयन्निन्द्रं नेच्छद् भीतो बृहद्वधात् ॥ ४ ॥

वृत्रविक्रम संविग्नाः सर्वे देवाः सह ऋषिभिः तत् वधाय अर्थयन्
इन्द्रं न इच्छत् भीतः बृहत् वधात् ॥४॥

वृत्रविक्रम वृत्रके पराक्रमसे
संविग्नाः अत्यन्त उद्विग्न
होकर
सह ऋषिभिः ऋषियोंके साथ
सर्वे देवाः सब देवता
तत् वधाय उसको मारनेके लिए

इन्द्रं अर्थयन् इन्द्रसे प्रार्थना करने
लगे
बृहत् वधात् किन्तु ब्रह्महत्यासे
भीतः डरकर
न इच्छत् (उन्होंने मारना)
नहीं चाहा ॥४॥

इन्द्र उवाच-

स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् ।

विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्व माज्मर्यहम् ॥ ५ ॥

स्त्री भू जल द्रुमैः एनः विश्वरूप वध उद्भवं विभक्तं अनुगृह्णतुभिः
वृत्र हत्यां क्व माज्म्यं अहं ॥५॥

विश्वरूप	विश्वरूपके	द्रुमैः विभक्तं	वृक्षोने बाँट लिया,
वध उद्भवं	वधसे उत्पन्न	वृत्र हत्यां	(अब) वृत्रकी हत्या-
एनः	पाप		को
अनुगृह्णतुभिः	कृपा करके	अहं क्व	मैं कैसे
स्त्री भू जल	स्त्री, भूमि, जल,	माज्म्यं	छुड़ाऊँगा ॥५॥

श्रीशुक उवाच-

ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेन्द्रमिदमब्रुवन् ।

ऋषयः तत् उपाकर्ण्य महेन्द्रं इदं अब्रुवन् ।

तत् उपाकर्ण्य	यह सुनकर	इदं अब्रुवन्	यह कहा—
ऋषयः महेन्द्रं	ऋषियोंने इन्द्रसे		

ऋषय ऊचुः—*

याजयिष्याम भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥ ६ ॥

याजयिष्यामि भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥६॥

ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण	याजयिष्यामि	(हम तुमसे) यजन
मा स्म भैः	(इससे) डरो मत,		करा देंगे ॥६॥
हयमेधेन	अश्वमेध-यज्ञ द्वारा		

हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ।

इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्षयसेऽपि जगद्वधात् ॥ ७ ॥

हयमेधेन पुरुषं परमात्मानं ईश्वरं इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्षयसे अपि
जगत् वधात् ॥७॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

हयमेधेन	अश्वमेध-यज्ञ द्वारा	इष्ट्वा	आराधना करके
पुरुषं ईश्वरं	परम पुरुष, सर्व- समर्थ,	जगत् वधात्	सारे संसारके वधसे
परमात्मानं	परमात्मा	अपि	भी
नारायणं देवं	नारायणदेवकी	मोक्ष्यसे	छूट जाओगे ॥७॥

✓ ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाघवान् ।

श्वादः पुल्कसको वापि शुद्धधरेन् यस्य कीर्तनात् ॥८॥

ब्रह्महा पितृहा गोघ्नः मातृहा आचार्यहा अघवान् श्वादः पुल्कसकः
वा अपि शुद्धधरेन् यस्य कीर्तनात् ॥८॥

यस्य कीर्तनात्	जिनके (नामका) कीर्तन करनेसे	आचार्यहा	आचार्यको मारने- वाला
ब्रह्महा	ब्रह्म-हत्यारा	वा अघवान्	अथवा पापी
पितृहा	पिताको मारनेवाला	श्वादः	चाण्डाल
गोघ्नः	गौ-हत्या करनेवाला	पुल्कसकः अपि	कसाई भी
मातृहा	माताकी हत्या करनेवाला	शुद्धधरेन्	शुद्ध हो जाते हैं ॥८॥

तमश्वमेधेन

महामखेन

श्रद्धान्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन ।

हत्वापि स ब्रह्म चराचरं त्वं

न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण ॥ ९ ॥

तं अश्वमेधेन महामखेन श्रद्धा अन्वितः अस्माभिः अनुष्ठितेन हत्वा
अपि स ब्रह्म चर अचरं त्वं न लिप्यसे किं खल निग्रहेण ॥९॥

श्रद्धा अन्वितः	श्रद्धा सहित	अश्वमेधेन	अश्वमेध द्वारा
अस्माभिः	हम लोगों द्वारा	तं अनुष्ठितेन	उन (नारायणका)
महामखेन	महायज्ञ		अनुष्ठान करके

त्वं स ब्रह्म	तुम ब्रह्माके साथ	खल निग्रहेण किं (फिर) दुष्ट-दलन-
चर अचरं	सब जंगम-स्थावर	की तो बात ही
	(संसार) को	क्या ॥६॥
हत्वा अपि	मारकर भी	
लिप्यसे न	(पापसे) लिप्त	
	नहीं होंगे	

श्रीशुक उवाच-

एवं सञ्चोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम् ।

ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम् ॥१०॥

एवं सञ्चोदितः विप्रैः मरुत्वान् अहनत् रिपुं ब्रह्महत्या हते तस्मिन्
आससाद वृषाकपिम् ॥१०॥

एवं विप्रैः	इस प्रकार ब्राह्मणों	तस्मिन् हते	उसके मारे जानेपर
	द्वारा	ब्रह्महत्या	ब्रह्म-हत्या
सञ्चोदितः	प्रेरित किये जानेपर	वृषाकपिं	इन्द्रके
मरुत्वान्	इन्द्रने	आससाद	पास आयी ॥१०॥
रिपुं अहनत्	शत्रुको मार दिया,		

तयेन्द्रः स्मासहत् तापं निर्वृतिर्नामुमाविशत् ।

हीमन्तं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्त्यपि नो गुणाः ॥११॥

तथा इन्द्रः स्म असहत् तापं निर्वृतिः न अमुं आविशत् हीमन्तं
वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्ति अपि नः गुणाः ॥११॥

तथा इन्द्रः	उसके कारण इन्द्र-	वाच्यतां प्राप्तं	कलङ्क लग जानेपर
	को	गुणाः अपि	(उसके धैर्यादि)
तापं असहत् स्म	संताप सहना पड़ा		गुण भी
अमुं निर्वृतिः	उनको शान्ति	सुखयन्ति नः	सुखी नहीं कर
न आविशत्	नहीं प्राप्त हुई		पाते ॥११॥
हीमन्तं	लज्जाशील (व्यक्ति)		
	को		

तां ददर्शानुधावन्तीं चाण्डालीमिव रूपिणीम् ।

जरया वेपमानाङ्गीं यक्षमग्रस्तामसृक्पटाम् ॥१२॥

तां ददर्श अनुधावन्तीं चाण्डालीं इव रूपिणीं जरया वेपमानाङ्गीं
यक्षमग्रस्तां असृक्पटाम् ॥१२॥

तां रूपिणीं	उस साकार हुई (ब्रह्म-हत्या)को	असृक्पटां	रक्त लथपथ वस्त्रा
जरया	बुढ़ापेसे	चाण्डालीं इव	चाण्डालीके समान
वेपमानाङ्गीं	काँपते शरीर वाली,	अनुधावन्तीं	पीछे दौड़ती
यक्षमग्रस्तां	यक्षमासे ग्रस्त	ददर्श	(इन्द्रने) देखा ॥१२॥

विकीर्यपलितान् केशांस्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणीम् ।

मीनगन्ध्यसुगन्धेन कुर्वतीं मार्गदूषणम् ॥१३॥

विकीर्य पलितान् केशान् तिष्ठ तिष्ठ इति भाषिणीं मीनगन्ध्य
सुगन्धेन कुर्वतीं मार्गदूषणम् ॥१३॥

पालितान्	पके	मीनगन्ध्य	मछली-गन्ध वाली
केशान्	बालोंको	सुगन्धेन	श्वाससे
विकीर्य	फँलाये	मार्गदूषणं	मार्गको दूषित
तिष्ठ तिष्ठ	'ठहर जा ! ठहर जा !'	कुर्वतीं	(दुर्गन्धित) करती हुई ॥१३॥
इति भाषिणीं	ऐसा चिल्लाती		

नभो गतो दिशः सर्वाः सहस्राक्षो विशाम्पते ।

प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥१४॥

नभः गतः दिशः सर्वाः सहस्राक्षः विशाम्पते प्राक् उदीचीं दिशं तूर्णं
प्रविष्टः नृप मानसम् ॥१४॥

विशाम्पते नृप	व्यापारियोंके रक्षक राजन् !	सहस्राक्षः	इन्द्र (उसके भय- से)
---------------	--------------------------------	------------	-------------------------

नभः सर्वाः दिश आकाशमें और सब	मानसं	(स्थित) मान-
दिशाओंमें		सरोवरमें
गतः गये (अन्तमें)	तूणं प्रविष्टः	शीघ्रतासे प्रवेश
प्राक् उदीचीं पूर्वोत्तर (ईशान)		किया ॥१४॥
दिशं दिशामें		

स आवसत्पुष्करनालतन्तू-
नलब्धभोगो यदिहाग्निदूतः ।
वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽन्तः
स चिन्तयन् ब्रह्मवधाद् विमोक्षम् ॥१५॥

स आवसत् पुष्कर नाल तन्तून् अलब्ध भोगः यत् इह अग्निदूतः
वर्षाणि साहस्रं अलक्षितः अन्तः स चिन्तयन् ब्रह्मवधाद् विमोक्षम् ॥१५॥

स पुष्कर नाल वे(वहाँ)कमल-नालके अलब्ध भोगः कोई भोग (आहार)
तन्तून् तन्तुमें नहीं मिला
वर्षाणि साहस्रं सहस्र वर्ष तक यत् अग्निदूतः क्योंकि अग्नि ही
ब्रह्मवधाद् ब्रह्म-हत्यासे (उन्हें) देनेवाले हैं
विमोक्षं छुटकारे (के उपाय) इह अन्तः यहाँ (जलके) भीतर
को अलक्षितः वे (अग्नि) दीख
अचिन्तयन् सोचते हुए नहीं सकते थे ॥१५॥
आवसत् निवास करते रहे ।

तावत्त्रिणाकं नहुषः शशास
विद्यातपोयोगबलानुभावः ।

स सम्पदैश्वर्यमदान्धबुद्धि-
नीतस्तिरश्चां गतिमिन्द्रपत्न्या ॥१६॥

तावत् त्रिणाकं नहुषः शशास विद्या तपः योगबल अनुभावः स
सम्पत् ऐश्वर्य मद अन्ध बुद्धिः नीतः तिरश्चां गति इन्द्रपत्न्या ॥१६॥

तावत्	उतने समय तक	मद अन्ध बुद्धिः	मदसे बुद्धिसे अन्धा
विद्या तपः	विद्या, तपस्या		(अविवेकी) होनेपर
योगबल	योग-बलके	इन्द्रपत्न्या	इन्द्रकी पत्नी शची
अनुभावः	प्रभावसे		द्वारा
नहुषः	राजा नहुषने	तिरश्चां गति	तिर्यक्योनि (सर्प-
त्रिणाकं शशास	स्वर्गका शासन		योनि)में
	किया ।	नीतः	पहुँचा दिया गया
स सम्पत्	वह सम्पत्ति और		॥१८॥
ऐश्वर्य	ऐश्वर्यके		

ततो गतो ब्रह्मगिरोपहृत

ऋतम्भरध्याननिवारिताघः ।

पापस्तु दिग्देवतया हतौजा-

स्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ॥१७॥

ततः गतः ब्रह्मगिरः उपहृत ऋतम्भर ध्यान निवारित अघः पापः तु दिक् देवतया हत ओजाः तं न अभ्यभूत् अवितं विष्णुपत्न्या ॥१७॥

विष्णुपत्न्या	(कमल-वनस्था)	ततः ऋतम्भर	फिर सत्यके पोषक
	लक्ष्मी द्वारा		भगवान्‌के
अवितं	सुरक्षित	ध्यान	ध्यानसे
दिक् देवतया	(ईशान) दिशाके	निवारित अघः	पाप दूर हो जाने-
	देवता (रुद्र) द्वारा		पर
हत ओजाः	निस्तेज किया गया	ब्रह्मगिर	ब्राह्मणोंके सन्देश
पापः तु	पाप तो		द्वारा
तं न अभ्यभूत्	उन्हें आक्रान्त नहीं	उपहृत गतः	बुलानेपर (स्वर्ग)
	कर सका,		गये ॥१७॥

तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेधेन भारत ।

यथावद्दीक्षयाञ्चक्रुः पुरुषाराधनेन ह ॥१८॥

तं च ब्रह्मर्षयः अभि एत्य हयमेधेन भारत यथावत् दीक्षयान् चक्रुः
पुरुष आराधनेन ह ॥१८॥

भारत	परीक्षित् !	हयमेधेन	अश्वमेध यज्ञ द्वारा
ब्रह्मर्षयः	ब्रह्मर्षि लोग	पुरुष आराधनेन	परम पुरुषकी
तं च	उनके पास		आराधना की
अभि एत्य	चारों ओरसे आकार	ह चक्रुः	निश्चित
यथावत्	विधिपूर्वक	दीक्षयान	दीक्षा दी ॥१८॥

अथेज्यमाने पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि ।

अश्वमेधे महेन्द्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥१९॥

अथ इज्यमाने पुरुषे सर्व देवमय आत्मनि अश्वमेधे महेन्द्रेण वितते
ब्रह्मवादिभिः ॥१९॥

अथ	तब	सर्व देवमय	सर्व देवमय
ब्रह्मवादिभिः	वेदज्ञ (ऋषियों)	आत्मनि पुरुषे	पुरुषोत्तम भगवान्- की
	द्वारा		
महेन्द्रेण वितते	महेन्द्र द्वारा किये	इज्यमाने	आराधना होनेपर
अश्वमेधेन	अश्वमेध यज्ञ द्वारा		॥१९॥

स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप ।

नीतस्तेनैव शून्याय नीहार इव भानुना ॥२०॥

स वै त्वाष्ट्रवधः भूयान् अपि पाप चयः नृप नीतः तेन एव शून्याय
नीहार इव भानुना ॥२०॥

नृप	राजन् !	तेन एव	उस (अश्वमेध यज्ञ)
वै स	निश्चय वह		से ही
त्वाष्ट्रवधः	वृत्त वधकी	भानुना	सूर्य द्वारा
भूयान् पाप	बहुत बड़ी पाप	नीहार इव	कुहरेके समान
चयः	राशि थी	शून्याय नीतः	शून्य बना दी गयी
अपि	फिर भी		॥२०॥

स वाजिमेधेन यथोदितेन
वितायमानेन मरीचिमिश्रैः ।

इष्ट्वाधियज्ञं पुरुषं पुराण-

मिन्द्रो महानास विधूतपापः ॥२१॥

स वाजिमेधेन यथा उदितेन विताय मानेन मरीचिमिश्रैः इष्ट्वा
अधियज्ञं पुरुषं पुराणं इन्द्रः महानास विधूत पापः ॥२१॥

मरीचिमिश्रैः	मरीचि आदि (ऋषियों) द्वारा	पुराणं पुरुषं	पुराण-पुरुषका
यथा उदितेन	विधिपूर्वक	इष्ट्वा	यजन करने
विताय मानेन	कराये गये	इन्द्रः	इन्द्र
स वाजिमेधेन	उस अश्वमेध-यज्ञसे	महानास	ब्रह्म-हत्याके
अधियज्ञं	यज्ञाधिष्ठाता	विधूत पापः	पापसे धुल (छूट) गये ॥२१॥

इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां

प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनम् ।

भक्त्युच्छ्रयं भक्तजनानुवर्णनं

महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥२२॥

इदं महा आख्यानं अशेष पाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थपद अनुकीर्तनं भक्ति
उच्छ्रयं भक्तजन अनुवर्णनं महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥२२॥

मरुत्वतः विजयं	इन्द्रकी विजय	इदं महा	यह श्रेष्ठ
महेन्द्रमोक्षं	उन महेन्द्रकी (पापोंसे) मुक्ति	आख्यानं	आख्यान
भक्तजन	भक्त-श्रेष्ठ (वृत्रका)	अशेष पाप्मनां	समस्त पापोंकी
अनुवर्णनं	वर्णन	प्रक्षालनं	धो देनेवाला और
तीर्थपद	पवित्र चरण	भक्ति उच्छ्रयं	भक्ति-वर्धक है ॥२२॥
अनुकीर्तनं	भगवान्का बार-बार कीर्तन रूप		

पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः

शृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम् ।

धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं

रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथाऽऽयुषम् ॥२३॥

पठेयुः आख्यानं इदं सदा बुधाः शृण्वन्ति अथ पर्वणि पर्वणि इन्द्रियं
धन्यं यशस्यं निखिल अघ मोचनं रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथा आयुषम् ॥२३॥

इदं इन्द्रियं	यह इन्द्र सम्बन्धी	स्वस्त्ययनं	कल्याणकारी
आख्यानं	आख्यानको जो	तथा आयुषं	आयु अभिवर्धक है
धन्यं यशस्यं	धन देनेवाला, यश देनेवाला	बुधाः सदा	बुद्धिमानोंको सदा
निखिल अघ	सम्पूर्ण पापोंसे	पठेयुः	पढ़ना चाहिए
मोचनं	छुड़ानेवाला	अथ पर्वणि	अथवा विशेष पर्वों-पर
रिपुञ्जयं	शत्रुपर विजय देने-वाला	शृण्वन्ति	(वे बुद्धिमान इसे) सुनते हैं ॥२३॥

इति श्रोमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे इन्द्रविजयो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

राजो उवाच—*

रजस्तमः स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ।

नारायणे भगवति कथमासीद् दृढा मतिः ॥१॥

रजः तमः स्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः नारायणे भगवति कथं
आसीत् दृढा मतिः ॥१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	भगवति	भगवान्
रजः तमः	रजो गुणी तमोगुणी	नारायणे	नारायणमें
स्वभावस्य	स्वभाव वाले	दृढा मतिः	दृढ़ बुद्धि
पाप्मनः वृत्रस्य	पापी वृत्रासुरकी	कथं आसीत्	कैसे थी ॥१॥

देवानां शुद्धसत्त्वानामृषीणां चामलात्मनाम् ।

भक्तिमुकुन्दचरणे न प्रायेणोपजायते ॥२॥

देवानां शुद्ध सत्त्वानां ऋषीणां च अमल आत्मनां भक्तिः मुकुन्द
चरणे न प्रायेण उपजायते ॥२॥

शुद्ध सत्त्वानां	शुद्ध सत्त्वमय	मुकुन्द चरणे	भगवान् मुकुन्दके
देवानां	देवताओंकी		चरणोंमें
च अमल	तथा निर्मल	भक्तिः प्रायेण	भक्ति प्रायः
आत्मनां	अन्तःकरण	न उपजायते	नहीं उत्पन्न
ऋषीणां	ऋषियोंकी		होती ॥२॥

रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः ।

तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः ॥३॥

* यहां अन्य प्रतियोंमें 'परीक्षिदुवाच' है ।

रजोभिः सम् असंख्याताः पार्थिवैः इह जन्तवः तेषां ये केचन ईहन्ते
श्रेयः वै मनुज आदयः ॥३॥

इह जन्तवः	इस संसारमें प्राणी	ये केचन	जो कुछ
पार्थिवैः	पृथ्वीकी	मनुज आदयः	मनुष्य आदि हैं
रजोभिः	धूलिकणके	वै श्रेयः	निश्चय वही
सम् असंख्याताः	समान असंख्य हैं,		कल्याणके लिए
तेषां	उनमें से	ईहन्ते	प्रयत्न करते हैं ॥३॥

प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तम ।

मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति ॥४॥

प्रायः मुमुक्षवः तेषां केचन एव द्विजोत्तम मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चित्
मुच्येत सिध्यति ॥४॥

द्विजोत्तम	ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ !	सहस्रेषु	हजारों
तेषां केचन एव	उन (मनुष्यों) में	मुमुक्षूणां	मुमुक्षुओंमें
	कुछ ही	कश्चित्	कोई
मुमुक्षवः	मोक्ष-प्राप्तिकी	मुच्येत सिध्यति	सफल होकर मुक्त
	इच्छा वाले (होते) हैं		होता है ॥४॥

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।

सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥५॥

मुक्तानां अपि सिद्धानां नारायण परायणः सुदुर्लभः प्रशान्त आत्मा
कोटिषु अपि महामुने ॥५॥

महामुने	महामुनि !	नारायण	भगवान् नारायणके
सिद्धानां	सफल हुए	परायणः	परायण
मुक्तानां अपि	मुक्त-पुरुषोंमें भी	प्रशान्त आत्मा	प्रशान्त-चित्त
कोटिषु अपि	करोड़ोंमें भी	सुदुर्लभः	अत्यन्त दुर्लभ हैं ॥५॥

वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः ।

इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत् संग्राम उल्बणे ॥६॥

वृत्रः तु स कथं पापः सर्वलोक उपतापनः इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत् संग्राम उल्बणे ॥६॥

सर्वलोक	सब लोकोंको	संग्राम उल्बणे	घोर युद्धमें
उपतापनः	सन्तप्त करनेवाला	कृष्ण	श्रीकृष्णमें
स पापः	वह पापी	इत्थं दृढमतिः	इस प्रकार दृढ़ बुद्धि
वृत्रतु	वृत्र तो	कथं आसीत्	कैसे था ॥६॥

अत्र नः संशयो भूयाञ्छ्रोतुं कौतूहलं प्रभो ।

यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥७॥

अत्र नः संशयः भूयान् श्रोतुं कौतूहलं प्रभो यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षं अतोषयत् ॥७॥

यः समरे	जिसने युद्धमें	नः अत्र	मुझे इस विषयमें
पौरुषेण	अपने पराक्रमसे	भूयान् संशयः	बहुत मन्देह है और
सहस्राक्षं	इन्द्रको	श्रोतुं कौतूहलं	सुननेका कुतूहल
अतोषयत्	सन्तुष्ट कर दिया,		है ॥७॥
प्रभो	प्रभो !		

स्यूत उवाच—

परीक्षितोऽथ संप्रश्नं भगवान् बादरायणिः ।

निशम्य श्रद्धानस्य प्रतिनन्द्य वचोऽब्रवीत् ॥८॥

परीक्षितः अथ सम्प्रश्नं भगवान् बादरायणिः निशम्य श्रद्धानस्य प्रतिनन्द्य वचः अब्रवीत् ॥८॥

अथ श्रद्धाधानस्य तव श्रद्धा करनेवाले	बादरायणिः	व्यास-नन्दनने
परीक्षितः परीक्षितके	प्रतिनन्द्य	उसका अभिनन्दन
सम्प्रश्नं उचित प्रश्नको		करके
निश्चय सुनकर	वचः अब्रवीत्	सार्थक वाणी
भगवान् भगवान्		बोले ॥८॥

श्रीशुक उवाच-

शृणुष्व अवहितो राजन्नितिहासमिमं यथा ।

श्रुतं द्वैपायनमुखान्नारदाद्देवलादपि ॥९॥

शृणुष्व अवहितः राजन् इतिहासं इमं यथा श्रुतं द्वैपायन
मुखात् नारदात् देवलात् अपि ॥९॥

राजन् राजन् !	इमं इतिहासं	इस इतिहासको
द्वैपायन मुखात् (अपने पिता)	यथा श्रुतं	जैसा (मैंने) सुना है
व्यासजीके मुखसे		(उसे)
नारदात् नारदजीसे तथा	अवहितः शृणुष्व	सावधान होकर
देवलात् अपि महर्षि देवलसे भी		सुनो ॥९॥

आसीद्राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप ।

चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत् कामधुङ्मही ॥१०॥

आसीत् राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप चित्रकेतुः इति ख्यातः
यस्य आसीत् कामधुक् मही ॥१०॥

नृप राजन् !	आसीत्	था ।
शूरसेनेषु शूरसेन देशमें	यस्य मही	जिसके लिए पृथ्वी
वै सार्वभौमः निश्चय चक्रवर्ती	कामधुक्	इच्छानुसार
राजा चित्रकेतुः राजा चित्रकेतु		(अन्नादि) देनेवाली
इति ख्यातः इस नामसे प्रसिद्ध	आसीत्	थी ॥१०॥

तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् ।

सान्तानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु सन्ततिम् ॥११॥

तस्य भार्या सहस्राणां सहस्राणि दश अभवन् सान्तानिकः च अपि
नृपः न लेभे तासु सन्ततिम् ॥११॥

तस्य	उनके	च अपि	पर भी
सहस्राणां-		नृपः	राजाने
सहस्राणि दश	एक करोड़	तासु सन्तति	उनमें सन्तान
भार्या अभवन्	रानियां थीं ।	न लेभे	नहीं पायी ॥११॥
सान्तानिकः	सन्तान उत्पन्न		
	करनेमें समर्थ होने		

रूपौदार्यवयोजन्मविद्यैश्वर्यश्रियादिभिः ।

सम्पन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिन्ता वन्ध्यापतेरभूत् ॥१२॥

रूप औदार्य वयः जन्म विद्या ऐश्वर्य श्रिय आदिभिः सम्पन्नस्य गुणैः
सर्वैः चिन्ता वन्ध्यापतेः अभूत् ॥१२॥

रूप औदार्य	सुन्दर रूप, उदारता,	सर्वैः गुणैः	सब गुणोंसे
वयः जन्म	युवावस्था, उच्च- कुलमें जन्म,	सम्पन्नस्य	सम्पन्न
विद्या ऐश्वर्य	विद्या, ऐश्वर्य	वन्ध्यापतेः	(उस) वन्ध्याओंके पति हो
श्रिय आदिभिः	श्री आदि	चिन्ता अभूत्	चिन्ता हो गयी ॥१२॥

न तस्य संपदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः ।

सार्वभौमस्य भूश्चेयमभवत् प्रीतिहेतवः ॥१३॥

न तस्य सम्पदः सर्वा महिष्यः वामलोचनाः सार्वभौमस्य भूः च इयं
अभवत् प्रीति हेतवः ॥१३॥

सर्वा सम्पदः	सब सम्पत्ति,	तस्य सार्व-	उस चक्रवर्ती
वामलोचनाः	सुन्दरी	भौमस्य	राजाकी
महिष्यः	महारानियां,	प्रीति हेतवः	प्रसन्नताके कारण
च इयं भूः	तथा यह पृथ्वी	न अभवत्	नहीं हो सके ॥१३॥

तस्यैकदा तु भवनमङ्गिरा भगवानृषिः ।

लोकाननुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया ॥१४॥

तस्य एकदा तु भवनं अङ्गिरा भगवान् ऋषिः लोकान् अनुचरन्
एतान् उपागच्छत् यदृच्छया ॥१४॥

एतान् लोकान्	इन लोकोंमें	तस्य भवनं	उस (राजा) के
अनुचरन्	विचरण करते हुए		सदनमें
यदृच्छया	संयोगवश	भगवान्	भगवान्
एकदा तु	एक समय तो	अङ्गिरा ऋषिः	अंगिरा ऋषि
		उपागच्छत्	पहुँच गये ॥१४॥

तं पूजयित्वा विधिवत्प्रत्युत्थानार्हणादिभिः ।

कृतातिथ्यमुपासीदत्सुखासीनं समाहितः ॥१५॥

तं पूजयित्वा विधिवत् प्रत्युत्थान अर्हणादिभिः कृत आतिथ्यं
उपासीदत् सुखासीनं समाहितः ॥१५॥

विधिवत्	विधि पूर्वक	सुखासीनं	सुख-पूर्वक बैठके
प्रत्युत्थान	सम्मानमें खड़े होने	समाहितः	शान्त-भावसे
अर्हणादिभिः	पूजा-सामग्री आदिसे	उपासीदत्	(राजा) समीप बैठ
तं पूजयित्वा	उनका पूजन करके		गया ॥१५॥
आतिथ्यं कृत	अतिथि-सत्कार		
	(भोजनादि) करके		

महर्षिस्तमुपासीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ ।

प्रतिपूज्य महाराज समाभाष्येदमब्रवीत् ॥१६॥

महर्षिः तं उपासीनं प्रश्रय अवनतं क्षितौ प्रतिपूज्य महाराज सम
आभाष्य इदं अब्रवीत् ॥१६॥

महाराज	महाराज !	महर्षिः	महर्षिने
प्रश्रय अवनतं	विनम्रतासे झुके	सम आभाष्य	(राजाको) सम्बो-
क्षितौ उपासीनं	पृथ्वीपर समीप बैठे		धित करके
तं प्रतिपूज्य	उसका आदर करके	इदं अब्रवीत्	यह कहा ॥१६॥

अंगिशा उवाच—

अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथाऽऽत्मनः ।

यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् राजापि सप्तभिः ॥१७॥

अपि ते अनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथा आत्मनः यथा प्रकृतिभिः
गुप्तः पुमान् राजा अपि सप्तभिः ॥१७॥

ते अपि	तुम्हारा (शरीर)	स्वस्ति	सकुशल रहनेसे
अनामयं	निरोग तो है ?	आत्मनः	स्वयं भी
यथा पुमान्	जैसे जीव	तथा	वैसा (सकुशल)
सप्तभिः गुप्तः	सात (महत्तत्त्वादि) से घिरा रहता है		रहता है ॥१७॥
राजा अपि	राजा भी		
प्रकृतिभिः	(सात) प्रकृति (गुरु, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना तथा मित्र)से		

आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नूयात् ।

राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः ॥१८॥

आत्मानं प्रकृतिषु अद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात् राजा तथा प्रकृतयः
नरदेव आहित आधयः ॥१८॥

नरदेव	राजा	तथा प्रकृतयः	वैसे ही प्रकृतियां
आत्मानं	अपनेको		(प्रजा)
प्रकृतिषु	सातों प्रकृतियोंके	राजा	राजापर
अद्धा निधाय	अनुकूल रखकर	आहित आधयः	अपनी चिन्ता छोड़
श्रेयः आप्नुयात्	कल्याण पाता है		देती हैं ॥१८॥

अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेण्योऽथ मन्त्रिणः ।

पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥१९॥

अपि दाराः प्रजा अमात्या भृत्याः श्रेण्यः अथ मन्त्रिणः पौरा जानपदा
भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥१९॥

दाराः प्रजा	पत्नियां, प्रजा,	आत्मजा	पुत्र
अमात्या भृत्याः	सलाहकार, सेवक,	वशवर्तिनः अपि	तुम्हारे वशमें तो
श्रेण्यः अथ	व्यापारी-वर्ग और		हैं ॥१९॥
मन्त्रिणः पौरा	मन्त्री, नागरिक,		
जानपदा भूपा	मण्डलेश्वर राजा		
	लोग,		

यस्यात्मानुवशश्चेत्स्यात्सर्वे तद्वशगा इमे ।

लोकाः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतन्द्रिताः ॥२०॥

यस्य आत्मा अनुवशः चेत् स्यात् सर्वे तत् वशगा इमे लोकाः सपाला
यच्छन्ति सर्वे बलि अतन्द्रिताः ॥२०॥

यस्म आत्मा	जिसका चित्त	सपाला	लोकपालोंके साथ
अनुवशः	अपने वशमें	सर्वे लोकाः	सब लोक
चेत् स्यात्	यदि है तो	अतन्द्रिताः	सावधानी पूर्वक
इमे सर्वे	ये सब	तस्मै बलि	उसे उपहार
तत् वशगा	उसके वशमें रहते हैं	यच्छन्ति	देते हैं ॥२०॥

आत्मनः प्रीयते नात्मा परतः स्वत एव वा ।

लक्षयेऽलब्धकामं त्वां चिन्तया शबलं मुखम् ॥२१॥

आत्मनः प्रीयते न आत्मा परतः स्वत एव वा लक्षये अलब्ध कामं
त्वां चिन्तया शबलं मुखम् ॥२१॥

आत्मनः	अपने आपमें	त्वां अलब्ध	तुम्हें अप्राप्त
आत्मा	तुम्हारा चित्त	कामं	मनोरथ
न प्रीयते	सन्तुष्ट नहीं है,	चिन्तया शबलं	चिन्तासे मलिन
परतः वा	यह दूसरेके कारण	मुखं लक्षये	मुख लक्षित कर
	है अथवा		रहा हूँ ॥२१॥
स्वत एव	अपने आप ही है,		

श्रीशुक उवाच*

एवं विकल्पितो राजन् विदुषा मुनिनापि सः ।

प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनिम् ॥२२॥

एवं विकल्पितः राजन् विदुषा मुनिना अपि सः प्रश्रय अवनतः
अभ्याह प्रजाकामः ततः मुनिम् ॥२२॥

राजन्	राजन् !	प्रजाकामः	पुत्रकी कामनासे
मुनिना	मुनिके द्वारा	ततः मुनिं	तब मुनिसे
विदुषा अपि	जानते हुए भी	सः प्रश्रय	उसने नम्रतासे
एवं विकल्पितः	इस प्रकार विकल्प	अवनतः	झुककर
	किये जानेपर	अभ्याह	निवेदन किया ॥२२॥

चित्रकैतुरुवाच—

भगवन् किं न विदितं तपोज्ञानसमाधिभिः ।

योगिनां ध्वस्तपापानां बहिरन्तः शरीरिषु ॥२३॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

भगवन् किं न विदितं तपः ज्ञान समाधिभिः योगिनां ध्वस्त पापानां
बहिः अन्तः शरीरेषु ॥२३॥

भगवन्	भगवन् !	योगिनां	उन योगियोंके लिए
तपः ज्ञान	तपस्या, ज्ञान तथा	शरीरेषु	शरीर धारियोंके
समाधिभिः	समाधिके द्वारा	बहिः अन्तः	बाहर या भीतर
ध्वस्त पापानां	जिनके पाप नष्ट हो गये हैं,	किं न विदितं	क्या अनजान है ॥२३॥

तथापि पृच्छतो ब्रूयां ब्रह्मन् आत्मनि चिन्तितम् ।

भवतो विदुषश्चापि चोदितस्त्वदनुज्ञया ॥२४॥

तथा अपि पृच्छतः ब्रूयां ब्रह्मन् आत्मनि चिन्तितं भवतः विदुषः च
अपि चोदितः त्वत् अनुज्ञया ॥२४॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	भवतः चोदितः	आपके द्वारा प्रेरित
तथा अपि	ऐसा होनेपर भी	आत्मनि	अपनी
विदुषः च अपि	जानते होनेपर भी	चिन्तितं	चिन्ता
पृच्छतः	पूछनेपर	ब्रूयां	निवेदन करूंगा ॥२४॥
त्वत् अनुज्ञया	आपकी अनुमतिसे		

लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसम्पदः ।

न नन्दयन्त्यप्रजं मां क्षुत्तृट्काममिवापरे ॥२५॥

लोकपालैः अपि प्रार्थ्याः साम्राज्य ऐश्वर्यं सम्पदः न नन्दयन्ति
अप्रजं मां क्षुत् तृट् कामं इव अपरे ॥२५॥

लोकपालैः	लोकपालों द्वारा भी	अपरे कामं इव	दूसरे भोगोंके समान
प्रार्थ्याः	प्रार्थनीय	मां अप्रजं	मुझ पुत्रहीनको
साम्राज्य ऐश्वर्यं	साम्राज्य, ऐश्वर्य	न नन्दयन्ति	सुखी नहीं करते ॥२५॥
सम्पदः	सम्पत्ति		
क्षुत् तृट्	भूखे-प्यासेको		

ततः पाहि महाभाग पूर्वंः सह गतं तमः ।

यथा तरेम दुस्तारं प्रजया तद् विधेहि नः ॥२६॥

ततः पाहि महाभाग पूर्वंः सह गतं तमः यथा तरेम दुस्तारं प्रजया तद् विधेहि नः ॥२६॥

महाभाग	महाभाग (महर्षे) !	दुस्तारं	इस दुस्तर (दुःख) से
पूर्वंः सह	पूर्वजोंके साथ	तरेम	पार हो जाऊँ
तमः गतं	दुःखमें पड़ेकी	तत् नः	बहु मेरे लिए
ततः पाहि	इसलिए रक्षा कीजिए	विधेहि	विधान कीजिए ॥२६
यथा प्रजया	जैसे पुत्र द्वारा		

श्रीशुक उवाच—

इत्यर्थितः स भगवान् कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः ।

श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद् विभुः ॥२७॥

इति अर्थितः स भगवान् कृपालुः ब्रह्मणः सुतः श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारम् अयजत् विभुः ॥२७॥

इति अर्थितः	इस प्रकार प्रार्थना करनेपर	त्वाष्ट्रं चरुं	त्वष्टा देवताके योग्य चरु
स विभुः	उन समर्थ	श्रपयित्वा	निर्माण कराके
कृपालुः भगवान् दयालु भगवान्		त्वष्टारं अयजत्	त्वष्टाका यजन किया ॥२७॥
ब्रह्मणः सुतः	ब्रह्माजीके पुत्रने		

ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत ।

नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद् द्विजः ॥२८॥

ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञः महिषीणां च भारत नाम्ना कृतद्युतिः तस्यै यज्ञ उच्छिष्टं अदात् द्विजः ॥२८॥

भारत	परीक्षितः	च श्रेष्ठा	और श्रेष्ठ थी
राज्ञः महिषीणां	राजाकी महा-	यज्ञ उच्चिष्टं	यज्ञका शेष प्रसाद
	रानियोंमें	द्विजः	उन विप्रवरने
या ज्येष्ठा	जो सबसे बड़ी	तस्यै अदात्	उसको दिया ॥२८॥

अथाह नृपतिं राजन् भवितैकस्तवात्मजः ।

हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥२९॥

अथ आह नृपतिं राजन् भविता एकः तव आत्मजः हर्ष शोकप्रदः
तुभ्यं इति ब्रह्मसुतः ययौ ॥२९॥

अथ नृपतिं आह	फिर राजासे कहा	तव एकः	तुम्हारा एक
राजन्	राजन् !	आत्मजः भविता	पुत्र होगा ।
तुभ्यं	तुमको	इति	ऐसा (कहकर)
हर्ष शोकप्रदः	हर्ष और शोक	ब्रह्मसुतः ययौ	वे ब्रह्माजीके पुत्र
	देने वाला		चले गये ॥२९॥

सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत् ।

गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाग्नेरिवात्मजम् ॥३०॥

सा अपि तत् प्राशनात् एव चित्रकेतोः आधारयत् गर्भं कृतद्युतिः
देवी कृत्तिका अग्नेः इव आत्मजम् ॥३०॥

सा कृतद्युतिः	उस कृतद्युति	प्राशनात् एव	खानेसे ही
देवी अपि	देवीने भी	चित्रकेतोः	चित्रकेतुसे
अग्नेः	अग्निसे	आत्मजं	सन्तानको
कृत्तिका इव	कृत्तिकाके समान	गर्भं आधारयत्	गर्भमें धारण
तत्	इस यज्ञ प्रसादको		क्रिया ॥३०॥

तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः ।

ववृधे शूरसेनेशतेजसा शनकैर्नृप ॥३१॥

तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इव उडुपः बवृधे शूरसेन ईश तेजसा
शनकैः नृप ॥३१॥

नृप	राजन् !	शुक्लपक्ष	शुक्ल-पक्षमें
शूरसेन ईश	शूरसेन देशके राजा (चित्रकेतु) के	उडुपः इव	चन्द्रमाकी भांति
तेजसा	वीर्यसे (स्थापित)	शनकैः बवृधे	धीरे-धीरे बढ़ने
तस्या गर्भः	उसका गर्भ		लगा ॥३१॥

अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत ।

जनयन् शूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥३२॥

अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत जनयन् शूरसेनानां शृण्वतां
परमां मुदम् ॥३२॥

अथ काल	फिर समय	परमां मुदं	परमानन्द
उपावृत्ते	आनेपर	जनयन्	उत्पन्न करता
शृण्वतां	समाचार पानेवाले	कुमारः	राजकुमार
शूरसेनानां	शूरसेन देशकी प्रजाको	समजायत	उत्पन्न हुआ ॥३२॥

हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलंकृतः ।

वाचयित्वाऽऽशिषो विप्रैः कारयामास जातकम् ॥३३॥

हृष्टः राजा कुमारस्य स्नातः शुचिः अलंकृतः वाचयित्वा आशिषः
विप्रैः कारयामास जातकम् ॥३३॥

हृष्टः राजा	राजाने प्रसन्न होकर	कुमारस्य	राजकुमारके लिए
स्नातः	स्नान किया	आशिषः	स्वास्ति-
शुचिः अलंकृतः	पवित्र होकर आभूषण धारण किया,	वाचयित्वा	वाचन कराके
		जातकं	जातकर्म-संस्कार
विप्रैः	ब्राह्मणों द्वारा	कारयामास	करवाया ॥३३॥

तेभ्यो हिरण्यं रजतं वासांस्याभरणानि च ।

ग्रामान् ह्यान् गजान् प्रादाद् धेनूनामर्बुदानि षट् ॥३४॥

तेभ्यः हिरण्यं रजतं वासांसि आभरणानि च ग्रामान् ह्यान् गजान्
प्रादात् धेनूनां अर्बुदानि षट् ॥३४॥

तेभ्यः	उन ब्राह्मणोंको	ग्रामान् ह्यान्	गाँव, घोड़े,
हिरण्यं रजतं	सोना, चांदी,	गजान्	हाथी
वासांसि	वस्त्र	च अर्बुदानि षट्	तथा छः अरब
आभरणानि	आभूषण	धेनूनां प्रादात्	गायें दीं ॥३४॥

ववर्ष काममन्येषां पर्जन्य इव देहिनाम् ।

धन्यं यशस्यमायुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥३५॥

ववर्ष कामं अन्येषां पर्जन्य इव देहिनां धन्यं यशस्यं आयुष्यं कुमारस्य
महामनाः ॥३५॥

महामनाः	परमोदार राजाने	पर्जन्य इव	मेघोंके समान
कुमारस्य	राजकुमारके	अन्येषां	दूसरे सबकी
धन्यं यशस्यं	धन, यश,	कामं ववर्ष	अभीष्ट वस्तुओंकी
आयुष्यं	आयुके लिए		वर्षा कर दी ॥३५॥
देहिनां	शरीर धारियोंके		
	लिए		

कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः ।

यथा निःस्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्धत ॥३६॥

कृच्छ्रलब्धे अथ राजर्षेः तनये अनुदिनं पितुः यथा निःस्वस्य कृच्छ्र
आप्ते धने स्नेहः अन्ववर्धत ॥३६॥

यथा निःस्वस्य	जैसे निर्धनको	तनये अथ	पुत्रमें फिर
कृच्छ्र आप्ते	कठिनाईसे प्राप्त	अनुबिनं स्नेहः	दिनों-दिन स्नेह
धने	धनमें (वैसे ही)	अन्ववर्धत	बराबर बढ़ता गया
राजर्षेः पितुः	उन राजर्षि पिताका		॥३६॥
कृच्छ्रलब्धे	कठिनाईसे प्राप्त		

मातुस्त्वतितरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः ।

कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥३७॥

मातुः तु अतितरां पुत्रे स्नेहः मोह समुद्भवः कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामः ज्वरः अभवत् ॥३७॥

मातुः कृतद्युतेः	माता कृतद्युतिका	प्रजाकामः	पुत्रेच्छुका
तु	तो	सपत्नीनां	सीतोको
पुत्रे	पुत्रसे	ज्वरः अभवत्	जलन होने लगी
मोह समुद्भवः	मोहसे उत्पन्न		॥३७॥
अतितरां स्नेहः	बहुत अधिक स्नेह था,		

चित्रकेतोरतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति ।

न तथान्येषु सञ्जज्ञे बालं लालयतोऽन्वहम् ॥३८॥

चित्रकेतोः अति प्रीतिः यथा दारे प्रजावति न तथा अन्येषु सञ्जज्ञे बालं लालयतः अन्वहम् ॥३८॥

अन्वहं	प्रतिदिन	तथा अन्येषु	वैसा दूसरी पत्नियों-
बालं लालयतः	पुत्रसे लाड़ करते हुए	से	
चित्रकेतोः	चित्रकेतुका	न सञ्जज्ञे	नहीं उत्पन्न हुआ
यथा प्रजावति	जैसा पुत्रवती		॥३८॥
दारे अति	पत्नीसे अत्यन्त		
प्रीतिः	प्रेम था		

ताः पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया ।

आनपत्येन दुःखेन राज्ञोऽनादरेण च ॥३६॥

ताः पर्यतप्यन् आत्मानं गर्हयन्त्यः अभ्यसूयया आनपत्येन दुःखेन राज्ञः
अनादरेण च ॥३६॥

अभ्यसूयया	डाहके कारण,	ताः आत्मानं	वे सब अपनी
आनपत्येन	निःसन्तान होनेके	गर्हयन्त्यः	निन्दा करती हुई
दुःखेन	दुःखसे	पर्यतप्यन्	सन्तप्त होने लगीं
च राज्ञः	और राजाके		॥३६॥
अनादरेण	अनादर करनेसे,		

धिगप्रजां स्त्रियं पापां पत्युश्चागृहसम्मताम् ।

सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृताम् ॥४०॥

धिक् अप्रजां स्त्रियं पापां पत्युः च अगृहसम्मतां सुप्रजाभिः सपत्नीभिः
दासीं इव तिरस्कृताम् ॥४०॥

अप्रजां पापां	निःसन्तान पापिष्ठा	दासीं इव	दासीके समान
पत्युः च	पति भी जिसे	तिरस्कृतां	तिरस्कृता
अगृहसम्मतां	पत्नी नहीं मानते ।	स्त्रियं धिक्	स्त्रीको धिक्कार है
सुप्रजाभिः	उत्तम सन्तान वाली		॥४०॥
सपत्नीभिः	सौत द्वारा		

दासीनां को नु सन्तापः स्वामिनः परिचर्यया ।

अभीक्ष्णं लब्धमानानां दास्या दासीव दुर्भगाः ॥४१॥

दासीनां कः नु सन्तापः स्वामिनः परिचर्यया अभीक्ष्णं लब्धमानानां
दास्या दासी इव दुर्भगाः ॥४१॥

अभीक्ष्णं	बराबर	लब्धमानानां	सम्मान पाने वाली
स्वामिनः	स्वामीकी	दासीनां	भला दासियोंको
परिचर्यया	सेवा करके	कः सन्तापः	क्या दुःख है,

दास्या (हम तो) दासियों- दासी इव दासीके समान
की दुर्भगाः अभागिनी हैं ॥४१॥

एवं सन्दह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसम्पदा ।

राज्ञोऽसम्मतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥४२॥

एवं सन्दह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसम्पदा राज्ञः असम्मत वृत्तीनां
विद्वेषः बलवान् अभूत् ॥४२॥

सपत्न्याः	सौतकी	✓ वृत्तीनां	व्यवहारसे (उनका
पुत्रसम्पदा	पुत्र रूप सम्पत्तिसे		सौतसे)
एवं	इस प्रकार	बलवान्	प्रबल
सन्दह्य मानानां	जलती रहने वाली	विद्वेषः अभूत्	द्वेष हो गया ॥४२॥
राज्ञः असम्मत	राजा के उपेक्षित		

विद्वेषेनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः ।

गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥४३॥

विद्वेषेनष्ट मतयः स्त्रियः दारुण चेतसः गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा
नृपतिं प्रति ॥४३॥

विद्वेषेनष्ट	अत्यन्त द्वेषसे नष्ट	दुर्मर्षा	चिढ़कर
मतयः स्त्रियः	बुद्धि स्त्रियोंका	कुमाराय	राजकुमारको
दारुण चेतसः	चित्त क्रूर हो गया	गरं ददुः	(उन्होंने) विष दे
	था,		दिया ॥४३॥
नृपतिं प्रति	राजासे		

कृतद्युतिरजानन्ती सपत्नीनामघं महत् ।

सुप्त एवेति सञ्चिन्त्य निरीक्ष्य व्यचरद् गृहे ॥४४॥

कृतद्युतिः अजानन्ती सपत्नीनां अघं महत् सुप्त एव इति सञ्चिन्त्य
निरीक्ष्य व्यचरत् गृहे ॥४४॥

कृतद्युतिः	कृतद्युति	इति सञ्चिन्त्य	ऐसा सोचकर
सपत्नीनां	सौतोका यह	निरीक्ष्य	(दूरसे) देखकर
महत् अघं	भारी पाप	गृहे व्यचरत्	घरमें घूमती रही
अजानन्ती	जानती नहीं थी,		॥४४॥
सुप्त एव	(बच्चा) सो ही		
	रहा है.		

शयानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी ।

पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ॥४५॥

शयानं सुचिरं बालं उपधार्य मनीषिणी पुत्रं आनय मे भद्रे इति धात्रीं अचोदयत् ॥४५॥

मनीषिणी	बुद्धिमती (रानी)ने	आनय इति	ले आओ' इस
बालं सुचिरं	बालक बहुत देरसे		प्रकार
शयानं उपधार्य	सो रहा है, यह	धात्रीं अचोदयत्	धायको प्रेरित किया
	विचार करके		॥४५॥
भद्रे मे पुत्रं	'कल्याणी, मेरे पुत्र-		
	को		

सा शयानमुपव्रज्य दृष्ट्वा चोत्तारलोचनम् ।

प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हतास्मीत्यपतद्भुवि ॥४६॥

सा शयानं उपव्रज्य दृष्ट्वा च उत्तार लोचनं प्राण इन्द्रिय आत्मभिः त्यक्तं हता अस्मि इति अपतत् भुवि ॥४६॥

सा	वह (धाय)	त्यक्तं दृष्ट्वा	परित्यक्त देखकर
शयानं उपव्रज्य	सोते (बालक)के	च	और
	पास जाकर,	हता अस्मि	'मैं मारी गयी !'
उत्तारलोचनं	नेत्रोंकी पुतली	इति	ऐसा (चिल्लाकर)
	उलटी हुई,	भुवि अपतत्	पृथ्वीपर गिर पड़ी
प्राण इन्द्रिय	प्राण, इन्द्रिय,		॥४६॥
आत्मभिः	जीवसे		

तस्यास्तदाऽऽकर्ण्य भृशानुरं स्वरं

घनन्त्याः कराभ्यामुर उच्चकैरपि ।

प्रविश्य राज्ञी त्वरयाऽऽत्मजान्तिकं

ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥४७॥

तस्याः तदा आकर्ण्य भृश आतुरं स्वरं घनन्त्याः कराभ्यां उर उच्चकैः
अपि प्रविश्य राज्ञी त्वरया आत्मज अन्तिकं ददर्श बालं सहसा मृतं
सुतम् ॥

कराभ्यां	दोनों हाथोंसे	त्वरया राज्ञी	शीघ्रतासे महारानी
उच्चकैः उर	जोर-जोरसे छाती	ने	
घनन्त्याः	पीटती	आत्मज अन्तिकं	पुत्रके पास
तस्याः	उस (धाय)को	प्रविश्य	प्रवेश करके
भृश आतुरं	अत्यन्त व्याकुल	सहसा बालं सुतं	अचानक शिशु-
तदा स्वरं	उस समय स्वर		पुत्रको
आकर्ण्य	सुनकर	मृतं ददर्श	मरा देखा ॥४७॥

पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा

मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहाम्बरा ॥४८॥

पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा मुमोह विभ्रष्ट शिरोरुह अम्बरा ॥४८॥

परिवृद्धया शुचा	शोक बहुत बढ़ जानेसे	अम्बरा	वस्त्र
मुमोह	मूर्छित हो गयीं ।	भूमौ पपात	पृथ्वीपर गिर पड़ीं
विभ्रष्ट	बिखरे		॥४८॥
शिरोरुह	केश और (अस्त-व्यस्त)		

ततो नृपान्तः पुरवर्तिनो जना

नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ।

आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखिता-

स्ताश्च व्यलीकं रुरुदुः कृतागसः ॥४६॥

ततः नृप अन्तःपुर वर्तिनः जना नराः च नार्यः च निशम्य रोदनं
आगत्य तुल्य व्यसनाः सुदुःखिताः ताः च व्यलीकं रुरुदुः कृत आगसः ॥४६॥

ततः	तत्र	तुल्य व्यसनाः	सहानुभूतिमें
रोदनं निशम्य	रुदन सुनकर	सुदुःखिताः	अत्यन्त दुःखी हुए ।
नृप अन्तःपुर	राजाके अन्तःपुरमें	ताः कृत आगसः	वे पापाचारिणी
वर्तिनः जना	रहनेवाले लोग		(रानियाँ)
नराः च	पुरुष और	च व्यलीकं	भी झूठमूठको
नार्यः च	स्त्रियां भी	रुरुदुः	रोने लगीं ॥४६॥
आगत्य	आकर		

श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितान्तकं

विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्वलन् पथि ।

स्नेहानुबन्धेधितया शुचा भृशं

विमूर्च्छितोऽनुप्रकृतिद्विजैर्वृतः ॥५०॥

श्रुत्वा मृतं पुत्रं अलक्षित अन्तकं विनष्ट दृष्टिः प्रपतन् स्वलन् पथि
स्नेह अनुबन्ध एधितया शुचा भृशं विमूर्च्छितः अनुप्रकृतिः द्विजैः वृतः ॥५०॥

पुत्रं मृतं श्रुत्वा	पुत्रको मरा सुनकर	भृशं शुचा	बहुत अधिक शोकसे
अलक्षित अन्तकं	मारनेवाले का पता	अनुप्रकृतिः	मन्त्री आदि और
	था नहीं,	द्विजैः वृतः	ब्राह्मणोंसे घिरे
विनष्ट दृष्टिः	आँखोंसे दीखना	विमूर्च्छितः	संज्ञाहीन होकर
	बन्द हो गया,	पथि	मार्गमें
अनुबन्ध	स्नेह सम्बन्धसे	प्रपतन् स्वलन्	गिरते-पड़ते ॥५०॥
एधितया	बढ़े		

पपात बालस्य स पादमूले
 मृतस्य विस्त्रस्तशिरोरुहाम्बरः ।
 दीर्घं श्वसन् बाष्पकलोपरोधतो
 निरुद्धकण्ठो न शशाक भाषितुम् ॥५१॥

पपात बालस्य स पादमूले मृतस्य विस्त्रस्त शिरोरुह अम्बरः दीर्घं
 श्वसन् बाष्प कला उपरोधतः निरुद्ध कण्ठ न शशाक भाषितुम् ॥५१॥

मृतस्य बालस्य	मरे हुए बालकके	बाष्प कला	आँसुओंके
पादमूले	पैरोंके समीप	उपरोधतः	कारण
स पपात	वे (राजा) गिर पड़े,	निरुद्ध कण्ठः	गला भर जानेसे
शिरोरुह अम्बरः	केश और वस्त्र	भाषितुं न	(कुछ) बोल नहीं
विस्त्रस्त	अस्त-व्यस्त हो	शशाक	सके ॥५१॥
	गये ।		
दीर्घं श्वसन्	लम्बी श्वास लेते		
	हुए		

पतिं निरीक्ष्योरुशुचापितं तदा
 मृतं च बालं सुतमेकसन्ततिम् ।
 जनस्य राज्ञी प्रकृतेश्च हृद्रुजं
 सती दधाना विललाप चित्रधा ॥५२॥

पतिं निरीक्ष्य उरु शुचा अपितं तदा मृतं च बालं सुतं एक सन्ततिं
 जनस्य राज्ञी प्रकृतेः च हृद् रुजं सती दधाना विललाप चित्रथा ॥५२॥

सती राज्ञी	सती महारानी	एक सन्ततिं	एकमात्र सन्तान
	(कृतद्युति)	बालं सुतं मृतं	शिशु पुत्रको मरा
तदा	उस समय	निरीक्ष्य	देखकर
उरु शुचा	अत्यन्त शोक	जनस्य	लोगोंके
अपितं	ग्रस्त	च प्रकृतेः	एवं (मन्त्री आदि)
पतिं	पतिको तथा		प्रकृतिके

हृद् रुजं	हृदयमें रोग (सन्ताप)	चित्रधा	अनेक प्रकारसे
वधाना	वढ़ाती हुई	विललाप	विलाप करने लगीं
			॥५२॥

स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्धमण्डितं
निषिञ्चती साञ्जनबाष्पबिन्दुभिः ।

विकीर्य केशान् विगलत्स्रजः सुतं
शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरम् ॥५३॥

स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्ध मण्डितं निषञ्चती साञ्जन बाष्प बिन्दुभिः
विकीर्य केशान् विगलत् स्रजः सुतं शुशोच चित्रं कुररी इव सुस्वरम् ॥५३॥

कुङ्कुमगन्ध	कुङ्कुम-केशर	कुररी इव	कुररी (चील) पक्षी-
मण्डितं	चर्चित		के समान
स्तनद्वयं	दोनों स्तनोंको	सुस्वरं	उच्च-स्वरमें
साञ्जन बाष्प	अञ्जन मिले अश्रु	चित्रं	अनेक प्रकारसे
बिन्दुभिः	बिन्दुओंसे	सुतं शुशोच	पुत्रके लिए विलाप
निषञ्चती	भिगोती,		करने लगीं ॥५३॥
केशान् विकीर्य	केश फैलाये,		
विगलत् स्रजः	(उनमें लगी) माला		
	गिराती		

कृतिद्युति उवाच-

अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो
यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ।

परेऽनुजीवत्यपरस्य या मृति-
विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः परः ॥५४॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो विधातः त्वं अतीव बालिशः यस्तु आत्म सृष्टि अप्रति रूपं
ईहसे परे अनुजीवति अपरस्य या मृतिः विपर्ययः चेत् त्वं असि ध्रुवः
परः ॥५४॥

अहो विधातः	अरे विधाता !	अपरस्य	पीछे वालोंकी
त्वं अतीव	तू अत्यन्त	या मृतिः	जो मृत्यु है,
बालिशः	मूर्ख है,	चेत् विपर्ययः	यह उलटा विधान
यस्तु आत्म	क्योंकि अपनी		यदि (तुम्हारा है)
सृष्टि	सृष्टिके	त्वं ध्रुवः	तो निश्चित
अप्रति रूप	प्रतिकूल	त्वं परः असि	तुम (सबके) शत्रु
ईहसे	चेष्टा करता है,		हो ॥५४॥
परे अनुजीवति	बड़ोंके जीवित रहते		

न हि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः

शरीरिणामस्तु तदाऽऽत्मकर्मभिः ।

यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये

स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥५५॥

न हि क्रमः चेत् इह मृत्यु जन्मनोः शरीरिणां अस्तु तदा आत्म
कर्मभिः यः स्नेहपाशः निजसर्ग वृद्धये स्वयं कृतः ते तं इमं विवृश्चसि ॥५५॥

चेत् इह	यद्यपि इस संसारमें	अस्तु	होवे,
मृत्यु जन्मनोः	मृत्यु और जन्मका	यः स्नेहपाशः	जो स्नेह-बन्धन
क्रमः न	कोई क्रम नहीं है	निजसर्ग वृद्धये	अपनी सृष्टि-वृद्धिके
हि	क्योंकि		लिए
तदा शरीरिणां	तब वह शरीर-	ते स्वयं कृतः	तुमने स्वयं बनाया
	धारियोंके		है
आत्म कर्मभिः	अपने कर्मोंके	तं इमं	उसीको यह
	अनुसार	विवृश्चसि	काट रहे हो ॥५५॥

त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां

त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम् ।

अञ्जस्तरेम भवताप्रजदुस्तरं यद्

ध्वान्तं न याह्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥५६॥

त्वं तात न अर्हसि च मां कृपणां अनाथां त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तं अञ्जः तरेम भवता प्रज दुस्तरं यद् ध्वान्तं न याहि अकरुणेन यमेन दूरम् ॥५६॥

तात त्वं	बेटा तुमको	यद् दुस्तरं	जैसे दुस्तर
मां कृपणां	मुझ दुखिया	ध्वान्तं	नरकको
अनाथां	अनाथाको	भवता प्रज	तुम पुत्रके द्वारा
त्यक्तुं न अर्हसि	त्यागना नहीं	अञ्जः तरेम	हम सरलतासे पार
	चाहिए ।		करलें
तव शोकतप्तं	तुम्हारे शोकसे	अकरुणेन	(अतः) निष्ठुर
	संतप्त	यमेन दूरं	यमराजके साथ
पितरं विचक्ष्व	अपने माता-पिता-		दूर
	को देखो	न याहि	मत जाओ ॥५६॥

उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्या-

स्त्वामाह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुम् ।

सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान् परीतो

भुङ्क्ष्व स्तनं पिब शुचो हर नः स्वकानाम् ॥५७॥

उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवः वयस्याः त्वां आह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुं सुप्तः चिरं हि अशनया च भवान् परीतः भुङ्क्ष्वस्तनं पिब शुचः हर नः स्वकानां ॥५७॥

तात उत्तिष्ठ	बेटा उठो !	नृपनन्दन	राजकुमार !
त वयस्याः	तुम्हारे सखा	संविहर्तुं	साथ खेलनेके
इमे शिशवः	ये बालक		लिए

त्वां आह्वयन्ति तुम्हें पुकार रहे हैं,	स्तनं पिब	स्तनपान करो,
हि कयोकि	नः स्वकानां	हम अपनोंका
चिरं सुप्तः बहुत देरसे सोये हो	शुचः हर	शोक दूर करो
भवान् अशनया तुम भूखसे		॥१७॥
परीतः भुङ्क्व घिरे हो (भूखे हो)		
कुछ खाओ		

नाहं तनूज ददृशे हतमङ्गला ते
मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ।

किं वा गतोऽस्यपुनरन्वयमन्यलोकं
नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते ॥१८॥

न अहं तनूज ददृशे हतमङ्गला ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणं
आननाब्जं किं वा गतः असि अपुनः अन्वयं अन्य लोकं नीतः अघृणेन न
शृणोमि कला गिरः ते ॥१८॥

अहं हतमङ्गला मैं अभागिनी	न शृणोमि	नहीं सुन रही हूँ,
ते मुग्धस्मितं तुम्हारा मनोहर	वा किं	अथवा क्या
मुस्कानयुक्त	अघृणेन नीतः	निष्ठुर यम द्वारा ले
मुदितवीक्षण आनन्द भरे नेत्रोंसे		जाये गये
देखनेवाला	अपुनः अन्वयं	फिर जहाँ से लौटा
आननाब्जं कमल-मुख		नहीं जाता
तनूज न ददृशे बेटा नहीं देखूंगी ?	लोकं	उस लोक
ते कला गिरः तुम्हारी तोतली	गतः असि	चले गये हो ॥१८॥
वाणी		

श्रीशुक उवाच—

विलपन्त्या मृतं पुत्रमिति चित्रविलापनैः ।

चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥१९॥

विलपन्त्या मृतं पुत्रं इति चित्र विलापनं चित्रकेतुः भृशं तप्तः
मुक्तकण्ठः रुरोद ह ॥५६॥

इति	इस प्रकार	चित्रकेतुः	चित्रवेतु
चित्रविलापनं	अनेक प्रकारके	भृशं तप्तः	अत्यन्त संतप्त
	विलापोंसे		होकर
मृतं पुत्र	मेरे पुत्रके लिए	मुक्तकण्ठः	खुले गलेसे
विलपन्त्या	(राणीके) विलाप	रुरोद ह	रौने ही लगा
	करनेसे		॥५६॥

तयोर्विलपतोः सर्वे दम्पत्योस्तदनुव्रताः ।

रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वभासीदचेतनम् ॥६०॥

तयोः विलपतोः सर्वे दम्पत्योः तत् अनुव्रताः रुरुदुः स्म नरा नार्यः
सर्व आसीत् अचेतनम् ॥६०॥

तयोः दम्पत्योः	उन पति-पत्नीके	रुरुदुः	रौने लगे
विलपतोः	विलाप करनेसे	सर्व अचेतनं	सभी चेतनाहीन
तत् अनुव्रताः	उनके अनुचर	आसीत्	हो रहे थे ॥६०॥
सर्वे नरा नार्यः	सब स्त्री-पुरुष		

एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् ।

ज्ञात्वाङ्गिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥६१॥

एवं कश्मलं आपन्नं नष्टसंज्ञं अनायकं ज्ञात्वा अङ्गिरा नाम मुनिः
आजगाम सनारदः ॥६१॥

एवं कश्मलं	इस प्रकार	अङ्गिरा नाम	अङ्गिरा नामके
आपन्नं	संकटमें पड़े,	मुनिः	मुनि—
नष्टसंज्ञं	चेतनाहीन	सनारदः	नारदजीके साथ
अनायकं	निराश्रय	आजगाम	आये ॥६१॥
ज्ञात्वा	(चित्रकेतुको)		
	जानकर		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतुविलापो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

ऊचतुर्मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ।

शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सद्भक्तिभिः ॥ १ ॥

ऊचतुः मृतक उपान्ते पतितं मृतक उपमं शोक अभिभूतं राजान
बोधयन्तौ सद्भक्तिभिः ॥१॥

मृतक उपान्ते	मेरे (पुत्रके) समीप	राजानं	राजाको
मृतक उपमं	मरे हुएके समान	सद्भक्तिभिः	सुन्दर उक्तियोंसे
पतितं	पड़े हुए	बोधयन्तौ	समझाते हुए
शोक अभिभूतं	शोक-ग्रस्त	ऊचतुः	बोले ॥१॥

अंशोवाच-*

कोऽयं स्यात् तव राजेन्द्र भवान् यमनुशोचति ।

त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥ २ ॥

कः अयं स्यात् तव राजेन्द्र भवान् यं अनुशोचति त्वं च अस्य कतमः
सृष्टौ पुरा इदानीं अतः परम् ॥२॥

राजेन्द्र भवान्	राजेन्द्र ! आप	अयं तव कः	यह तुम्हारा क्या
त्वं यं	तुम जिसके पीछे	स्यात्	लगता है,
अनुशोचति	शोक कर रहे हो	त्वं च अस्य	तुम्हारा इससे
सृष्टौ	इस सृष्टिमें	कतमः	क्या सम्बन्ध है ?
पुरा इदानीं	पहिले, इस समय		॥२॥
अतः परं	इससे आगे		

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतोवेगेन बालुकाः ।

संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥३॥

यथा प्रयान्ति संयान्ति स्रोतः वेगेन बालुकाः संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते
तथा कालेन देहिनः ॥३॥

यथा स्रोतः	जैसे धाराके	वियुज्यन्ते	पृथक् हो जाते हैं,
वेगेन	वेगसे	तथा कालेन	इसी प्रकार कालके
बालुकाः	रेतके कण		द्वारा
प्रयान्ति	जाते और	देहिनः	शरीरधारी भी
संयान्ति	आते हुए		(मिलते-बिछुड़ते
संयुज्यन्ते	परस्पर मिलते हैं		हैं) ॥३॥
	और		

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च ।

एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया ॥४॥

यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति च एवं भूतेषु भूतानि
चोदितान् ईश मायया ॥४॥

यथा धानासु	जैसे बीजोंसे	चोदितान्	प्रेरित
धाना वै	दूसरे बीज निश्चय	भूतेषु भूतानि	प्राणियोंसे प्राणी
भवन्ति	उत्पन्न होते हैं		(सन्तान कभी
च न भवन्ति	और कभी नहीं		होती, कभी नहीं
	उत्पन्न होते		होती) ॥४॥
एवं ईश मायया	इसी प्रकार ईश्वर-		
	की मायासे		

वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः ।

जन्ममृत्योर्यथा पश्चात् प्राङ्मैवमधुनापि भोः ॥५॥

वयं च त्वं च ये च इमे तुल्य कालाः चर अचराः जन्म मृत्योः यथा
पश्चात् प्राक् न एवं अधुना अपि भोः ॥५॥

भोः	हे राजन् !	यथा जन्म प्राक् जन्मके पहिले तथा
वयं	हम	मृत्योः पश्चात् मृत्युके बाद
च त्वं	और तुम	एवं न इस प्रकार नहीं
च ये इमे	तथा जो ये लोग हैं	रहते,
च चर अचराः	एवं सब चराचर	अधुना अपि इस समय भी (ऐसे
तुल्य कालाः	समकालीन हैं,	देहरूप नहीं हैं) ॥५॥

भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हन्त्यजः ।

आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥६॥

भूतैः भूतानि भूतेशः सृजति अवति हन्ति अजः आत्म सृष्टेः अस्वतन्त्रैः
अनपेक्षः अपि बालवत् ॥६॥

अनपेक्षः अपि	कोई अपेक्षा न होने पर भी	आत्म सृष्टेः	अपने बनाये हुए
बालवत्	बालक (की क्रीड़ा) के समान	अस्वतन्त्रैः	पराधीन
भूतेशः	सब प्राणियोंका स्वामी ईश्वर	भूतैः भूतानि	पंचभूतों द्वारा प्राणियोंको
अजः	वह अजन्मा	सृजति अवति	उत्पन्न करता,
		हन्ति	मार देता है ॥६॥

देहेन देहिनो राजन् देहाद्देहोऽभिजायते ।

बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥७॥

देहेन देहिनः राजन् देहात् देहः अभिजायते बीजात् एव यथा बीजं
देही अर्थ इव शाश्वतः ॥७॥

राजन्	राजन् !	यथा बीजात् एव जैसे एक बीजसे ही
देहिनः	जीवका	बीजं दूसरा बीज
देहेन	शरीर	देही जीव
देहात् देहः	एक शरीरसे दूसरा शरीर	अर्थ इव (घट आदि कार्योंमें पृथ्वी) तत्त्वके समान
अभिजायते	उत्पन्न होता है ।	शाश्वतः नित्य है ॥७॥

देहदेहि विभागोऽयमविवेककृतः पुरा ।

जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥८॥

देहदेहि विभागः अयं अविवेक कृतः पुरा जाति व्यक्ति विभागः
अयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥८॥

यथा वस्तुनि	जैसे वस्तुमें	अयं	यह
अयं जाति	यह जाति (घट- जाति)	देहदेहि	शरीर और जीवका
व्यक्ति विभागः	और व्याक्ति (एक घड़े) का विभाग	विभागः	विभाग
कल्पितः	कल्पित है (ऐसे ही)	पुरा	अनादि
		अविवेक कृतः	अज्ञान कृत है ॥८॥

श्रीशुक उवाच—

एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ।

प्रमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिम्लानमभाषत ॥९॥

एवं आश्वासितः राजा चित्रकेतुः द्विज उक्तिभिः प्रमृज्य पाणिना
वक्त्रं आधिम्लानं अभाषत ॥९॥

एवं	इस प्रकार	आधिम्लानं	शोकसे मलिन
राजा चित्रकेतुः	राजा चित्रकेतु	वक्त्रं	मुख
द्विज उक्तिभिः	ब्राह्मणकी उक्तिसे	पाणिना प्रमृज्य	हाथोंसे पोंछकर
आश्वासितः	समझाए जानेपर	अभाषत	बोले ॥९॥

चित्रकेतु उवाच—*

कौ युवां ज्ञानसम्पन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ।

अवधूतेन वेषेण मूढाविह समागतौ ॥१०॥

*अन्य प्रतियोंमें यहां 'राजोवाच' है ।

कौ युवां ज्ञानसम्पन्नो महिष्ठौ च महोयसां अवधूतेन वेषेण गूढाः
इह समागतौ ॥१०॥

ज्ञानसम्पन्नो	परम ज्ञानवान्	अवधूतेन	अवधूत
च महोयसां	और महानोंसे भी	वेषेण	वेशमें
महिष्ठौ	महान	गूढाः इह	छिपकर यहाँ
युवां	आप दोनों	समागतौ कौ	आए कौन हैं ॥१०॥

चरन्ति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः ।

मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिङ्गिनः ॥११॥

चरन्ति हि अवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत् प्रियाः मादृशां ग्राम्य
बुद्धीनां बोधाय उन्मत्त लिङ्गिनः ॥११॥

हि	क्योंकि	ब्राह्मणा	ब्रह्मवेत्ता
मादृशां	मेरे जैसे	उन्मत्त लिङ्गिनः	पागलों-सा देश
ग्राम्य बुद्धीनां	भोगलिप्त बुद्धि		बनाए
	वालोंको	अवनौ	पृथ्वीपर
बोधाम	समझानेके लिए	कामं चरन्ति	इच्छानुसार विचरण
भगवत् प्रियाः	भगवान्के प्रिय		करते हैं ॥११॥

कुमारो नारद ऋभुरङ्गिरा देवलोऽसितः ।

अपान्तरतमो व्यासो मार्कण्डेयोऽथ गौतमः ॥१२॥

वसिष्ठो भगवान् रामः कपिलो बादरायणिः ।

दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथाऽऽरुणिः ॥१३॥

रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतञ्जलिः ।

ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पञ्चशिरास्तथा ॥१४॥

हिरण्यनाभः कौसल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः ।

एते परे च सिद्धेशाश्चरन्ति ज्ञानहेतवः ॥१५॥

(सनत्) कुमारः, नारदः, ऋभुः, अङ्गिरा, देवलः, असितः, अपान्तरतमः, व्यासः, मार्कण्डेयः, अथ गौतमः, वशिष्ठः, भगवान् रामः (पशुराम) कपिलः, बादरायणिः, (शुकदेव) दुर्वासा, याज्ञवल्क्यः, च जातूकर्ण्यः, तथा आरुणिः, रोमशः (लोमश) च्यवनः, दत्तः (दत्तात्रेय) आसुरिः स पतञ्जलिः, ऋषिः वेदशिरा, बोध्यः मुनिः (बोध्यमुनि) पञ्चशिरा, तथा हिरण्यनाभः, कौसल्यः, श्रुतदेव, ऋतध्वजः ।*

एते परे च सिद्धेशाः चरन्ति ज्ञान हेतवः ॥१२,१३,१४-१५॥

एते परे च	ये और दूसरे भी	लिए
सिद्धेशाः	सिद्धेश्वर लोग	चरन्ति
ज्ञान हेतवः	ज्ञान-दान करनेके	विचरण करते हैं ॥१५॥

तस्माद्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू ।

अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥१६॥

तस्मात् युवां ग्राम्य पशोः मम मूढधियः प्रभू अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥१६॥

प्रभू	स्वामियो !	अन्धे तमसि	घने अन्धकारमें
तस्मात्	इसलिए	मग्नस्य मम	झूबे मेरे लिए
मूढधियः	मूढ-बुद्धि	युवां	आप दोनों
ग्राम्य पशोः	भोगोंमें लिप्त पशु-प्राय	ज्ञानदीप	ज्ञान-रूपी दीपक
		उदीर्यतां	जलावें ॥१६॥

अंगिरा उवाच-

अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यङ्गिरा नृप ।

एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवानृषिः ॥१७॥

अहं ते पुत्र कामस्य पुत्रदः अस्मि अङ्गिरा नृप एष ब्रह्मसुतः साक्षात् नारदः भगवान् ऋषिः ॥१७॥

*ये केवल नाम हैं ।

नृप	राजन् !	एष साक्षात्	ये साक्षात्
ते पुत्र कामस्य	तुम पुत्राभिलाषीको	भगवान्	भगवान्
पुत्रदः	पुत्र देनेवाला	ब्रह्मसुतः	ब्रह्माजीके पुत्र
अहं अङ्गिरा	मैं अंगिरा	ऋषिः नारदः	देवर्षि नारद हैं ॥१७॥
अस्मि	हैं,		

इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे ।

अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥१८॥

इत्थं त्वां पुत्रशोकेन मग्नं तमसि दुस्तरे अतदर्हं अनुस्मृत्य महापुरुष
गोचरम् ॥१८॥

महापुरुष गोचरं	भगवान् पुरुषोत्तम-	दुस्तरे तमसि	दुष्पार आज्ञानमें
	का दर्शन पाने योग्य	मग्नं अतदर्हं	मग्न, इस (स्थिति)
त्वां इत्थं	तुमको इस प्रकार		के अयोग्य
पुत्रशोकेन	पुत्र-शोकसे	अनुस्मृत्य	समझकर ॥१८॥

अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो ।

ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥१९॥

अनुग्रहाय भवतः प्राप्ता वा आवां इह प्रभो ब्रह्मण्यः भगवद्भक्तः न
अवसीदितुं अर्हति ॥१९॥

प्रभो	राजन् !	ब्रह्मण्यः	ब्राह्मण-भक्त
भवतः अनुग्रहाय	तुमपर कृपा करनेके	वा	अथवा
	लिए	भवद्भक्तः	भगवद्-भक्तको
आवां इह	हम दोनों यहां	अवसीदितुं	शोक
प्राप्ता	आये हैं (क्योंकि)	न अर्हति	नहीं करना
			चाहिए ॥१९॥

तदैव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः ।

ज्ञात्वान्याभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददावहम् ॥२०॥

तदा एव ते परं ज्ञानं ददामि गृहं आगतः ज्ञात्वा अन्य अभिनिवेशं
ते पुत्रं एव ददाः अहम् ॥२०॥

तदा एव	उसी समय	ते अन्य	तुम्हारा दूसरी
ते परं ज्ञानं	तुमको परमज्ञान		बातमें
ददामि	देने	अभिनिवेशं	चित्त लगा
गृहं आगतः	(तुम्हारे) घर आया	ज्ञात्वा	जानकर
	था,	अहं पुत्रं एव	मैंने पुत्र ही
		ददाः	दिया ॥२०॥

अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते ।

एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसम्पदः ॥२१॥

अधुना पुत्रिणां तापः भवता एव अनुभूयते एवं दारा गृहा रायः
विविध ऐश्वर्य सम्पदः ॥२१॥

अधुना	इस समय	रायः	धन
पुत्रिणां तापः	पुत्रवानोंको होने	विविध ऐश्वर्य	अनेक प्रकारके
	वाला दुःख		ऐश्वर्य
भवता एव	तुम स्वयं	सम्पदः एवं	सम्पत्तियां ऐसी ही
अनुभूयते	अनुभव कर रहे हो,		हैं ॥२१॥
दारा गृहा	स्त्री, घर		

शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः ।

मही राज्यं बलं कोशो भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥२२॥

शब्द आदयः च विषयाः चलाः राज्यविभूतयः मही राज्यं बलं
कोशः भृत्य अमात्याः सुहृत् जनाः ॥२२॥

शब्द आदयः	शब्द (स्पर्श) आदि	बलं कोशः	सेना, खजाना,
विषयाः	विषय,	भृत्य अमात्याः	सेवक, मन्त्री,
राज्यविभूतयः	राज्य-वैभव,	सुहृत् जनाः	इष्ट मित्र,
मही राज्यं	पृथ्वीका राज्य,	चलाः	अनित्य हैं ॥२२॥

सर्वेऽपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः ।

गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः ॥२३॥

सर्वे अपि शूरसेन इमे शोक मोह भय आर्तिदाः गन्धर्व नगर प्रख्याः
स्वप्न माया मनोरथाः ॥२३॥

शूरसेन	शूरसेन !	गन्धर्व नगर	गन्धर्व-नगरके
इमे सर्वे अपि	ये सभी	प्रख्याः	समान,
शोक मोह	शोक, मोह,	स्वप्न माया	स्वप्न, जादूके समान
भय आर्तिदाः	भय और दुःख देने वाले हैं,	मनोरथाः	मन कल्पित हैं ॥२३॥

दृश्यमाना विनार्थेन न दृश्यन्ते मनोभवः ।

कर्मभिर्ध्यायतो नानाकर्माणि मनसोऽभवन् ॥२४॥

दृश्यमाना विना अर्थेन न दृश्यन्ते मनोभवाः कर्मभिः ध्यायतः नाना
कर्माणि मनसः अभवन् ॥२४॥

विना अर्थेन	विना तथ्यके ही	कर्मभिः ध्यायतः	कर्मोंके द्वारा चिन्तन
दृश्यमाना	(ये) दिखाई दे रहे हैं,		करने (पर दीखते हैं)
न दृश्यन्ते	वस्तुतः दीखते भी	नाना कर्माणि	नाना प्रकार के कर्म
	नहीं	मनसः अभवन्	मनकी कामनासे
मनोभवाः	मनसे उत्पन्न हैं,		होते हैं ॥२४॥

अयं हि देहिनो देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ।

देहिनो विविधक्लेशसन्तापकृदुदाहृतः ॥२५॥

अयं हि देहिनः देहः द्रव्य ज्ञान क्रिया आत्मकः देहिनः विविधक्लेश
सन्ताप कृत् उदाहृतः ॥२५॥

हि	क्योंकि	विविधक्लेश	नाना प्रकारके कष्ट
द्रव्य ज्ञान	पंचभूत, ज्ञानेन्द्रिय,		तथा
क्रिया आत्मकः	एवं कर्मेन्द्रिय स्वरूप	सन्ताप कृत्	सन्ताप देनेवाला
देहिनः अयं देहः	जीवका यह शरीर	उदाहृतः	कहा गया है ॥२५॥
देहिनः	जीवको		

तस्मात् स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः ।

द्वैते ध्रुवार्थविश्रम्भं त्यजोपशममाविश ॥२६॥

तस्मात् स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिं आत्मनः द्वैते ध्रुव अर्थ
विश्रम्भं त्यज उपशमं आविश ॥२६॥

तस्मात्	इसलिए	ध्रुव अर्थ	नित्यत्व (सत्यत्व)
स्वस्थेन मनसा	स्वस्थ चित्तसे	विश्रम्भं	भ्रमको
आत्मनः गतिं	अपने स्वरूपका	त्यज	त्याग दो ।
विमृश्य	विचार करके	उपशमं आविश	शान्तिमें प्रवेश
द्वैते	इस द्वैत (संसारमें)		करो ॥२६॥

तादृद उवाच—

एतां मन्त्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम ।

यां धारयन् सप्तरात्राद् द्रष्टा सङ्कर्षणं प्रभुम् ॥२७॥

एतां मन्त्र उपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतः मम यां धारयन् सप्तरात्राद्
द्रष्टा सङ्कर्षणं प्रभुम् ॥२७॥

प्रयतः मम	एकाग्र होकर मुझसे	यां धारयन्	जिसे धारण करनेसे
एतां	यह	सप्तरात्राद्	सात रातमें ही
मन्त्र उपनिषदं	मन्त्रोपनिषद्	सङ्कर्षणं प्रभुं	संकर्षण भगवान्का
प्रतीच्छ	ग्रहण करो,	द्रष्टा	दर्शन कर सकोगे
			॥२७॥

यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे

शर्वादयो भ्रममिमं द्वितयं विसृज्य ।

सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं

प्रापुर्भवानपि परं नचिरादुपैति ॥२८॥

यत् पादमूलं उपसृत्य नरेन्द्र पूर्वं शर्व आदयः भ्रमं इमं द्वितयं
विसृज्य सद्यः तदीयं अतुला अनधिकं महित्वं प्रापुः भवान् अपि परं न
चिरात् उपैति ॥२८॥

नरेन्द्र	नरेन्द्र !	अतुला	अतुलनीय,
पूर्वे	प्राचीन कालमें	अनधिकं	जिससे बड़ा कोई
यत् पादनुलं	जिनके चरणोंके		नहीं
	समीप	महित्वं प्रापुः	उस महिमाको
उपसृत्य	पहुँचकर		प्राप्त हुए,
शर्व आदयः	भगवान् शंकर	भवान् अपि	तुम भी
	आदिने	परं	उसी परमात्माको
इमं द्वितयं भ्रमं	इस द्वैतके भ्रमको	न चिरात्	अविलम्ब
विसृज्य	त्यागकर	उपैति	प्राप्त कर लगे
सद्यः तदीयं	तत्काल उनके		॥२८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतु सान्त्वनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

अथ देवऋषी राजन् सम्परेतं नृपात्मजम् ।

दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥ १ ॥

अथ देवऋषी राजन् सम्परेतं नृप आत्मजं दर्शयित्वा इति ह उवाच
ज्ञातीनां अनुशोचताम् ॥१॥

राजन्	राजन् !	सम्परेतं	मरे हुए
अथ	इसके पश्चात्	नृप आत्मजं	राजाके पुत्रको
देवऋषी	देवर्षि नारद	दर्शयित्वा	दिखलाकर
अनुशोचतां	शोक करते हुए	इति ह उवाच	इस प्रकार ही बोले
ज्ञातीनां	जाति वालोंको		॥१॥

नारद उवाच-

जीवात्मन् पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते ।

सुहृदो बान्धवास्तप्ताः शुचा त्वत्कृतया भृशम् ॥ २ ॥

जीवात्मन् पश्य भद्रं मातरं पितरं च ते सुहृदः बान्धवाः तप्ताः
शुचा त्वत् कृतया भृशम् ॥२॥

जीवात्मन्	जीवात्मा !	त्वत् कृतया	तुम्हारे कारण
ते भद्रं	तुम्हारा कल्याण हो	शुचा	शोकसे
पश्य	देखो,	भृशं तप्ताः	अत्यन्त संतप्त हो
ते मातरं पितरं	तुम्हारे माता-पिता		रहे हैं ॥२॥
सुहृदः च	हितैषी और		
बान्धवाः	सम्बन्धी		

कलेवरं स्वमाविश्य शेषमायुः सुहृद्वृतः ।

भुङ्क्ष्व भोगान् पितृप्रत्तानधितिष्ठ नृपासनम् ॥ ३ ॥

कलेवरं स्वं आविश्य शेषं आयुः सुहृत् वृतः भुङ्क्ष्व भोगान् पितृ
प्रत्तान् अत्तिष्ठ नृप आसनम् ॥३॥

स्वं कलेवरं	अपने शरीरमें	पितृ प्रत्तान्	पिताके दिये
आविश्य	प्रवेश करके	भोगान् भुङ्क्ष्व	भोगोंको भोगो,
शेषं आयुः	बची आयु भर	नृप आसनं	राजसिंहासनपर
सुहृत् वृतः	सम्बन्धियोंके साथ	अधिष्ठिष्ठ	बैठो ॥३॥
	रहकर		

जीव उवाच-

कस्मिञ्जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन् ।

कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ् नृयोनिषु ॥ ४ ॥

कस्मिन् जन्मनि अमी मह्यं पितरः मातरः अभवन् कर्मभिः
भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ् नृयोनिषु ॥४॥

देवतिर्यङ्	देवता, पशु-पक्षी	मह्यं अमी	मेरे ये लोग
	आदि तथा	कस्मिन् जन्मनि	किस जन्ममें
नृयोनिषु	मनुष्य-योनिमें	पितरः मातरः	पिता-माता
कर्मभिः	(अपने) कर्मके द्वारा	अभवन्	हुए हैं ॥४॥
भ्राम्यमाणस्य	घुमाये जाते हुए		

बन्धुजात्यरिमध्यस्थमित्रोदासीनविद्विषः ।

सर्व एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशो मिथः ॥ ५ ॥

बन्धु ज्ञाति अरि मध्यस्थ मित्र उदासीन विद्विषः सर्व एव हि सर्वेषां
भवन्ति क्रमशः मिथः ॥५॥

हि	क्योंकि	विद्विषः	द्वेषी
बन्धु ज्ञाति	भाई, जातिवाले,	क्रमशः मिथ	क्रमशः परस्पर
अरि मध्यस्थ	शत्रु, मध्यस्थ,	सर्व एव सर्वेषां	सभी सबके
मित्र उदासीन	मित्र, उदासीन	भवन्ति	होते हैं ॥५॥

यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः ।

पर्यटन्ति नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु ॥ ६ ॥

यथा वस्तूनि पण्यानि हेम आदीनि ततः ततः पर्यटन्ति नरेषु एवं जीवः योनिषु कर्तृषु ॥६॥

यथा हेम	जैसे स्वर्ण	एवं जीवः	इसी प्रकार जीव
आदीनि	आदि	कर्तृषु योनिषु	कर्मानुसार योनियों-
पण्यानि वस्तूनि	बाजारू वस्तुमें		में (जाता है) ॥६॥
ततः ततः	जहां-तहां		
नरेषु पर्यटन्ति	मनुष्योंके पास		
	घूमती हैं		

नित्यस्यार्थस्य सम्बन्धो ह्यनित्यो दृश्यते नृषु ।

यावद्यस्य हि सम्बन्धो ममत्वं तावदेव हि ॥ ७ ॥

नित्यस्य अर्थस्य सम्बन्धः हि अनित्यः दृश्यते नृषु यावत् यस्य हि सम्बन्धः ममत्वं तावत् एव हि ॥७॥

नित्यस्य	(अपेक्षाकृत) स्थायी	हि	अतः
अर्थस्य	(स्वर्णादि) पदार्थो-	यावत् यस्य	जब तक जिसका
	का	सम्बन्धः	सम्बन्ध है
हि	क्योंकि	तावत् एव हि	तब तक ही
नृषु अनित्यः	मनुष्योंसे अस्थायी	ममत्वं	(उसमें) मेरापन
सम्बन्धः	सम्बन्ध		रहता है ॥७॥
दृश्यते	दिखायी देता है		

एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहंकृतः ।

यावद्यत्नोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत् ॥ ८ ॥

एवं योनिगतः जीवः स नित्यः निरहंकृतः यावत् यत्र उपलभ्येत तावत् स्वत्वं हि तस्य तत् ॥ ८ ॥

एवं योनिगतः	इसी प्रकार योनियों- में जानेवाला	उपलभ्येत	पाया जाता है,
जीवः	जीव है,	तानत् हि	तब तक ही
स नित्यः	वह नित्य और	तस्य तत्	उसका उसपर
निरहंकृतः	अहंकारहीन है,	स्वत्वं	अधिकार है ॥ ८ ॥
यावत् यत्र	जब तक जहां जिसके यहां)		

एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्वदृक् ।

आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजति प्रभुः ॥ ९ ॥

एष नित्यः अव्ययः सूक्ष्मः एष सर्वाश्रयः स्वदृक् आत्म माया गुणैः विश्वं आत्मानं सृजति विभुः ॥ ९ ॥

एष	यह	आत्म माया	अपनी मायाके
नित्यः अव्ययः	नित्य, अव्यय,	गुणैः	गुणों द्वारा
सूक्ष्मः स्वदृक्	सूक्ष्म, स्वयंप्रकाश है	आत्मानं	अपनेको ही
एष सर्वाश्रयः	यहीं सबका आश्रय	विश्वं सृजति	विश्वके रूपमें उत्पन्न
विभुः	सर्वव्यापक		करता है ॥ ९ ॥

न ह्यस्यातिप्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ।

एकः सर्वाधियां द्रष्टा कर्तृणां गुणदोषयोः ॥ १० ॥

न हि अस्य अतिप्रियः कश्चित् न अप्रियः स्वः परः अपि वा एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तृणां गुण दोषयोः ॥ १० ॥

हि क्योकि
अस्य अतिप्रियः इसका बहुत प्रिय
कश्चित् न कोई नहीं है,
अप्रियः कोई अप्रिय,
वा अथवा
स्वः परः अपि अपना या पराया
भी नहीं है

एकः यह अद्वितीय
गुण दोषयोः गुण-दोषोंको
कर्तृणां करने वाली
सर्वधियां सब बुद्धियोंका
द्रष्टा द्रष्टा है ॥१०॥

नादत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलम् ।

उदासीनवदासीनः

परावरदृगोश्चरः ॥११॥

न आदत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलं उदासीनवत् आसीनः
पर अवर दृक् ईश्वरः ॥११॥

हि आत्मा क्योकि आत्मा
न गुणं न गुण,
न दोषं न दोष
न क्रियाफलं न कर्मफल
आदत्त ग्रहण करता,

उदासीनवत् उदासीनके समान
आसीनः स्थित रहता
पर अवर दृक् कारण-कार्य सबका
साक्षी
ईश्वरः स्वतन्त्र है ॥११॥

श्रीशुक उवाच

इत्युदोर्यं गतो जीवो ज्ञातयस्तस्य ते तदा ।

विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्त्वाऽऽत्मस्नेहं शृङ्खलाम् ॥१२॥

इति उदोर्यं गतः जीवः ज्ञातयः तस्य ते तदा विस्मिता मुमुचुः शोकं
छित्त्वा आत्म स्नेहं शृङ्खलाम् ॥१३॥

इति उदोर्यं ऐसा कहकर
जीवः गतः जीव चला गया
तदा तस्य तब उसके
ते ज्ञातयः वे जातिवाले
विस्मिता चकित रह गये,

आत्म अपने हृदयकी
स्नेहं शृङ्खलां स्नेहरूपी जंजीर
छित्त्वा काटकर
शोकं मुमुचुः शोक त्याग दिया
॥१२॥

निर्हृत्य ज्ञातयो ज्ञातेर्देहं कृत्वोचिताः क्रियाः ।

तत्त्यजुर्दुस्त्यजं स्नेहं शोकमोहभयातिदम् ॥१३॥

निर्हृत्य ज्ञातयः ज्ञातेः देहं कृत्वा उचिताः क्रियाः तत्त्यजुः दुस्त्यजं स्नेहं शोक मोह भय आतिदम् ॥१३॥

ज्ञातयः	जाति वालोने	कृत्वा	करके
ज्ञातेः देहं	अपनी जातिके (बालक)के शरीरको	शोक मोह भय	शोक, मोह, भय,
निर्हृत्य	ले जाकर	आतिदं	दुःख देनेवाले
उचिताः क्रियाः	उचित अन्तिम- संस्कार	दुस्त्यजं स्नेहं	दुस्त्याज्य स्नेहको
		तत्त्यजुः	त्याग दिया ॥१३॥

बालघ्न्यो ब्रीडितास्तत्र बालहत्याहतप्रभाः ।

बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् ।

यमुनायां महाराज स्मरन्त्यो द्विजभाषितम् ॥१४॥

बालघ्न्यः ब्रीडिताः तत्र बालहत्या हतप्रभाः बालहत्या व्रतं चेरुः ब्राह्मणैः यत् निरूपितं यमुनायां महाराज स्मरन्त्यः द्विजभाषितम् ॥१४॥

महाराज	महाराज !	हतप्रभाः	लुप्त-कान्ति
तत्र	वहां	बालघ्न्यः	बालककी हत्या-
द्विजभाषितं	ब्राह्मण अंगिराकी बातका	ब्राह्मणैः	रिणोंने
स्मरन्त्यः	स्मरण करके	यत् निरूपितं	जो बतलाया
तत्र यमुनायां	वहां यमुना-किनारे	बालहत्या	बाल-हत्याका
ब्रीडिताः	लज्जित होकर	व्रतं चेरुः	प्रायश्चित्त किया
बालहत्या	बालककी हत्यासे		॥१४॥

स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ।

गृहान्धकूपान्निष्क्रान्तः सरः पङ्क्यादिव द्विपः ॥१५॥

स इत्थं प्रतिबुद्ध आत्मा चित्रकेतुः द्विज उक्तिभिः गृह अन्धकूपात् निष्क्रान्तः सरः पङ्क्तात् इव द्विपः ॥१५॥

इत्थं	इस प्रकार	सरः पङ्क्तात्	सरोवरके कीचड़से
द्विज उक्तिभिः	ब्राह्मण (अंगिरा- नारद) की बातसे	द्विपः इव	हाथीके समान
स चित्रकेतुः	वह राजा चित्रकेतु	गृह अन्धकूपात्	गृहस्थ रूपी अन्धेरे कुएंसे
प्रतिबुद्ध आत्मा	सावधान चित्त होकर	निष्क्रान्तः	निकल गया ॥१५॥

कालिन्ध्यां विधिवत् स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः ।

मौनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्राववन्दत ॥१६॥

कालिन्ध्यां विधिवत् स्नात्वा कृत पुण्यजलक्रियः मौनेन संयतप्राणः ब्रह्मपुत्राः अवन्दत ॥१६॥

विधिवत्	विधिपूर्वक	मौनेन	मौनके द्वारा
कालिन्ध्यां	यमुनामें	संयतप्राणः	प्राणोंको नियन्त्रित करके
स्नात्वा	स्नान करके	ब्रह्मपुत्राः	ब्रह्माजी पुत्रों (अंगिरा-नारद) को
पुण्यजलक्रियः	(तर्पणादि) पवित्र- जल-क्रिया	अवन्दत	प्रणाम किया ॥१६॥
कृत	सम्पन्न करके,		

अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयतात्मने ।

भगवान्नारदः प्रीतो विद्यामेतामुवाच ह ॥१७॥

अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयत आत्मने भगवान् नारदः प्रीतः विद्यां एतां उवाच ह ॥१७॥

अथ तस्मै	तब उस	भगवान् नारदः	भगवान् नारदने
प्रयत आत्मने	संयत चित्त	एतां विद्यां	इस विद्याका
प्रपन्नाय	शरणागत	ह उवाच	निश्चित उपदेश किया ॥१७॥
भक्ताय	भक्तपर		
प्रीतः	प्रसन्न होकर		

नाश्च उवाच—*

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ।

प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥१८॥

ॐ नमः तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि प्रद्युम्नाय अनिरुद्धाय नमः
सङ्कर्षणाय च ॥१८॥

ॐ	ओंकार स्वरूप	प्रद्युम्नाय	प्रद्युम्नको
भगवते	भगवान्	अनिरुद्धाय	अनिरुद्धको
वासुदेवाय	वासुदेव	च सङ्कर्षणाय	और संकर्षणको
तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार,	नमः	नमस्कार ॥१८॥
धीमहि	हम आपका ध्यान करते हैं		

नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये ।

आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥१९॥

नमः विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये आत्मारामाय शान्ताय निवृत्त
द्वैत दृष्टये ॥१९॥

विज्ञानमात्राय	विशुद्ध विज्ञान स्वरूप,	द्वैत दृष्टये निवृत्त	द्वैत दृष्टिसे परे
परमानन्दमूर्तये	परमानन्दकी मूर्ति,	नमः	आपको नमस्कार
आत्मारामाय	आत्माराम		॥१९॥
शान्ताय	शान्त स्वरूप		

आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः ।

हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥२०॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

आत्मानन्द अनुभूति एव न्यस्त शक्ति ऊर्मये नमः हृषीकेशाय महते
नमः ते विश्वमूर्तये ॥२०॥

आत्मानन्द	आत्मानन्दकी	नमः	आपको नमस्कार,
अनुभूति एव	अनुभूतिसे ही	हृषीकेशाय	हृषीकेश
शक्ति ऊर्मये	माया शक्तिकी लहरीं (राग-द्वेषादि) को	महते विश्वमूर्तये	महान विश्वमूर्ति
न्यस्त	त्यागे हुए	ते नमः	आपको नमस्कार ॥२०॥

वचस्युपरतेऽप्राप्य य एको मनसा सह ।

अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥२१॥

वचसि उपरते अप्राप्य यः एकः मनसा सह अनाम अरूपः चिन्मात्रः
सः अव्यात् नः सत् असत् परः ॥२१॥

मनसा सह	मनके साथ	चिन्मात्रः	ज्ञान मात्र
वचसि अप्राप्य	वाणीके बिना पाये ही	सत् असत् परः	कारण-कार्यातीत तत्त्व है
उपरते	लौट आनेपर	सः नः अव्यात्	वह हमारी रक्षा करे ॥२१॥
यः एकः	जो अद्वितीय		
अनाम अरूपः	नाम रूपसे रहित		

यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते ।

मृण्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥२२॥

यस्मिन् इदं यतः च इदं तिष्ठति अपि एति जायते मृण्मयेषु इव
मृत् जातिः तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥२२॥

मृण्मयेषु	मिट्टीसे बने (घड़े आदि) पदार्थोंमें	यस्मिन् इदं	जिसमें यह संसार
मृत् जातिः इव	मिट्टी जातिके समान	तिष्ठति	स्थित है
		च यतः इदं	और जिससे यह संसार

एति जायते	आकर उत्पन्न होता है	ब्रह्मणे नमः	परम ब्रह्मको नमस्कार ॥२२॥
तस्मै ते	उस आप		

यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ।

अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तन्नतोऽस्म्यहम् ॥२३॥

यत् न स्पृशन्ति न विदुः मनः बुद्धि इन्द्रिय असवः अन्तः बहिः च विततं व्योमवत् तत् नतः अस्मि अहम् ॥२३॥

मनः बुद्धि	मन, बुद्धि,	अन्तः च बहिः	भीतर और बाहर
इन्द्रिय असवः	इन्द्रियां, प्राण	विततं	एकरस फैले (व्याप्त)
यत् न स्पृशन्ति	जिसे नहीं छूते,	तत् अहं	उस आपको मैं
न विदुः	न जानते,	नतः अस्मि	नमस्कार करता हूँ
व्योमवत्	आकाशकी भांति		॥२३॥

देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी

यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु ।

नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं

स्थानेषु तद् द्रष्टृपदेशमेति ॥२४॥

देह इन्द्रिय प्राण मनः धियः अमी यत् अंश विद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु न एव अन्यदा लोहं इव आप्रतप्तं स्थानेषु तत् द्रष्टृपदेशं एति ॥२४॥

अमी	ये	प्रचरन्ति	लगे रहते हैं,
देह इन्द्रिय	शरीर, इन्द्रियां,	अन्यदा	अन्यथा (जिससे युक्त
प्राण मनः	प्राण, मन		न होनेपर सुषुप्तिमें)
धियः	बुद्धि	न एव	नहीं ही (कार्यशील)
यत् अंश विद्धाः	जिसके अंश (जीव)		रहते
	से मुक्त होकर	आप्रतप्तं लोहं	तपाये लोहेके
कर्मसु	(अपने) कर्मोंमें	इव	समान*

* तपाये लोहेमें जब तक अग्नि व्याप्त है तभी तक जलायेगा अन्यथा नहीं ।

स्थानेषु	(जागृतादि) अव- स्थाओंमें	अपदेशं एति	नाम स्वीकार कर लेता है ॥२४॥
तत् द्रष्ट	वही द्रष्टा		

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये
सकलसात्वतपरिवृढनिकरकरकमलकुङ्मलोपलालितचरणारविन्द-
युगल परम परमेष्ठिन्नमस्ते ॥२५॥

ॐ नमः भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकल
सात्वत परिवृढ निकर कर कमल कुङ्मल उपलालित चरण अरविन्द युगल
परम परमेष्ठिन् नमः ते ॥२५॥

ॐ भगवते	ओंकार स्वरूप भगवान्	कर कमल	कर-कमल
महानुभावाय	महान प्रभावशाली	कुङ्मल	कलियोंसे
महाविभूतिपतये	महाविभूतिपति	उपलालित	संसेवित
महापुरुषाय	महापुरुषको	युगल चरण	दोनों चरण-
नमः	नमस्कार,	अरविन्द	कमलवाले
सकल सात्वत	समस्त भक्त-	परम परमेष्ठिन्	सर्वश्रेष्ठ परम प्रभु
परिवृढ निकर	श्रेष्ठ समुदायके	ते नमः	आपको नमस्कार
			॥२५॥

श्रीशुक उवाच—

भक्तायैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारदः ।

ययावद्भिरसा साकं धाम स्वायम्भुवं प्रभो ॥२६॥

भक्ताय एतां प्रपन्नाय विद्यां आदिश्य नारदः ययाः अङ्गिरसा साकं
धाम स्वायम्भुवं प्रभो ॥२६॥

प्रभो	परीक्षित !	नारदः	देवर्षि नारद
प्रपन्नाय	शरणागत	अङ्गिरसा साकं	महर्षि अंगिराके
भक्ताय	भक्त (चित्तकेतु) का		साथ
एतां विद्यां	इस विद्याका	स्वायम्भुवं धाम	ब्रह्मलोक
आदिश्य	उपदेश करके	ययाः	चले गये ॥२६॥

चित्रकेतुस्तु विद्यां तां यथा नारदभाषिताम् ।

धारयामास सप्ताहमब्धक्षः सुसमाहितः ॥२७॥

चित्रकेतुः तु विद्यां तां यथा नारदः भाषितां धारयामास सप्ताहं अब्धक्षः सुसमाहितः ॥२७॥

यथा नारदः	जैसा नारदजीने	अब्धक्षः	केवल जल पीकर
भाषितां	बतलाया था	सुसमाहितः	अत्यन्त एकाग्र
तां विद्यां	उस विद्याको		होकर
चित्रकेतुः तु	चित्रकेतुने तो	धारयामास	धारण किया ॥२७॥
सप्ताहं	एक सप्ताह तक		

ततश्च सप्तरात्रान्ते विद्यया धार्यमाणया ।

विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृपः ॥२८॥

ततः च सप्तरात्र अन्ते विद्यया धार्यमाणया विद्याधर आधिपत्यं स लेभे अप्रतिहतं नृपः ॥२८॥

ततः च	फिर तो	अप्रतिहतं	निर्बाध
सप्तरात्र अन्ते	एक सप्ताहके अन्तमें	विद्याधर	विद्याधरोंका
विद्यया	उस विद्याको	आधिपत्यं	आधिपत्य
धार्यमाणया	धारण करनेसे	लेभे	प्राप्त कर लिया
स नृपः	उस राजा (चित्र- केतु)ने		॥२८॥

ततः कतिपयाहोर्भिविद्ययेद्धमनोगतिः ।

जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणान्तिकम् ॥२९॥

ततः कतिपय अहोभिः विद्यया इद्ध मनः गतिः जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरण अन्तिकम् ॥२९॥

ततः कतिपय	फिर कुछ	विद्यया इद्ध	उस विद्यासे बढ़ी
अहोभिः	दिनोंमें	मनः गतिः	मनकी गतिके द्वारा

देवदेवस्य	देवाधिदेव	चरण अन्तिकं	चरणोंके पास
शेषस्य	भगवान् शेषके	जगाम	पहुँचा ॥२६॥

मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत्-
किरीटकेयूरकटित्रकङ्कणम् ।

प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं वृतं
ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुम् ॥३०॥

मृणाल गौरं शितिवाससं स्फुरत् किरीट केयूर कटित्र कङ्कणं प्रसन्न-
वक्त्र अरुण लोचनं वृतं ददर्श सिद्धेश्वर मण्डलैः प्रभुम् ॥३०॥

मृणाल गौरं	कमल-तन्तु गौर वर्ण,	प्रसन्नवक्त्रं	प्रसन्न मुख,
शितिवाससं	नीलाम्बरधारी,	अरुण लोचनं	लाल नेत्रोंवाले
स्फुरत् किरीट	चमकते मुकुट,	प्रभुं	प्रभुको
केयूर कटित्र	अंगद, करधनी	सिद्धेश्वर	सिद्धेश्वरोंके
कङ्कणं	कङ्कण पहिने,	मण्डलैः	समूहसे
		वृतं ददर्श	घिरा देखा ॥३०॥

तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्बिषः

स्वच्छामलान्तःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ।

प्रवृद्धभक्त्या प्रणयाश्रुलोचनः

प्रहृष्टरोमानमदादिपूरुषम् ॥३१॥

तत् दर्शन ध्वस्त समस्त किल्बिषः स्वच्छ अमल अन्तःकरणः
अभ्ययात् मुनिः प्रवृद्ध भक्त्या प्रणय अश्रु लोचनः प्रहृषु रोमा नमत् आदि
पूरुषं ॥३१॥

तत् दर्शन	उनके दर्शनसे	स्वच्छ अमल	स्वच्छ निर्मल
समस्त	सम्पूर्ण	अन्तःकरणः	अन्तःकरण होकर
किल्बिषः	पाप	मुनिः अभ्ययात्	मौन समीप पहुँचा ।
ध्वस्त	नष्ट हो गये ।	प्रवृद्ध भक्त्या	भक्तिके बढ़ जानेसे

प्रणय अश्रु	नेत्रोंमें प्रेमाश्रु	आदि पूरुषं	(उन) आदि पुरुष-
लोचनः	आ गये,		को
प्रहृष्ट रोमा	रोम खड़े हो गये,	नमत्	नमस्कार किया
			॥३१॥

स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं
 प्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ।
 प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो
 नैवाशक्तं प्रसमीडितुं चिरम् ॥३२॥

स उत्तम श्लोक पदाब्ज विष्टरं प्रेम अश्रुलेशैः उपमेहयन् मुहुः प्रेम
 उपरुद्ध अखिल वर्ण निर्गमः न एव अशक्तं तं प्रसमीडितुं चिरम् ॥३२॥

स	वह	अखिल वर्ण	सम्पूर्ण अक्षरोंका
उत्तम श्लोक	पवित्र कीर्ति (भग- वान् शेष) के	निर्गमः	निकलना
पदाब्ज	चरण-कमलोंके	उपरुद्ध	रुक जानेसे
विष्टरं	पाद-पीठको	चिरं	देर तक
प्रेम अश्रुलेशैः	प्रेमाश्रु-प्रवाहसे	तं प्रसमीडितुं	उनकी स्तुति करनेमें
मुहुः उपमेहयन्	बार-बार भिंगाता रहा ।	अशक्त न एव	समर्थ नहीं ही हुआ ॥३२॥
प्रम	प्रेमके कारण		

ततः समाधाय मनो मनीषया
 बभाष एतत्प्रतिलब्धवागसौ ।
 नियम्य सर्वेन्द्रियबाह्यवर्तनं
 जगद्गुरुं सात्वतशास्त्रविग्रहम् ॥३३॥

ततः समाधाय मनः मनीषया बभाष एतत् प्रतिलब्ध वाक् असौ
 नियम्य सर्वेन्द्रिय बाह्य वर्तनं जगद्गुरुं सात्वत शास्त्र विग्रहं ॥३३॥

ततः मनीषया	फिर बुद्धिके द्वारा	सात्वत शास्त्र	पाञ्चरात्र शास्त्र
मनः समाधाय	मनको स्थिर करके,		वर्णित
प्रतिलब्ध वाक्	वाणी प्राप्त करके	विग्रहं	स्वरूपवाले
	(बोलनेमें समर्थ	जगद्गुरुं	जगद्गुरु भगवान्
	होकर)		शेषसे
सर्वेन्द्रिय	सब इन्द्रियोंका	असौ एतत्	यह इस प्रकार
बाह्य वर्तनं	बाहरी व्यवहार	बभाष	बोला ॥३४॥
नियम्य	नियन्त्रित करके		

वित्रक्तेतु उवाच-

अजित जितः सममतिभिः

साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता ।

विजितास्तेऽपि च भजता-

मकामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः ॥३४॥

अजित जितः सममतिभिः साधुभिः भवान् जित आत्मभिः भवता
विजिताः ते अपि च भजतां अकाम आत्मनां यः आत्मदः अतिकरुणः ॥३४॥

अजित	अजित !	यः अतिकरुणः	जो अतिशय कृपालु
जित आत्मभिः	जितेन्द्रिय		(आप)
सममतिभिः	समबुद्धि	अकाम आत्मनां	निष्काम हृदयसे
साधुभिः	साधुओं द्वारा	भजतां	भजन करने वालोंको
भवान् जितः	आप जीत लिए	आत्मदः	अपनेको ही दे देते
	गये हैं ।		हैं ॥३४॥
च ते अपिः	और वे भी		
भवता विजिताः	आपके द्वारा जीत		
	लिये गये हैं		

तव विभवः खलु भगवन्

जगदुदयस्थितिलयादीनि ।

विश्वसृजस्तेऽशांशा-

स्तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथगभिमत्या ॥३५॥

तव विभवः खलु भगवन् जगत् उदय स्थिति लय आदीनि विश्वसृजः
ते अंश अंशाः तत्र मृषा स्पर्धन्ते पृथक् अभिमत्या ॥३५॥

भगवन्	भगवन् !	ते अंश अंशाः	आपके अंशके भी
खलु तव	अरे, आपका		अंश हैं,
विभवः	वैभव	तत्र	सृष्टि आदिमें
जगत् उदय	विश्वका प्रकट	पृथक् अभिमत्या	अपनेको पृथक्-पृथक्
	होना,		(जगत्-कर्ता) मान-
स्थिति लय	रहना, प्रलय होना		कर
आदीनि	आदि हैं,	मृषा स्पर्धन्ते	झूठे ही स्पर्धा करते
विश्वसृजः	दूसरे विश्व-स्रष्टा		हैं ॥३५॥

परमाणुपरममहतो-

स्त्वमाद्यन्तान्तरवर्ती त्रयविधुरः ।

आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां

यद् ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि ॥३६॥

परमाणु परम महतोः त्वं आदि अन्त अन्तरवर्ती त्रयविधुरः आदाः
अन्ते अपि च सत्त्वानां यत् ध्रुवं तत् एव अन्तराले अपि ॥३६॥

परमाणु	परमाणुसे लेकर	सत्त्वानां	वस्तुओंके
परम महतोः	महत्तत्त्व तक	आदाः च	आदि और
त्वं	आप ही (सबके)	अन्ते अपि	अन्तमें भी
आदि अन्त	आदि, अन्त और	यत् ध्रुवं	जो स्थिर रहता है
अन्तरवर्ती	मध्यमें भी हैं (तथा)	तत् एव	वही
त्रयविधुरः	(आदि, अन्त, मध्य)	अन्तराले अपि	मध्यमें भी होता है
	तीनोंसे स्वयं रहित		॥३६॥
	हैं,		

क्षित्यादिभिरेष किलावृतः

सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोशः ।

यत्र पतत्यणुकल्पः

सहाण्डकोटिकोटिभिस्तदनन्तः ॥३७॥

क्षिति आदिभिः एष किल आवृतः सप्तभिः दशगुण उत्तरैः
आण्डकोशः यत्र पतति अणु कल्पः सह अण्डकोटि कोटिभिः तत्
अनन्तः ॥३७॥

किल एष	अहो, यह	अण्डकोटिः	(अपने समान)
आण्डकोशः	ब्रह्माण्ड		करोड़ों ब्रह्माण्डोंकी
क्षिति आदिभिः	पृथ्वी आदि	कोटिभिः	श्रेणियोंके साथ
दशगुण	(एक दूसरेसे) दस	यत्र अणु कल्पः	जिसमें अणुके समान
	गुने	पतति	घूमते रहते हैं
सप्तभिः	सात (पंचभूत, अहं- कार, महत्तत्त्व)	तत् अनन्तः	वह आप अनन्त हैं
आवृतः	आवरणोंसे घिरा है,		॥३७॥

विषयतृषो नरपशवो

य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम् ।

तेषामाशिष ईश

तदनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम् ॥३८॥

विषय तृषः नरपशवः यः उपासते विभूतीः न परं त्वां तेषां आशिष
ईश तत् अनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम् ॥३८॥

यः विभूतीः	जो विभूतियों (देवताओं) की	ईश	समर्थ प्रभु
उपासते	उपासना करते हैं	यथा राजकुलं	जैसे राजकुलके
परं त्वां न	परम पुरुष आपकी नहीं		(दिये गायें आदि उसके नष्ट होनेपर)
विषय तृषः	विषयोंकी तृष्णावाले	तत् अनु	उन (देवताओंके) पीछे ही
तेषां नरपशवः	उन मनुष्यरूपी पशुओंकी	विनश्यन्ति	नष्ट हो जाती हैं
आशिष	कामनाएँ		॥३८॥

कामधियस्त्वयि रचिता

न परम रोहन्ति यथा करम्भबीजानि ।

ज्ञानात्मन्यगुणमये

गुणगणतोऽस्य

द्वन्द्वजालानि

॥३६॥

कामधियः त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करम्भ बीजानि ज्ञान
आत्मनि अगुणमये गुण गणतः अस्य द्वन्द्वजालानि ॥३६॥

काम धियः सकाम बुद्धिसे
त्वयि ज्ञान आप ज्ञान
आत्मनि स्वरूप,
अगुणमये निर्गुणकी
रचिता की गयी उपासना
परम न रोहन्ति फिर (जन्मादि फल
देनेके लिए) नहीं
उगती

यथा करम्भ ✓ जैसे भुने ✓
बीजानि बीज,
अस्य गुण गणतः इस जगतके ही गुण-
गणोंसे
द्वन्द्वजालानि (सुख-दुःखादि)
द्वन्द्वोंका ज्ञाता
उत्पन्न होता है
॥३६॥

जितमजित तदा भवता

यदाऽऽह भागवतं धर्ममनवद्यम् ।

निष्किञ्चना ये मुनय

आत्मारामा

यमुपासतेऽपवर्गाय

॥४०॥

जितं अजित तदा भवता यदा आह भागवतं धर्म अनवद्यं
निष्किञ्चना ये मुनयः आत्मारामा यं उपासते अपवर्गाय ॥४०॥

अजित अजित !
यदा भवता जब आपने
अनवद्यं निर्दोष
भागवतं धर्मं भागवत-धर्मका
आह उपदेश किया
ये निष्किञ्चना जो आकिञ्चन

मुनयः मुनिगण हैं
अपवर्गाय मोक्ष प्राप्तिके लिए
यं उपासते जिस भागवत धर्म-
की उपासना करते हैं
तदा जितं तभी (सबको) जीत
लिया ॥४०॥

विषममतिर्न यत्र नृणां

त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र ।

विषमधिया रचितो यः

स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्मबहुलः ॥४१॥

विषममतिः न यत्र नृणां त्वं अहं इति मम तव इति च यत् अन्यत्र
विषमधिया रचितः यः स हि अविशुद्धः क्षयिष्णुः अधर्म बहुलः ॥४१॥

यत्र	जिस(भागवत-धर्म)में	यत् अन्यत्र	जो इससे भिन्न
नृणां	मनुष्योंकी	विषमधिया	विषम-बुद्धिसे
अहं इति च	'यह मैं हूँ' इस	रचितः	बनाये गये
	प्रकार और	यः स हि	जो धर्म हैं वे तो
त्वं	यह तू	अविशुद्धः	अशुद्ध हैं,
मम तव इति	'यह मेरा, यह	क्षयिष्णु	नाशवान हैं,
	तुम्हारा' इस प्रकार	अधर्म बहुलः	अधर्म प्रधान हैं
विषममतिः न	विषम बुद्धि नहीं		॥४१॥
	होती		

कः क्षेमो निजपरयोः

कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण ।

स्वद्रोहात्तव कोपः

परसम्पीडया च तथाधर्मः ॥४२॥

कः क्षेमः निजपरयोः कियान् अर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण स्वद्रोहात्
तव कोपः परसम्पीडया च तथा अधर्मः ॥४२॥

निजपरयोः	अपने और पराये- पनेमें	स्वपरद्रुहा	अपने और परायेमें द्वेष उत्पन्न करने- वाले
कः क्षेमः	क्या कल्याण होने वाला है,	धर्मेण	धर्मसे

कियान अर्थः	क्या प्रयोजन बनने वाला है,	तव कोपः	आप क्रोध करते हैं
स्वद्रोहात्	(सकाम-धर्मसे) अपनेको पीड़ा होने पर	च तथा परसम्पीडया अधर्मः	और वैसे ही दूसरेको पीड़ा देनेसे पाप होता है ॥४२॥

न व्यभिचरति तवेक्षा

यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ।

स्थिरचरसत्त्वकदम्बे-

ष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥४३॥

न व्यभिचरति तव ईक्षा यया हि अभिहितः भागवतः धर्मः स्थिर चर सत्त्व कदम्बेषु अपृथक् धियः यं उपासते तु आर्याः ॥४३॥

यया हि	जिसके द्वारा	आर्याः तु	श्रेष्ठ-पुरुष तो
भागवतः धर्मः	भागवत-धर्म	स्थिर चर	जड़-चेतन
अभिहितः	निरूपण किया है	सत्त्व कदम्बेषु	प्राणि-समूहमें
तव ईक्षा	आपकी वह दृष्टि	अपृथक् धियः	समबुद्धि रखकर
व्यभिचरति न	(परमार्थसे) विचलित नहीं होती	यं उपासते	जिसका सेवन करते हैं ॥४३॥

न हि भगवन्नघटितमिदं

त्वद्दर्शनान् नृणामखिलपापक्षयः ।

यन्नामसकृच्छ्रवणात्

पुलकसकोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥४४॥

न हि भगवन् अघटितं इदं त्वत् दर्शनात् नृणां अखिल पाप क्षयः यत् नाम सकृत् श्रवणात् पुलकसकः अपि विमुच्यते संसारात् ॥४४॥

भगवन्	भगवन्	नृणां	मनुष्योंके
त्वत् दर्शनात्	आपके दर्शनसे	अखिल पाप क्षयः	समस्त पापोंका नाश

न अघटितं	अशक्य नहीं है	पुल्कसकः अपि	कसाई भी
हि यत् नाम	क्योंकि जिनका नाम	संसारात्	संसार (चक्र) से
सकृत् श्रवणात्	एक बार ही सुनकर	विमुच्यते	छूट जाता है ॥४४॥

अथ भगवन् वयमधुना

त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ।

सुरऋषिणा यदुदितं

तावकेन कथमन्यथा भवति ॥४५॥

अथ भगवन् वयं अधुना त्वत् अवलोक परिमृष्ट आशय मलाः सुर
ऋषिणा यत् उदितं तावकेन कथं अन्यथा भवति ॥४५॥

भगवन्	भगवन्,	तावकेन	आपके भक्त
अथ अधुना	अब इस समय	सुर ऋषिणा	देवर्षिने
वयं	हम	यत् उदितं	जो कहा था
त्वत् अवलोक	आपका दर्शन करके	अन्यथा	उसके विपरीत
आशय मलाः	अन्तःकरण के दोषों- से	कथं भवति	कैसे हो सकता है ॥४५॥
परिमृष्ट	सर्वथा स्वच्छ हो गये हैं ।		

विदितमनन्त समस्तं

तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ।

विज्ञाप्यं परमगुरोः

कियदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥४६॥

विदितं अनन्त समस्तं तव जगत् आत्मनः जनैः इह आचरितं विज्ञाप्यं
परमगुरोः कियत् इव सवितुः इव खद्योतैः ॥४६॥

तव	आप	अनन्त	हे अनन्त !
जगत् आत्मनः	विश्वरूपको	जनैः इह	लोगों द्वारा इस संसारमें

समस्तं आचरितं किया गया समस्त	खद्योतैः इव	जुगतूकी भांति
चरित	परमगुरोः	आप परमगुरुको
विदितं ज्ञात ही है	कियत् इव	भला क्या
सवितुः सूर्यको	विज्ञाप्यं	बतलाना है ॥४६॥

नमस्तुभ्यं भगवते

सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय ।

दुरवसितात्मगतये

कुयोगिनां भिदा परमहंसाय ॥४७॥

नमः तुभ्यं भगवते सकल जगत् स्थिति लय उदय ईशाय दुरवसित
आत्मगतये कुयोगिनां भिदा परम हंसाय ॥४७॥

सकल जगत् सम्पूर्ण संसारकी	दुरवसित	दुश्चिन्त्य है,
स्थिति लय स्थिति, प्रलय,	परम हंसाय	परम शुद्ध-स्वरूप
उदय ईशाय उत्पत्तिके स्वामी	भगवते	भगवान्
भिदा कुयोगिनां भेद-दृष्टिवाले	तुभ्यं नमः	आपको नमस्कार
कुयोगियोंके लिए		॥४७॥
आत्मगतये आपका स्वरूप		

यं वै श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति

यं चेकितानममु चित्तय उच्चकन्ति ।

भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि

तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥४८॥

यं वै श्वसन्तं अनु विश्वसृजः श्वसन्ति यं च ईकितानं अनु चित्तय
उच्चकन्ति भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमः भगवते अस्तु सहस्र
मूर्ध्ने ॥४८॥

वै यं	निश्चय जिनके	अनु विश्वसृजः	पीछे विश्वसृष्टा
श्वसन्तं	श्वास लेनेसे (चेष्टा करनेसे)		(ब्रह्मादि)

श्वसन्ति	श्वास लेते (सचेष्ट होते) हैं,	भूमण्डलं	भूमण्डल
✓		यस्य मूर्ध्नि	जिसके सिरपर
च यं ईकितानं	और जिनकी दृष्टि-से जीवित	सर्षपायति	सरसों जैसा लगता है
अनु चित्तय	पीछे इन्द्रियां	तस्मै सहस्रमर्ध्ने	उन सहस्र शीर्षा
उच्चकन्ति	अपने विषयोंका ग्रहण कर पाती हैं,	भगवते	भगवान्को
		नमः अस्तु	नमस्कार है ॥४८॥

शीघ्रक उवाच—

संस्तुतो भगवानेवमनन्तस्तमभाषत ।

विद्याधरपतिं प्रीतश्चित्रकेतुं कुरुद्वह ॥४९॥

संस्तुतः भगवान् एवं अनन्तः तं अभाषत विद्याधरपतिं प्रीतः चित्रकेतुं कुरुद्वह ॥४९॥

कुरुद्वह	परीक्षित !	तं विद्याधर-	उस विद्याधर-
एवं संस्तुतः	इस प्रकार स्तुति करने पर	पति	पति
प्रीतः	प्रसन्न होकर	चित्रकेतुं	चित्रकेतुसे
भगवान् अनन्तः	भगवान् अनन्त	अभाषत्	बोले ॥४९॥

श्रीभगवानुवाच—

यन्नारदाङ्गिरोभ्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनम् ॥

संसिद्धोऽसि तथा राजन् विद्यया दर्शनाच्च मे ॥५०॥

यत् नारद अङ्गिरः भ्यां ते व्याहृतं मे अनुशासनं संसिद्धः असि तथा राजन् विद्यया दर्शनात् च मे ॥५०॥

राजन्	राजन् !	ते यत् मे	तुम्हें जो मेरा
नारद अङ्गिरः	नारद और अंगिरा	अनुशासनं	अनुष्ठान
भ्यां	द्वारा	व्याहृतं	बतलाया गया है,

तया विद्यया	उस विद्यासे	संसिद्धः असि	तुम सिद्ध हो गये
च मे दर्शनात्	और मेरे दर्शनसे		हो ॥५०॥

अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः ।

शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ॥५१॥

अहं वै सर्वभूतानि भूत आत्मा भूतभावनः शब्दब्रह्म परं ब्रह्म मम
उभे शाश्वती तनूः ॥५१॥

वै अहं	निश्चय मैं	शब्दब्रह्म	वेद और
सर्वभूतानि	सब प्राणियोंमें	परम् ब्रह्म	परमब्रह्म
भूत आत्मा	उनकी आत्मा	उभे मम	दोनों मेरे
भूत भावनः	प्राणियोंका पालक	शाश्वती तनूः	शाश्वत शरीर हैं
	हूँ ।		॥५१॥

लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि सन्ततम् ।

उभयं च मया व्याप्तं मयि चैवोभयं कृतम् ॥५२॥

लोके विततं आत्मानं लोकं च आत्मनि सन्ततं उभयं च मया व्याप्तं
मयि च उभयं कृतम् ॥५२॥

लोके विततं	लोकोंमें व्याप्त	मयि व्याप्तं	मुझसे व्याप्त
आत्मानं	आत्माको	च उभयं	एवं दोनों
च आत्मनि	और आत्मामें	मयि कृतं	मुझसे बना देखे
लोकं सन्ततं	लोकोंको व्याप्त		॥५२॥
च उभयं	तथा दोनोंको		

यथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि ।

आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥५३॥

यथा सुषुप्तः पुरुषः विश्वं पश्यति च आत्मनि आत्मानं एक देशस्थं
मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥५३॥

यथा सुषुप्तः	जैसे सोया हुआ	एक देशस्थं	एक स्थानमें
पुरुषः	पुरुष		(देखता है)
आत्मनि च	अपने भीतर ही	उत्थितः	जागनेपर
विश्वं पश्यति	विश्वको देखता है,	स्वप्न मन्यते	इसे स्वप्न मानता
आत्मानं	उसमें अपनेको		है ॥५३॥

एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चात्मनः ।

मायामात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥५४॥

एवं जागरण आदीनि जीवस्थानानि च आत्मनः मायामात्राणि विज्ञाय तत् द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥५४॥

एवं	इसी प्रकार	मायामात्राणि	माया ही हैं
जागरण	जागरण	विज्ञाय	यह जानकर
आदीनि	आदि	तत् द्रष्टारं	उसके द्रष्टा
जीवस्थानानि	जीवकी अवस्थामें	परं स्मरेत्	परमात्माका स्मरण
च	भी		करे ॥५४॥
आत्मनः	अपनी		

येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेदात्मनस्तदा ।

सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम् ॥५५॥

येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेद आत्मनः तदा सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तं आत्मानं अवेहि माम् ॥५५॥

येन	जिसके द्वारा	तं निर्गुणं ब्रह्म	उस निर्गुण-ब्रह्म
प्रसुप्तः पुरुषः	सुषुप्ति प्राप्त पुरुष	आत्मानं मां	आत्माको मुझे
आत्मनः स्वापं	अपनी सुषुप्तिको	अवेहि	जानो ॥५५॥
च तदा	और उस समय		
सुखं वेद	सुखको भी जानता		
	है,		

उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वापप्रतिबोधयोः ।

अन्वेति व्यतिरिच्येत तज्ज्ञानं ब्रह्म तत् परम् ॥५६॥

उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वाप प्रतिबोधयोः अन्वेति व्यतिरिच्येत तत्
ज्ञानं ब्रह्म तत् परम् ॥५६॥

प्रस्वाप	सुषुप्ति और	व्यतिरिच्येत	(दोनोंसे) पृथक् भी
प्रतिबोधयोः	जागरण		रहता है,
उभयं स्मरतः	दोनोंका स्मरण	तत् ज्ञानं	वह (सब अवस्थाओं
	करने वाला		में एकरस रहने-
पुंसः	पुरुष		वाला) ज्ञान है
अन्वेति	(दोनों अवस्थाओंमें)	ब्रह्म तत् परं	वही परब्रह्म है
	व्याप्त रहता है		॥५६॥

यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः ।

ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेमृतिः ॥५७॥

यत् एतत् विस्मृतं पुंसः मत् भावं भिन्नं आत्मनः ततः संसार एतस्य
देहात् देहः मृतेः मृतिः ॥५७॥

एतत् यत्	इससे जो	देहात् देहः	एक शरीरसे दूसरे
मत् भावं	मेरे स्वरूपको		शरीरमें जाना
विस्मृतं पुंसः	भूलकर पुरुषका	मृतेः मृतिः	बार-बार (जन्म
आत्मनः भिन्नं	अपनेको पृथक्		लेकर) मरना रूप
	मानना है	संसार	संसार है ॥५७॥
ततः एतस्य	उसीसे इसका		

लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवाम् ।

आत्मानं यो न बुद्धयेत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ॥५८॥

लब्ध्वा इह मानुषीं योनिं ज्ञान विज्ञान सम्भवां आत्मानं यः न
बुद्धयेत न क्वचित् शमं आप्नुयात् ॥५८॥

इह	इस संसारमें	यः आत्मानं	जो अपने स्वरूपको
ज्ञान विज्ञान	ज्ञान-विज्ञान	न बुद्धयेत	नहीं जान लेता
सम्भवां	उत्पन्न करने वाली		(वह))
मानुषीं योनिं	मनुष्य जन्म	क्वचित् शमं	कभी शान्ति
लब्ध्वा	पाकर	न आप्नुयात्	नहीं पाता ॥५८॥

स्मृत्वेहायां परिव्लेशं ततः फलविपर्ययम् ।

अभयं चाप्यनीहायां सङ्कल्पाद्विरमेत्कविः ॥५९॥

स्मृत्वा ईहायां परिव्लेशः ततः फल विपर्ययं अभयं च अपि अनीहायां सङ्कल्पात् विरमेत् कविः ॥५९॥

कविः	बुद्धिमान	च अनीहायां	और निश्चेष्टता
ईहायां	(सांसारिक)चेष्टामें		(निष्कामता)में
परिव्लेशं	सब ओर क्लेश है,	अपि अभयं	तो अभय है
ततः	उससे	स्मृत्वा	यह स्मरण करके
फल विपर्ययं	उलटा फल (सुखके बदले दुःख मिलता है,	संकल्पात्	कर्म-संकल्पसे
		विरमेत्	विराम ले ले (त्याग दे) ॥५९॥

सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वति दम्पती क्रियाः ।

ततोऽनिवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च सुखस्य च ॥६०॥

सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वति दम्पती क्रियाः ततः अनिवृत्तिः अप्राप्तिः दुःखस्य च सुखस्य च ॥६०॥

दम्पती	स्त्री-पुरुष	अनिवृत्तिः	छुटकारा होता नहीं,
सुखाय	सुख पानेके लिए या	सुखस्य च	सुखकी भी
दुःखमोक्षाय	दुःखसे छूटनेके लिए	अप्राप्तिः	प्राप्ति नहीं होती
क्रियाः कुर्वति	कर्म करते हैं,		॥६०॥
ततः दुःखस्य च	उससे दुःखसे तो		

एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञाभिमानिनाम् ।

आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥६१॥

एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञ अभिमानिनां आत्मनः च गतिं सूक्ष्मां
स्थानत्रय विलक्षणाम् ॥६१॥

एवं	इस प्रकार	स्थान त्रय	(जाग्रत, स्वप्न,
विज्ञ	अपनेको		सुषुप्ति) तीनों अव-
अभिमानिनां	समझदार माननेवाले		स्थाओंसे
नृणां	मनुष्योंकी	विलक्षणां	विलक्षण (भिन्न)
विपर्ययं	उलटी दशा	गतिं बुद्ध्वा	स्वरूप जानकर
च आत्मनः	तथा आत्माका		॥६१॥

दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ।

ज्ञानविज्ञानसन्तुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥६२॥

दृष्ट श्रुताभिः मात्राभिः निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ज्ञानविज्ञान सन्तुष्टः
मद्भक्तः पुरुषः भवेत् ॥६२॥

दृष्ट	(इस लोकके) देखे	निर्मुक्तः	छूटकर,
	हुए	ज्ञान विज्ञान	ज्ञान-विज्ञानसे
श्रुताभिः	(स्वर्गादिके) सुने हुए	सन्तुष्टः	सन्तुष्ट होकर
मात्राभिः	विषय-भोगोंसे	पुरुषः	पुरुष
स्वेन तेजसा	अपने ही तेज	मद्भक्तः भवेत्	मेरा भक्त हो जाय
	(विवेक) से		॥६२॥

एतावानेव मनुजैर्योगनैपुणबुद्धिभिः ।

स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥६३॥

एतावान् एव मनुजैः योग नैपुण बुद्धिभिः स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयः यत्
पर आत्म एक दर्शनम् ॥६३॥

यत्	जो	एक दर्शनं	एक दर्शन है
पर आत्म	परमात्मा और	योग नैपुण	योगमें निपुण
	आत्माका	बुद्धिभिः	बुद्धिसे
		मनुजैः	मनुष्यको

सर्वात्मना	पूरे मनसे		स्वार्थः ज्ञेयः	स्वार्थं जानना
एतावान् एव	इतना ही			चाहिए ॥६३॥

त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम ।

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि ॥६४॥

त्वं एतत् श्रद्धया राजन् अप्रमत्तः वचः मम ज्ञानविज्ञान सम्पन्नः
धारयन् आशु सिध्यसि ॥६४॥

राजन् त्वं	राजन् तुम		ज्ञानविज्ञान	ज्ञान-विज्ञानसे
अप्रमत्तः	प्रमादहीन होकर		सम्पन्नः	सम्पन्न होकर
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक		आशु सिध्यसि	शीघ्र सिद्ध हो
एतत् मम वचः	इस मेरे उपदेशको			जाओगे ॥६४॥
धारयन्	धारण करके			

श्रीश्लोक उवाच

आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः ।

पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥६५॥

आश्वास्य भगवान् इत्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः पश्यतः तस्य विश्वात्मा
ततः च अन्तर्दधे हरिः ॥६५॥

इत्थं	इस प्रकार		हरिः भगवान्	श्रीहरि(शेष)भगवान्
चित्रकेतुं	चित्रकेतुको		तस्य पश्यतः	उसके देखते-देखते
आश्वास्य	आश्वासन देकर		ततः च	वहांसे
जगद्गुरुः	जगद्गुरु,		अन्तर्दधे	अन्तर्धान हो गये
विश्वात्मा	विश्वात्मा			॥६५॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराण पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतोः परमात्मदर्शनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

यतश्चान्तर्हितोऽनन्तस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः ।

विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगनेचरः ॥ १ ॥

यतः च अन्तर्हितः अनन्तः तस्यै कृत्वा दिशे नमः विद्याधरः चित्रकेतुः
चचार गगनेचरः ॥१॥

यतः च	जिस ओर	विद्याधरः	विद्याधर
अनन्तः	भगवान् अनन्त	चित्रकेतुः	चित्रकेतु
अन्तर्हितः	अन्तर्ध्यान हुए थे,	गगनेचरः	आकाशचारी होकर
तस्यै दिशे	उस दिशामें	चचार	घूमने लगा ॥१॥
नमः कृत्वा	नमस्कार करके		

स लक्षं वर्षलक्षणामव्याहतबलेन्द्रियः ।

स्तूयमानो महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ २ ॥

स लक्षं वर्ष लक्षणां अव्याहत बल इन्द्रियः स्तूयमानः महायोगी
मुनिभिः सिद्ध चारणैः ॥२॥

स महायोगी	वह महायोगी	अव्याहत	निर्बाध रहते
मुनिभिः	मुनियों,	लक्षणां लक्षं	करोड़ों
सिद्ध चारणैः	सिद्धों, चारणों द्वारा	वर्ष	वर्षों तक ॥२॥
स्तूयमानः	स्तुत होता		
बल इन्द्रियः	शरीर-बल और		
	इन्द्रिय-शक्ति		

कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु नानासङ्कल्पसिद्धिषु ।

रेमे विद्याधरस्त्रीभिर्गापयन् हरिमीश्वरम् ॥ ३ ॥

कुलाचलेन्द्र द्रोणीषु नानासङ्कल्प सिद्धिषु रेमे विद्याधर स्त्रीभिः
गापयन् हरिम् ईश्वरम् ॥३॥

नानासङ्कल्प	अनेक प्रकारके	स्त्रीभिः	स्त्रियोसे
	संकल्पोंको	ईश्वरं हरिं	सर्वेश्वर श्रीहरिका
सिद्धिषु	सिद्ध करने वाली	गापयन्	(सुयश) गान
कुलाचलेन्द्र	सुमेरु-पर्वतकी		कराते हुए
द्रोणीषु	घाटियोंमें	रेमे	विहार करता रहा
विद्याधर	विद्याधर		॥३॥

एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता ।

गिरिशं ददृशे गच्छन् परीतं सिद्धचारणैः ॥ ४ ॥

एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता गिरिशं ददृशे गच्छन् परीतं
सिद्धचारणैः ॥४॥

एकदा	एक बार	गच्छन्	जाते हुए
विष्णुदत्तेन	भगवान् विष्णुके	सिद्धचारणैः	सिद्ध-चारणोंसे
	दिए	परीतं	घिरे
भास्वता	तेजोमय	गिरिशं	शंकरजीको
विमानेन	विमानसे	स ददृशे	उसने देखा ॥४॥

आलिङ्ग्याङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि ।

उवाच देव्याः शृण्वत्या जहासोच्चैस्तदन्तिके ॥ ५ ॥

आलिङ्ग्य अङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि उवाच देव्याः
शृण्वत्या जहास उच्चैः तदन्तिके ॥५॥

मुनिसंसदि	मुनियोंकी सभामें	देव्याः शृण्वत्याः	देवीको सुनाकर
देवीं	देवी पार्वतीको	तदन्तिके	उनके समीप
अङ्कीकृतां	गोदमें बैठाकर	उच्चैः जहास	उच्च स्वरसे हँसता
बाहुना	भुजासे		हुआ
आलिङ्ग्य	आलिंगन किए	उवाच	कहने लगा ॥५॥
	(देखकर)		

चित्रकेतुर्वाच-

एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मं वक्ता शरीरिणाम् ।

आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥ ६ ॥

एष लोकगुरुः साक्षात् धर्मं वक्ता शरीरिणां आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥६॥

वै	निश्चय	मुख्यः सभायां	सभामें प्रमुख होकर
एष शरीरिणां	ये शरीरधारियोंके	भार्यया	पत्नीको
धर्मं वक्ता	धर्मोपदेशक	मिथुनी भूय	छातीसे लगाकर
साक्षात्	प्रत्यक्ष	आस्ते	बैठे हैं ॥६॥
लोकगुरुः	जगद्गुरु हैं,		

जटाधरस्तीव्रतपा

ब्रह्मवादिसभापतिः ।

अङ्गीकृत्य स्त्रियं चास्ते गतह्नीः प्राकृतो यथा ॥ ७ ॥

जटाधरः तीव्रतपा ब्रह्मवादि सभापतिः अङ्गीकृत्य स्त्रियं च आस्ते गतह्नीः प्राकृतः यथा ॥७॥

जटाधरः	जटाधारी,	प्राकृतः यथा	साधारण मनुष्यके
तीव्रतपा	कठोर तपस्वी,		जैसे
ब्रह्मवादि	वेदज्ञोंके	स्त्रियं	पत्नीको
सभापतिः	सभापति (होकर)	अङ्गीकृत्य च	गोदमें ही लेकर
गतह्नीः	निर्लज्ज	आस्ते	बैठे हैं ॥७॥

प्रायशः प्राकृताश्चापि स्त्रियं रहसि बिभ्रति ।

अयं महाव्रतधरो बिभ्रति सदसि स्त्रियम् ॥ ८ ॥

प्रायशः प्राकृताः च अपि स्त्रियं रहसि बिभ्रति अयं महाव्रतधरः बिभ्रति सदसि स्त्रियम् ॥८॥

प्रायशः प्रायः
प्राकृताः च अपि साधारण पुरुष भी
स्त्रियं रहसि स्त्रीको एकान्तमें
बिभ्रति साथ बैठते हैं,

महाव्रतधरः बड़े व्रतधारी
अयं सदसि ये सभामें
स्त्रियं बिभ्रति स्त्रीको लिये हैं
॥८॥

श्रीशुक उवाच—

भगवानपि तच्छ्रुत्वा प्रहस्यागाधधीर्नृप ।

तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याश्च तदनुव्रताः ॥ ८ ॥

भगवान् अपि तत् श्रुत्वा प्रहस्य अगाध धीः नृप तूष्णीं बभूव सदसि
सभ्याः च तत् अनुव्रताः ॥८॥

नृप राजन् !
अगाध धीः अगाध बुद्धि
भगवान् अपि भगवान् शंकर भी
तत् श्रुत्वा वह बात सुनकर
प्रहस्य हँस पड़े और
तूष्णीं बभूव चुप हो गये,

च और
सदसि सभ्याः उस सभामें बैठे
सदस्य
तत् अनुव्रताः उनके समानाचारी
(चुप रहनेवाले)
बने रहे ॥८॥

इत्यतद्वीर्यविदुषि ब्रुवाणे बहुशोभनम् ।

रुषाऽऽह देवी धृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने ॥१०॥

इति तत् वीर्यं अविदुषि ब्रुवाणे बहु अशोभनं रुषा आह देवी धृष्टाय
निर्जित आत्मा अभिमानिने ॥१०॥

इति इस प्रकार
तत् वीर्यं उन (शंकरजी) के
प्रभावको
अविदुषि न जाननेवाले
धृष्टाय ठीठ
निर्जित आत्मा (अपनेको) चित्तको
जीतनेवाला

अभिमानिने माननेवाले
(चित्रकेतु)के
बहु अशोभनं बहुत (बुरा-भला)
अशोभनीय
ब्रुवाणे कहने पर
देवी रुषा आह देवीने क्रोधसे कहा
॥१०॥

पार्वत्युवाच-

अयं किमधुना लोके शास्ता दण्डधरः प्रभुः ।

अस्मद्विधानां दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥११॥

अयं किं अधुना लोके शास्ता दण्डधरः प्रभुः अस्मत् विधानां दुष्टानां
निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥११॥

किं अधुना	क्या इस समय	दुष्टानां	दुष्ट
लोके	संसारमें	निर्लज्जानां	निर्लज्जोंका
अयं शास्ता	यही शासक,	विप्रकृत्	तिरस्कार करने-
दण्डधरः	दण्ड देने वाला		वाला
च अस्मत्	और हमारे	प्रभुः	स्वामी है ॥११॥
विधानां	जैसे		

न वेद धर्मं किल पद्मयोनि-

न ब्रह्मपुत्रा भृगुनारदाद्याः ।

न वै कुमारः कपिलो मनुश्च

ये नो निषेधन्त्यतिवर्तिनं हरम् ॥१२॥

न वेद धर्मं किल पद्मयोनिः न ब्रह्मपुत्रा भृगु नारद आद्याः न वै
कुमारः कपिलः मनुः च ये नः निषेधन्ति अतिवर्तिनं हरम् ॥१२॥

किल	अरे,	च मनुः न	एवं मनु भी नहीं
पद्मयोनिः	ब्रह्माजी		जानते,
धर्मं न वेद	धर्मको नहीं जानते ?	ये अतिवर्तिनं	जो मर्यादा उल्लंघन
ब्रह्मपुत्रा	ब्रह्माके पुत्र		करनेवाले
भृगु नारद	भृगु, नारद	नः हरं	मुझे और शंकरजी-
आद्याः	आदि		को
वै कुमारः	तथा सनत्कुमारादि,	निषेधन्ति	रोकते ॥१२॥
कपिलः	कपिलजी		

एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं

जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयम् ।

यः क्षत्रबन्धुः परिभूय सूरीन्

प्रशास्ति धृष्टस्तदयं हि दण्ड्यः ॥१३॥

एषां अनुध्येय पदाब्ज युग्मं जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयं यः क्षत्र-
बन्धुः परिभूय सूरीन् प्रशास्ति धृष्टः तत् अयं हि दण्ड्यः ॥१३॥

जगद्गुरुम्	जगद्गुरु	परिभूय	तिरस्कार करके
मङ्गलमङ्गलं	मङ्गलको भी मङ्गल बनानेवाले	धृष्टः क्षत्रबन्धुः	यह ढीठ क्षत्रियाधम
अनुध्येय	ध्यान करने योग्य	हि	क्योंकि
पदाब्ज युग्मं	दोनों चरण-कमल	प्रशास्ति	शासन कर रहा
एषां	जिनके हैं,		(आदेश-सा दे
स्वयं	स्वयं उन प्रभुका	तत् अयं	रहा) है,
	और	दण्ड्यः	इसलिए यह
सूरीन्	विद्वानोंका		दण्ड देने योग्य है
			॥१३॥

नायमर्हति वैकुण्ठपादमूलोपसर्पणम् ।

सम्भावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥१४॥

न अयं अर्हति वैकुण्ठ पादमूल उपसर्पणं सम्भावित मतिः स्तब्धः
साधुभिः पर्युपासितम् ॥१४॥

अयं	यह	पर्युपासितं	भली प्रकार सेवित
सम्भावित मतिः	अपने बड़प्पनके	वैकुण्ठ	भगवान् नारायणके
	घमण्डवाला	पादमूल	चरणोंके
स्तब्धः	मूर्ख	उपसर्पणं	समीप पहुँचनेके
साधुभिः	सत्पुरुषों द्वारा	अर्हति न	योग्य नहीं है ॥१४॥

अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ।

यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥१५॥

अतः पापीयसीं योनिं आसुरीं याहि दुर्मते यथा इह भूयः महतां न
कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥१५॥

अतः दुर्मते	अतः दुर्बुद्धि !	यथा इह	जिससे यहां
पापीयसीं	पापमयी	महतां किल्बिषं	महापुरुषोंका
आसुरीं	असुरोंकी		अपराध
योनिं याहि	योनिमें जाओ	भूयः न कर्ता	फिर न करो ॥१५॥
पुत्र	बेटा !		

श्रीशुक उवाच-

एवं शप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्य सः ।

प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत ॥१६॥

एवं शप्तः चित्रकेतुः विमानात् अवरुह्य सः प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना
नम्रेण भारत ॥१६॥

भारत	परीक्षित !	अवरुह्य	उतरकर
सः चित्रकेतुः	वह चित्रकेतु	नम्रेण मूर्ध्ना	मस्तक झुकाकर
एवं शप्तः	इस प्रकार शाप	सतीं	पार्वतीको
	पाकर	प्रसादयामास	प्रसन्न करने लगा
विमानात्	विमानसे		॥१६॥

चित्रकेतुः उवाच-

प्रतिगृह्णामि ते शापमात्मनोऽञ्जलिनाम्बिके ।

देवैर्मर्त्याय यत्प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥१७॥

प्रतिगृह्णामि ते शापं आत्मनः अञ्जलिना अम्बिके देवैः मर्त्याय यत्
प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥१७॥

अम्बिके	माता !	अञ्जलिना	हाथ जोड़कर
आत्मनः ते शापं	अपने लिए मिला	प्रतिगृह्णामि	स्वीकार करता हूँ
	आपका शाप	हि	क्योंकि

देवैः मर्त्याय	देवता मनुष्यके लिए	पूर्वदिष्टं	पहिला प्रारब्ध ही
यत् प्रोक्तं	जो कहते हैं		है ॥१७॥
तस्य तत्	उसका वह		

संसारचक्र एतस्मिञ्जन्तुरज्ञानमोहितः ।

भ्राम्यन् सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ॥१८॥

संसारचक्र एतस्मिन् जन्तुः अज्ञान मोहितः भ्राम्यन् सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ॥१८॥

एतस्मिन्	इस	सर्वत्र सर्वदा	सब कहीं सदा
संसारचक्र	संसार-चक्रमें	सुखं च दुःखं च	सुख और दुःख भी
अज्ञान मोहितः	अज्ञानसे मोहित	भुङ्क्ते	भोगता रहता है
जन्तुः भ्राम्यन्	प्राणी भटकता हुआ		॥१८॥

नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात् सुखदुःखयोः ।

कर्तारं मन्यतेऽप्राज्ञ आत्मानं परमेव च ॥१९॥

न एव आत्मा न परः च अपि कर्ता स्यात् सुखदुःखयोः कर्तारं मन्यते अप्राज्ञः आत्मानं परं एव च ॥१९॥

सुखदुःखयोः	सुख-दुःखका	अप्राज्ञः	अज्ञानी पुरुष
कर्ता	करने (देने) वाला	आत्मानं	अपनेको
आत्मा	आत्मा	च परं एव	तथा दूसरेको ही
न एव	नहीं ही है,	कर्तारं मन्यते	कर्ता मानते हैं
परः च अपि न	दूसरे भी नहीं		॥१९॥
स्यात्	हैं,		

गुणप्रवाह एतस्मिन् कः शापः को न्वनुग्रहः ।

कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा ॥२०॥

गुण प्रवाह एतस्मिन् कः शापः कः नु अनुग्रहः कः स्वर्गः नरकः कः वा किं सुखं दुःखं एव वा ॥२०॥

एतस्मिन्	इस	कः स्वर्गः	क्या स्वर्ग,
गुण प्रवाह	(सत्त्व, रज, तम)	नरकः कः	क्या नरक,
	गुणोंके प्रवाहमें	वा किं सुखं	अथवा कैसा सुख,
कः शापः	क्या शाप,	वा दुःखं एव	या कैसा दुःख ही है
कः नु अनुग्रहः	भला क्या कृपा,		॥२०॥

एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया ।

एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥२१॥

एकः सृजति भूतानि भगवान् आत्ममायया एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः ॥२१॥

एकः निष्कलः	अकेले परिपूर्ण	च मोक्षं	एवं मुक्तिको
भगवान्	भगवान्	च सुखं दुःखं	और सुख-दुःखको
आत्ममायया	अपनी मायासे	सृजति	उत्पन्न करते हैं
भूतानि	प्राणियोंको		॥२१॥
च एषां बन्धं	तथा इनके बन्धन,		

न तस्य कश्चिद्व्यतिः प्रतीपो

न ज्ञातिबन्धुर्न परो न च स्वः ।

समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य

सुखे न रागः कुत एव रोषः ॥२२॥

न तस्य कश्चित् द्यतिः प्रतीपः न ज्ञाति बन्धुः न परः न च स्वः
समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य सुखे न रागः कुत एव रोषः ॥२२॥

तस्य कश्चित्	उनका कोई	सर्वत्र समस्य	उन सर्वत्र समान
द्यतिः न	प्रिय नहीं है,	निरञ्जनस्य	नित्य निर्दोषका
प्रतीपः न	शत्रु भी नहीं है,	सुखे रागः न	सुखमें प्रीति नहीं है,
च ज्ञाति बन्धुः	तथा जाति-भाई,	रोषः कुत एव	फिर क्रोध कहाँसे
परः स्वः न	पराया-अपना नहीं है,		होगा ॥२२॥

तथापि तच्छक्तिविसर्गं एषां
 सुखाय दुःखाय हिताहिताय ।
 बन्धाय मोक्षाय च मृत्युजन्मनोः
 शरीरिणां संसृतयेऽवकल्पते ॥२३॥

तथा अपि तत् शक्ति विसर्गं एषां सुखाय दुःखाय हित अहिताय
 बन्धाय मोक्षाय च मृत्यु जन्मनोः शरीरिणां संसृतये अवकल्पते ॥२३॥

तथा अपि	ऐसा होनेपर भी	हित अहिताय	भले-बुरे,
तत् शक्ति विसर्गं	उनकी माया-	बन्धाय मोक्षाय	बन्धन-मोक्ष
	शक्तिके कार्य (पाप-	च मृत्यु जन्मनोः	तथा मरण-जन्म रूप
	पुण्य)	संसृतये	आवागमनका
एषां शरीरिणां	इन शरीर धारियोंके	अवकल्पते	कारण होते हैं
सुखाय दुःखाय	सुख-दुःख,		॥२३॥

अथ प्रसादये न त्वां शापमोक्षाय भामिनि ।
 यन्मन्यसे असाधूक्तं मम तत्क्षम्यतां सति ॥२४॥

अथ प्रसादये न त्वां शाप मोक्षाय भामिनि यत् मन्यसे असाधु उक्तं
 मम तत् क्षम्यतां सति ॥२४॥

अथ सति	अतः पतिप्राणा	यत् मम उक्तं	जो मेरे कहेका
भामिनि	देवि,	असाधु मन्यसे	(आपने) बुरा
त्वां शाप	आपको शापसे		माना
मोक्षाय	छुड़ानेके लिए	तत् क्षम्यतां	उसे क्षमा करें
प्रसादये न	प्रसन्न नहीं कर		॥२४॥
	रहा हूँ,		

श्रीशुक उवाच-

इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुररिन्दम ।
 जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोस्तयोः ॥२५॥

इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुः अरिन्दम जगाम स्वविमानेन
पश्यतोः स्मयतोः तयोः ॥२५॥

अरिन्दम	शत्रुदमन परीक्षित !	तयोः स्मयतोः	उनको आश्चर्यमें
चित्रकेतुः	चित्रकेतु		पड़ा छोड़कर
इति गिरिशौ	इस प्रकार उमा-	पश्यतोः	उनके देखते हुए
	महेश्वरको	स्वविमानेन	अपने विमानसे
प्रसाद्य	प्रसन्न करके	जगाम	चला गया ॥२५॥

ततस्तु भगवान् रुद्रो रुद्राणीमिदमब्रवीत् ।

देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम् ॥२६॥

ततः तु भगवान् रुद्रः रुद्राणीं इदं अब्रवीत् देवर्षि दैत्य सिद्धानां
पार्षदानां च शृण्वताम् ॥२६॥

ततः तु	इसके पश्चात् ही	शृण्वतां	सुनते हुए
भगवान् रुद्रः	भगवान् रुद्रने	रुद्राणीं	पार्वतीसे
देवर्षि दैत्य च	देवर्षि, दैत्य और	इदं अब्रवीत्	यह बोले ॥२६॥
सिद्धानां	सिद्ध		
पार्षदानां	पार्षदोंके		

श्रीरुद्र उवाच-

दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरैरद्भुतकर्मणः ।

माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निःस्पृहाणां महात्मनाम् ॥२७॥

दृष्टवति असि सुश्रोणि हरेः अद्भुत कर्मणः माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां
निःस्पृहाणां महात्मनाम् ॥२७॥

सुश्रोणि	सुन्दरी !	निःस्पृहाणां	निस्पृह
अद्भुत कर्मणः	अद्भुतकर्मा	महात्मनां	महात्माकी
हरेः	श्री हरिके	माहात्म्यं	महिमा
भृत्यभृत्यानां	दासानुदास	दृष्टवति असि	देख लिया ॥२७॥

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति ।

स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥२८॥

नारायण पराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति स्वर्ग अपवर्ग नरकेषु अपि तुल्य अर्थ दर्शिनः ॥२८॥

सर्वे नारायण	सब नारायण	नरकेषु अपि	नरकमें भी
पराः	परायण-जन	तुल्य अर्थ	समान वस्तु भग-
कुतश्चन	कहींसे भी		वान्को ही
न बिभ्यति	नहीं डरते,	दर्शिनः	देखनेवाले होते हैं
स्वर्ग अपवर्ग	स्वर्ग, मोक्ष		॥२८॥

देहिनां देहसंयोगाद् द्वन्द्वानीश्वरलीलया ।

सुखं दुःखं मृतिर्जन्म शापोऽनुग्रह एव च ॥२९॥

देहिनां देहसंयोगात् द्वन्द्वानि ईश्वरलीलया सुखं दुःखं मृतिः जन्म शापः अनुग्रह एव च ॥२९॥

देहिनां	जीवोंको	मृतिः जन्म	मृत्यु-जन्म,
ईश्वरलीलया	ईश्वरकी लीलासे	च शापः	तथा शाप
देहसंयोगाद्	शरीरका संयोग	अनुग्रह एव	और कृपा भी
	होनेसे		मिलती है ॥२९॥
सुखं दुःखं	सुख-दुःख,		

अविवेककृतः पुंसो ह्यर्थभेद इवात्मनि ।

गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः ॥३०॥

अविवेक कृतः पुंसः हि अर्थभेद इव आत्मनि गुणदोष विकल्पः च भिदा एव स्रजिवत् कृतः ॥३०॥

हि आत्मनि	क्योंकि आत्मामें	गुणदोष	गुण-दोषका
अर्थभेद इव	पदार्थ (देवतादि)	विकल्पः च	विकल्प भी
	भेदके समान		

स्रजिवत् एव	मालामें (सर्प, रस्सी आदि) भेदके समान ही	पुंसः अविवेक कृतः	पुरुषके अज्ञानसे उत्पन्न है ॥३०॥
-------------	---	-------------------	----------------------------------

वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्रहतां नृणाम् ।

ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद् व्यपाश्रयः ॥३१॥

वासुदेवे भगवति भक्ति उद्रहतां नृणां ज्ञानवैराग्य वीर्याणां न इह कश्चित् व्यपाश्रयः ॥३१॥

भगवति	भगवान्	इह	इस संसारमें
वासुदेवे	वासुदेवमें	कश्चित्	कोई भी
भक्ति उद्रहतां	भक्ति करनेवाले	व्यपाश्रयः	राग-द्वेष करने योग्य
ज्ञानवैराग्य	ज्ञान-वैराग्यका	न	नहीं है ॥३१॥
वीर्याणां	पराक्रम रखनेवाले		
नृणां	मनुष्योंका		

नाहं विरिञ्चो न कुमारनारदौ

न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः ।

विदाम यस्येहितमंशकांशका

न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः ॥३२॥

न अहं न विरिञ्चः न कुमार नारदौ न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः
विदाम यस्य ईहितं अंशक अंशका न तत् स्वरूपं पृथक् ईश मानिनः ॥३२॥

यस्य ईहितं	जिनकी चेष्टाको	न विदाम	नहीं जान पाते,
न अहं	न मैं	अंशक अंशका	तब (उनके) छुद्र
न विरिञ्चः	न ब्रह्मा,		अंशके अंशसे उत्पन्न
कुमार	सनकादि कुमार,	पृथक् ईश	अपनेको पृथक् समर्थ
नारदौ	देवर्षि नारद,	मानिनः	माननेवाले
ब्रह्मपुत्रा मुनयः	ब्रह्माके पुत्र (भृगु आदि) मुनिगण	तत्स्वरूपं	उनके स्वरूपको
		न	नहीं जानते (तो
सुरेशाः	बड़े-बड़े देवता		आश्चर्य क्या) ॥३२॥

न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ।

आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः ॥३३॥

न हि अस्य अस्ति प्रियः कश्चित् न अप्रियः स्वः परः अपि वा
आत्मत्वात् सर्वभूतानां सर्वभूत प्रियः हरिः ॥३३॥

हि	क्योंकि	सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके
अस्य कश्चित्	इनका कोई	आत्मत्वात्	आत्मा होनेसे
प्रियः	प्रिय या	हरिः	श्रीहरि
अप्रियः न	अप्रिय नहीं है,	सर्वभूत प्रियः	सब प्राणियोंके प्रिय
वा स्वः परः	अथवा अपना पराया		हैं ॥३३॥
अपि न अस्ति	भी नहीं है		

तस्य चायं महाभागश्चित्रकेतुः प्रियोऽनुगः ।

सर्वत्र समदृक् शान्तो ह्यहं चैवाच्युतप्रियः ॥३४॥

तस्य च अयं महाभागः चित्रकेतुः प्रियः अनुगः सर्वत्र समदृक् शान्तः
हि अहं च एव अच्युत प्रियः ॥३४॥

हि	क्योंकि	प्रियः अनुगः	प्रिय अनुचर है
अयं महाभागः	यह महाभाग	च अहं एव	तथा मैं भी
चित्रकेतुः	चित्रकेतु	अच्युत प्रियः	उन अच्युतका प्रिय
सर्वत्र समदृक्	सर्वत्र समदर्शी		हूँ ॥३४॥
शान्तः	शान्त		
च तस्य	और उन (भग- वान्) का		

तस्मान्न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु ।

महापुरुषभक्तेषु शान्तेषु समदर्शिषु ॥३५॥

तस्मात् न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु महापुरुष भक्तेषु शान्तेषु
समदर्शिषु ॥३५॥

तस्मात्	इसलिए	समदर्शिषु	समदर्शी
महात्मसु	महात्मा	पुरुषेषु	पुरुषके विषयमें
महापुरुष	भगवान् पुरुषोत्तमके	विस्मयः	आश्चर्य
भवतेषु	भक्त	न कार्यः	नहीं करना चाहिए
शान्तेषु	शान्त		॥३५॥

श्रीशुक उवाच—

इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्योमाभिभाषितम् ।

बभूव शान्तधी राजन् देवी विगतविस्मया ॥३६॥

इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्य उमा अभिभाषितं बभूव शान्तधी राजन्
देवी विगत विस्मया ॥३६॥

राजन्	राजन् !	देवी उमा	देवी उमाका
इति	इस प्रकार	विगत विस्मया	आश्चर्य चला गया,
भगवतः शिवस्य भगवान् शिवका		शान्तधी	वे शान्त चित्त
अभिभाषितं	अभिभाषण	बभूव	हो गयीं ॥३६॥
श्रुत्वा	सुनकर		

इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलन्तमः ।

मूर्ध्ना सञ्जगृहे शापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥३७॥

इति भागवतः देव्याः प्रतिशप्तुं अलन्तमः मूर्ध्ना सञ्जगृहे शापं
एतावत् साधु लक्षणम् ॥३७॥

इति	इस प्रकार	शापं	उनके शापको
भागवतः	भगवद्भक्त (चित्रकेतु)	मूर्ध्ना सञ्जगृहे	सिर झुकाकर स्वी- कार कर लिया
देव्याः प्रतिशप्तुं	देवीको बदलेमें शाप देनेमें	एतावत्	इतना ही
अलन्तमः	पूर्ण समर्थ होनेपर भी	साधु लक्षणं	सत्पुरुषका लक्षण है ॥३७॥

जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः ।

वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥३८॥

जज्ञे त्वष्टुः दक्षिण अग्नौ दानवीं योनिं आश्रितः वृत्र इति
अभिविख्यातः ज्ञानविज्ञान संयुतः ॥३८॥

त्वष्टुः त्वष्टाके यहां
दक्षिण अग्नौ दक्षिणाग्निसे
दानवीं योनिं दानव-शरीर
आश्रितः धारण करके
वृत्र इति वृत्र इस नामसे

अभिविख्यातः सुप्रसिद्ध
ज्ञानविज्ञान ज्ञान-विज्ञान
संयुतः जज्ञे सम्पन्न उत्पन्न हुआ
॥३८॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।

वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणं भगवन्मतेः ॥३९॥

एतत् ते सर्वं आख्यातं यत् मां त्वं परिपृच्छसि वृत्रस्य असुर जातेः च
कारणं भगवत् मतेः ॥३९॥

वृत्रस्य वृत्रका
असुर जातेः असुर-कुलमें उत्पन्न
होने
च भगवत् मतेः तथा भगवान्में
बुद्धि लगनेका
कारणं कारण

यत् त्वं जो तुमने
मां परिपृच्छसि मुझसे पूछा
एतत् सर्व यह सब
आख्यातं मैने बतला दिया
॥३९॥

इतिहासमिमं पुण्यं चित्रकेतोर्महात्मनः ।

माहात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बन्धाद्विमुच्यते ॥४०॥

इतिहासं इमं पुण्यं चित्रकेतोः महात्मनः माहात्म्यं विष्णुभक्तानां
श्रुत्वा बन्धात् विमुच्यते ॥४०॥

इमं महात्मनः यह महात्मा
चित्रकेतोः चित्रकेतुका
पुण्यं इतिहासं पवित्र इतिहास तथा

विष्णुभक्तानां भगवान् विष्णुके
भक्तोंकी

माहात्म्यं	महिमा	बन्धात्	(संसार) बन्धनसै
श्रुत्वा	सुनकर (पुरुष)	विमुच्यते	मुक्त हो जाता है
			॥४०॥

य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः पठेत् ।

इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥४१॥

यः एतत् प्रातः उत्थाय श्रद्धया वाक् यतः पठेत् इतिहासं हरिं स्मृत्वा
स याति परमां गतिम् ॥४१॥

यः प्रातः	जो सबेरे	वाक् यतः	मौन होकर
उत्थाय	उठकर	एतत् इतिहासं	इस इतिहासको
हरिं स्मृत्वा	श्रीहरिका स्मरण	पठेत्	पढ़ेगा
	करके	स परमां गतिं	वह परमगति
श्रद्धया	श्रद्धापूर्वक	याति	पावेगा ॥४१॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे चित्रकेतुशापो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच-

पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्री व्याहृतिं त्रयीम् ।

अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान् ॥ १ ॥

पृश्निः तु पत्नी सवितुः सावित्री व्याहृतिं त्रयीं अग्निहोत्रं पशुं सोमं
चातुर्मास्यं महामखान् ॥१॥

सवितुः पत्नी	सविताकी पत्नी	पशुं सोमं	पशु, सोम,
पृश्निः तु	पृश्निने तो	चातुर्मास्यं	चातुर्मास,
सावित्री व्याहृतिं	सावित्री, व्याहृति,	महामखान्	पञ्चमहायज्ञ (उत्पन्न
त्रयीं अग्निहोत्रं	त्रयी, अग्निहोत्र,		किये) ॥१॥

सिद्धिर्भगस्य भार्याङ्गः महिमानं विभुं प्रभुम् ।

आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥ २ ॥

सिद्धिः भगस्य भार्या अङ्ग महिमानं विभुं प्रभुं आशिषं च वरारोहां
कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥२॥

अङ्ग	प्रिय परीक्षित !	च वरारोहां	और सुन्दरी
भगस्य भार्या	भगकी पत्नी	सुव्रतां कन्यां	उत्तम व्रत करनै-
सिद्धिः	सिद्धिने		वाली कन्या
महिमानं विभुं	महिमा, विभु,	आशिषं प्रासूत	आशिषको उत्पन्न
प्रभुं	प्रभु		किया ॥२॥

धातुः कुहः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा ।

सायं दर्शमथ प्रातः पूर्णमासमनुक्रमात् ॥ ३ ॥

धातुः कुहः सिनीवाली राका च अनुमतिः तथा सायं दर्श अथ प्रातः
पूर्णमासं अनुक्रमात् ॥३॥

धातुः	धाताकी (पत्नियां)	सायं दर्श अथ	सायं, दर्श और
कुहः सिनीवाली	कुह, सिनीवाली,	प्रातः च	प्रातः तथा
राका तथा	राका तथा	पूर्णमासं	पूर्णमास (इनको
अनुमतिः	अनुमतिने		जन्म दिया) ॥३॥
अनुक्रमात्	क्रमके अनुसार		

अग्नीन् पुरीष्यानाधत्त क्रियायां समनन्तरः ।

चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः ॥ ४ ॥

अग्नीन् पुरीष्यान् आधत्त क्रियायां समनन्तरः चर्षणी वरुणस्य
आसीत् यस्यां जातः भृगुः पुनः ॥४॥

क्रियायां	(विधाताने) क्रियासे	वरुणस्य	वरुणकी (पत्नी)
समनन्तरः	(पंचक्रिया)के	चर्षणी आसीत्	चर्षणी थी
	समान ही	यस्यां भृगुः	जिसमें भृगुने (जो
पुरीष्यान्	पुरीष नामक		पहिले ब्रह्माके पुत्र
	(पांच)		थे)
अग्नीन् आधत्त	अग्नियोंको उत्पन्न	पुनः जातः	पुनर्जन्म लिया ॥४॥
	किया,		

वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत्किल ।

अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोः ऋषी ॥ ५ ॥

वाल्मीकिः च महायोगी वल्मीकात् अभवत् किल अगस्त्यः च
वसिष्ठः च मित्रावरुणयोः ऋषी ॥५॥

महायोगी	महायोगी	किल वल्मीकात्	अरे फिर (दीमककी)
वाल्मीकिः	वाल्मीकि		बांबीसे
च	भी (पहिले वरुणके	अभवत्	उत्पन्न हुए,
	पुत्र थे)	अगस्त्यः च	अगस्त्य और

वसिष्ठः च	वसिष्ठजी भी	मित्रावरुणयोः	मित्र और वरुणके
ऋषी	ये दोनों ऋषि		(अंश) थे ॥५॥

रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम् ।

रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥ ६ ॥

रेतः सिषिचतुः कुम्भे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतं रेवत्यां मित्र उत्सर्गं
अरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥६॥

उर्वश्याः	उर्वशीके	मित्र रेवत्यां	मित्रने अपनी पत्नी
सन्निधौ	सामीप्यके कारण		रेवतीसे
द्रुतं रेतः	स्खलित वीर्यको	उत्सर्गं अरिष्टं	उत्सर्ग, अरिष्ट
	(मित्र और वरुणने)		और
कुम्भे सिषिचतुः	घड़ेमें डाल दिया ।	पिप्पलं व्यधात्	पिप्पलको उत्पन्न
	(उसी घड़ेसे अगस्त्य		किया ॥६॥
	और वसिष्ठ हुए)		

पौलोम्यामिन्द्र आधत्त त्रीन् पुत्रानिति नः श्रुतम् ।

जयन्तमृषभं तात तृतीयं मीदुषं प्रभुः ॥ ७ ॥

पौलोम्यां इन्द्रः आधत्त त्रीन् पुत्रान् इति नः श्रुतं जयन्तं ऋषभं तात
तृतीयं मीदुषं प्रभुः ॥७॥

तात	परीक्षित्	त्रीन् पुत्रान्	तीन पुत्र
इति नः श्रुतं	ऐसा हमने सुना है	आधत्त	उत्पन्न किये,
	कि	जयन्तं ऋषभं	जयन्त, ऋषभ तथा
पौलोम्यां	पुलोमाकी पुत्री	तृतीयं मीदुषं	तीसरे मीदुवान्
	शचीसे		॥७॥
प्रभुः इन्द्रः	देवराज इन्द्रने		

उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः ।

कीतौ पत्न्यां बृहच्छ्लोकस्तस्यासन् सौभगादयः ॥ ८ ॥

उरुक्रमस्य देवस्य माया वामन रूपिणः कीर्तौपत्न्यां बृहत् श्लोकः
तस्य आसन् सौभग आदयः ॥८॥

माया वामन	मायासे वामन	बृहत् श्लोकः	बृहत् श्लोक नामक
रूपिणः	रूप लेनेवाले		(पुत्र हुआ)
देवस्य	भगवान्	तस्य सौभग	उसके सौभग
उरुक्रमस्य	त्रिविक्रमकी	आदयः	आदि
कीर्तौपत्न्यां	कीर्ति नामक पत्नीसे	आसन्	(पुत्र) हुए ॥८॥

तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः ।

पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथा वावततार ह ॥ ९ ॥

तत् कम गुण वीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः पश्चात् वक्ष्यामहे
अदित्यां यथा वा अवततार ह ॥९॥

तत् महात्मनः	उन पुरुषोत्तम	अदित्यां	अदितिसे
काश्यपस्य	कश्यप नन्दनका	अवततार	अवतार लिया
कर्म गुण	कर्म, गुण,	ह पश्चात्	निश्चय पीछे
वीर्याणि	पराक्रम	वक्ष्यामहे	बतलाऊँगा ॥९॥
वा यथा	अथवा जैसे		

अथ कश्यपदायादान् दैतेयान् कीर्तयामि ते ।

यत्र भागवतः श्रीमान् प्रह्लादो बलिरेव च ॥१०॥

अथ कश्यप दायादान् दैतेयान् कीर्तयामि ते यत्र भागवतः श्रीमान्
प्रह्लादः बलिः एव च ॥१०॥

अथ ते	अभी तो तुमसे	कीर्तयामि	वर्णन करूँगा
कश्यप दायादान्	कश्यपजीके	यत्र श्रीमान्	जिसमें श्रीमान्
	उत्तराधिकारी	प्रह्लादः च	प्रह्लाद तथा
दैतेयान्	दितिकी सन्तान	बलिः एव	बलि भी (हुए हैं)
	परम्पराका		॥१०॥

दितेर्द्वावेव दायदौ दैत्यदानववन्दितौ ।

हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥११॥

दितेः द्वा एव दायदौ दैत्य दानव वन्दितौ हिरण्यकशिपुः नाम
हिरण्याक्षः च कीर्तितौ ॥११॥

दितेः द्वा एव	दितिके दो ही	दायदौ नाम	पुत्र थे, उनके नाम
दैत्य दानव	दैत्य-दानवोंसे	हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपु
वन्दितौ	वन्दित	च हिरण्याक्षः	तथा हिरण्याक्ष
कीर्तितौ	प्रसिद्ध		थे ॥११॥

हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी ।

जम्भस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥१२॥

हिरण्यकशिपुः भार्या कयाधुः नाम दानवी जम्भस्य तनया दत्ता
सुषुवे चतुरः सुतान् ॥१२॥

हिरण्यकशिपुः	हिरण्यकशिपुकी	तनया दत्ता	यह अपनी पुत्री
भार्या	पत्नीकी		(हिरण्यकशिपुकी)
नाम दानवी	नाम दानवी		विवाह दी,
कयाधुः	कयाधू था ।	चतुरः सुतान्	उसने चार पुत्र
जम्भस्य	जम्भने	सुषुवे	उत्पन्न किये ॥१२॥

संहादं प्रागनुहादं हादं प्रहादमेव च ।

तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत् ॥१३॥

संहादं प्राक् अनुहादं हादं प्रहादं एव च तत् स्वसा सिंहिका नाम
राहुं विप्रचितः अग्रहीत् ॥१३॥

प्राक् संहादं	पहिला संहाद (फिर)	सिंहिका नाम	सिंहिका नामकी थी
अनुहादं हादं	अनुहाद, हाद	विप्रचितः	विप्रचित्तिने इसका
च प्रहादं एव	तथा प्रहाद भी	अग्रहीत्	पाणिग्रहण किया
तत् स्वसा	इनकी बहिन	राहुं	(इनका पुत्र) राहु
			हुआ ॥१३॥

शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम् ।

संहादस्य कृतिर्भार्यासूत पञ्चजनं ततः ॥१४॥

शिरः अहरत् यस्य हरिः चक्रेण पिबतः अमृतं संहादस्य कृतिः भार्या
असूत पञ्चजनं ततः ॥१४॥

अमृतं पिबतः	अमृत पीते समय	संहादस्य भार्या	संहादकी पत्नी
यस्य शिरः	जिसका सिर	कृतिः	कृति थी
हरिः चक्रेण	श्रीहरिने चक्रसे	ततः पञ्चजनं	उसने पञ्चजनको
अहरत्	काट दिया था,	असूत	जन्म दिया ॥१४॥

ह्लादस्य धमनिर्भार्यासूत वातापिमिल्वलम् ।

योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वातापिमिल्वलः ॥१५॥

ह्लादस्य धमनिः भार्या असूत वातापि इल्वलं यः अगस्त्याय तु अतिथये
पेचे वातापि इल्वलः ॥१५॥

ह्लादस्य भार्या	ह्लादकी पत्नी	यः इल्वलं	जिस इल्वलने
धमनिः	धमनीने	अतिथये	अतिथि रूपमें आए
वातापि इल्वलं	वातापि और इल्वल-	अगस्त्याय तु	अगस्त्यजीके लिए तो
	को	वातापि पेचे	वातापिको पकाया
असूत	जन्म दिया		था ॥१५॥

अनुह्लादस्य सूर्म्यायां बाष्कलो महिषस्तथा ।

विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यास्तस्याभवब्दलिः ॥१६॥

अनुह्लादस्य सूर्म्यायां बाष्कलः महिषः तथा विरोचनः तु प्राह्लादिः
देव्याः तस्या अभवत् बलिः ॥१६॥

अनुह्लादस्य	अनुह्लादकी पत्नी	बाष्कलः तथा	बाष्कल और
सूर्म्यायां	सूर्म्यासे	महिषः	महिषासुर

विरोचनः तु	विरोचन तो	पत्नीसे
प्राह्लादिः	प्रह्लादके पुत्र थे,	बलिः अभवत् बलि उत्पन्न हुए
तस्या देव्याः	उनकी देवी नामक	॥१६॥

बाणज्येष्ठं पुत्रशतमशनायां ततोऽभवत् ।

तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥१७॥

बाणज्येष्ठं पुत्रशतं अशनायां ततः अभवत् तस्य अनुभावः
सुश्लोक्यः पश्चात् एव अभिधास्यते ॥१७॥

ततः अशनायां	उन (बलि) के	तस्य	उन (बलि) का
	अशना नामक	सुश्लोक्यः	गायन योग्य
	पत्नीसे	अनुभावः	प्रभाव
पुत्रशतं	सौ पुत्र	पश्चात् एव	पीछे ही
बाणज्येष्ठं	जिनमें बाणासुर	अभिधास्यते	वर्णन किया जाएगा
	बड़ा था		॥१७॥
अभवत्	उत्पन्न हुए		

बाण आराध्य गिरिशं लेभे तद्गणमुख्यताम् ।

यत्पाश्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥१८॥

बाण आराध्य गिरिशं लेभे तत् गणमुख्यतां यत् पाश्वे भगवान्
आस्ते हि अद्य अपि पुरपालकः ॥१८॥

हि	क्योंकि	लेभे	प्राप्त कर लिया
बाण गिरिशं	बाणासुरने शंकर-	अद्य अपि	जिससे आज भी
	जीकी	पुरपालकः	नगरपाल होकर
आराध्य तत्	आराधना करके	यत् पाश्वे	जिसके समीप
	उनके	भगवान् आस्ते	भगवान् (शिव)
गणमुख्यतां	गण प्रमुखका पद		रहते हैं ॥१८॥

मरुतश्च दितेः पुत्राश्चत्वारिंशन्नवाधिकाः ।

त आसन्नप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥१९॥

मरुतः च दितेः पुत्राः चत्वारिंशत् नव अधिकाः त आसन् अप्रजाः
सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥१६॥

नव अधिकाः	नौ अधिक	आसन्	रहे,
चत्वारिंशत्	चालिस (उनचास)	सर्वे इन्द्रेण	वे सब इन्द्र द्वारा
मरुतः च	मरुद्गण भी	सात्मतां नीताः	अपने समान
दितेः पुत्राः	दितिके ही पुत्र हैं,		(देवता) बना लिए
त अप्रजाः	वे निःसन्तान		गए ॥१६॥

राजोवाच—

कथं त आसुरं भावमपोह्यौत्पत्तिकं गुरो ।

इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत्साधु कृतं हि तैः ॥२०॥

कथं त आसुरं भावं अपोह्य औत्पत्तिकं गुरो इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं
किं तत् साधु कृतं हि तैः ॥२०॥

गुरो	गुरुदेव !	प्रापिताः	बनाये गये,
त औत्पत्तिकं	वे जन्मजात	तैः तत् हि	उन्होंने वह ऐसा
आसुरं भावं	आसुरी स्वभाव	किं साधु कृतं	क्या सत्कर्म किया
कथं अपोह्य	कैसे दूर करके		॥२०॥
इन्द्रेण सात्म्यं	इन्द्र द्वारा अपने		
	समान देवता		

इमे श्रद्धधते ब्रह्मन् नृषयो हि मया सह ।

परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥२१॥

इमे श्रद्धधते ब्रह्मन् ऋषयः हि मया सह परिज्ञानाय भगवन् तत् नः
व्याख्यातुं अर्हसि ॥२१॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	भगवन्	भगवन् !
हि	क्योंकि	तत् नः	इसलिए हम सबकी
मया सह	मेरे साथ	परिज्ञानाय	जानकारीके लिए
इमे ऋषयः	ये ऋषिगण	व्याख्यातुं	(आपको) बतलाना
श्रद्धधते	(आपके वचनोंपर)	अर्हसि	चाहिए ॥२१॥
	श्रद्धा करते हैं,		

सूत उवाच—

तद्विष्णुरातस्य स बादरायणि-

वचो

निशम्यादृतमल्पमर्थवत् ।

सभाजयन् संनिभृतेन चेतसा

जगाद

सत्रायण

सर्वदर्शनः ॥२२॥

तत् विष्णुरातस्य स बादरायणिः वचः निशम्य आदृतं अल्पं अर्थवत्
सभाजयन् संनिभृतेन चेतसा जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥२२॥

तत् आदृतं वह आदर पूर्वक
अल्पं अर्थवत् थोड़े शब्दोंमें
सारगर्भित
विष्णुरातस्य परीक्षितकी
वचः वाणी
निशम्य सुनकर
स सत्रायण उन ज्ञानोपदेशमें
लगे

सर्वदर्शनः सर्वज्ञ
बादरायणिः शुक्रदेवजीने
सभाजयन् उसका आदर करके
संनिभृतेन प्रसन्न
चेतसा चित्तसे
जगाद बोले ॥२२॥

श्रीशुक उवाच—

हतपुत्रा दितिः शक्रपाष्णिग्राहेण विष्णुना ।

मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥२३॥

हतपुत्रा दितिः शक्रपाष्णिग्राहेण विष्णुना मन्युना शोकदीप्तेन
ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥२३॥

शक्रपाष्णिग्राहेण इन्द्रका पक्ष लेकर
विष्णुना भगवान् विष्णुके द्वारा
हतपुत्रा पुत्रोंके मारे जानेपर

शोकदीप्तेन शोकसे प्रदीप्त
मन्युना क्रोधसे
ज्वलन्ती जलती हुई
दितिः दिति
पर्यचिन्तयत् सोचने लगी ॥२३॥

कदा नु भ्रातृहन्तारमिन्द्रियाराममुत्बणम् ।

अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वा शये सुखम् ॥२४॥

कदा नु भ्रातृ हन्तारं इन्द्रियारामं उत्बणं अक्लिन्न हृदयं पापं
घातयित्वा शये सुखम् ॥२४॥

भ्रातृ हन्तारं	भाइयोंके हत्यारे,	कदा	कब
इन्द्रियारामं	इन्द्रिय भोग परायण,	नु घातयित्वा	तो मरवाकर
उत्बणं	क्रूर	सुखं शये	सुखपूर्वक सो
अक्लिन्न हृदयं	निष्ठुर चित्त		सकूँगी ॥२४॥
पापं	पापी (इन्द्र) को		

कृमिविड्भस्मसंज्ञाऽऽसीद्यस्येशाभिहितस्य च ।

भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥२५॥

कृमि विट् भस्म संज्ञा आसीत् यस्य ईश अभिहितस्य च भूतध्रुक्
तत् कृते स्वार्थं किं वेद निरयः यतः ॥२५॥

यस्य ईश	जिस प्रभु	यतः निरयः	जिसके कारण नरक
अभिहितस्य	कहलाने वाले (शरीर) का	भूतध्रुक्	मिलता है वह प्राणियोंसे द्रोह
कृमि विट् भस्म	कीड़ा, विष्टा या भस्म	किं स्वार्थं वेद	करने वाले क्या अपना स्वार्थ
संज्ञा आसीत्	(पहिले) नाम था,		जानते हैं ॥२५॥
च तत् कृते	अरे उसके लिए		

आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः ।

मदशोषक इन्द्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ॥२६॥

आशासानस्य तस्य इदं ध्रुवं उन्नद्ध चेतसः मदशोषक इन्द्रस्य भूयात्
येन सुतः हि मे ॥२६॥

हि तस्य	क्योंकि उस (दिति)	येन मे	जिस उपायसे मुझे
	के	इन्द्रस्य	इन्द्रके
ध्रुवं उन्नद्ध	अविचल निश्चय	मदशोषक	घमण्डको सुखा
	युक्त		देनेवाला
चेतसः	चित्तमें	सुतः भूयात्	पुत्र हो (वह करूँगी)
आशासानस्य	(यह) चाह जमी थी,		॥२६॥

इति भावेन सा भर्तुराचचारासकृत्प्रियम् ।

शुश्रूषयानुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥२७॥

इति भावेन सा भर्तुः आचचार असकृत् प्रियं शुश्रूषया अनुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥२७॥

इति भावेन	इस भावसे	सा भर्तुः	वह पतिकी
अनुरागेण	अनुराग पूर्वक	असकृत् प्रियं	निरन्तर प्रसन्नताका
शुश्रूषया	सेवा,		कार्य
प्रश्रयेण	नम्रता,	आचचार	करने लगी ॥२७॥
च दमेन	तथा इन्द्रिय संयम		द्वारा
	द्वारा		

भक्त्या परमया राजन् मनोजैर्बल्युभाषितैः ।

मनो जग्राह भावज्ञा सुस्मितापाङ्गवीक्षणैः ॥२८॥

भक्त्या परमया राजन् मनोजैः बल्यु भाषितैः मनः जग्राह भावज्ञा सुस्मित अपाङ्ग वीक्षणैः ॥२८॥

राजन्	राजन् !	सुस्मित	मनोहर मुसकान
भावज्ञा	(पतिके) भावको		सहित
	जाननेवाली	अपाङ्ग वीक्षतैः	कटाक्षपूर्वक देखकर
मनोजैः	उनके भावको	मनः जग्राह	(उनके) मनको
	जानकर		आकर्षित कर लिया
परमया भक्त्या	परम प्रेम भावसे		॥२८॥
बल्यु भाषितैः	मधुर भाषणसे		

एवं स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि विदग्धया ।

बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥२६॥

एवं स्त्रिया जडीभूतः विद्वान् अपि विदग्धया बाढं इति आह विवशः
न तत् चित्रं हि योषिति ॥२६॥

विदग्धया	चतुरा	इति आह	ऐसा कह दिया ।
स्त्रिया एवं	स्त्री द्वारा इस प्रकार	हि	क्योंकि
जडीभूतः	विवेकहीन प्राय	योषिति	स्त्रियोंके लिए
	होकर	तत् चित्रं न	वह आश्चर्यकी बात
विद्वान् अपि	विद्वान् होनेपर भी		नहीं है ॥२६॥
विवशः	विवश होकर		
बाढं	‘अच्छा’ (तुम्हारी		
	इच्छा पूरी करूंगा)		

विलोक्यैकान्तभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः ।

स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥३०॥

विलोक्य एकान्त भूतानि भूतानि आदौ प्रजापतिः स्त्रियं चक्रे
स्वदेह अर्धं यया पुंसां मतिः हृता ॥३०॥

आदौ	सृष्टिके प्रारम्भमें	स्त्रियं चक्रे	स्त्रीका निर्माण
प्रजापतिः	ब्रह्माजीने		किया,
एकान्त भूतानि	असङ्ग बने	यया पुंसां	जिसके द्वारा पुरुष-
भूतानि विलोक्य	प्राणियोंको देखकर		की
स्वदेह अर्धं	अपने शरीरके आधे	मतिः हृता	बुद्धि हरण कर ली
	भागसे		गयी ॥३०॥

एवं शुश्रूषितस्तात भगवान् कश्यपः स्त्रिया ।

प्रहस्य परमप्रीतो दितिमाहाभिनन्द्य च ॥३१॥

एवं शुश्रूषितः तात भगवान् कश्यपः स्त्रिया प्रहस्य परमप्रीतः दितिं
आह अभिनन्द्य च ॥३१॥

तात	तात परीक्षित !	परमप्रीतः	अत्यन्त प्रसन्न होकर
भगवान् कश्यपः	भगवान् कश्यप	च दितिं	और दितिका
एवं स्त्रिया	इस प्रकार पत्नी	अभिनन्द्य	अभिनन्दन करके
	द्वारा	प्रहस्य आह	हंसकर बोले ॥३१॥
शुश्रूषितः	सेवा किये जानेपर		

कश्यप उवाच-

वरं वरय वामोरु प्रीतस्तेऽहमनिन्दिते ।

स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥३२॥

वरं वरय वामोरु प्रीतः ते अहं अनिन्दिते स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः
काम इह च अगमः ॥३२॥

अनिन्दिते	अनिन्द्य	स्त्रिया कः	स्त्रीकी कौन-सी
वामोरु	सुन्दरी !	कामः	कामना
वरं वरय	वरदान मांगो ।	इह च अगमः	इस लोकमें अप्राप्त
अहं ते प्रीतः	मैं तुमपर प्रसन्न हूँ		रहती है ॥३२॥
भर्तरि सुप्रीते	पतिके पूर्ण प्रसन्न		
	होनेपर		

पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् ।

मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥३३॥

पतिः एव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतं मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः
श्रियः पतिः ॥३३॥

पति एव	पति ही	श्रियः पतिः	लक्ष्मीपति
नारीणां	स्त्रियोंका	वासुदेवः	भगवान् वासुदेव
परमं दैवतं	परम आराध्य	सर्वभूतानां	सब प्राणियोंके
स्मृतं	(शास्त्रोंमें) कहा	मानसः	हृदयमें स्थित हैं
	गया है,		॥३३॥
हि	क्योंकि		

स एव देवतालिङ्गं नामरूपविकल्पितैः ।

इज्यते भगवान् पुम्भिः स्त्रीभिश्च पतिरुपधृक् ॥३४॥

स एव देवता लिङ्गः नाम रूप विकल्पितैः इज्यते भगवान् पुम्भिः स्त्रीभिः च पतिरुप धृक् ॥३४॥

स एव भगवान् वही भगवान्
पुम्भिः पुरुषो द्वारा
देवता लिङ्गः देवताओंके रूपमें
नाम विकल्पितैः अनेक नाम एवं
रूप रूपोंमें माने जाकर

च स्त्रीभिः और स्त्रियों द्वारा
पतिरुप धृक् पतिका रूप धारण
किये
इज्यते पूजित होते हैं ॥३४॥

तस्मात्पतिव्रता नार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे ।

यजन्तेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वरम् ॥३५॥

तस्मात् पतिव्रता नार्यः श्रेयः कामाः सुमध्यमे यजन्ते अनन्य भावेन पति आत्मानं ईश्वरम् ॥३५॥

सुमध्यमे सुन्दरी !
तस्मात् इसलिये
श्रेयः कामाः अपना कल्याण
चाहनेवाली
पतिव्रता नार्यः पतिव्रता नारियां

आत्मानं ईश्वरं अपने परमेश्वर
पति पतिकी
अनन्य भावेन अनन्य भावसे
यजन्ते सेवा करती हैं ॥३५॥

सोऽहं त्वयाचितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तितः ।

तत्ते सम्पादये काममसतीनां सुदुर्लभम् ॥३६॥

स अहं त्वया अचितः भद्रे ईदृक् भावेन भक्तितः तत् ते सम्पादये कामं असतीनां सुदुर्लभम् ॥३६॥

भद्रे कल्याणी !
त्वया ईदृक् तुम्हारे द्वार ऐसे
भावेन भक्तितः अनन्य भावसे भक्ति
पूर्वक

स अहं अचितः वह मैं पूजित हुआ
हूँ ।
तत् ते कामं वह तुम्हारी अभि-
लाषा

सम्पादये	सम्पन्न कर दूंगा ।	सुदुर्लभं	यह अत्यन्त दुर्लभ
असतीनां	जो सती नहीं हैं		है ॥३६॥
	उनके लिए		

दितिरुवाच—

वरदो यदि मे ब्रह्मन् पुत्रमिन्द्रहणं वृणे ।
अमृत्युं मृतपुत्राहं येन मे घातितौ सुतौ ॥३७॥

वरदः यदि मे ब्रह्मन् पुत्रं इन्द्रहणं वृणे अमृत्युं मृतपुत्रा अहं येन मे घातितौ सुतौ ॥३७॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	येन मे सुतौ	जिसने मेरे पुत्रोंको
यदि मे वरदः	यदि आप मुझे	घातितौ	मरवा दिया (उस)
	वरदान देना चाहते	इन्द्रहणं	इन्द्रको मारनेवाले
	हैं तो	अमृत्युं	अमर
अहं मृतपुत्रा	जिसके पुत्र मर गये	पुत्रं वृणे	पुत्रका वरदान
	हैं वह मैं		मांगती हूँ ॥३७॥

श्रीशुक उवाच—*

निशम्य तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत ।

निशम्य तत् वचः विप्रः विमनाः पर्यतप्यत ।

तत् वचः	उसकी बात	पर्यतप्यत	पश्चात्ताप करने
निशम्य	सुनकर		लगे ।
विमनाः विप्रः	खिन्न होकर विप्रवर		

अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ॥३८॥

अहो अधर्मः सुमहान् अद्य मे समुपस्थितः ॥३८॥

* यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

अहो सुमहान्	अरे, बहुत बड़ा	अद्य	आज
अधर्मः मे	अधर्म मेरे लिए	समुपस्थितः	आ गया है ॥३६॥

अहो अद्येन्द्रियारामो योषिन्मय्येह मायया ।

गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥३६॥

अहो अद्य इन्द्रिय आरामः योषित् मयि इह मायया गृहीतचेताः
कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥३६॥

अहो	अरे,	गृहीतचेताः	आकर्षित चित
अद्य इन्द्रिय	इन्द्रियोंके भोगोंमें	कृपणः	दुःखी
आरामः	सुख माननेवाला	ध्रुवं	निश्चय
	(मैं)	नरके पतिष्ये	नरकमें गिरूँगा
इह योषित् मयि	यहाँ स्त्री रूपिणी		॥३६॥
मायया	माया द्वारा		

कोऽतिक्रमोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिह योषितः ।

धिङ् मां बताबुधं स्वार्थे यदहं त्वजितेन्द्रियः ॥४०॥

कः अतिक्रमः अनुवर्तन्त्याः स्वभावं इह योषितः धिक् मां बत अबुधं
स्वार्थे यत् अहं तु अजितेन्द्रियः ॥४०॥

इह स्वभावं	यहाँ स्वभावके	अबुधं	न जाननेवाले
अनुवर्तन्त्याः	अनुसार व्यवहार	मां धिक्	मुझे धिक्कार है
	करनेवाली	यत् अहं तु	क्योंकि मैं ही तो
योषितः कः	स्त्रीका क्या	अजितेन्द्रियः	इन्द्रियोंको जीत
अतिक्रमः	अपराध है,		नहीं सका ॥४०॥
बत स्वार्थे	किन्तु अपने वास्त-		
	विक स्वार्थको		

शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् ।

हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम् ॥४१॥

शरत् पद्म उत्सवं वक्त्रं वचः च श्रवण अमृतं हृदयं क्षुरधार आभं
स्त्रीणां कः वेद चेष्टितम् ॥४१॥

शरत् पद्म	शरदऋतुके कमलके	हृदयं	परन्तु हृदय
	समान	क्षुरधार आभं	क्षुरेकी धार जैसा
उत्सवं वक्त्रं	मुख सुन्दर होता है,		तीक्ष्ण होता है, अतः
वचः च	वाणी भी	स्त्रीणां चेष्टितं	स्त्रियोंके चरित्रको
श्रवण अमृतं	सुननेमें अमृत-सी	कः वेद	कौन जान सकता
	होती है;		है ॥४१॥

न हि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामञ्जसा स्वाशिषात्मनाम् ।

पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्त्यर्थे घातयन्ति च ॥४२॥

न हि कश्चित् प्रियः स्त्रीणां अञ्जसा स्व आशिष आत्मनां पतिं
पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्ति अर्थे घातयन्ति च ॥४२॥

अञ्जसा	सरलतासे	हि अर्थे	क्योंकि स्वार्थके
स्व आशिष	अपनी लालसा		लिए (बे)
आत्मनां	पूरा करना चाहने-	पतिं पुत्रं भ्रातरं पति, पुत्र, भाईको	
	वाली	घ्नन्ति वा	मार देती हैं या
स्त्रीणां	स्त्रियोंका	घातयन्ति च	मरबा भी देती हैं
कश्चित् प्रियः न कोई भी प्रिय नहीं	होता,		॥४२॥

प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् ।

वधं नार्हति चेन्द्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥४३॥

प्रतिश्रुतं ददामि इति वचः तत् न मृषा भवेत् वधं न अर्हति च
इन्द्रः अपि तत्र इदं उपकल्पते ॥४३॥

ददामि इति	‘दूंगा’ इस प्रकार	वधं न अर्हति	वधके योग्य नहीं है
प्रतिश्रुतं	मैंने वचन दिया है,	तत्र इदं	इस विषयमें यह
तत् वचः	वह वाणी	उपकल्पते	(युक्ति) करता हूँ
मृषा न भवेत्	झूठी न हो		॥४३॥
च इन्द्रः अपि	और इन्द्र भी		

इति संचिन्त्य भगवान्मारीचः कुरुनन्दन ।

उवाच किञ्चित् कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥४४॥

इति सञ्चिन्त्य भगवान् मारीचः कुरुनन्दन उवाच किञ्चित् कुपित
आत्मानं च विगर्हयन् ॥४४॥

कुरुनन्दन	परीक्षित !	किञ्चित् कुपित	कुछ क्रोध करके
भगवान्	भगवान्	च आत्मानं	और अपनी
मारीचः	मरीचिनन्दन	विगर्हयन्	भर्त्सना करते
	(कश्यप)	उवाच	बोले ॥४४॥
इति सञ्चिन्त्य	ऐसा सोचकर		

कश्यप उवाच—

पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः ।

संवत्सरं व्रतमिदं यद्यञ्जो धारयिष्यसि ॥४५॥

पुत्रः ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः संवत्सरं व्रतं इदं यदि अञ्जः
धारयिष्यसि ॥४५॥

भद्रे	कल्याणी !	ते पुत्रः	तुम्हारा पुत्र
यदि अञ्जः	यदि पूरी विधिसे	इन्द्रहा	इन्द्रको मारनेवाला
इदं व्रतं	यह नियम	देवबान्धवः	देवताओंका भाई
संवत्सरं	एक वर्ष तक	भविता	होगा ॥४५॥
धारयिष्यसि	धारण करोगी तो		

दितिरुवाच—

धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन्ब्रूहि कार्याणि यानि मे ।

यानि चेह निषिद्धानि न व्रतं घ्नन्ति यानि तु ॥४६॥

धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन् ब्रूहि कार्याणि यानि मे यानि च इह निषिद्धानि
न व्रतं घ्नन्ति यानि तु ॥४६॥

ब्रह्मन्	ब्रह्मन् !	इह यानि	इसमें जो-जो
व्रतं धारयिष्ये	मैं व्रत धारण	निषिद्धानि	निषिद्ध है,
	करूँगी,	च यानि व्रतं तु	और जो व्रतको तो
यानि मे	जो-जो मुझे	घ्नन्ति न	नष्ट नहीं करते
कार्याणि	करना है	ब्रूहि	यह बतलाइये ॥४६॥

कश्यप उवाच—

न हिंस्याद्भूतजातानि न शपेन्नानृतं वदेत् ।

न छिन्द्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमङ्गलम् ॥४७॥

न हिंस्यात् भूत जातानि न शपेत् न अनृतं वदेत् न छिन्द्यात् नख
रोमाणि न स्पृशेत् यत् अमङ्गलं ॥४७॥

भूतजातानि	प्राणिमात्रकी	नख रोमाणि	नख और रोम
न हिंस्यात्	हिंसा न करे,	न छिन्द्यात्	न काटे,
शपेत् न	(किसीको) गाली	यत् अमङ्गलं	जो अशुभ वस्तु हो
	न दे,	स्पृशेत् न	उसका स्पर्श न
अनृतं न वदेत्	झूठ न बोले,		करे ॥४७॥

नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न सम्भाषेत दुर्जनैः ।

न वसीताधौतवासः स्त्रजं च विधृतां क्वचित् ॥४८॥

न अप्सु स्नायात् न कुप्येत न सम्भाषेत् दुर्जनैः न वसीत अधौत
वासः स्त्रजं च विधृतां क्वचित् ॥४८॥

अप्सु न	जलमें घुसकर	अधौतवासः	बिना धोया वस्त्र
स्नायात्	स्नान न करे	न वसीत	न पहिने
कुप्येत न	क्रोध न करे,	च क्वचित्	और किसीकी
दुर्जनैः न	दुष्ट लोगोंसे न	विधृतां स्त्रजं	पहिनी माला
सम्भाषेत्	बोले		(न पहिने) ॥४८॥

नोच्छिष्टं चण्डिकान्नं च सामिषं वृषलाहृतम् ।

भुञ्जीतोदकयया दृष्टं पिबेदञ्जलिना त्वपः ॥४६॥

न उच्छिष्टं चण्डिका अन्नं च स आमिषं वृषल आहृतं भुञ्जीत
उदकयया दृष्टं पिबेत् अञ्जलिना तु अपः ॥४६॥

उच्छिष्टं	जूठा,	दृष्टं	दृष्टि पड़ा
चण्डिका अन्नं	कालीका प्रसाद,	न भुञ्जीत	न खाय
स आमिषं	मांसयुक्त,	अञ्जलिना तु	अञ्जलिसे ही
वृषल आहृतं	गूद्रका लाया	अपः न पिबेत्	पानी न पिये ॥४६॥
च उदकयया	और रजस्वलाकी		

नोच्छिष्टास्पृष्टसलिला सन्ध्यायां मुक्तमूर्धजा ।

अनर्चितासंयतवाङ् नासंवीता बहिश्चरेत् ॥५०॥

न उच्छिष्टा अस्पृष्ट सलिला सन्ध्यायां मुक्त मूर्धजा अनर्चिता
असंयत वाक् न असंवीता बहिः चरेत् ॥५०॥

उच्छिष्टा	जूठे मुख	असंयत वाक्	वाणीको संयमित
अस्पृष्ट सलिला	जलसे आचमन किये		किये बिना
	बिना	न	न रहे
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय,	असंवीता	चद्दर ओढ़े बिना
मुक्त मूर्धजा	बाल खोले	न बहिः चरेत्	बाहर न घूमे ॥५०॥
अनर्चिता	बिना शृंगार किये		

नाधौतपादाप्रयता नार्द्रपान्नो उदक्शिराः ।

शयीत नापराङ् नान्यैर्न नग्ना न च सन्ध्ययोः ॥५१॥

न अधौत पादा अप्रयता न आर्द्रपात् न उदक् शिराः शयीत न
अपराङ् न अन्यैः न नग्ना न च सन्ध्ययोः ॥५१॥

न अधौत पादा बिना हाथ-पैर धोये,	न अन्यैः	न दूसरेके साथ,
अप्रयता अपवित्र दशामें,	न नग्ना	न नंगी
न आर्द्रपात् न गीले पैर,	च न सन्ध्ययोः	और न प्रातः-सायं
न उदक् शिराः न उत्तर सिर करके,		सन्ध्या कालमें
न अपराड् न पश्चिम करके	शयीत	सोवे ॥५१॥

धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमङ्गलसंयुता ।

पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्राञ् श्रियमच्युतम् ॥५२॥

धौतवासाः शुचिः नित्यं सर्वं मङ्गल संयुता पूजयेत् प्रातराशात् प्राक्
गोविप्राञ् श्रियं अच्युतम् ॥५२॥

धौतवासाः	धुला वस्त्र पहिने,	प्राक्	पहिले
नित्यं शुचिः	सदा पवित्र रहे,	गो विप्राञ्	गौ-ब्राह्मण तथा
सर्वं मङ्गल	सब सौभाग्य	श्रियं अच्युतं	लक्ष्मी-नारायणकी
संयुता	शृंगार पहिने रहे	पूजयेत्	पूजा करें ॥५२॥
प्रातराशात्	कलेऊ करनेसे		

स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ।

पतिं चाचर्योपतिष्ठेत ध्यायेत्कोष्ठगतं च तम् ॥५३॥

स्त्रियः वीरवतीः च अर्चेत् स्रक् गन्ध बलि मण्डनैः पतिं च अर्च्यं
उपतिष्ठेत ध्यायेत् कोष्ठगतं च तम् ॥५३॥

वीरवतीः	सौभाग्यवती	च पतिं अर्च्यं	फिर पतिकी पूजा
स्त्रियः च	स्त्रियोंकी भी		करके
स्रक् गन्ध बलि	माला, सुगन्धित- द्रव्य, उपहार	उपतिष्ठेत	उसकी सेवामें लगी रहे,
मण्डनैः अर्चेत्	आभूषणादिसे पूजा करे,	तं कोष्ठगतं च	उसे अपनी कोखमें पहुँचा
		ध्यायेत्	चिन्तन करें ॥५३॥

सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविप्लुतम् ।

धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥५४॥

सांवत्सरं पुंसवनं व्रतं एतत् अविप्लुतं धारयिष्यसि चेत् तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥५४॥

एतत् पुंसवनं	यह पुंसवन	तुभ्यं शक्रहा	तुमसे इन्द्रको
व्रतं	व्रत		मारनेवाला
चेत् सांवत्सरं	यदि वर्षभर तक	सुतः भविता	पुत्र उत्पन्न होगा
अविप्लुतं	बिना त्रुटिके		॥५४॥
धारयिष्यसि	धारण करोगी तो		

श्रीरुद्र उवाच—*

बाढमित्यभिप्रेत्याथ दिती राजन् महामनाः ।

काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं चाञ्जो दधार सा ॥५५॥

बाढं इति अभिप्रेत्य अथ दिती राजन् महामनाः काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं च अञ्जः दधार सा ॥५५॥

राजन्	राजन् !	काश्यपं गर्भं	काश्यपजीसे गर्भ
बाढं इति	‘बहुत अच्छा’ इस प्रकार	आधत्त	धारण किया
अभिप्रेत्य	अपना अभिप्राय बताकर	च अञ्जः व्रतं	और अनायास नियमोंका भी
अथ महामनाः	फिर उत्साह पूर्वक	सा दधार	वह पालन करने लगी ॥५५॥
दिति	दितिने		

मातृष्वसुरभिप्रायमिन्द्र आज्ञाय मानद ।

शुश्रूषणेनाश्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कविः ॥५६॥

*यह उवाच अन्य प्रतियोंमें नहीं है ।

मातृष्वसुः अभिप्रायं इन्द्रः आज्ञाय मानद शुश्रूषणेन आश्रमस्थां
दिति पर्यचरत् कविः ॥१५६॥

मानद	सम्मान देनेवाले	दिति	दितिके
	परीक्षित !	आश्रमस्थां	आश्रममें रहकर
कविः इन्द्रः	बुद्धिमान इन्द्रने	शुश्रूषणेन	(उसकी) शुश्रूषा
मातृष्वसुः	मौसीका	पर्यचरत्	सेवा करने लगे
अभिप्रायं	अभिप्राय		॥१५६॥
आज्ञाय	जानकर		

नित्यं वनात्सुमनसः फलमूलसमित्कुशान् ।

पत्राङ्कुरमृदोऽपश्च काले काल उपाहरत् ॥१५७॥

नित्यं वनात् सुमनसः फल मूल समित् कुशान् पत्र अङ्कुरमृत्
अपः च काले काल उप आहरत् ॥१५७॥

नित्यं	प्रतिदिन	कुशान् पत्र	कुश, पत्र (तुलसी
काले काल	समय-समयपर		आदि)
वनात्	वनसे	अङ्कुरमृत्	दूर्वाङ्कुर, मिट्टी
सुमनसः फल	पुष्प, फल,	च अपः	और जल
मूल समित्	मूल, समिधा,	उप आहरत्	लाने लगे ॥१५७॥

एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिनृप ।

प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्वो मृगहेव मृगाकृतिः ॥१५८॥

एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतः छिद्रं हरिः नृप प्रेप्सुः पर्यचरत् जिह्वः
मृगहा इव मृग आकृतिः ॥१५८॥

नृप	राजन् !	मृग आकृतिः	मृगका आकार
एवं	इस प्रकार		धारण करके
तस्या व्रतस्थाया	उस नियम निष्ठा	मृगहा इव	(मृगोंमें मिले) बहे-
	(दिति) के		लियेके समान
व्रतः छिद्रं	नियमोंमें त्रुटि	जिह्वः हरिः	छली इन्द्र
प्रेप्सुः	पकड़नेके लिए	पर्यचरत्	(उसकी) सेवा करते
			थे ॥१५८॥

नाध्यगच्छद्ब्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते ।

चिन्तां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्याच्छिवं त्विह ॥५६॥

न अधिगच्छत् ब्रतः छिद्रं तत् परः अथ महीपते चिन्तां तीव्रां गतः
शक्रः केन मे स्यात् शिवं तु इह ॥५६॥

महीपते	राजन् !	तीव्रां चिन्तां	बहुत चिन्तित हुए
तत् परः	तत्पर रहनेपर भी	गतः	कि
	जब	इह मे	यहाँ मेरा
ब्रतः छिद्रं	नियमोंमें त्रुटि	केन	किस उपायसे
न अधिगच्छत्	नहीं पकड़ सके	शिवं	कल्याण हो ॥५६॥
अथ तु शक्रः	तब तो इन्द्र		

एकदा सा तु सन्ध्यायामुच्छिष्टा ब्रतकशिता ।

अस्पृष्टवार्यधौताङ्घ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥६०॥

एकदा सा तु सन्ध्यायां उच्छिष्टा ब्रत कशिता अस्पृष्ट वारि अधौत
अङ्घ्रिः सुष्वाप विधि मोहिता ॥६०॥

एकदा सा तु	एक बार वह तो	उच्छिष्टा	जूठे मुख
विधि मोहिता	देव वश	अस्पृष्ट वारि	बिना कुल्ला किये,
	भूलकर	अधौत अङ्घ्रि	बिना पैर धोये,
ब्रत कशिता	नियम पालनसे थकी	सुष्वाप	सो गयी ॥६०॥
सन्ध्यायां	सन्ध्याके समय		

लब्ध्वा तदन्तरं शक्रो निद्रापहतचेतसः ।

दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥६१॥

लब्ध्वा तत् अन्तरं शक्रः निद्रा अपहत चेतसः दितेः प्रविष्ट उदरं
योगेशः योगमायया ॥६१॥

तत् अन्तरं	यह अवसर	निद्रा	निद्रासे
लब्ध्वा	पाकर	अपहृत चेतसः	आक्रान्त चित्त
योगेशः शक्रः	योगेश्वर इन्द्र	दितेः उदरं	दितिके पेटमें
योगमायया	अपनी योगमायासे	प्रविष्टः	प्रवेश कर गये ॥६१॥

चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम् ।

रुदन्तं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान् पुनः ॥६२॥

चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभं रुदन्तं सप्तधा एकैकं मा रोदीः इति तान् पुनः ॥६२॥

कनकप्रभं गर्भं	सोनेके समान	मा रोदीः	‘मत रोओ’ (यह कह कर)
	चमकते गर्भको		
वज्रेण सप्तधा	वज्रसे सात टुकड़ोंमें	तान् पुनः	उनको फिर
चकर्त	(वहां उन्होंने) काट दिया,	एकैकं	एक-एकको
		सप्तधा	सात-सात टुकड़े
रुदन्तं	(जब वे) रोने लगे (तब)		(कर दिए) ॥६२॥

ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयो नृप ।

नो जिघांससि किमिन्द्र भ्रातरो मरुतस्तव ॥६३॥

ते तं ऊचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयः नृप नः जिघांससि किं इन्द्र भ्रातरः मरुतः तव ॥६३॥

नृप	राजन् !	इन्द्र नः किं	‘इन्द्र’ हमें क्यों
पाट्यमानाः	काटे जाते समय	जिघांससि	मार रहे हो,
ते सर्वे	वे सब	तव भ्रातरः	(हम तो) तुम्हारे
प्राञ्जलयः	हाथ जोड़कर		भाई
तं ऊचुः	उस (इन्द्र) से बोले,	मरुतः	मरुद्गण हैं ॥६३॥

मा भैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः ।

अनन्यभावान् पार्षदानात्मनो मरुतां गणान् ॥६४॥

मा भैष्ट भ्रातरः मह्यं यूयं इति आह कौशिकः अनन्य भावान्
पार्षदान् आत्मनः मरुतां गणान् ॥६४॥

अनन्य भावान्	(तब) अनन्य प्रेमी	आह	कहा
आत्मनः	अपने उन (भावी)	मह्यं भ्रातरः	मेरे भाइयो
पार्षदान्	पार्षदोंसे	यूयं मा भैष्ट	तुम लोग डरो मत
कौशिकः इति	इन्द्रने यह		॥६४॥

न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया ।

बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥६५॥

न ममार दितेः गर्भः श्रीनिवास अनुकम्पया बहुधा कुलिश क्षुण्णः
द्रौणि अस्त्रेण यथा भवान् ॥६५॥

श्रीनिवास	भगवान् नारायणकी	कुलिशः	वज्र द्वारा
अनुकम्पया	कृपासे	बहुधा क्षुण्णः	अनेक टुकड़ोंमें
यथा भवान्	जैसे तुम		कटकर भी
द्रौणि अस्त्रेण	अश्वत्थामाके	दितेः गर्भ	दितिका गर्भ
	ब्रह्मास्त्रसे (नहीं मरे)	ममार न	मरा नहीं ॥६५॥

सकृदिष्ट्वाऽऽदिपुरुषं पुरुषो याति साम्यताम् ।

संवत्सरं किञ्चिद्भूतं दित्या यद्धरिरर्चितः ॥६६॥

सकृत् इष्ट्वा आदिपुरुषं पुरुषः याति साम्यतां संवत्सरं किञ्चित्
ऊनं दित्या यत् हरिः अर्चितः ॥६६॥

यत् दित्या	क्योंकि दितिने	आदिपुरुषं	आदिपुरुष भगवान्-
संवत्सरं	एक वर्षमें		की
किञ्चित् ऊनं	कुछ ही कम समय	सकृत् इष्ट्वा	एक ही बार पूजा
	तक		करके
हरिः अर्चितः	श्रीहरिकी पूजा की	साम्यतां याति	उनकी समानता
	थी,		पा लेता है ॥६६॥
पुरुषः	पुरुष		

सज्जरिन्द्रेण पञ्चाशद्देवास्ते मरुतोऽभवन् ।

व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥६७॥

सज्जः इन्द्रेण पञ्चाशत् देवाः ते मरुतः अभवन् व्यपोह्य मातृदोषं
ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥६७॥

सज्जः इन्द्रेण	वे अब इन्द्रके साथ	व्यपोह्य	त्यागकर
ते पञ्चाशत्	वे सब पचास	इन्द्रेण ते	इन्द्र द्वारा वे
मरुतः देवाः	मरुत् देवता	सोमपाः	सोमपानके
अभवन्	हो गये		अधिकारी देवता
मातृदोषं	माताके दोषको	कृताः	बना लिए गए ॥६७॥

दितिरुत्थाय ददृशे कुमाराननलप्रभान् ।

इन्द्रेण सहितान् देवी पर्यतुष्यदनिन्दिता ॥६८॥

दितिः उत्थाय ददृशे कुमारान् अनलप्रभान् इन्द्रेण सहितान् देवी
पर्यतुष्यत् अनिन्दिता ॥६८॥

दितिः उत्थाय	दितिने उठकर	ददृशे	देखा
अनलप्रभान्	अग्निके समान	अनिन्दिता देवी	निन्दा न करने योग्य
	तेजस्वी		वह देवी
कुमारान्	बालकोंको	पर्यतुष्यत्	इससे बहुत प्रसन्न
इन्द्रेण सहितान्	इन्द्रके साथ		हुई ॥६८॥

अथेन्द्रमाह ताताहमादित्यानां भयावहम् ।

अपत्यमिच्छन्त्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम् ॥६९॥

अथ इन्द्रं आह तात अहं आदित्यानां भय आवहं अपत्यं इच्छन्ति
अचरं व्रतं एतत् सुदुष्करम् ॥६९॥

अथ इन्द्रं आह	फिर इन्द्रसे बोली	अपत्यं इच्छन्ति	पुत्र पानेकी इच्छासे
तात अहं	‘बेटा’ मैंने	एतत् सुदुष्करं	यह बहुत दुष्कर
आदित्यानां	आदितिके पुत्रोंके	व्रतं अचरं	नियम पालन किया
	लिए		है ॥६९॥
भय आवहं	भयदायक		

एकः सङ्कल्पितः पुत्रः सप्त सप्ताभवन् कथम् ।

यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥७०॥

एकः सङ्कल्पितः पुत्रः सप्त सप्त अभवन् कथं यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥७०॥

एकः पुत्रः	एक पुत्रका	विदितं सत्यं	पता हो तो सच
सङ्कल्पितः	सङ्कल्प किया था,	कथय	बता दो,
सप्त सप्त	उनचास	मृषा मा	झूठ मत बोलना
कथं अभवन्	कैसे हो गये,		॥७०॥
पुत्र यदि ते	बेटा, यदि तुम्हें		

इति उवाच-

अम्ब तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोऽन्तिकम् ।

लब्धान्तरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न धर्मवित् ॥७१॥

अम्ब ते अहं व्यवसितं उपधार्य आगतः अन्तिकं लब्धा अन्तरः अच्छिदं गर्भं अर्थ बुद्धिः न धर्मवित् ॥७१॥

अम्ब	माता !	धर्मवित् न	(मैं) धर्मज्ञ नहीं हूँ
ते व्यवसितं	आपके उद्योगको		(अतः)
उपधार्य	जानकर	अन्तरः लब्धा	(ब्रतमें) त्रुटि पाकर
अहं ते अन्तिकं	मैं आपके समीप	गर्भं अच्छिदं	(मैंने) गर्भको काटा
अर्थ बुद्धिः	स्वार्थ बुद्धिसे		॥७१॥
आगतः	आया था		

कृत्तो मे सप्तधा गर्भ आसन् सप्त कुमारकाः ।

तेऽपि चैकैकशो वृक्षणाः सप्तधा नापि मन्त्रिरे ॥७२॥

कृत्तः मे सप्तधा गर्भ आसन् सप्त कुमारकाः ते अपि च एक एकशः वृक्षणाः सप्तधा न अपि मन्त्रिरे ॥७२॥

मे गर्भं	मैंने गर्भको	ते अपि च	उनको भी फिर
सप्तधा कृतः	सात टुकड़ोंमें काट दिया तो	एक एकशः	एक-एकको
सप्त कुमारकाः	सात बालक	सप्तधा	सात-सात टुकड़ोंमें
आसन्	हो गये	वृक्षणाः अपि	काटे जानेपर भी
		न मन्त्रिरे	नहीं मरे ॥७२॥

ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितं मया ।

महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यनुषङ्गिणी ॥७३॥

ततः तत् परम आश्चर्यं वीक्ष्य अध्यवसितं मया महापुरुष पूजायाः सिद्धिः कापि अनुषङ्गिणी ॥७३॥

ततः	तब	महापुरुष	भगवान् पुरुषोत्तमकी
परम आश्चर्यं	अत्यन्त आश्चर्य-जनक	पूजायाः	पूजा की
तत् वीक्ष्य	यह (घटना) देखकर	कापि	(यह) कोई
मया अध्यवसितं मैंने निश्चय किया कि		अनुषङ्गिणी	अनिवार्य
		सिद्धिः	सिद्धि है ॥७३॥

आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः ।

ये तु नेच्छन्त्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥७४॥

आराधनं भगवतः ईहमाना निराशिषः ये तु न इच्छन्ति अपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥७४॥

निराशिषः	निष्काम भावसे	परं अपि	परम-पद भी
भगवतः	भगवान्की	न इच्छन्ति	नहीं चाहते
आराधनं	आराधना	ते कुशलाः	वे वास्तविक
ईहमाना ये तु	करते हुए जो लोग तो	स्वार्थ	स्वार्थ निपुण
		स्मृताः	कहे गये हैं ॥७४॥

आराध्यात्मप्रदं देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम् ।

को वृणीते गुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपि यत् ॥७५॥

आराध्य आत्मप्रदं देवं स्व आत्मानं जगत् ईश्वरं कः वृणीते गुणः
स्पर्शं बुधः स्यात् नरके अपि यत् ॥७५॥

स्व आत्मानं	अपने आत्मरूप	यत् नरके अपि	जो नरकमें भी
जगत् ईश्वरं	सम्पूर्ण विश्वके	स्यात्	मिलता है
	स्वामी	गुणः स्पर्श	(बह) इन्द्रिय भोग
आत्मप्रद देवं	अपनेको दे देनेवाले	कः बुधः वृणीते	कौन बुद्धिमान
	देवताकी		मांगेगा ॥७५॥
आराध्य	आराधना करके		

तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि ।

क्षन्तुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ॥७६॥

तत् इदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि क्षन्तुं अर्हसि मातः त्वं
दिष्ट्या गर्भः मृत उत्थितः ॥७६॥

तत् इदं	अतः यह	दिष्ट्या	सौभाग्यकी बात है
मम बालिशस्य	मुझ मूर्खकी		कि
दौर्जन्यं	दुष्टता	मृत गर्भः	भरा प्राय गर्भ
महीयसि मातः	पूजनीया माता	उत्थितः	जीवित हो गया है
त्वं क्षन्तुं अर्हसि	आपको क्षमा कर		॥७६॥
	देना चाहिए,		

श्रीशुक उवाच-

इन्द्रस्तयाभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया ।

मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥७७॥

इन्द्रः तया अभ्यनुज्ञातः शुद्ध भावेन तुष्टया मरुद्भिः सह तां नत्वा
जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥७७॥

शुद्ध भावेन	(इन्द्रके) शुद्धभावसे	तां नत्वा	उस (दिति) को
तुष्टया तया	सन्तुष्ट हुई उस		नमस्कार करके
	(दिति) से	प्रभुः इन्द्रः	देवराज इन्द्र
अभ्यनुज्ञातः	आज्ञा पाकर	त्रिदिवं जगाम	स्वर्ग चले गये ॥७७॥
मरुद्भिः सह	मरुद्गणोंके साथ		

एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।

मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥७८॥

एवं ते सर्वं आख्यातं यत् मां त्वं परिपृच्छसि मङ्गलं मरुतां जन्म
किं भूयः कथयामि ते ॥७८॥

यत् मां त्वं	जो मुझसे तुमने	जन्म सर्व	जन्मकी सब कथा
परिपृच्छसि	पूछा था	आख्यातं	सुना दी
एवं ते	इस प्रकार तुमसे	ते भूयः किं	तुमसे और क्या
मङ्गलं मरुतां	मङ्गलमय मरुद्गणोंके	कथयामि	वर्णन करूँ ॥७८॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां
षष्ठस्कन्धे मरुदुत्पत्तिकथनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथएकोनविंशोऽध्यायः

राजोवाच—

व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन् भवता यदुदीरितम् ।

तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥ १ ॥

व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन् भवता यत् उदीरितं तस्य वेदितुं इच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥१॥

ब्रह्मन्	विप्रवर !	येन विष्णुः	जिससे भगवान्
भवता यत्	आपने जो		विष्णु
पुंसवनं व्रतं	पुंसवन व्रत	प्रसीदति	प्रसन्न होते हैं
उदीरितं	कहा	तस्य वेदितुं	उसीको जानना
		इच्छामि	चाहता हूँ ॥१॥

श्रीशुक उवाच—

शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया ।

आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः ॥ २ ॥

शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषित् भर्तुः अनुज्ञया आरभेत व्रतं इदं सार्वकामिकं आदितः ॥२॥

शुक्ले मार्गशिरे	मार्गशीर्षके शुक्ल	सार्वकामिकं	सम्पूर्ण कामना पूर्ण
पक्षे	पक्षके		करनेवाला
आदितः	प्रारम्भसे	व्रतं आरभेत	व्रत आरम्भ करे
भर्तुः अनुज्ञया	पतिकी आज्ञा लेकर		॥२॥
योषित् इदं	स्त्री यह		

निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणाननुमन्त्य च ।
 स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीतालङ्कृताम्बरे ।
 पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवन्तं श्रिया सह ॥ ३ ॥

निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणान् अनुमन्त्य च स्नात्वा शुक्लदती
 शुक्ले वसीत अलङ्कृत अम्बरे पूजयेत् प्रातराशात् प्राक् भगवन्तं श्रिया
 सह ॥३॥

मरुतां जन्म	मरुद्गणोंके जन्म (की कथा)	अम्बरे	वस्त्र
निशम्य	सुनकर,	वसीत	पहिने !
च ब्राह्मणान्	और ब्राह्मणोंकी	प्रातराशात्	कलेऊ करनेसे
अनुमन्त्य	अनुमति लेकर	प्राक्	पहिले
शुक्लदती	दांत स्वच्छ करके,	श्रिया सह	लक्ष्मीके साथ
स्नात्वा शुक्ले	स्नान करके श्वेत	भगवन्तं पूजयेत्	भगवान्की पूजा
अलङ्कृत	आभूषण और		करें ॥३॥

अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते ।

महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥ ४ ॥

अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमः अस्तु ते महाविभूति पतये नमः
 सकल सिद्धये ॥४॥

ते अलं	आप अत्यन्त	पतये	पति
निरपेक्षाय	निरपेक्ष	सकल सिद्धये	समस्त सिद्धि
पूर्णकाम	पूर्णकामको		स्वरूपको
नमः अस्तु	नमस्कार है,	नमः	नमस्कार ॥४॥
ते महाविभूति-	आप महाविभूति-		

यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनौजसा ।

जुष्ट ईश गुणैः सर्वैस्ततोऽसि भगवान् प्रभुः ॥ ५ ॥

यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनः ओजसा जुष्ट ईश गुणैः सर्वैः
ततः असि भगवान् प्रभुः ॥५॥

यथा त्वं जैसे आप
कृपया भूत्या कृपा, विभूति,
तेजसा महिनः तेज, महिमा,
ओजसा ओजसे,
सर्वैः ईश गुणैः सम्पूर्ण ईश्वरीय
 गुणोंसे

जुष्टः नित्ययुक्त हैं
ततः प्रभुः इसलिए स्वामी
 (आप)
भगवान् असि भगवान् हैं ॥५॥

विष्णुपतिं महामाये महापुरुषलक्षणे ।

प्रीयेथा मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥

विष्णुपतिं महामाये महापुरुष लक्षणे प्रीयेथा मे महाभागे
लोकमातः नमः अस्तु ते ॥६॥

महामाये महामाया,
विष्णुपतिं विष्णु भगवान्की
 पत्नी
महापुरुष लक्षणे भगवान् पुरुषोत्तम-
 की (श्रीवत्सरूपमें)
 लक्षणभूता,

महाभागे महाभागा
मे प्रीयेथा मुझपर प्रसन्न हो,
लोकमातः जगज्जननी
ते नमः अस्तु आपको नमस्कार है
 ॥६॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महावि-
भूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिमुपहराणीति । अनेनाहरहर्मन्त्रेण
विष्णोरावाहनाध्यपाद्योपस्पर्शनस्तनवासा उपवीतविभूषणगन्ध-
पुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहित उपाहरेत् ॥७॥

ॐ नमः भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह
महाविभूतिभिः बलि उपहराणि इति । अनेन अहः अहः मन्त्रेण विष्णोः
आवाहन अर्घ्य पाद्य उपस्पर्शन स्नान वास उपवीत विभूषण गन्ध पुष्प धूप
दीप उपहार आदि उपचारां च समाहित उपाहरेत् ॥७॥

ॐ ओङ्कार स्वरूप
भगवते भगवान्
महापुरुषाय पुरुषोत्तम
महानुभावाय महाप्रभाव
महाविभूतिपयते लक्ष्मीपतिको
नमः नमस्कार,
सह आपको
महाविभूतिभिः श्रीलक्ष्मीजीके साथ
बलि उपहराणि उपहार भेंट करती
हूँ ।
इति इस प्रकार
अनेन मन्त्रेण इस मन्त्रसे
अहः अहः प्रतिदिन

विष्णोः भगवान् विष्णुको
आवाहन अर्घ्य आवाहन करके,
अर्घ्य,
पाद्य उपस्पर्शन पाद्य, आचमन,
स्नान वास स्नान, वस्त्र,
उपवीत यज्ञोपवीत,
विभूषण आभूषण,
गन्ध, पुष्प चन्दन, पुष्प,
धूप दीप धूप, दीप
उपहार आदि नैवेद्य आदि
उपचारान् च पूजा सामग्रीको भी
समाहित एकाग्र होकर
उपाहरेत् अर्पित करे ॥७॥

हविःशेषं तु जुहुयादनले द्वादशाहुतीः ।

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति ॥८॥

हविःशेषं तु जुहुयात् अनले द्वादश आहुतिः । ॐ नमो भगवते
महापुरुषाय महाविभूति पतये स्वाहा इति ॥८॥

हविःशेषं तु बचे हुए नैवेद्यसे ही
अनले अग्निमें
द्वादश आहुतिः बारह आहुति
जुहुयात् हवन करे,

‘ॐ नमो भगवते
महापुरुषाय महाविभूति पतये स्वाहा’
इति इस मन्त्रसे ॥८॥

श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवानुभौ ।

भक्त्या सम्पूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसम्पदः ॥ ९ ॥

श्रियं विष्णुं च वरदाः आशिषां प्रभवाः उभौ भक्त्या सम्पूजयेत्
नित्यं यदि इच्छेत् सर्व सम्पदः ॥९॥

यदि सर्वं सम्पदः यदि सब सम्पत्ति
इच्छेत् पानेकी इच्छा हो तो
श्रियं विष्णुं च लक्ष्मी और विष्णु
भगवान्
उभौ वरदाः दोनों वरदायी

अशिषां प्रभवाः अभिलाषाओंके
प्रदाताओंकी
भक्त्या नित्यं भक्तिपूर्वक सदा
सम्पूजयेत् पूजा करे ॥६॥

प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा ।

दशवारं जपेन्मन्त्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥१०॥

प्रणमेत् दण्डवत् भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा दशवारं जपेत् मन्त्रं
ततः स्तोत्रं उदीरयेत् ॥१०॥

भक्तिप्रह्वेण भक्ति-भावपूर्ण
चेतसा चित्तसे
भूमौ दण्डवत् फिर पृथ्वीपर
दण्डवत्
प्रणमेत् प्रणाम करे,

मन्त्रं तब मन्त्रका
दशवारं जपेत् दस बार जप करे,
ततः स्तोत्रं फिर इस स्तोत्रका
उदीरयेत् उच्चारण करे ॥१०॥

युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम् ।

इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा मायाशक्तिर्दुरत्यया ॥११॥

युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परं इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा
मायाशक्तिः दुरत्यया ॥११॥

युवां तु आप दोनों ही
विश्वस्य विभू विश्वमें व्यापक,
जगतः परं संसारके परम
कारणं कारण हैं ।

हि इयं क्योंकि ये (लक्ष्मी-
जी)
सूक्ष्मा प्रकृतिः सूक्ष्म प्रकृति
दुरत्यया दुष्पारा
मायाशक्तिः माया शक्ति हैं ॥११॥

तस्या अधीश्वरः साक्षात्मेव पुरुषः परः ।

त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवात् ॥१२॥

तस्या अधीश्वरः साक्षात् त्वं एव पुरुषः परः त्वं सर्वयज्ञ इज्या इयं क्रिय इयं फलभुक् भवान् ॥१२॥

तस्या अधीश्वरः	उनके अधीश्वर	इयं इज्या	ये यज्ञ क्रिया हैं ।
त्वं एव	आप ही	इयं क्रिया	ये कर्म रूपा हैं और
साक्षात् परः	साक्षात् परम	भवान् फलभुक्	(उसके) आप फल
पुरुषः	पुरुष हैं,		भोक्ता हैं ॥१२॥
त्वं सर्वयज्ञ	आप सर्वयज्ञ रूप हैं,		

गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग्भवान् ।

त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया ।

नामरूपे भगवती प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥१३॥

गुण व्यक्तिः इयं देवी व्यञ्जकः गुणभुक् भवान् त्वं हि सर्व शरीरी आत्मा श्रीः शरीर इन्द्रिय आशया नामरूपे भगवती प्रत्ययः त्वं अपाश्रयः ॥१३॥

इयं देवी	ये देवी (लक्ष्मी)	आत्मा	आत्मा हैं,
गुण व्यक्तिः	गुणोंकी अभिव्यक्ति हैं,	श्रीः	लक्ष्मीजी
व्यञ्जकः	उनको व्यक्त करने-वाले	शरीर इन्द्रिय	शरीर, इन्द्रियां और
भवान् गुणभुक्	आप गुणोंके भोक्ता हैं ।	आशया	अन्तःकरण रूप हैं,
हि	व्योक्ति	भगवती	भगवती (लक्ष्मी)
सर्व	(आप) सब	नामरूपे	नाम और रूपमें
शरीरी	शरीरोंमें रहनेवाले	प्रत्ययः	प्रतीत होने वाली हैं,
		त्वं अपाश्रयः	आप (इनके) प्रकाशक हैं ॥१३॥

यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ ।

तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महाशिषः ॥१४॥

यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महा आशिषः ॥१४॥

उत्तमश्लोक	पवित्र कीर्ति प्रभु !	वरदौ	वरदाता हूँ
यथा युवां	जैसे आप दोनों	तथा म	वैसे ही मेरी
परमेष्ठिनौ	परमेश्वर	महा आशिषः	बड़ी अभिलाषाएँ
त्रिलोकस्य	त्रिलोकीको	सत्या सन्तु	पूर्ण हों ॥१४॥

इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह ।

तन्निःसार्योपहरणं दत्त्वाऽऽचमनमर्चयेत् ॥१५॥

इति अभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह तत् निःसार्य उपहरणं दत्त्वा आचमनं अर्चयेत् ॥१५॥

इति	इस प्रकार	तत् उपहरणं	वहाँसे नैवेद्य
वरदं श्रीनिवासं	वरदाता भगवान्	निःसार्यं	हटाकर
	नारायणकी	आचमनं दत्त्वा	आचमन देकर
श्रिया सह	लक्ष्मीके साथ	अर्चयेत्	(शेष) पूजा करे ॥१५॥
अभिष्टूय	स्तुति करके		

ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा ।

यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥१६॥

ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्ति प्रह्वेण चेतसा यज्ञ उच्छिष्टं अवघ्राय पुनः अभ्यर्चयेत् हरिम् ॥१६॥

ततः भक्ति-	तब भक्ति-	यज्ञ उच्छिष्टं	यज्ञावशेषको
प्रह्वेण	पूर्ण	अवघ्राय	सूँघकर
चेतसा	चित्तसे	पुनः हरिं	फिर श्रीहरिकी
स्तोत्रेण स्तुवीत	स्तवों द्वारा स्तुति	अभ्यर्चयेत्	पूजा करे ॥१६॥
	करे,		

पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा ।

प्रियैस्तैस्तरुपनमेत् प्रेमशीलः स्वयं पतिः ।

बिभृयात् सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥१७॥

पतिं च परया भक्त्या महापुरुष चेतसा प्रियैः तैः तैः
उपनमेत् प्रेमशीलः स्वयं पतिः बिभृयात् सर्वकर्माणि पत्न्या उच्च अवचानि
च ॥१७॥

च	फिर (भगवान्की पूजाके बाद)	स्वयं पतिः	स्वयं पति भी
परया भक्त्या	परम प्रेमसे	प्रेमशीलः	(पत्नीसे) प्रेम पूर्वक व्यवहार करे
पतिं च	पतिको भी	पत्न्या उच्च	पत्नीके बड़े
महापुरुष चेतसा	(उनको) परम पुरुष मानकर	अवचानि	छोटे
तैः तैः प्रियैः	(उनकी) उन-उन प्रिय वस्तुएँ	सर्व कर्माणि	कर्मों (कर्तव्यों) को
उपनमेत्	(सेवामें) उपस्थित करे	बिभृयात्	धारण करे (स्वयं कर दें) ॥१७॥

कृतमेकतरेणापि

दम्पत्योरुभयोरपि ।

पत्न्यां कुर्यादिनर्हायां पतिरेतत् समाहितः ॥१८॥

कृतं एकतरेण अपि दम्पत्योः उभयोः अपि पत्न्यां कुर्यात् अनर्हायां
पतिः एतत् समाहितः ॥१८॥

दम्पत्योः	पति-पत्नीमें-से	अनर्हायां	(रोग, रजो-धर्मादिके कारण) न करने
एकतरेण कृतं	किसी एकके द्वारा भी किया	पतिः समाहितः	योग्य हो जानेपर
उभयोः अपि	दोनोंका ही हो जाता है,	एतत् कुर्यात्	यह व्रत करना चाहिए ॥१८॥
पत्न्यां	पत्नीके		

विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्न विह्न्यात् कथञ्चन ।

विप्रान् स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ।

अर्चेदहरर्हभक्त्या देवं नियममास्थितः ॥१९॥

विष्णोः व्रतं इदं बिभ्रन् न विहन्यात् कथञ्चन विप्रान् स्त्रियः
वीरवतीः स्रक् गन्ध बलि मण्डनैः अर्चेत् अहरहः भक्त्या देवं नियमं
आस्थितः ॥१६॥

इदं विष्णोः व्रतं	यह विष्णु-व्रत	नियमं	नियम
बिभ्रन्	धारण करके	आस्थितः	निष्ठ होकर
कथञ्चन	किसी भी तरह (बीचमें)	स्रक् गन्ध	माला, चन्दन,
न विहन्यात्	न छोड़े,	बलि मण्डनैः	नैवेद्य, आभूषणादिसे
विप्रान्	ब्राह्मणों और	भक्त्या अहरहः	भक्ति सहित प्रति-
वीरवती स्त्रियः	मुहागिनी स्त्रियोंका		दिन
देवं	तथा भगवान्की	अर्चेत्	पूजन करे ॥१६॥

उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः ।

अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥२०॥

उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तत् निवेदितं अग्रतः अद्यात् आत्म विशुद्धि
अर्थं सर्वकाम ऋद्धये तथा ॥२०॥

देवं स्वे धाम्नि	(तब) भगवान्को उनके धाम (जानेको)	सर्वकाम ऋद्धये	सम्पूर्ण अभिलाषाओं- की पूर्तिके लिए
उद्वास्य	विसर्जित करके	अग्रतः	पहिले ही
आत्म विशुद्धि	चित्त शुद्धिके	तत् निवेदितं	उन् (भगवान्) को निवेदित (प्रसाद)
अर्थं तथा	लिए तथा	अद्यात्	ग्रहण करे ॥२०॥

एतेन पूजाविधिना मासान् द्वादश हायनम् ।

नीत्वाथोपचरेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥२१॥

एतेन पूजा विधिना मासात् द्वादश हायनं नीत्वा अथ उपचरेत्
साध्वी कार्तिके चरमे अहनि ॥२१॥

एतेन	इस	चरमे अहनि	व्रतके अन्तिम दिन
पूजा विधिना	पूजा विधिसे		(मार्गशीर्ष अमा-
द्वादश मासान्	बारह महीने,		वस्याको)
हायनं	पूरा वर्ष बिताकर	साध्वी	वह पतिव्रता
कार्तिके	कार्तिकके बाद	उपचरेत्	उद्यापन करे ॥२१॥

श्वोभूतेऽप उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् ।

पयःशृतेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा ।

पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥२२॥

श्व अभूते अप उपस्पृश्य कृष्णं अभ्यर्च्य पूर्ववत् पयः शृतेन जुहुयात् चरुणा सह सर्पिषा पाकयज्ञ विधानेन द्वादश एव आहुतीः पतिः ॥२२॥

श्व अभूते	(उस दिन) सबेरा	सह सर्पिषा	घीके साथ
	होते ही	पयः शृतेन	दूधमें पकायी
अप उपस्पृश्य	स्नान करके	चरुणा	खीरसे
पूर्ववत् कृष्णं	पहिलेके समान	द्वादश एव	बारह ही
	भगवान् विष्णुकी	आहुतीः	आहुतियोंसे
अभ्यर्च्य	पूजा करके	जुहुयात्	हवन करे ॥२२॥
पतिः	(उसका) पति		
पाकयज्ञ	पाक-यज्ञकी		
विधानेन	विधिसे		

आशिषः शिरसाऽऽदाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः ।

प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तदनुज्ञया ॥२३॥

आशिषः शिरसा आदाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तत् अनुज्ञया ॥२३॥

प्रीतैः द्विजैः	प्रसन्न हुए ब्राह्मणों	समीरिताः	दिये गये
	द्वारा	आशिषः	आशीर्वादको

शिरसा आदाय	मस्तक झुकाकर	तत् अनुजया	उनकी अनुमति
	स्वीकार करके		लेकर
भक्त्या	भक्तिपूर्वक	भुञ्जीत	भोजन करे ॥२३॥
शिरसा प्रणम्य	सिर झुकाकर उन्हें		
	प्रणाम करके		

आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बन्धुभिः ।

दद्यात्पत्न्यै चरोः शेषं सुप्रजस्त्वं सुसौभगम् ॥२४॥

आचार्यं अग्रतः कृत्वा वाक् यतः सह बन्धुभिः दद्यात् पत्न्यैः चरोः शेषं
सुप्रजः त्वं सुसौभगम् ॥२४॥

आचार्यं	आचार्यको	पत्न्यैः दद्यात्	पत्नीको (इस संकल्प
अग्रतः कृत्वा	पहिले (भोजन)		से) दे
	कराके	त्वं सुप्रजः	तुम (प्रसाद) सत्पुत्र
सह बन्धुभिः	बन्धु-बान्धवोंके साथ		और
वाक् यतः	मौन होकर (भोजन	सुसौभगं	सौभाग्य देनेवाले
	करे) तब		होओ ॥२४॥
चरोः शेषं	हवनसे बची खीर		

एतच्चरित्वा विधिवद्भ्रतं विभो-

रभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ।

स्त्री त्वेतादास्थाय लभेत सौभगं

श्रियं प्रजां जीवर्पतिं यशो गृहम् ॥२५॥

एतत् चरित्वा विधिवत् भ्रतं विभोः अभीप्सित अर्थं लभते पुमान् इह
स्त्री तु एतत् आस्थाय लभेत सौभगं श्रियं प्रजां जीवर्पतिं यशः गृहम् ॥२५॥

एतत् विभोः	यह सर्वेश्वर प्रभु-	चरित्वा पुमान्	करके पुरुष
	का	इह	इसी जीवनमें
भ्रतं विधिवत्	व्रत विधिपूर्वक	अभीप्सित अर्थं	अभीष्ट प्रयोजन

लभते	प्राप्त कर लेता है,	प्रजां जीवपति	पुत्र, पतिका जीवन,
स्त्री तु	स्त्री तो	यशः गृहं	यश और घर
एतत् आस्थाय	इसका पालन करके	लभेत	पाती है ॥२५॥
सौभगं श्रियं	सौभाग्य, लक्ष्मी,		

कन्या च विन्देत समग्रलक्षणं
 वरं त्ववीरा हतकिल्बिषा गतिम् ।
 मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी
 सुदुर्भगा सुभगा रूपमग्रचम् ॥२६॥

कन्या च विन्देत समग्र लक्षणं वरं तु अवीरा हत किल्बिषा गतिं
 मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगा रूपं अग्रचम् ॥२६॥

च कन्या	और कन्या (इसे करके)	मृतप्रजा	जिसकी सन्तान मर जाती हो
समग्र लक्षणं	सम्पूर्ण शुभ लक्षण युक्त	जीवसुता	उसके पुत्र जीवित रहते हैं,
वरं	पति (पाती है),	धनेश्वरी	धनवान
तु अवीरा	यदि विधवा करे	सुदुर्भगा	अभागिनीको
हत किल्बिषा	उसके पाप नष्ट हो जाते हैं,	सुभगा	सौभाग्य तथा
गतिं	उत्तम गति(पाती है)	अग्रचं रूपं	श्रेष्ठ रूप मिलता है ॥२६॥

विन्देद् विरूपा विरुजा विमुच्यते
 य आमयावीन्द्रियकल्पदेहम् ।

एतत्पठन्नभ्युदये च कर्म-
 ण्यनन्ततृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥२७॥

विन्देत् विरूपा विरुजा विमुच्यते य आमयाः इन्द्रिय कल्पदेहं एतत् पठन् अभ्युदये च कर्मणि अनन्त तृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥२७॥

विरूपा (रूपं) विन्देत्	कुरूपा उत्तम रूप पा लेती है,	च अभ्युदये कर्मणि एतत् पठन् पितृदेवतानां	और मांगलिक कर्मोंके अवसरपर इसका पाठ करनेसे पितरों तथा देव- ताओंकी
विरूजा य	रोगी जो	अनन्त तृप्तिः	अनन्त तृप्ति होती है ॥२७॥
आमयाः इन्द्रिय	इन्द्रियोंमें रोग था		
विमुच्यते	उससे छूट जाता है।		
कल्पदेहं	उसका काया-कल्प हो जाता है।		

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान्
होमावसाने हुतभुक् श्रीर्हरिश्च ।
राजन् महन्मरुतां जन्म पुण्यं
दितेव्रतं चाभिहितं महत्ते ॥२८॥

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्त कामान् होम अवसाने हुतभुक् श्रीः हरिः च
राजन् महत् मरुतां जन्म पुण्यं दितेः व्रतं च अभिहितं महत् ते ॥२८॥

होम अवसाने	हवनके अन्तमें	महत् पुण्यं	महान् पुण्यप्रद
तुष्टाः	सन्तुष्ट होकर	मरुतां जन्म	मरुद्गणोंका जन्म
हुतभुक् च	अग्निदेव और	च दितेः	और दितिके
श्रीः हरिः	श्रीलक्ष्मीनारायण	महत् व्रतं	महान् व्रतको
समस्त कामान्	सम्पूर्ण अभिलाषा	ते अभिहितं	तुम्हें सुना दिया
प्रयच्छन्ति	प्रदान करते हैं		॥२८॥
राजन्	राजन् !		

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे वैयासिक्यामष्टादशसाहस्रत्रयां
पारमहंस्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे पुंसवनव्रतकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१६॥

॥ इति षष्ठः स्कन्धः समाप्तः ॥

हरि ॐ तत्सत्







